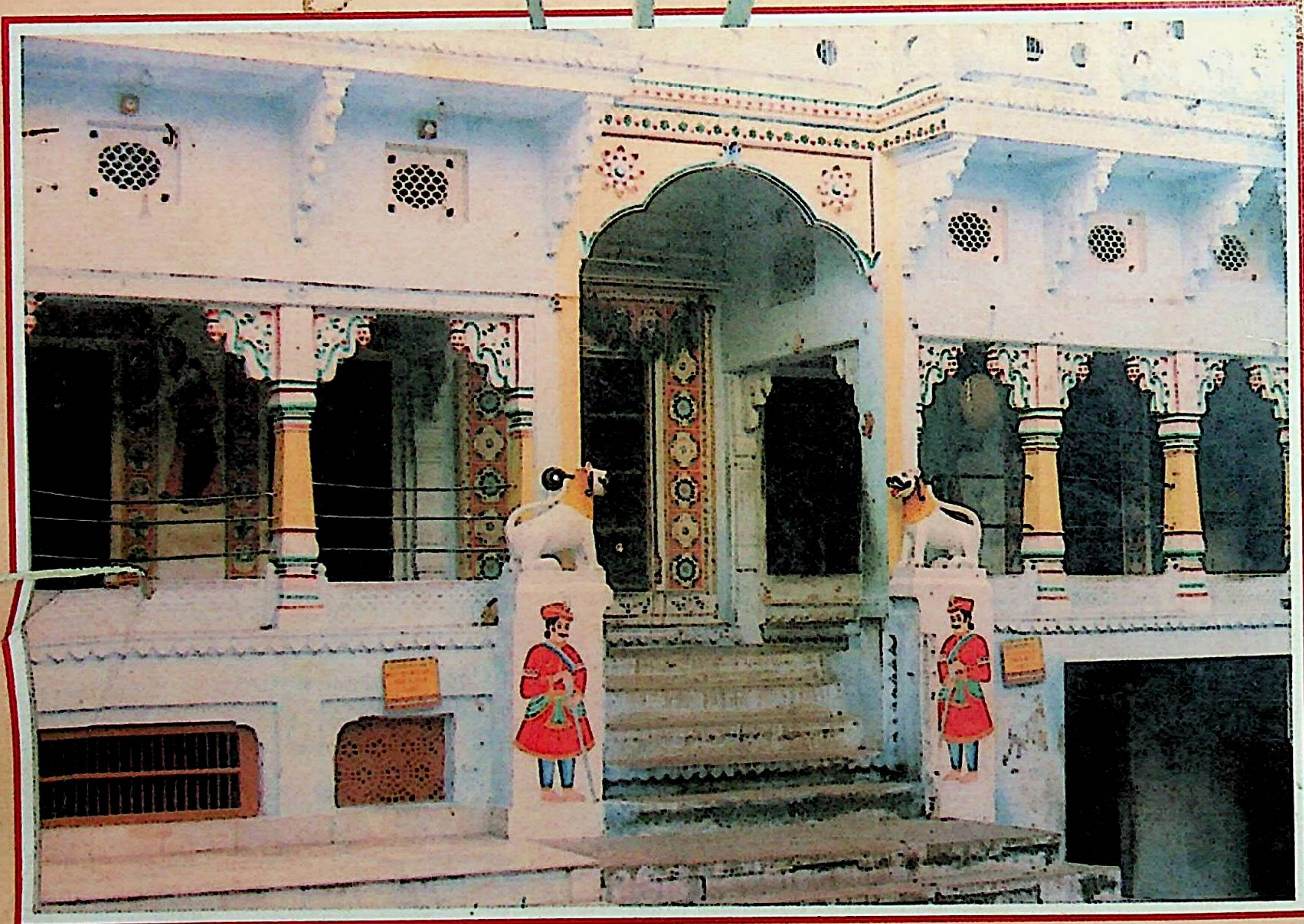
॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर

नित्यलीलास्थ श्री १०८ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

स्मृति ग्रन्थ

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण



षष्ठपीठ

मंदिर श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी

काशी

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज, काशी



प्रधान सम्पादक

परिचय

पितृनाम : गो. श्री व्रजभूषणलालजी महाराज

मातृनाम : अ. सौ. गो. व्रजलताजी

जन्म तिथि : मार्ग. शु. २ वि. सं. २०१३ ई. सन् ४ दिसम्बर १९५६

शिक्षा : वल्लभवेदान्ताचार्य तथा पुराणाचार्य

शिक्षक : १. वल्लभ वेदान्त, न्याय, हरिराय महाकवि (साहित्य, न्याय वेदान्त)

२. पुराणेतिहास श्री गोपालदास गज्जा, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी एम.ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्न, गीता विशारद आदि

अन्य रुचियाँ : संगीत प्रेम, प्रकृति स्नेह, विद्या व्यासङ्ग, मृदङ्गवादन, तत्वजिज्ञासा आदि

विशेषता : वेदान्त (वल्लभ)

सामाजिक क्षेत्र : धार्मिक प्रधान, श्रीमद् वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान, वाराणसी; अध्यक्ष, श्री रामजी शास्त्री चैरिटेब्ल ट्रस्ट, मथुरा; संस्थापक अध्यक्ष, श्री वृजभूषणलाल अतिथि सेवा ट्रस्ट, गोकुल; संस्थापक अध्यक्ष, श्री वल्लभ वैष्णव चैरिटेब्ल ट्रस्ट, मुम्बई

रचनाएँ : भाषालक्षण ग्रन्थ-टीका भक्ति-भूषिणी, संज्ञा विमर्श; वृहद् दानलीला भाष्य टीका, पुराणों में कुण्डलिनी साधना, गोवर्धन पूजान चलेरी कन्हाई, पुष्टिभक्ति की विशेषता तीन लोक से मथुरा न्यारी

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर

नित्यलीलास्थ श्री १०८ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी एवं ठाकुर श्रीगोपाललालजी के छप्पनभोग मनोरथ तथा ष० पी० धी० गो० श्रीश्याममनोहरजी महाराज के चि० गो० श्रीप्रियेन्दुबावा के यज्ञोपवीत प्रस्ताव के सुअवसर पर प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थ 'पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण' का लोकार्पण तृतीय पीठाधीश्वर गो० श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज के करकमलों द्वारा मि० माघ सुदी १५ दिनांक १९-२-२००० को सम्पन्न हुआ।

षष्ठपीठ

मंदिर श्री मुकुन्दरायजी श्रीगोपाललालजी

(काशी) वाराणसी, उ० प्र०, भारत

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर

नित्यलीलास्थ श्री १०८ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

स्मृति ग्रन्थ

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण

(सचित्र)

प्रधान सम्पादक

षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज

सम्पादक मण्डल

श्री राधेकृष्ण अग्रवाल
प्रो० गिरीशचन्द्र चौधरी
श्री घनश्यामदास शाह
डा० गोपीवल्लभ पाठक
श्री मोहनदास एडवोकेट
श्री वल्लभदास मुनीमवाला

षष्ठपीठ

मंदिर श्री मुकुन्दरायजी श्रीगोपाललालजी

(काशी) वाराणसी, उ० प्र०, भारत

प्रकाशक

श्री गिरिधर प्रकाशन

श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान

षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर (काशी)

वाराणसी (उ०प्र०), भारत

ग्रन्थमाला तृतीय पुष्प

संस्करण

प्रथम आवृत्ति ३२०० विक्रम संवत् २०५६ (ई० सन् २०००)

न्योछावर रु. ३०१/-

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान

षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर (काशी)

चौखम्भा, वाराणसी २२१ ००१

उ० प्र०, भारत

मुद्रक :–चारू प्रिंटर्स, गोलघर, मैदागिन, वाराणसी ❁ अक्षर संयोजक : जौहरी प्रॉसेस, वाराणसी

SHRI MUKUND GOPALLALAU VIJAYETE

Shashthapeethadhishwar Nityalilastha
Shree 108 Goswami Shree Muralidharlalji Maharajshree

Smriti Grantha

PUSHTI SHASHTHAPEETHA DARPAN

(Illustrated)

CHIEF EDITOR

Shashthapeethadhishwar Goswami
Shree Shyammanoharji Maharaj

SHASHTHAPEETHA
MANDIR SHREE MUKUNDRAIJI SHREE GOPALLALJI,
(KASHI) VARANASI, U.P., INDIA

Publisher :
Shree Giridhar Prakashan
Publication Series - Third Publication
Shree Mukund Gopal Seva Sansthan
Shashthapeetha Shree Gopal Mandir (Kashi)
Varanasi, U.P., India

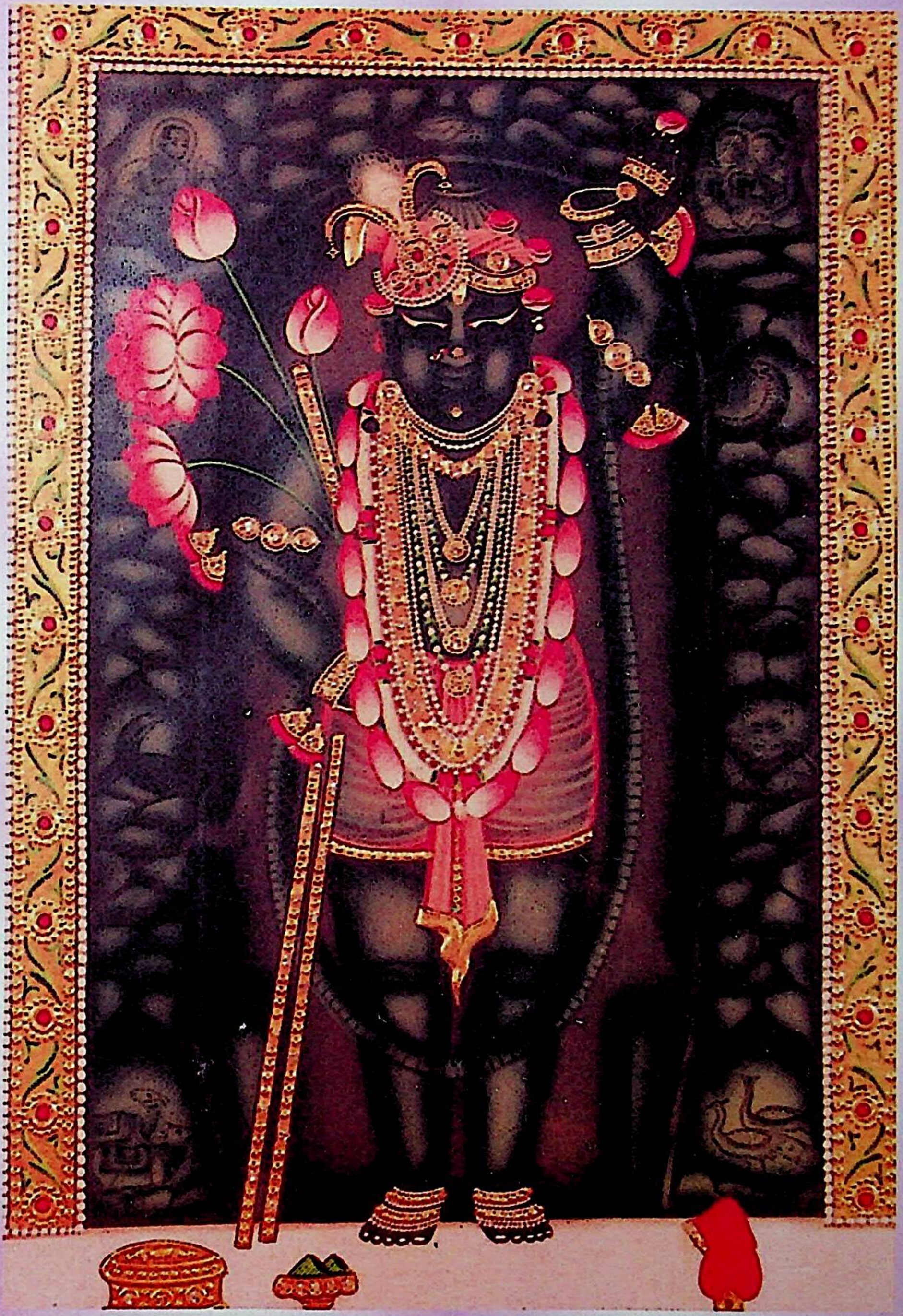
Edition
First 3200 Copies - Vikram Samvat 2056 (2000 A.D.)

Cost : Rs. 301/-

Place of availability of the grantha :
Shashthapeetha Shree Gopal Mandir (Kashi)
Chaukhambha, Varanasi - 221 001
U.P., India

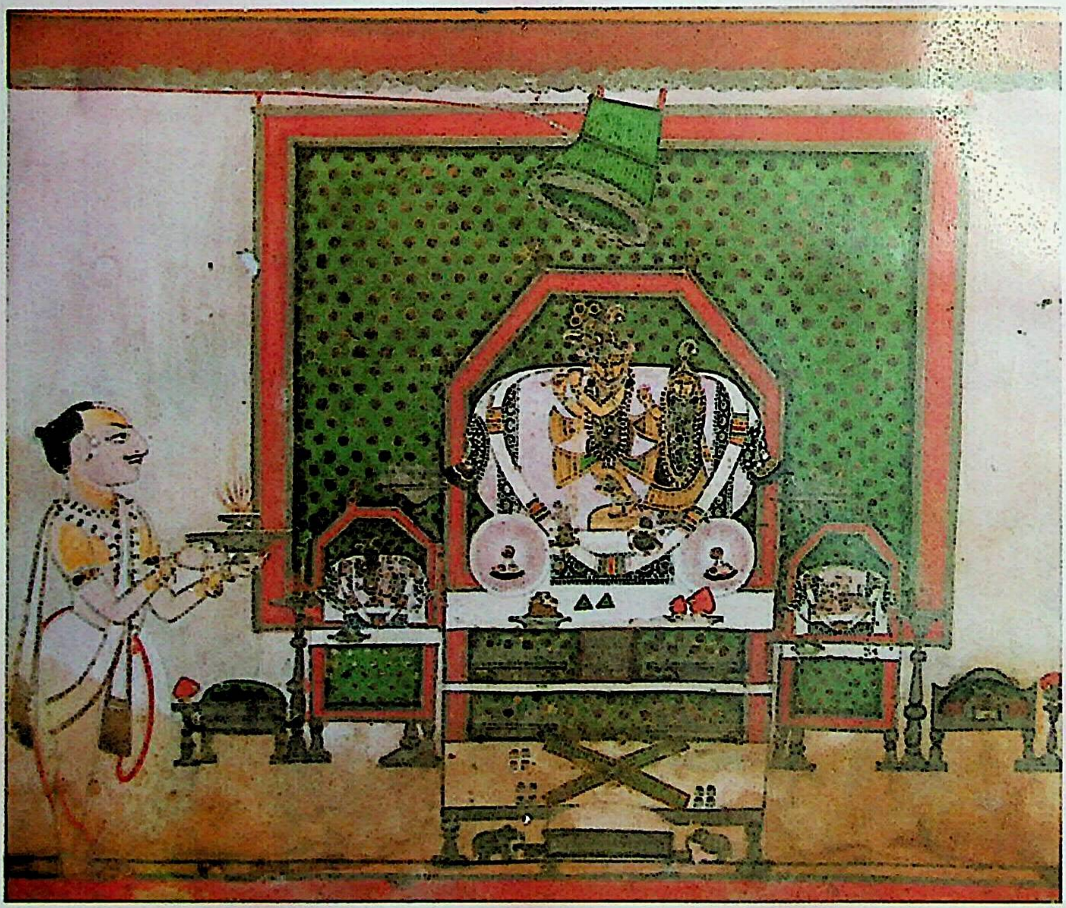
Printers : Charu Printers, Golghar, Varanasi-1 ✿ Laser-Type setting : Jauhari Process, Varanasi

॥ श्री श्रीनाथजी ॥



त्वं जय सततं श्री गोवर्धनधर पालय निज दासान्

॥ श्री गोपाललालजी ॥



श्रीमद्गोपाललालं मृगमदविलसद्भालमालं कृतस्व
स्वामिन्या सुस्मितास्यं ललितगतिलसन्मालगोपालबालम् ।
वेणौ विन्यस्तहस्तं रतिपतिमदहृत्स्वर्णगात्रं सुनेत्रं
रासक्रीडादिलोलं सुललितवसनं राधिकेशं नमामि ॥

(शु०मा० श्री गिरिधरजी महाराज कृत)

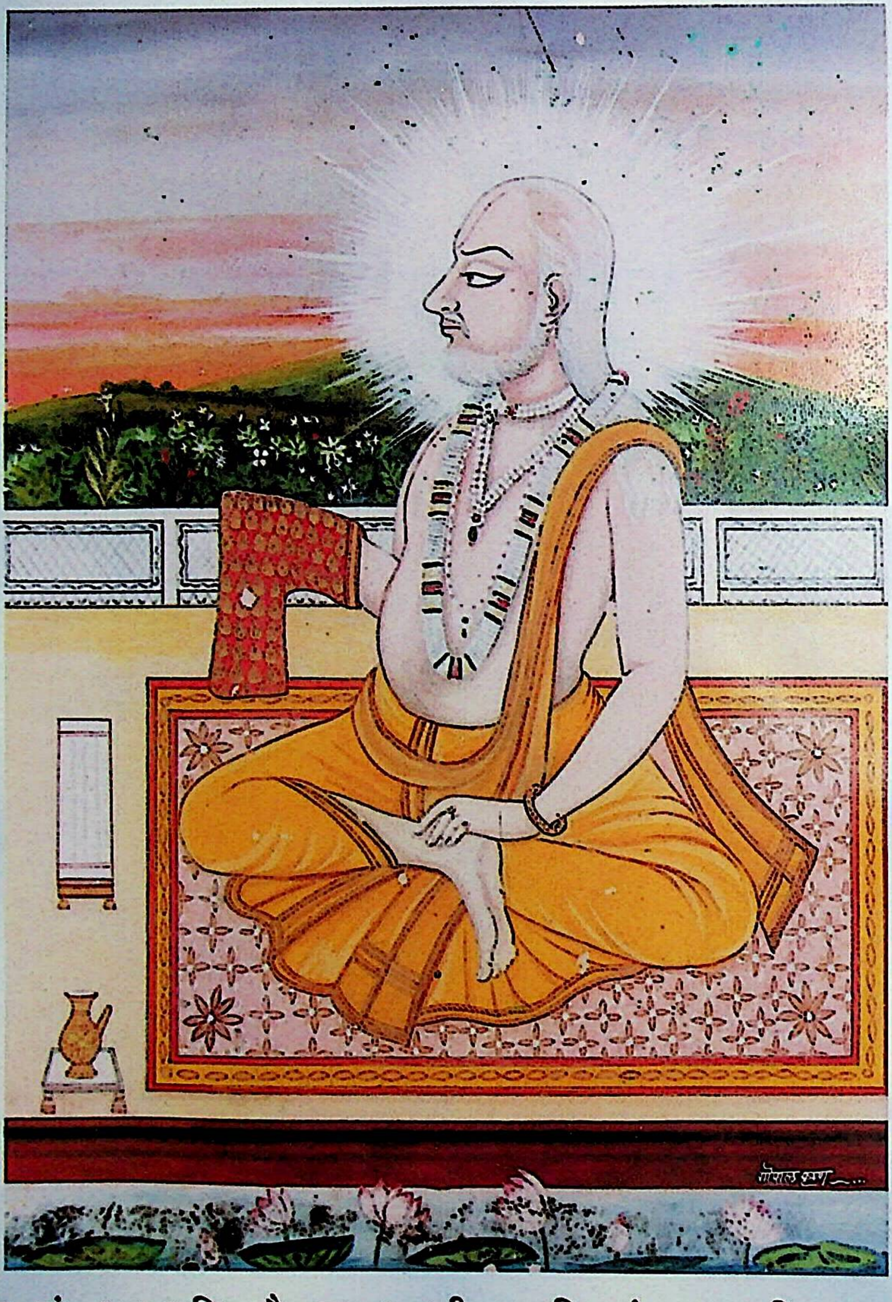
॥ षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी ॥



यः स्वीयान्गतसाधनानगणयन्नानापराधान्परा-
नेकेनैव कृपासुधाजलधरासारेण संसिञ्चति ।
श्यामत्वं निजशोभयाऽपरवपुर्ध्यानेन यद्गौरतां
तं रायोत्तरशब्दमुद्धृतनिजं श्रीमन्मुकुन्दं भजे ॥

(शु०मा० श्री गिरिधरजी महाराज कृत)

॥ अखण्डभूमण्डलाचार्य जगद्गुरु गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी ॥



प्रा० वि० सं० १५७२ मि० पौ० कृ० ९ ली० प्र० वि० सं० १६४२ मि० मा० शु० ७

रासादिलीलारसपूरिताङ्गं निजान्तरङ्गानुजराजहंसम् ।
मायीन्द्रकुम्भीन्द्रहरीन्द्रमीशं श्रीविठ्ठलेशं प्रणमामि नित्यम् ॥

(शु०मा० श्री गिरिधरजी महाराज कृत)

श्रीमद् अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य चक्रचूड़ामणी वैश्वानरावतार

श्रीमद् शुद्धाद्वैताखण्डब्रह्मवादप्रवर्तक जगद्गुरु श्रीमद् वल्लभाचार्यचरण महाप्रभु

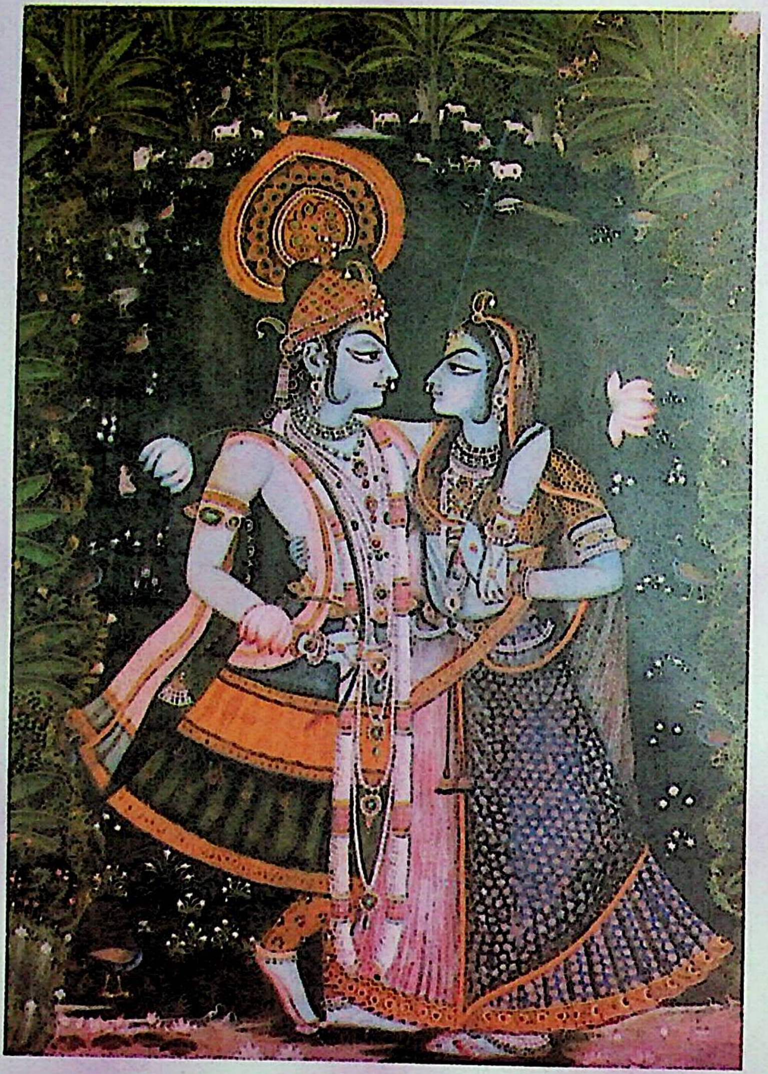


प्रा० वि० सं० १५३५ मि० वै० कृ० ११ ली० प्र० वि० सं० १५८७ मि० आषाढ़ शु० २

नानामतेषु प्रविवेककारि श्री पुष्टिमार्गप्रवहप्रदर्शि ।
श्रीवल्लभाचार्यपदारविन्दं सुषट्पदीभूतमना नतोऽस्मि ।।

(शु०मा० श्री गिरिधरजी महाराज कृत)

॥ श्याम संग श्याम व्है रही श्री यमुने ॥



प्रत्यङ्गमालिङ्गनभङ्गिसङ्गमैस्तरङ्गितानङ्गतरङ्गिणीं प्रियाम् ।
श्रीमन्मुकुन्दो न कलिन्दनन्दिनीं पिबन् पिबन्तीं नयनैरलं बभौ ॥
(गो० हरिराय महाकविः विरचित)

स्निग्धश्यामतमालमेचकतनुं पाणौ सनालोत्पलम् ।
अन्योन्यं मुखदर्शने हि सततं नेत्रद्वयं सोत्सुकम् ॥
अन्तः प्रेमभरेण पूरितहृदा सानन्दमालिङ्गितम् ।
सश्रीकं यमुना मुकुन्दयुगलं वन्दे सदानन्ददम् ॥
(श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री 'तदीय' कृत)

॥ षष्ठलालजी गो० श्री यदुनाथजी ॥



प्रा० वि० सं० १६१५ मि० चै० शु० ६   ली० प्र० वि० सं० १६६१

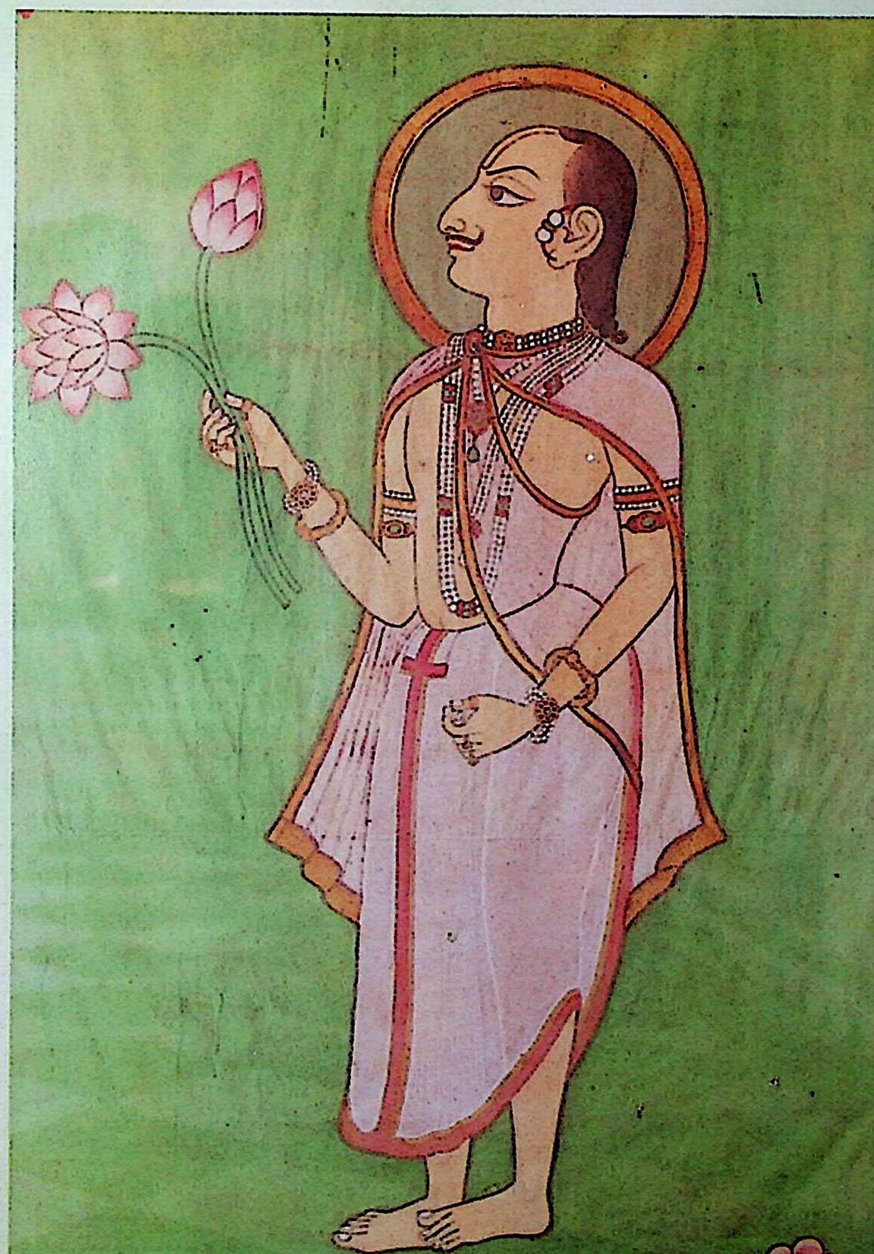
वन्दे श्रीयदुनाथांश्च भाष्यार्थस्याऽवबोधकान् ।
सर्वेषामनुकम्पार्थं निजमार्गप्रदर्शनकान् ।
श्रीमत्पप्रभुचरणात्मज गोस्वामीन्द्रो महाराजः ।
यत्कृपया मयि राजनि पुष्टिफला राज्यवरलक्ष्मीः ॥
(शु०मा० श्री गिरिधरजी महाराज कृत)

॥ तिलकायित गो० श्री दाऊजी दामोदरजी महाराज (द्वितीय) ॥



प्रा०वि०सं० १८५३ मि०आश्विन शु० ४ ली०प्र०वि०सं० १८८२ मि०फा०कृ० १५
आपश्री ने शुद्धाद्वैत मार्तण्ड गो० श्री गिरिधरजी महाराज काशीवालों को षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी पधराकर षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार ''महाराजजी की आड़ी की हटड़ी की आरती, पालकी'' प्रदान किया

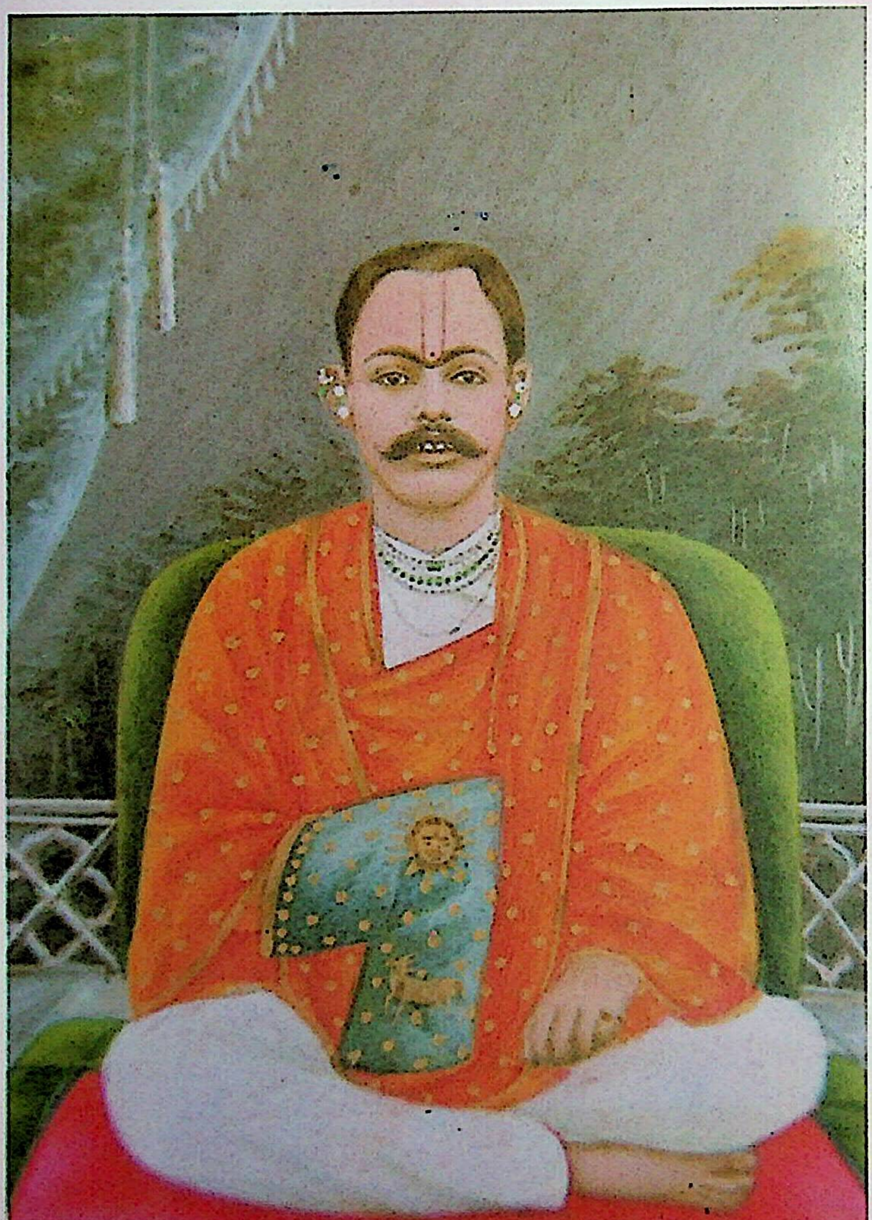
|| षष्ठगृहाधिपति गो० शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी महाराज, काशी ||



प्रा०वि०सं० १८४७ मि०पौ०कृ०३ ली०प्र०मि०भा०शु०६

श्रीमद्गिरिधरं वन्दे यदुनाथकुलोद्भवम् ।
यत्कृपा दृष्टिपातेन पतितः पावनोभवेत् ॥

॥ षष्ठगृहाधिपति गो० श्री जीवनलालजी महाराज, काशी ॥



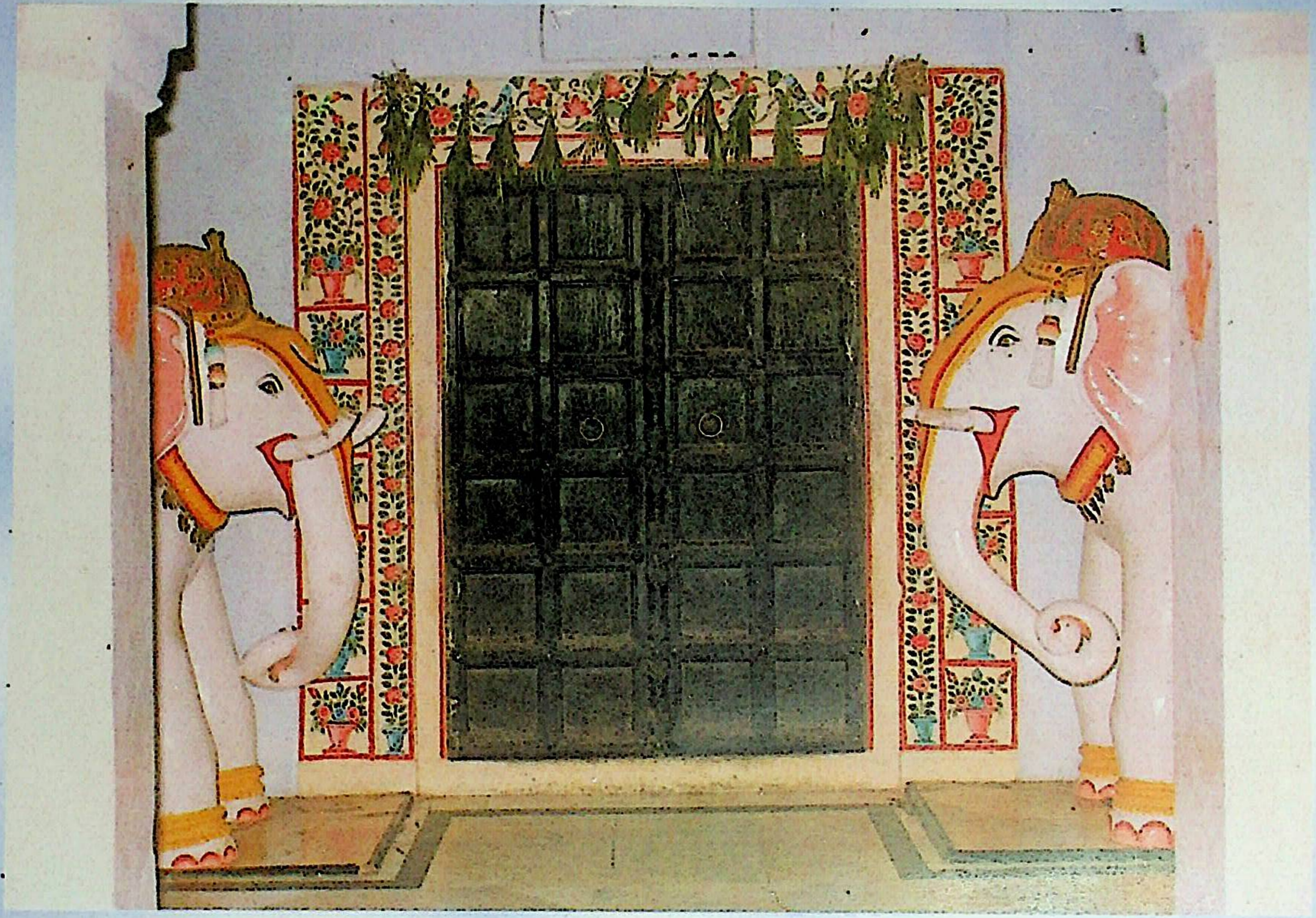
प्रा० वि० सं० १९२३ मि० ज्ये० शु० १५ ली० प्र० वि० सं० १९६० मि० वै० कृ० ११

॥ षष्ठगृहाधिपति गो० श्री गिरिधरलालजी महाराज ॥



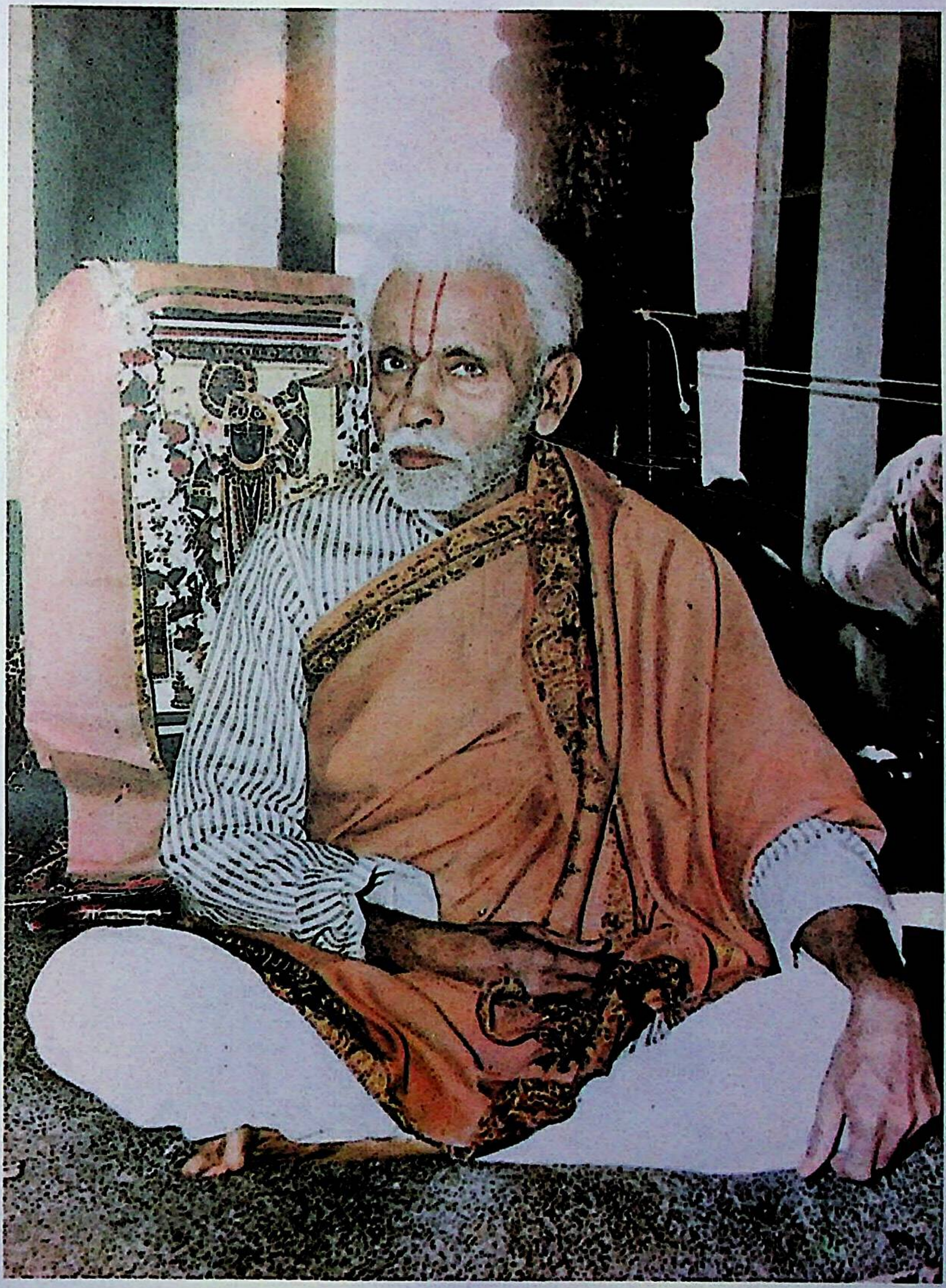
प्रा०वि०सं० १९५३ मि०मा०शु० १५ ली०प्र० (लगभग) वि०सं० १९८४ मि०ज्ये०कृ० २

|| श्री मुकुन्दरायो जयति ||



षष्ठपीठ काशी श्री मुकुन्दरायजी मंदिर का हथिया पौर

॥ षष्ठगृहाधिपति गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज ॥



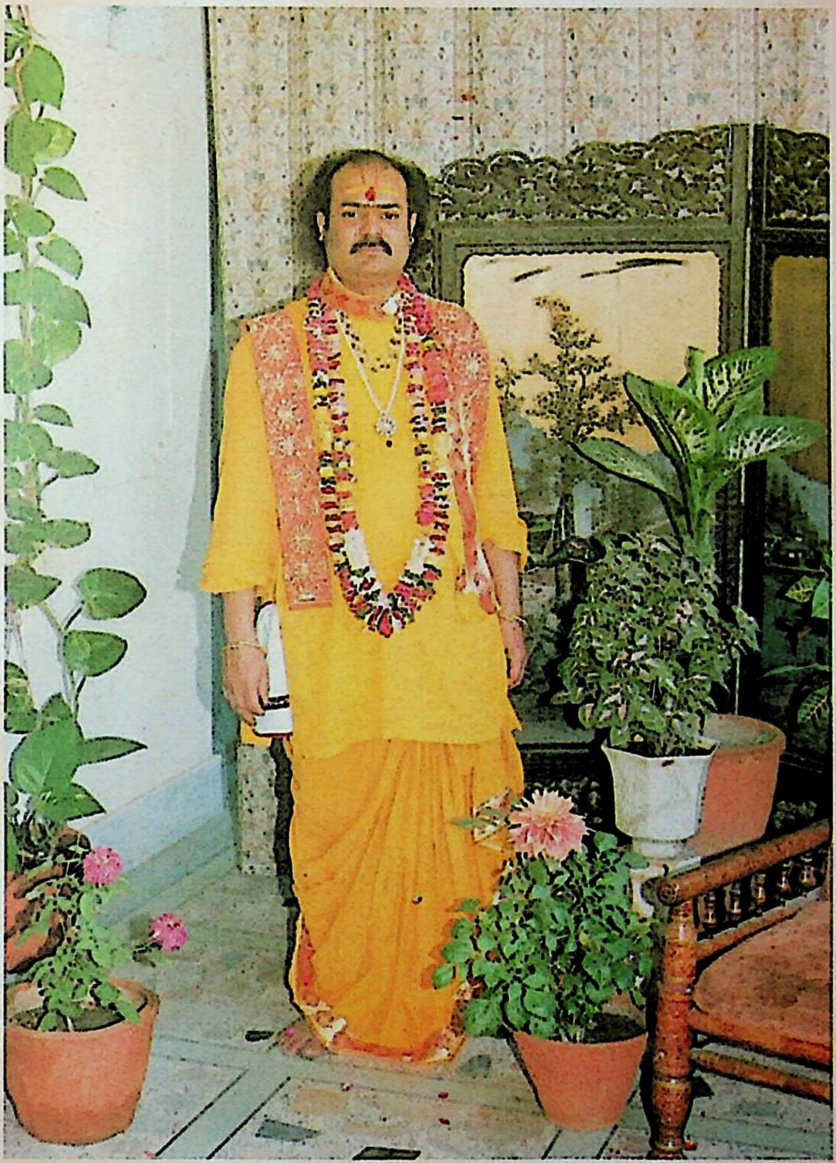
प्रा० वि० सं० १९६१ मि० चै० शु० १३   ली० प्र० सं० २०३९ मि० भा० कृ० ११

॥ श्री गोपाललालौ जयति ॥



मंदिर श्री गोपाललालजी का हथिया पौर
षष्ठपीठ, काशी

॥ षष्ठगृहाधिपति श्री १०८ गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज ॥

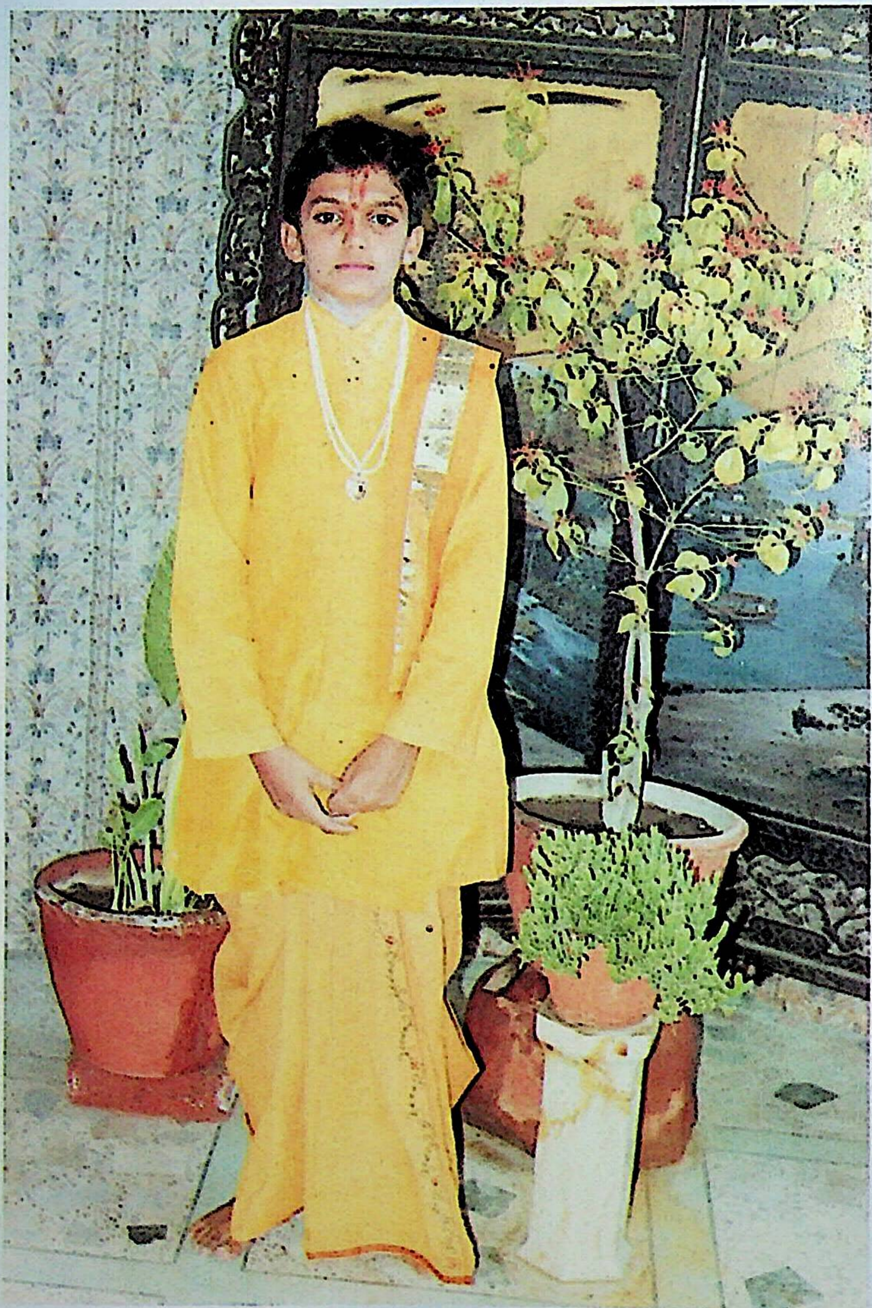


प्रा० वि० सं० २०१३ मि० मार्ग० शु० २

गादी विराजे को दिवस

श्री मुकुन्दरायजी पाटोत्सव वि० सं० २०४८ मि० मा० शु० ४

|| गो० चि० श्री प्रियेन्दु बावा ||



प्रा० वि० सं० २०४४ मि० मार्ग० कृ० ६

॥ श्री नाथजी ॥

पूज्यपाद गोस्वामी तिलकायित १०८
श्री राजीवजी (दाऊजी) महाराज

खास दफ्तर, मोती महल
नाथद्वारा (राजस्थान)
फोन : २४८०-८१
मुम्बई
फोन : ६४९४६४८

क्र. सं. ११९५

दिनांक : १३-९-१९९८

गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज,
श्री गोपाल मन्दिर,
चौखम्भा, वाराणसी-२२१००१

आपके पत्र दिनांक २८-८-९८ द्वारा यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज का जीवनवृत्त एवं काशी का इतिवृत्त प्रकाशित किया जा रहा है।

मनीषियों के जीवनवृत्त मानव मात्र के लिये प्रकाश स्तम्भ रहे हैं और उसके जीवन पथ को आलोकित किया है। मैं आशा करता हूँ कि इसी कड़ी से सृष्टि के मार्ग-दर्शनार्थ आपका यह सद्प्रयास जुड़ सकेगा।

मेरा शुभाशीर्वाद।

गो०ति० राजीवजी ''दाऊजी'' महाराज

॥ श्री गोवर्धनो जयति ॥

॥ श्री नवनीत प्रियो जयति ॥

श्री वल्लभ दर्शन, पोद्दार रोड,
सान्ताक्रूज (पश्चिम)
मुम्बई-४०० ०५४
फोन : ६४९२२६८

गो० श्री १०८ इन्द्रदमनजी (राकेशजी) महाराज

दिनांक : १२-९-१९९८

गो० श्री श्याममनोहरजी द्वारा यह जानकर प्रसन्नता हुई कि काशी-गृह का एक इतिहास नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी की पावन स्मृति में प्रकाशित किया जा रहा है।

पूर्वजों के स्मरण, शुभाशीर्वाद एवम् भावी पीढ़ियों के मार्गदर्शन हेतु यह एक बड़ा ही सराहनीय कार्य है।

इस स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए हमारी शुभकामनाएँ।

गो० श्री इन्द्रदमनजी
(गो० राकेश)

॥ श्री मथुरेशो जयति ॥

प्रथम पीठाधीश्वर गो० श्री विठ्ठलनाथजी महाराज (श्री लालमणीजी) (प्रथमेशजी)
प्रथमपीठ मथुराधीश मंदिर, कोटा (राजस्थान)

महाराजश्री मुरलीधरजी के कुछ संस्मरण

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः। कालेन फलति तीर्थं सद्य साधुसमागमः ॥

श्रेष्ठ महात्माओं का दर्शन पुण्यमय होता है, महापुरुष स्वयं तीर्थस्वरूप ही हैं। तीर्थ तो वास्तव में समयानुसार ही फल देता है, किन्तु सद्गुरुस्वरूप महात्माओं के दर्शन तो तत्काल फल देते हैं।

सन् १९६२ की बात है। नाथद्वाराजी में भगवान् के दिव्य सातों स्वरूपों के छप्पनभोग-मनोरथ का उत्सव था। हर्षोल्लास का वातावरण, सर्वत्र भक्ति, भक्त और भगवान् की ही चर्चा थी। मरीचिमाली प्रातःकालीन मंगल सिन्दूर छिड़क चुके थे। परमेश्रद्धेय आचार्यस्वरूप मुरलीधरजी की सवारी निकलने वाली थी। दर्शन से पहले ही उनके गुण कीर्तन श्रुति-गम्य हो गये थे। मैं वास्तव में उत्तेजित था। तभी कीर्ति-मुख विशालकाय हाथी पर एक महात्मा की सवारी निकली। हाथी पर बैठे हुए भी महात्माजी स्वागत-सुलभ-ऐश्वर्य से निर्लिप्त, भगवान् के श्रीचरणों में एकाग्रभाव से बैठे सेवा कार्य में लगे हुए थे। दास स्वामीत्व को कैसे ग्रहण करता? उनका तादात्म्य-भाव मन पर अलौकिक प्रभाव डाल रहा था। भगवान् विग्रह की सेवा में रत जब वही महात्मा भगवान् को आरसी दिखा रहे थे तब मेरे किसी परिचित ने कहा, "यही हैं श्री मुरलीधरजी महाराज।" मैं पुलकित होकर आगे बढ़ा। उन्हीं परिचित सज्जन ने मुरलीधरजी को मेरा परिचय दिया- "यह बालक श्रीमहाराज वल्लभाचार्य संकुल में उत्पन्न गोस्वामी श्री द्वारकेशलालजी का पौत्र है।" द्वारकेशजी का नाम लेते ही महाराजजी का मुखकमल खिल गया। मुझे अपने आभिजत्य पर गर्व हुआ। महाराजजी ने हृदय की बात न जाने कैसे भांप लिया। मेरे ही सम्मुख मेरे दादाजी की विद्वत्ता और सेवा-अनुरक्ति की प्रशंसा करने लगे। प्रशंसा करते-करते बीच में, चाँदी की बनी पालकी की ओर संकेत करते हुए उन्होंने मेरी गति-मति की परीक्षा लेते हुए पूछा, "इसको क्या कहते हैं?" मैं संकोच के गह्वर में मानों गिर पड़ा। साहस बटोरते हुए मैंने कहा, "सुखपाल।" वे हंसने लगे और अत्यन्त वात्सल्य-भावसिक्त होकर बोले, "वत्स! यह सुखपाल नहीं - चकडोल है।" वे पूजा-सेवा की सूक्ष्मतम विधि से पूर्णतः परिचित थे। अबोधता की ग्लानि में डूबते-उतराते देख उनके मन का वात्सल्य उमड़ आया। वे उठे और दूध-पूड़ी ले आये। मुझे देते हुए बोले, "लो यह खाओ।" उस समय उनके नेत्र से करुणा की मानो वर्षा झर रही थी।

इसी प्रकार जतीपुरा में मुकुन्दरायजी एवं मथुराधीशजी की सेवा में उनकी तत्परता दृष्टव्य थी। कितना तादात्म्य-भाव! यह बिना उच्चकोटि की निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास और एकाग्रता के सम्भव कैसे हो सकता है? आज हम जीवन के साधनों को एकत्रित करने की दौड़ में अपने उज्जवल, निर्मल, दिव्य परम्परा से कितनी दूर हो गए हैं, इसका अनुमान करने में भी पापबोध उभरने लगता है।

चर्नाट में उनके कीर्तन सुनकर भी आश्चर्य हुआ। सारे कीर्तन मुखगत थे। राग, स्वर, ताल सब शुद्ध और भक्ति-उद्रेक के पूरक थे। भावानुसार मुखमुद्रा भी परिवर्तित हो जाती थी-मानो शब्द, स्वर और भाव समेकित रूप से अभिव्यक्त हो रहे थे।

श्री गुसाईंजी के उत्सव में उनकी सेवा-निष्ठा शब्दातीत थी। उस समय शीत-प्रकोप था। ठण्ड की कठोरता ने सब लोगों को बंद कमरों में रजाई से लपेट दिया था। किन्तु श्री मुरलीधरजी महाराज भगवान् की सेवा में इतने तल्लीन थे कि उन्हें अपने शरीर का कोई बोध ही न था। ठण्डे पानी से स्नान करते और यथाविधि भगवद्भक्ति में लीन हो जाते। उनकी भक्ति, रति, सेवा और तल्लीनता श्लाघनीय थी।

भौतिकता के प्रकाश से अन्धे व्यक्ति में यह अभ्यन्तर प्रकाश कहाँ है? श्री मुरलीधर जैसे पुञ्जीभूत प्रकाश स्तम्भ की आज के सन्दर्भों में अत्यन्त आवश्यकता है। सम्भव है भक्ति ज्ञान के दिव्य सरोवर को छोड़कर कामेषणा के अन्ध अम्बुधि में डूबते व्यक्ति को उनके दिव्य चरित्र से कोई दिशा मिले।

गोस्वामी लालमणीजी महाराज (प्रथमेश)
गिरधर-निवास, जुहू, मुम्बई

॥ श्री द्वारकेशो जयति ॥

गो० श्री व्रजेशकुमारजी महाराज
(शु. तृ. गृहाधिपति)
कांकरोली

श्री बैठक मंदिर
द्वारकेश बाग
बड़ौदा-३९०००१
फोन : ५५५९५५
दिनांक : १-८-१९९८

संयोजक,
"पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण"
प्रकाशन सम्पादक मण्डल
वाराणसी

"पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण" षष्ठपीठाधीश्वर नि० ली० गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी दादाजी की स्मृति में प्रकाशित हो रहा है यह जानकर मन को अतीव हर्ष हुआ।

हम लोगों के परिवार से जो आत्मीय संबंध श्रद्धेय श्री दादाजी ने रखाया उसे शब्दों में वर्णित करना तो संभव हो ही नहीं सकता। उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में स्वयम् सेवा का आग्रह, त्रिकालाबाधित गति और भावयुक्त सेवा की मानसी पर्यन्त की यात्रा का प्रत्यक्ष निदर्शन समस्त वैष्णव जगत् को कराया है। समय समय पर उनकी कही हुई बातें, उक्तियाँ आज भी हमें मार्गदर्शन कराती रहती हैं। जिन लोगों ने अधिक समय उनके पावन साहचर्य में व्यतीत किया है वे लोग उनकी भावनाओं को और उनके वचनामृतों को अच्छी तरह से आत्मसात् किये हुए हैं। वाराणसी क्षेत्र के वैष्णव समाज पर जो उनकी अमिट छाप परिलक्षित होती है वह उनके व्यक्तित्व का मूर्तरूप समझी जा सकती है। ऐसे दिव्य महानुभाव के चरणों में श्रद्धा सुमन समर्पित करते हुए हम अपने हृदय को भावाभिभूत अनुभव कर रहे हैं ।

इस स्मृति ग्रंथ के माध्यम से श्रद्धेय महाराजश्री की स्मृति वैष्णवजनों के हृदय में चिरस्थायी बनें यही श्री...........प्रभु को अभ्यर्थना है।

भवदीय,

गो० व्रजेशकुमार

॥ विजयते श्रीमदनमोहन प्रभुः ॥

श्री मदनमोहनजी मंदिर
कामवन-३२१०२२
जिला-भरतपुर
(राजस्थान)
फोन : २२०८
दिनांक : १८-२-९९

सप्तम पीठाधीश्वर श्री १०८

गोस्वामी श्री घनश्यामलालजी महाराज

स्वस्ति श्री प्रकाशन सम्पादक मण्डल, वाराणसी,

आपके द्वारा गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की स्मृति में प्रकाशित होने वाला ग्रन्थ पुष्टिमार्गीय वैष्णव समाज के लिए उपयोगी है।

इस कार्य के लिये प्रकाशक सम्पादक मण्डल के लिये शुभ कामना है।

गो० घनश्यामलाल

॥ श्री मदनमोहन प्रभु विजयते ॥

गो० श्री १०८ श्री विठ्ठलनाथजी वृजभुषणलालजी महाराजश्री
''विठ्ठलेश भूवन''
श्री विठ्ठलेश मार्ग, जुनागढ़ : ३६२००१
फोन : २७०२२

शुभाशीर्वाद

आशीर्वचन

हर्ष का विषय है कि नित्यलीलास्थ षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज की स्मृति में एक ग्रन्थ ''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' प्रकाशित करने का प्रशंसनीय कार्य वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर चि० गो० श्री श्याममनोहरजी द्वारा किया जा रहा है।

परमादरणीय श्री मुरलीधरलालजी महाराजजी की सेवापरायणता, विद्वत्ता एवं एकनिष्ठा से श्री मुकुन्दप्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पणभाव अनुकरणीय था। वैष्णवजनों में पुष्टिसेवा की भावना पुष्ट करना तथा लीलाभाव से भावुक वैष्णवों को सिंचित करना अद्वितीय प्रकार था। निःसंदेह यह ग्रन्थ वैष्णव समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा।

इस अवसर पर षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैतमार्तण्ड श्री गिरिधरजी महाराज काशीवालों का स्मरण होना स्वाभाविक है। जिन्होंने षष्ठनिधिस्वरूपत्वेन श्री मुकुन्दरायजी को नाथद्वारा से काशी पधराकर काशीस्थ वैष्णवों को ऐसे अलौकिक सौभाग्य से सम्पन्न किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव समाज तथा आगे आनेवाले पीढ़ी का पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की दृष्टि से मार्गदर्शन करेगा इस अभिलाषा के साथ

गो० श्रीविठ्ठलनाथजी महाराज

॥ श्री मदनमोहन प्रभुः विजयते ॥

गो० श्री १०८ श्री हरिरायजी वृजभूषणलालजी महाराजश्री
(साहित्य, न्याय, वेदान्त)
मोटी हवेली, जामनगर (गुजरात)

॥ श्री मन्मन्मथमन्मथो विजयते ॥
॥ शुभाशंसन ॥

यह अत्यन्त ही हर्ष का विषय है कि शुद्धाद्वैत पुष्टिसम्प्रदाय के कुछ विरल आचार्यों में जिनकी सादर गणना होती है ऐसे पू० पा० नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रतिबिम्बित करते हुये इस ग्रन्थ का प्रकाशन हमारे प्रिय अनुज एवं श्री गोपाल मंदिर काशी-पीठासीन गो० श्री श्याममनोहरजी महोदय के कुशल निर्देशन में होने जा रहा है। आशा है पुष्टिसिद्धान्त- परम्परा, इतिहास के सम्बन्ध में विचारशील पाठकों के लिये यह ग्रन्थ उपादेय एवं चिन्तनीय होगा।

शुभमस्तु

गो० हरिरायजी वृजभूषणलालजी महाराजश्री

॥ श्री बालकृष्ण प्रभुः विजयते ॥
॥ मनोवाग् देहैः कृष्णः सदा सेव्यः ॥

श्री शुद्धाद्वैत पीठाधीश्वर नडीआद
गो. श्री व्रजरत्नलालजी महाराज

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि "श्री गिरिधर प्रकाशन श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान षष्ठ पीठ श्री गोपाल मन्दिर" द्वारा **"पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण"** नामक ग्रन्थ हमारे अनुज श्री श्याममनोहरजी महाराज के विशेष प्रयत्न से प्रकाशित होने जा रहा है। यह ग्रन्थ श्रीमुरलीधरजी महाराज की स्मृति में प्रकाशित होने से श्री महाराजश्री के व्यक्तित्व की विशिष्ट स्मृतियों से भूषित होगा, जैसे कि महाराजश्री की सेवारसिकता, विद्वत्ता, संगीत एवं कला की मर्मज्ञता इत्यादि, इत्यादि।

यह ग्रन्थ षष्ठपीठ के विषय में भी कम उपलब्ध प्रमाणों के बल पर विशेष जानकारी देने में सक्षम होगा। ग्रन्थ की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामना।

शुद्धाद्वैत पीठाधीश्वर
गो० श्री० व्रजरत्नलालजी महाराज

॥ श्री मदन मोहनो जयति: ॥

श्री यदुनाथ वल्लभाचार्य पीठ

गोस्वामी आचार्य श्री १०८ श्री ब्रजरमण लालजी महाराज

गोस्वामी आचार्य श्री प्राण वल्लभ जी महोदय

'श्री यदुनाथ वल्लभ भवन'
श्री छोटे मदनमोहनजी की हवेली,
वल्लभाचार्य मार्ग, बंगालीघाट,
मथुरा (उ.प्र.)
फोन : ०५६५-४०४८१५

दिनांक : २६-४-९९

यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की मधुर स्मृति में 'पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण' का प्रकाशन वर्तमान गो० श्रीश्याममनोहरजी महाराज के सत् प्रयत्न से निकट भविष्य में होने जा रहा है। ग्रन्थ में पुष्टि सम्प्रदाय व षष्ठपीठ से सम्बन्धित लेख तो हैं ही, साथ साथ श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के विशाल व्यक्तित्व को दर्शाते हुए जो लेख हैं और आपश्री के विषय में वैष्णव जनों के जो दुर्लभ संस्मरण हैं, वे निश्चित रूप से वैष्णव समुदाय के लिए तथा साधारण जनता के लिये भी उनकी भक्ति-भावना को बढ़ाने वाली बहुत ही उपयोगी सामग्री सिद्ध होगी। ऐसी मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है। ऐसे उत्कृष्ट प्रकाशन के लिए श्रीश्याममनोहरजी महाराज को जिन जिन लोगों ने जो भी सहयोग दिया है वे भी अभिनन्दन एवं धन्यवाद के पात्र हैं। उपर्युक्त ग्रन्थ का अधिकाधिक प्रचार व प्रसार हो, इस शुभकामना के साथ

गो० व्रजरमणलाल

व्या०, सा०, नव्य न्याय, वल्लभवेदान्ताचार्य

श्री यदुनाथ वल्लभाचार्यपीठ, मथुरा

॥ सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः ॥

श्रीमठ-जगद्गुरू
रामानन्दाचार्य पीठ
पंचगंगाघाट, वाराणसी २२१ ००१
फोन : ३२१८४९

जगद्गुरू रामानन्दाचार्य
स्वामी रामनरेशाचार्य
महाराज

दिनांक १३-८-९९

''नमोऽस्तु रामाय''

परमेश्वर के समान ही भक्तों का स्मरण भी मानव को धन्यता प्रदान करता है, अतएव सनातन धर्म की सभी परम्पराओं में ईश्वर के साथ-साथ गुरूओं एवं भक्तों के स्मरण की भी प्रशस्त परम्परा रही है। ''निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति'' इस महाकाव्य के अनुसार भक्त ही तो प्रभु की परम साम्यता में मण्डित होता है। तभी तो भगवान् ने गीता में कहा ''मयिते तेषु चाप्यहम्''।

हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ भक्तचरित्र गायक रामानन्द सम्प्रदाय के अनूठे रत्न ''नाभादासजी महाराज'' ने भक्तमाल में कहा ''भगति-भगत-भगवन्त-गुरू चतुर नाम वपु एक''॥ उपर्युक्त श्रुतिवाक्य के भावों को ही अत्यन्त सुग्राह्यता से अन्वित कर श्री नाभादासजी ने कहा।

इसी प्रशस्त क्रम में नित्यलीलास्थ काशी के षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज की स्मृति में एक ग्रन्थ का प्रकाशन का संकल्प कर उनकी परम्परा के वैष्णवजनों ने एक अति सराहनीय कार्य किया है। श्री मुरलीधरलालजी महाराज पुष्टिमार्गीय ही नहीं अपितु समस्त वैष्णवीय परम्परा के गौरव वर्धक थे। उनके जीवन में समस्त वैष्णव धर्मो का निश्छल अतीव-उदार-परम सुस्पष्ट तथा अनुपम प्रेरणादायी स्वरूप प्रकट था। उन्होंने असंख्य जीवों को भगवन् निष्ठा प्रदान किया। काशी के विष्णु काशी क्षेत्र को उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन में एक अलौकिक आभा प्रदान कर वैष्णव जगत् को महिमा मण्डित किया, तथा विष्णु काशी के विस्मृंत होते हुए स्वरूप को बचाया।

निर्गुण तथा सगुण राम भक्ति परम्परा के एक मात्र मूल आचार्य पीठ ''श्री मठ'' (विष्णु काशी पंचगंगा) में आचार्य पदाभिषिक्त होने के पहले मैं भी श्री मुरलीधरलालजी महाराज से मिला था। जिसकी अमिट छाप मेरे मस्तिष्क में है। अपने सम्पूर्ण जीवन में आज तक जिन-जिन से मेरा समागम हुआ, उनमें श्री मुरलीधरलालजी महाराज के समागम का एक विशिष्ट महत्व है।

इस पुनीत एवं मंगलमय कर्म में समर्पित सभी भक्तजनों की जीवन-सम्पूर्णता के लिए मैं सर्वावतारी परम् प्रभु श्री राम जी के चरणों में प्रार्थी हूँ।

आपका ही
रामनरेशाचार्य

दुर्ग रामनगर, वाराणसी
दिनांक : ३.११.९८

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ श्री १०८ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी की स्मृति में ''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' नाम से स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। इस ग्रन्थ में पूज्य गोस्वामीजी के पावन चरित्र के अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदाय तथा विशेष रूप से वल्लभ दर्शन का स्वरूप और वैशिष्ट्य भी समाविष्ट रहेगा। वैष्णव सम्प्रदायों में वल्लभ सम्प्रदाय का अपना विशेष महत्व है और इस सम्प्रदाय ने लोकजीवन में श्री कृष्ण चरित्र को प्रचारित-प्रसारित करने का सराहनींय कार्य किया है। काशीस्थ षष्ठपीठ का काशिराज के परिवार से घनिष्ठ संबंध रहा है। नित्यलीलालीन पूज्य गोस्वामी मुरलीधरलालजी ने उस परम्परा को अक्षुण्ण रखा और हमारे परिवार पर सदैव कृपा बनाये रखी। गोस्वामीजी भगवान् की चर्चा और शृंगार विशेष मनोयोग से करते थे और यह कार्य वे अन्त समय तक करते रहे। मैं पूज्य नित्यलीलास्थ श्री गोस्वामीजी की स्मृति में अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ और स्मृति ग्रन्थ की सफलता के लिए ब्रजराज बालमुकुन्द से प्रार्थना करता हूँ।

विभूति नारायण सिंह
काशी नरेश

उमेदभवन, जोधपुर
नं० ५५६
दिनांक : २३.५.९८

संदेश

यह जानकर हर्ष हुआ कि श्री शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज श्री की स्मृति में वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामीजी श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री एक वृहद् ग्रन्थ प्रकाशित करवा रहे हैं। ग्रंथ में श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का जीवन चरित्र, उनका व्यक्तित्व, उनकी विद्वत्ता, भक्ति भावना, श्री वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास तथा विद्वानों के विविध लेखों का संग्रह किया गया है।

समाज हित में प्रकाशित इस उपयोगी ग्रन्थ की सफलता हेतु मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री को मेरा दण्डवत् प्रणाम।

महाराजा गजसिंह
मारवाड-जोधपुर

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ
द्वारा प्रकाश्यमान
संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय
प्रधान सम्पादक

विक्रम विलास
३७-बी, रवीन्द्रपुरी
लेन नं० १७, दुर्गाकुण्ड
वाराणसी - २२१ ००५
फोन : ३१२३६१
दिनांक : ४-३-९९

भारतवर्ष के इतिहास में पुष्टि मार्ग का विशेष स्थान है। इसके उपासक बड़े कार्य-कुशल हैं, संसार में रहते हुये भी संसार से विरत् रहते हैं। जहाँ तक हो सकता है ये लोग धर्म की सेवा करते हैं और अपने घर में यथार्थ रूप से रहते हुए भी कभी इतर धर्म की ओर उनकी रुचि नहीं जाती। इस दृष्टि से इसके उपासक सांसारिक जीवन निर्वाह करते हुए भी उनकी जो धर्म के प्रति आस्था है उसमें विशेष रूप से लगे रहते हैं।

यह ग्रन्थ धर्म के विषय में है और जितना हो सकता है उतनी प्रेमासक्ति से समग्र ग्रन्थ का निर्माण किया जा रहा है। धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण आस्था के साथ प्राचीन वल्लभ सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्तों के प्रति यह पूरी आस्था रखता है।

यह ग्रन्थ वैष्णवों के लिए तथा अन्य सभी जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा पुष्टिमार्ग तथा षष्ठपीठ के विषय में पर्याप्त जानकारी देगा, ऐसी मेरी कामना है।

इस ग्रन्थ का निर्माण नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की स्मृति में रचा गया है। इनमें पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का बहुत ही सुन्दर व उपयोगी वर्णन किया गया है। श्री वल्लभाचार्यजी का साक्षात् सम्बन्ध काशी तथा काशी के आस-पास के स्थानों पर विशेष रूप से था। इस ग्रन्थ में श्री मुरलीधरलाल महाराजश्री के बहुआयामी व्यक्तित्व का विशेष परिचय दिया गया है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ को पढ़ने वाला व्यक्ति वल्लभ सिद्धान्त के मूल तत्वों को विशेष रूप से जान जायेगा। इस आशा से इस ग्रन्थ का निर्माण हो रहा है। विश्वास है कि यह ग्रन्थ अपने कार्य में सिद्ध होगा।

वल्लभाचार्य का सम्बन्ध काशी से विशेष रूप से था। आचार्य के शिष्यों ने काशी की बड़ी सेवा की है तथा आज भी वे करते रहते हैं। इस सम्प्रदाय के गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री ने बड़े सुन्दर ग्रन्थ की रचना करके इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को विशेष रूप से साधारण जनता के लिए बड़ा ही कमनीय कार्य किया है। जो कोई भी इस सम्प्रदाय का सेवक होगा वह गो० श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री के कार्यों का स्मरण करता रहेगा।

सम्प्रदाय में एकादशी का विशेष महत्व है। महाराजश्री उस दिन विशेष रूप से धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार करने में लगे रहते हैं। सम्प्रदाय के भक्तलोग उन दिनों महाराजश्री का व्याख्यान सुनने के लिए दूर-दूर से आते है तथा उन सिद्धान्तों को हृदयङ्गम करके विशेष लाभ उठाते हैं। महाराजश्री द्वारा जो नया ग्रन्थ तैयार हो रहा है उसका विशेष महत्व है। गम्भीर सिद्धान्तों को संक्षिप्त शब्दों में तैयार करके भक्तों के कल्याण के लिए विशेष महत्व का कार्य कर रहे हैं। मैं महाराजश्री के कार्य का महत्व विशेष रूप से मानता हूँ और अपने शब्दों में उनका महत्व स्वीकार करता हूँ। आशा है कि महाराजश्री द्वारा सुलभ कराया गया यह ग्रन्थ काशी के तथा अन्य स्थानों के वैष्णवों में विशेष प्रचारित होगा।

इस कार्य में मुझे विशेष सहायता मिली है श्री घनश्यामदास शाह के द्वारा जिनकों मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आचार्य बलदेव उपाध्याय

डॉ० मण्डन मिश्र
कुलपति,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी - २२१ ००२

दूरलेख : 'श्रुतम्'
दूरभाष : ३४४०८९ कार्यालय
३४८१३० निवास
३४८६१७ ''
३४८१३० फैक्स
पत्र-संख्या १२८/९९
दिनांक : ४-४-९९

प्रिय श्री शाह जी,

जय श्री कृष्ण

आपका पत्र मिला। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की स्मृति में एक वृहद् ग्रन्थ के प्रकाशन का संकल्प वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज ने लिया है। मैं महाराजश्री के इस संकल्प के प्रति साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने जनसाधारण की प्रेरणा एवं भक्ति की प्रगाढ़ता के लिए इसके प्रकाशन का संकल्प लिया।

मध्य युगीन कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में वल्लभ संप्रदाय का स्थान अपनी कई विशेषताओं के कारण अग्रणी पंक्ति में माना जाता है। प्रात: स्मरणीय वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय को उच्च स्थान प्राप्त है। भागवत की सुबोधिनी टीका और ब्रह्म सूत्रों पर अणु भाष्य लिखकर संस्कृत भाषा के माध्यम से भागवत सम्प्रदाय को नवीन दिशा का निर्देश किया। उनके पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथजी ने अपने पिता की प्रेरणा से ब्रजभाषा के साहित्य को समृद्ध किया।

यह अपार प्रसन्नता का प्रसंग है कि अपने पूर्वजों के विपुलसाहित्य एवं भक्ति मार्ग को आदरणीय गो० मुरलीधरलालजी महाराज ने समृद्ध किया। यद्यपि मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य तो नहीं मिला लेकिन उनकी भक्ति एवं उनकी विद्वत्ता के बारे में सुनता आया हूँ। उनकी भक्ति एवं अनन्य भाव की शुद्ध सात्विक भक्ति से भक्तों को नई दिशा एवं प्रेरणा मिली है। मुझे इस अवसर पर यह अवगत कराते हुए भी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज उन्हीं के पद्-चिन्हों का अनुसरण करते हुए भक्तिमार्ग को नई दिशा प्रदान कर वैष्णवजन को लाभान्वित कर रहे हैं। अपने विश्वविद्यालय में सन् १९९६ में पं० गोपीनाथ कविराज स्मृति व्याख्यानमाला के अवसर पर गो० श्याममनोहर महाराजजी के आशीर्वचन को मुझे साक्षात् सुनने का अवसर मिला। कृष्णभक्ति मार्ग में महाराजश्री की विद्वत्ता ने मुझे प्रभावित किया।

मैं इस सुअवसर पर गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री को अपना श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ और इस भव्य स्मारिका के प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामना अर्पित करता हूँ।

भवदीय,

डा० मण्डन मिश्र

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥
॥ श्यामः सदा दीव्यतु मानसे मे ॥

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति, कर्मज्ञान और भक्ति की एक सुदीर्घकालीन परम्परा रही है। इसी परम्परा को और विशेष सुदृढ़ करते हुए जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य चरण ने पुष्टि भक्तिमार्ग का प्रवर्तन किया। ''पुष्टिमार्गीय प्राचीन साहित्य'' धर्म, दर्शन, इतिहास, भावभावना आदि कोई भी विषय से चाहे सम्बन्धित हो, वह प्रमाण रूप है। ''पुष्टिमार्गीय प्राचीन साहित्य'' से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो आधुनिक नवोत्थान से पूर्व लिखा गया हो अथवा वह आधुनिक होते हुए भी हमारे प्राचीन शास्त्रों (शब्दप्रमाण) एवं परम्परा से अविरुद्ध हो। दिव्य शब्द दिव्य अर्थ का बोध कराता है किन्तु लौकिक शब्द से वही अर्थ ज्ञात होता है जो इन्द्रियगोचर होता है। ऐसा अर्थ जो इन्द्रियातीत हो उसका बोध लौकिक शब्द नहीं करवा सकते। अलौकिक शब्द में ही वह शक्ति है कि वह समस्त इन्द्रियां एवं बुद्धि को अतिक्रान्त करता हुआ अलौकिक तत्व तक पहुंचा दे। तथापि ऐसे दिव्य शब्द का बाह्य परिधान तो लौकिक शब्दवत् ही होता है परन्तु उसकी शक्ति अचिन्त्यानन्त होती है। अतः श्रीमहाप्रभुजी ने अलौकिक ज्ञापक शब्द को ही प्रमाण रूप में स्वीकार किया है।

अलौकिक शब्द के भी विविध प्रकार होते हैं। जैसे साक्षात् भगवत् आज्ञा, स्वप्न द्वारा भगवद् आज्ञा, भगवत्कृपाबल स्फुरित अर्थ, अनुभूति, अवतारी महापुरुषों द्वारा की हुई आज्ञा एवं कार्य, वेदाज्ञा, शास्त्राज्ञा आदि। इस सब प्रकारों में साक्षात् भगवदाज्ञा सर्वोपरि है। जहां साक्षात् श्रीयशोदोत्संगलालितनन्दनन्दन भगवान् पूर्णपुरुषोत्तम परब्रह्म की आज्ञा प्राप्त हो जाती है वहां वेद शास्त्रादि की समस्त आज्ञाओं को उसी (साक्षात् भगवदाज्ञा) में ही सम्पूर्ण रूप से समन्वित मानना चाहिये। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने ''प्राचीन पुष्टि साहित्य'' एवं भगवत् इच्छा को सर्वोपरि मानते हुए प्रत्येक तथ्यों को प्रतिपादित किया है।

''नि०ली०ष०पी०धी० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज स्मृति ग्रन्थ-पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' यह एक स्मृतिग्रन्थ अवश्य है परन्तु इसमें वर्णित तथ्यों को ऐतिहासिक प्रमाणों की कसौटी पर कसा गया है। इसमें विविधता एवं विदग्धता के साथ शास्त्रीय गरिमा का भी प्राधान्य रखा गया है। यह ग्रन्थ माधुर्यपूर्ण गाम्भीर्य से ओतप्रोत है एवं महान् उद्देश्य एवं महत्प्रेरणा से सम्पादित किया गया है। इसमें वर्णित विषयवस्तु पुष्टिभक्तिमार्गीय सिद्धान्तों एवं इतिहास की विस्तृत सीमाओं में निबद्ध है। इस ग्रन्थ के द्वारा षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है वहीं वल्लभीय षष्ठपीठ के इतिहास को विशेषरूप से आलोकित किया गया है एवं काशी षष्ठपीठ के संस्थापक शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी महाराज के जीवन चरित्र को भी प्रकाशित किया गया है। षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्द प्रभु एवं षष्ठगृहाधिकार के प्रदाता गो० तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज (द्वितीय) का प्राचीन चित्र भी प्रकाशित किया गया है। कुल मिलाकर षष्ठगृह काशी से सम्बन्धित समस्त बिन्दुओं पर यथाशक्य प्रकाश डाला गया है।

इन समस्त कार्यों के सम्पादन करने में भगवत्कृपा बल तो प्रमुख रहा ही परन्तु साथ-साथ परमादरणीया गो० शरद्वल्लभा बेटीजी (पू० जीजी) का सम्पूर्ण वरदहस्त हमारे मस्तक पर रहा जिससे हमारी कार्य करने की क्षमता एवं गति सर्वत्र अनिरुद्ध रही। पू० श्रीजीजी ने इस ग्रन्थ के लिये जो दिव्य मौखिक आशीर्वचन हमें प्रदान किये हैं वे हृदयैकगम्य हैं।

इस सुअवसर पर हमें विशेष रूप से हमारे पू० पितृचरण नि०ली०गो० श्री बृजभूषणलालजी महाराज (पू० श्रीदादाजी) का स्मरण सहज ही हो जाता है, जिनके कर्मठ जीवनदर्शन से प्रेरणा लेते हुए हम निर्भीक भाव से कार्य में अनवरत संलग्न रहते रहे। हमारे पू० पितृचरण एवं हमारे पू० धर्मपितृचरण इन दोनों विभूतियों का सम्मेलन चाहे यदा-कदा ही होता रहा परन्तु दोनों का भावात्मकत्वेन समानाधिकरण्य होने से परस्पर स्नेह कदापि न्यून नहीं रहा। यही स्नेहाङ्कुर यथाकाल प्रस्फुटित होकर षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु एवं श्री गोपाललाल प्रभु की सेवारूपी फलस्वरूप में पू० श्रीजीजी के माध्यम से हमें प्राप्त हुआ। इस सम्पूर्ण क्रम में मूल कारण भगवदिच्छा मात्र ही है और कुछ भी नहीं-नहि भगवछिच्छा केनापि ज्ञातुं शक्या (सु०)

इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं सामग्री संकलन में हमें एवं हमारे सहयोगियों को काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। कारण यह कि यत्र-तत्र बिखरे हुए तथ्यों को प्राप्त करना एवं उनका सम्पूर्ण परीक्षण करने के बाद अविकृत रूप में ही उन्हें यथार्थतः सम्मिलित करना तथा उन ठोस तथ्यों के आधार पर किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना ही इतिवृत्त की प्राणशक्ति है। अतः सम्पूर्ण मनोयोगपूर्वक हमने किसी भी ऐतिहासिक तथ्य एवं घटना को 'बिना परिवर्तित किये' यथावत् ही यहां पर उल्लिखित किया है, किसी तथ्य को छिपाया भी नहीं गया है, हां ग्रन्थाकार को ध्यान में रखते हुए कुछ घटनाओं को सूक्ष्म रूप में प्रकट किया है। प्राचीन चित्रावली जितनी भी प्राप्त हो सकी उसे प्राप्त करके यहां प्रकाशित किया है। प्राचीन वंशवृक्षों एवं वंशावली वर्णनों के आधार को लेकर ही काशीगृह के प्रमाणिक वंशवृक्ष का प्रकाशन भी किया गया है। इस प्रकार समस्त ऐतिह्यगत बिन्दुओं को यथाशक्य संकलित किया गया है। फिर भी 'गच्छतः स्खलन' न्यायेन कही कोई क्षति रह गई हो तो सज्जन जन समाधान अवश्य करेगें।

इस ग्रन्थ के सम्पादन, प्रकाशन आदि प्रारम्भ से अन्त तक के समस्त कार्यों में हमारे सुयोग्य वैष्णव श्री घनश्यामदास शाह एवं श्री वल्लभदास मुनीमवाला ने जो अनवरत सेवा दी है, तदर्थ उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। तदितर भी कई वैष्णवों ने योगदान प्रदान किया है, उन सबको भी धन्यवाद है और भी जिन वैष्णवों ने निबन्ध समर्पित किये तथा कुछ मंदिर के प्राचीन सेवकगण और पुरातन वैष्णवों ने कुछ चित्र एवं ऐतिहासिक विवरण दिये उन्हें भी धन्यवाद है।

विशेषकर इस ग्रन्थ में जिन विद्वानों ने अपने-अपने लेख लिखे हैं, उन्हें भी सहर्ष धन्यवाद प्रदान करते हैं।

पठन्तु सुधयः सर्वे विहाय च दुराग्रहम्।
दुराग्रहग्रहीतानां नाङ्गीकारोत्र सर्वथा॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

गो० श्याममनोहरः
(षष्ठपीठाधीश्वर श्री १०८ गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री)

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥



गोपालदास नागर

भारत में उन दिनों भिन्न-भिन्न तत्वज्ञान तथा भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की उपासना का मार्ग प्रचलित था। भारतीय प्रजा किसी एक सिद्धान्त को स्वीकार कर एकमत नहीं थी। फिर विदेशी और विधर्मी साम्राज्य सत्ता पूरे भारत में स्थापित हो चुकी थी। उसी समय विक्रम संवत् १५३५ में श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का प्राकट्य हुआ। अपनी असाधरण शक्ति से वेदादि महान् ग्रंथों का, सभी शास्त्रों का अध्ययन आपने पूरा किया। पूर्व में हो गए सभी आचार्यों के तत्वज्ञान विषयक महान् ग्रंथों और उपासना विषयक तमाम साहित्य का अच्छी तरह मनन किया। वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत इन चार प्रस्थानों पर सर्वमतों तथा सम्प्रदायों को परख कर देखा। आपश्री को लगा कि वेदादि के अक्षर-अक्षर जो सिद्धान्त दर्शाते हैं, उसका शुद्ध निरूपण करने में अभी तक कोई सफल नहीं हुआ है।

कुछ विचारकों-चिंतकों ने केवल तर्कवाद पर ही वेदादि के सिद्धांतों को स्थापित किया था। हर जगह तर्क की परम्परा को ही महत्व दिया गया था। कुछ चिंतकों-विचारकों ने तर्क के साथ कल्पनाओं का भी खूब उपयोग किया था, तर्क और कल्पनाओं के जाल में शुद्ध अद्वैत, ब्रह्मवाद को काफी उलझा दिया था। तर्क और कल्पना बिना के वैदिक अखण्ड ब्रह्मवाद का प्रचार करने में जैसे सभी किसी अगम्य भय से ठहर गए हों ऐसा आचार्यश्री को लगा। इसलिए कर्म और ज्ञान तथा भक्ति इन तीन मार्गों के लिए वेदों के वाक्यों से निर्मोल सिद्धान्तों को दूढ़कर अन्य मत रखते आचार्यों तथा विद्वानों के साथ काफी चर्चा की, लेकिन अन्य मतों तथा सिद्धान्तों से पूरी तरह आपश्री सहमत नहीं हुए।

आचार्यश्री ने शास्त्रार्थों द्वारा शुद्धाद्वैत अखण्ड ब्रह्मवाद की स्थापना की और विद्वत् सभा में भगवदनुग्रहात्मक शुद्ध पुष्टि-भक्तिमार्ग की स्थापना की। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया, वे सिद्धान्त तर्कवाद या कल्पनाओं पर स्थापित नहीं, बल्कि वेदों के वाक्यों के अक्षर-अक्षर में से जो सरल और स्पष्ट अर्थ प्रकाशित होता है, उसीका आधार है। आपश्री लिखते हैं-

"वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि, व्यास सूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।"

"वेद, श्रीमद्भगवद्गीता में से भगवान् के वाक्य, श्री वेदव्यास कृत ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भागवत महापुराण में से श्रीव्यासजी द्वारा समाधि में अनुभव किए भगवद्वाक्य- ये चार ही मुख्य प्रमाण हैं।"

आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी ने तत्वदीप निबन्ध और श्री अणुभाष्य आदि ग्रंथों द्वारा ब्रह्मवाद का मण्डन किया है। उनके समय में जितने मत या सम्प्रदाय प्रचलित थे उन सबकी समीक्षा करके, वेद आदि के अनुकूल कौन-सा सिद्धान्त है, उसी की तुलना उपरोक्त ग्रंथों में की है। इन ग्रंथों को पढ़ने से सभी भारतीय आचार्यों के

मतों-सम्प्रदायों का ज्ञान भी होता है और उनका तथा श्रीवल्लभाचार्यजी के सिद्धान्तों का तुलनात्मक तात्विक अध्ययन करने का भी अवसर मिलता है।

पूर्व में हुए आचार्यों के मतों की तुलना में श्रीवल्लभाचार्यजी के सिद्धान्तों में कितनी विलक्षणता है और वेदादि प्रस्थानों के प्रमाणों का बल कितना है यह समझने के लिए यहां उनके मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

उपनिषद् स्पष्ट कहते हैं कि ब्रह्म तो एक और अद्वितीय है। वही बह्म इच्छा करता है कि ''मैं एक हूँ, लेकिन बहुरूप बन जाता हूँ।''– **''एकोहं बहुस्याम प्रजायेय''**– इस वेद वाक्य का अर्थ निकलता है कि एक और अद्वितीय ब्रह्म स्वयं क्रीड़ा करने की इच्छा से विशाल जगत् रूप बनता है और यह जगत क्रीड़ामय खिलौना है।

ब्रह्म में तीन धर्म हैं - सत्, चित् और आनन्द। पहले सदरूप से जगत् रूप ब्रह्म बनता है, चित् और आनन्द गुप्त रहता है । फिर चित् अंश से ब्रह्म जीव बनता है उस जीव में सत् और चित् ये दो अंश प्रकट होते हैं, आनन्द अंश गुप्त रहता है।

''यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरंति,
अंशो नानाव्यपदेशात्, ममैवांशो जीवलोके।''

इस वेद सूत्र और गीता के वाक्यों के अनुसार ब्रह्म में से असंख्य अणुजीव प्रकट होते हैं। जैसे अग्नि में से छोटी-छोटी चिनगारियाँ प्रकट होती हैं, उसी तरह सूक्ष्मरूप में जगत् और जीव की उत्पत्ति होती है - यह सिद्धान्त रूप में आचार्य वल्लभाचार्यजी स्वीकार करते है।

वेदों में ब्रह्म का वर्णन भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है। कहीं ब्रह्म का सर्वधर्म रहित, निर्गुण और निराकार रूप में वर्णन आता है तो कहीं ब्रह्म का **''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः''** आदि वाक्यों से सर्व दिव्य धर्मोंवाला साकार और सगुण रूप का वर्णन मिलता है। इन दोनों बातों का समन्वय करने में अच्छे-अच्छे चिंतक-विचारक संदेह में पड़ जाते हैं। लेकिन श्रीवल्लभाचार्यजी ने इसका सुन्दर निर्णय किया है, जिसमें किसी भी संदेह का स्थान नहीं रहता है।

आचार्यश्री ने कहा है - 'ब्रह्म में सर्व अलौकिक धर्म हैं।' जगत् कर्तृत्व सर्वसमर्थत्व कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं आदि ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्रीज्ञान, वैराग्य आदि गुण धर्म हैं। लेकिन जड़त्व अज्ञत्व आदि प्राकृत धर्म नहीं। उसी तरह पञ्चमहाभूत का बना शरीर केवल आकार नहीं, बल्कि दिव्य आनन्दरस ब्रह्म का ही आकार है। इस तरह साकार निराकार दोनों वाक्यों का समन्वय हो जाता है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने तत्वज्ञान विषयक निर्णय ऊपर कहे अनुसार किया है। उक्त ब्रह्म का अक्षर ब्रह्म के रूप में गीता में वर्णन आता है। भगवान् स्वयं स्पष्ट कहते हैं–

''यस्मात् क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः
मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवप्रलयस्तथा।'' (गीता)

अर्थात् - ''मैं क्षर से भी आगे हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ। इस कारण लोक वेद में पुरुषोत्तम रूप में

प्रसिद्ध हूँ। हे धनञ्जय, अर्जुन। मुझसे परे – आगे दूसरा कुछ नहीं। मैं समस्त जगत् का सर्जनहार और प्रलय करनेवाला हूँ।''

कर्म, ज्ञान और भक्ति – ये तीन कल्याण मार्ग अति प्राचीन हैं। भक्ति मार्ग अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न तरह से समझाया है। आचार्यश्रीवल्लभ के भक्ति मार्ग को पुष्टिमार्ग के रूप में ख्याति प्राप्त हुई है। भागवत् में भी स्पष्ट कहा है – ''**पोषणं तदनुग्रहः।**'' भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा उनका अनुग्रह यही ''पुष्टि'' है। – ''**कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिरित्युच्यते बुधैः।**'' प्रभु श्रीकृष्ण की कृपा हो और जीव भक्तिमार्ग तथा सेवामार्ग का अनुसरण करे इसीका नाम पुष्टि है। अन्य भक्तिमार्ग साधनों की अपेक्षा रखते हैं– अमुक-अमुक प्रकार के साधन करने पर ही भक्तिमार्ग में प्रवेश होता है – लेकिन पुष्टि भक्तिमार्ग में किसी प्रकार के साधनों की आवश्यकता नहीं। मात्र प्रभु की कृपा हो और जीव भक्तिमार्ग में प्रवेश कर जाता है।

शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग में ऐसी प्रणालिका है कि जिसे इस सम्प्रदाय में प्रवेश करना हो, उसे सर्वप्रथम आचार्य वंशजों के द्वारा शरण मंत्र लेना होता है। इस विधि के अनुसार अल्पवय के बालक-बालिकाओं को आचार्यवंशज उनके दाहिने कान में तीन बार अष्टाक्षर मंत्र कहकर बुलवाते हैं और शरण-मंत्र दीक्षा रूपी विधि से तुलसीमाला देते हैं। इसके बाद विशेष संस्कार देकर व्यक्ति को पुष्टि-सम्प्रदाय में ब्रह्मसम्बन्ध (आत्मनिवेदन) द्वारा प्रभु का अङ्गीकार करवाया जाता है। इसे जीव का ब्रह्म के सम्मुख समर्पण होना कहा गया है।

शरण मंत्र ''**श्रीकृष्णः शरणं मम**'' जिसका अर्थ है ''श्रीकृष्ण ही मेरे आश्रय स्थान हैं।'' धर्म में आस्था रखने वालों को तथा बालकों को दिया जाता है। फिर श्रीकृष्ण की शरण के सिवा उनका कोई दूसरा स्थान नहीं। आचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभ ने अपने नवरत्न ग्रंथ में कहा है–

''तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः।''

काशी से पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्यजी का विशेष सम्बन्ध रहा है। काशी तथा आसपास आपश्री की पांच बैठकें स्थापित हैं, जहां आपश्री ने श्रीमद्भागवत पारायण किया। पञ्चगंगा की बैठक आपश्री की विवाह-बैठक है। चरणाट तथा जतनबर स्थित सेठ पुरुषोत्तमदास के निवास की बैठक में तो आपश्री ने नन्दमहोत्सव का भी उत्सव आयोजित किया, जहां साक्षात् नंद-यशोदा तथा गोप-गोपियों को प्रकट होना पड़ा था। इतना ही नहीं, काशी वह नगरी है जहां आचार्यश्री का मुण्डन-संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार तथा शिक्षा-दीक्षा के संस्कार भी सम्पन्न हुए।

इसी काशी नगरी में षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी को गो० १०८ श्री गिरिधरजी महाराज ने पधराया तथा षष्ठगृह की मान्यता प्रमाणित की।

जैसा कि हम सभी वैष्णव जानते हैं, काशी के षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री मुरलीधरलालजी के नित्यलीला में प्रवेश कर जाने के बाद वर्तमान में गो० श्री १०८ श्रीश्याममनोहरजी महाराज षष्ठपीठाधीश्वर के रूप में गद्दीनशीन हुए। आपश्री के गद्दी पर विराजने के बाद से ही आपश्री ने काशी षष्ठपीठ का इतिहास-संकलन की दिशा में एक योजना की रूपरेखा बनाई तथा नि० ली० गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी की स्मृति में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोध-सामग्री प्राचीन चित्रों, लेखों, विद्वानों तथा वैष्णवों के सहयोग से एकत्रित करनी शुरू की। इससे पूर्व ऐसा कोई इतिहास यहां कभी सङ्कलित नहीं किया गया। अतः वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर

गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज ने उपलब्ध अनुपलब्ध तमाम साहित्य का यथाशक्ति संग्रह करना शुरू किया। इस कार्य के लिए आपश्री ने स्वयं भी काफी परिश्रम उठाकर तथा विद्वानों-वैष्णवों से सम्पर्क स्थापित कर शोधपूर्ण साहित्य-सामग्री एकत्रित की। केवल एकत्रित ही नहीं की, बल्कि तमाम उपलब्ध साहित्य की प्रामाणिकता के लिए पुष्टि सम्प्रदाय के ग्रंथों का अध्ययन एवं चिंतन भी करते रहे। स्थायी महत्व की दृष्टि से एकत्रित सम्पूर्ण साहित्य-सामग्री को एक ग्रंथ का रूप देने का भी आपश्री ने निश्चय किया और काफी मंथन के बाद इस ग्रंथ का नामकरण किया - **''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण''**।

वही ''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' काशी के षष्ठपीठ के शुद्ध एवं प्रामाणिक शोध ग्रंथ के रूप में अब आप सभी विद्वानों - महानुभावों तथा वैष्णवों के लाभार्थ प्रकाशित कर उपलब्ध कराया जा रहा है। विषयों की दृष्टि को ध्यान में रखकर ग्रंथ को तीन खण्डों में बांटा गया है। सर्वप्रथम नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के हस्ताक्षर के दर्शन होते हैं। पूज्यपाद गो० श्री १०८ श्री श्याममनोहरजी ने '' श्रीवल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास'' शीर्षक से षष्ठपीठ की काफी विस्तार से प्रामाणिक तथ्यों सहित जानकारी दी है प्रथम खण्ड के प्रथम आलेख में। आपने अपने इस आलेख में स्पष्ट रूप से तथ्यों के साथ प्रमाणित कर दिया है कि तिलकायितश्री दाऊजी महाराज (द्वितीय) ने श्री गिरिधरजी महाराज काशी को षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी को पधराकर षष्ठगृह के संपूर्ण अधिकार 'हटड़ी की आरती, पालकी' प्रदान किया। इस तरह श्री मुकुन्दरायजी षष्ठनिधिस्वरूप हुए और काशी को षष्ठगृहपीठ की मान्यता मिली। कुलभूषण श्री यदुनाथलालजी का जीवन, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालता हुआ पूज्यपाद गो० श्री १०८ श्री श्याममनोहरजी महाराज का एक और लेख इस खण्ड में प्रकाशित है। ''काशी षष्ठगृह का इतिहास'' शीर्षक से श्री राधेकृष्ण अग्रवाल ने उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यहां के इतिहास का दर्शन कराया है। उन्होंने नि० ली० महाराज श्री मुरलीधरलालजी का जीवन-चरित्र भी प्रस्तुत किया है। यदुकुलभूषण षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैतमार्तण्ड गोस्वामी श्रीगिरिधरजी महाराज के जीवन पर विस्तार से चर्चा की है श्री नटवरजी शुक्ल ने, जो इन दिनों श्री मुकुन्दप्रभु की सेवा मुख्य मुखिया के रूप में कर रहे हैं।

श्री विश्वेश्वरशास्त्री द्राविड़ काशी के जाने-माने विद्वानों में से हैं। आपने नि० ली० गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज के विद्वत् प्रेम पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के साथ काशीराज के सम्बन्ध तथा मंदिर के प्रति उनकी हार्दिक श्रद्धा की चर्चा की है डॉ० गिरीशचन्द्र चौधरी ने। इसी क्रम में महाराजश्री से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों एवं विषयों पर क्रम से चर्चा की है भू० पू० मुखिया श्री नृसिंहलाल हरीराम शुक्ल ने। श्री मधुसूदनदास सोनावाला ने महाराजश्री के सान्निध्य में हुए विशिष्ट मनोरथों तथा अन्य मनोरथों पर भी प्रकाश डाला है तथा श्री हरिदास पटनावाले ने उनके कीर्तन-प्रेम की चर्चा की है। श्री नारायणदास विश्वम्भरी ने महाराजश्री से वैष्णवों के प्रति प्रेम की पुष्टि में कई वैष्णवों का उल्लेख किया है तो श्री वल्लभदास मुनीमवाला ने उनके वात्सल्य-भाव की चर्चा की है। कृपासागर गो० श्री १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज शीर्षक से श्री मोहनदास एडवोकेट ने उनकी वैष्णवों के प्रति कृपा की चर्चा की है। इस खण्ड के अन्त में श्री वृजरमणदास एडवोकेट (पापाभाई) ने काव्य रूप में अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं।

''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' के खण्ड ''ख'' का श्रीगणेश किया है वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज ने अपने आलेख ''श्री वल्लभ दर्शन के मूल तत्व '' से। वल्लभ दर्शन के मूल तत्व को बड़ी सहजता, सरलता तथा विस्तार से आपश्री ने समझाया है। रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजी का गोपालमन्दिर से सम्बन्ध रहा है और आपने यहां परिसर में बैठकर ''विनय पत्रिका'' ग्रंथ की रचना की थी।

काशी के ख्याति प्राप्त विद्वान् पं० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथशास्त्री दातार ने अपने आलेख ''गोस्वामी तुलसीदास और विनय पत्रिका'' में काफी विस्तार से प्रकाश डाला है तो महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया है श्री गणेश्वर शास्त्री द्राविड़ ने। श्री वल्लभाचार्यजी का जीवन-चरित्र 'व्याख्यान प्रकाशन' से साभार प्राप्त हुआ है। पिछले पचास वर्षों से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे तथा पुष्टि-साहित्य से भी परिचित साहित्यकार गोपालदास नागर ने आचार्यश्री तथा उनकी कर्मभूमि काशी का विस्तार से दर्शन कराया है। पुष्टि-सम्प्रदाय के ज्ञाता पं० मनोहरलाल शास्त्री चतुर्वेद: (मनहरजी) ने निर्गुण साकार परब्रह्म श्री कृष्ण शीर्षक आलेख में भगवान् कृष्ण के निर्गुण साकार रूप की विस्तृत चर्चा की है।

ख्यातिप्राप्त भागवत्-कथाकार पं० वैकुण्ठनाथ शास्त्री ''तदीय'' ने ''पुष्टिमार्ग'' शीर्षक अपने संस्कृत में लिखे आलेख में श्रीमद्भागवत के आधार पर पुष्टिमार्ग को विस्तार से समझाया है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास और परमानंद दास के बाद नंददास सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में माने जाते हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा, सरल कविता और कोमल कांत पदावली के कारण उनका स्थान ब्रजभाषा साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ''भ्रमरगीत'' आपकी विशेष प्रसिद्ध रचना है, जिसमें उद्धव-गोपी संवाद के रूप में निर्गुण पर सगुण की विजय और योग एवं ज्ञानमार्ग पर प्रेम की विजय का वर्णन है। हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने इसी विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

काशी के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद के राजवैद्य श्री शिवकुमार शास्त्री ने शुद्धाद्वैत की मधुरोपासना में आयुर्वेद का चित्रण किया है, तो डॉ० गोपीवल्लभ पाठक ने पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का कर्तव्य क्या हो, अपने आलेख द्वारा आधुनिक काल के परिप्रेक्ष्य में यह समझाया है। श्री गुसाईंजी के प्राकट्य स्थल चरणाट धाम का दर्शन कराया है पं० हरि प्रसाद शर्मा (हरिदास) ने। इसी विषय पर श्री मोहनदास एडवोकेट ने यहां की महत्ता का भौगोलिक आधार पर चित्रण किया है। पुष्टिमार्ग एवं हवेली संगीत से परिचय कराया है श्री विठ्ठलदास बापोदराजी ने। कलिन्दगिरि नंदिनी महाराणी श्री यमुनाजी के स्वरूप के चित्रण के साथ इस खण्ड का समापन किया है वर्तमान कीर्तनिया श्री श्यामलालजी शर्मा ने अपने आलेख ''श्रीमुकुन्दरतिवर्धिनी'' से।

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण के खण्ड ''ग'' में पूज्यपाद नि० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज पर प्रतिष्ठित वैष्णवों के संस्मरण प्रकाशित किये गये हैं। ग्रंथ में पूज्यपाद श्री श्यामा बेटीजी द्वारा किये गये छप्पन भोग के दुर्लभ एवं प्रामाणिक चित्र तथा अन्य कई दुर्लभ, प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक चित्रों को भी प्रकाशित किया गया है। पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण का समापन हुआ है श्री घनश्यामदास शाह के उपसंहार से। साथ में विविध चित्र एवं वंशवृक्ष भी प्रकाशित किया गया है।

मेरी दृष्टि में ''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' में पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय को समझने के लिए पर्याप्त सामग्री सङ्कलित की गई है, इसे पढ़कर काशी के षष्ठपीठ के स्थापना का इतिहास का पता चलता है और प्रामाणिक व ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी के व्यक्तित्व का अलौकिक दर्शन होता है तथा उनकी प्रभु के प्रति समर्पण की भावना का पता चलता है। सम्प्रदाय के संस्थापक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के बाल्यकाल से लीला प्रवेश तक का दर्शन भी हम करते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा, विवाह, उनकी पृथ्वी परिक्रमा का भी विस्तार से वर्णन है। ग्रंथ को अनेक दुर्लभ चित्रों से सजाया गया है तथा इसे सचित्र रूप में प्रकाशित करने से इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है। मुझे आशा है, हमारे विद्वान् वैष्णव तथा पुष्टि सम्प्रदाय में रुचि रखने वालों को यह ग्रंथ हर तरह से उपयोगी लगेगा। विस्तृत जानकारी ''पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण'' को स्वयं पढ़कर।

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

PREFACE

Translated by
Prof. Nand Kishore Lal
Department of English,
Banaras Hindu University,
Varanasi

By Shri Gopaldas Nagar

Various paths of different metaphysical knowledge and the worship of different gods and goddesses were prevalent those days in India. The Indians were not unanimous in accepting only one principle of worship. Over and above this, the foreign empire of different religions was established in the whole of India. In the meantime, Shrimad Vallabhacharyaji appeared as an incarnation in the world in Vikram Samvat 1535. He completed the study of great books like the *Vedas* and all the religious scriptures with his exceptional power in a very short time. He deeply pondered over various literature related to the worship, and the great works related to the spiritual knowledge of the previous acharyas. He scrutinized all the views and theories on the four touchstones- *The Vedas, the Bhagawadgita, Brahmasutra,* and *Srimad Bhagawat.* Acharyashri realized that no body has yet been successful in the correct interpretation of the principles laid down in the *Vedas*.

Some thinkers and philosophers had established the principles of the *Vedas* only on the theories of logic. The importance was attached to the tradition of logic at every place. Some of the philosophers had sufficiently used imagination also with logic. They had complicated ''Shuddha Adwaitwad'' and ''Brahmawad'' in the mesh of logic and imagination. Acharyashri felt as if they were checked by some mysterious fear to propagate *Vedic Akhand Brahmawad* without logic and imagination. He, therefore, sought valuable principles from the *Vedas* for the three paths of 'work', 'knowledge' and 'devotion', and discussed them with acharyas and scholars of the other cult of religion, but he did not fully accept their views and opinions.

Acharyashri established ''Shuddha Adwait Akhand Brahmawad'' through the deliberations of the shastras in the religious conferences of the scholars, and founded ''Shuddha Pushti Bhaktimarg'' fully based on the grace of God. The principles which Shri Vallabhacharyaji propagated are not based upon logic or imagination; these are rather based on the easy and clear words of the *Vedas*. Acharyashri writes :

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।

The *Vedas*, the words of Lord Krishna in the *Shrimad Bhagawad Gita,*

Brahmasutra composed by Shri Veda Vyas, and the words found in Shrimad Bhagawat Mahapuran and experienced in trance (समाधि) by Shri Vyasji are the four chief evidences.

Acharyashri has confirmed *Brahmawad* through *Tatwadeep Nibandh* and *Anu Bhashya*. He scrutinized all the opinions and views of different religions and compared them in the above books to know what views were compatible with the *Vedas*. By reading these scriptures, we acquire the knowledge of all views and opinions of all Indian acharyas and get an occasion to philosophically compare their theories to those of Shri Vallabhacharyaji.

Here, we briefly mention the main principles of Shri Vallabhacharyaji to know how unique the views and opinions of Shri Vallabhacharyaji are as compared to the views of the previous acharyas. By these principles we also come to know how far his principles are based on the *Vedas*.

According to this formula of the *Vedas* and the words of the *Bhagawad Gita*, there appear innumerable atomic beings from the Brahma. Acharyashri Vallabhacharyaji accepts this in the principle that there is the origin of the world and the Being from the microcosm in the same way in which minute sparks originate from fire.

There are different descriptions of the Brahma in the *Vedas*. At certain places, Brahma is described as devoid of all religions, properties, and shapes while at certain places He is described as full of all divine properties, shapes, and virtues through the sentence like''सहस्त्रशीर्षा पुरुष:''. This means that Brahma possesses one thousand heads. Even the renowned philosophers and thinkers are in a state of doubt as regards the co-ordination of the two principles, but Shri Vallabhacharyaji has very firmly resolved it in which there is no place for any doubt for any person.

Acharyashri has stated, ''there are all divine properties in Brahma.'' The creater of the world is Almighty. He can do, undo and do in any other way. Sovereignty, potency, reputation, prosperity, knowledge, renunciation, etc. are various properties, but folly and ignorance are not natural properties. Similarly, the body consisting of five elements is not merely a shape, but it is the very form of the divine Brahma. It is in this way that both the determinate and the indeterminate Brahma are co-ordinated.

Shri Vallabhacharyaji has resolved the differences related to the spiritual knowledge as stated above. The above Brahma is described in the *Bhagawad Gita* as the Imperishable Brahma. Lord Krishna Himself clearly states:

यस्मात् क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः
अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः
मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवप्रलयस्तथा। (गीता)

Addressing Arjun Lord Krishna says, "I am above both the perishable and the imperishable. So, I am known in the *Vedas* and in the world as the Supreme Being. There is nothing above and beyond Me. I am the preserver and the destroyer of the entire universe.

"Work", "knowledge" and "devotion"— these three are the most ancient paths of welfare. Various acharyas have explained the path of devotion in various ways. The path of devotion of Acharyashri has become famous as *Pushtimarg*. It is clearly stated in the *Bhagawat Mahapuran* also. "पोषणं तदनुग्रहः". It is only by the grace of God that sustenance and nourishment are possible in the world. "The grace and mercy of Lord Krishna is what is known as *Pushti*". "कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिरित्युच्यते बुधैः". It is the mercy of Lord Krishna which is stated as *Pushti* by the sages. "Let there be mercy of Lord Krishna, and the human beings follow the path of service and devotion," this is what is known as *Pushti*. Other paths of devotion require means, and they state that a man follows the path of devotion through different means, but there is no requirement of any means in *Pushtimarg*. It is only by the sheer grace of God that the human beings follow the path of devotion.

There is such a process in the *Shuddha Adwait Pushtimarg* that the person, who has to accept this path, has, first of all, to take *refuge (sharan) mantra* from one belonging to the dynasty of Acharyashri. According to this process, some acharya from this dynasty utters *Asthakshar Mantra* into the ears of the persons, and they also have to pronounce this mantra. He also gives them wreath of *tulsi* through the process of refuge *mantra diksha*. After this, the person is enabled to be accepted by God through *Brahmasambandh* in *Pushtimarg* in a special ritual. This is what is known as the total surrender of man to Brahma. The children and the persons who believe in religion are given *refuge mantra, Shri Krishnah Sharanam Mam* which means that Lord Krishna is our refuge as there is no other way of refuge for them excepting the refuge of Lord Krishna. Acharya Mahaprabhu Shri Vallabhacharyaji has stated in his *Nawratna Grantha :*

"तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ।"

This means that Lord Krishna is eternally my refuge. This is what is always stated by sages.

Shri Vallabhacharyaji, the exponent of *Pushtimarg* has had his special relationship with Kashi. There were established as many as five seats of Acharyashri in and near Kashi where Acharyashri recited and explicated *Shrimad Bhagawat Mahapuran*. The Panch Ganga seat is his marriage-seat. Acharyashri had arranged Nand Mahotsava at Charanat Dham and also at Jatanbar seat (Kashi) which is in the house of Seth Purushottamdas where Shri Nandji and Smt. Jashodaji had to appear

with Gopas and Gopis. Kashi (also known as Varanasi) is the city where the rituals of mundan, yagyopawit and education-diksha of Acharyashri were performed.

It is the city of Kashi where Shri Goswami 108 Shri Giridharji Maharaj brought Shasthanidhi Swarup Shri Mukundraiji and confirmed it as the Shashthagriha (the Sixth House). As we all know that after Shashthapeethadhishwar Goswami Shri Muralidharlalji Maharaj's entry into the next world, the present Goswami Shri 108 Shri Shyammanoharji Maharaj decorated this seat as *Shashtha Peethadhishwar*. Maharajshri, after sitting on the throne prepared a plan outlay in the direction of collecting history of *Shasthapeetha;* and he started collecting research material, ancient pictures and articles related to the work and the personality of the late Goswami Shri Muralidharlalji Maharaj to perpetuate his memory. Such a historical record was never collected in the past. Hence, the present *Shashtha peethadhishwar* Goswami Shri Shyammanoharji Maharaj collected all the available and non-available literature as far as possible. For this work, Maharajshri himself took a lot of pains, and established contact with the scholars and the Vaishnawas for collecting research material. Maharajshri not only collected all the research material but also continued to meditate over the books of *Pushtimarg* for the confirmation of all available literature. Maharajshri also decided to give the form of a book to all the collected literature from the point of view of its permanent importance and entitled the present book as "Pushti Shashthapeetha Darpan" after sufficient consideration.

The same "Pushti Shashthapeetha Darpan" is being published and made available as a pure and standard research work for the benefit of all the Vaishnavas and the people. The book has been divided into three parts keeping in view its various subjects. In Part A (Ka) The photograph of the commandments of Nityalilastha Goswami Shri Muralidharlalji Maharaj has been exhibited. The reverend Goswami Shri 108 Shri Shyammanoharji Maharaj has imparted the most valuable information with evidential facts regarding Shashthapeetha in the first article entitled "Shri Vallabhiya Shasthapeetha ka Itihas" in great detail. Maharajshri has clearly proved with fact in this article that Tilkayit Shri Dauji Maharaj (second) gave Shri Griridharji Maharaj (Kashi) Shashtha Nidhi Swarup Shri Mukundraiji alongwith all the rights of Shashtha Griha like "Hathari ki Aarti, Palaki". It is in this way that Shri Mukundraiji became Shashtha Nidhi Swarup and Kashi was approved of as the Sixth House. The article written by Goswami Shri 108 Shri Shyammanoharji Maharaj highlighting the life, personality, and work of Goswami Kulbhushan Shri Yadunathlalji has also been published in this part A (Ka).

Shri Radheykrishna Agrawal has written history of the Sixth House on the basis of the available material in the article "Kashi Shashtha Griha ka Itihas" ("History of the Sixth House of Kashi"). His one more scholarly article on the life of Shri Muralidharlalji Maharaj has been published in this part A (Ka). Shri Natawarji

Shukla who is serving Shri Mukund Prabhu as the chief devotee (मुखिया) has given a detailed account of the life of Yadukul Bhushan Shasthagrihadhipati Shuddhadwait Martanda Goswami Shri Giridharji Maharaj.

Shri Vishweshwar Shastri Dravid, one of the renowned scholars of Kashi, has expressed his views on the scholarly love of Goswami Shri Muralidharlalji Maharaj. Dr. Girishchandra Choudhary has described the relationship of Kashi Naresh with Shri Muralidharlalji Maharaj and also his (the king's) heartfelt reverence for this temple. Shri Nrisinghlal Hariram Shukla, the former chief devotee has mentioned different aspects and subjects related to Maharajshri. Shri Madhusudandas Sonawala has thrown light on special *manorathas* held under the auspices of Maharajshri as also other special manorathas. Shri Haridas Patanawala has mentioned his immense love for *kirtan.* Shri Narayandas Vishwambhari has mentioned the names of many Vaishnavas to confirm the affection of Maharajshri for Vaishnavas. Shri Vallabhdas Munimwala has also described his affection for one and all. Shri Mohandas Advocate has described his grace and mercy for the Vaishnavas in the article entitled as "Kripasagar Shashthapeethadhishwar Nityalilastha Shree 108 Goswami Shree Muralidharlalji Maharaj". In the conclusion of this part Shri Brijramandas Advocate (Papa)has paid his triboutes to Maharajshri in the form of poetry.

The present *Shasthapeethadhishwar* Goswami Shri Shyammanoharji Maharaj has started part B of "Pushti Shashthapeetha Darpan" with his article "Shri Vallabha Darshan ke Mool Tatwa". (original elements of Vallabha philosophy.) Maharajshri has explained the original views of Vallabha Darshan very simply, lucidly and in great detail. Goswami Tulasidas, the writer of *Shri Ramcharitmanas* has had his relationship with Gopal Mandir, and he composed his *"Vinay Patrika"* in the premises of the temple. Pandit Mahamahopadhyaya Shri Vishwanath Shashtri Datar, one of the renowned scholars of Kashi, has thrown light in great detail in his article "Goswami Tulsidas and Vinay Patrika" Shri Ganeshwar Shastri Dravid has highlighted the principles of Shri Mahaprabhu Shri Vallabhacharyaji. We have received with a sense of gratitude the life-history of Shri Vallabhacharyaji from *'Vyakhyan Prakashan'* (Lecture Publication). Shri Gopaldas Nagar who has been serving Hindi Literature for the last fifty years and who has been acquainted with Pushti Literature, has elaborately dealt with Acharyashri Mahaprabhu and his *Karma Bhoomi* (place of work) Kashi. Pandit Manoharlal Shastri who has got the knowledge of Pushti Sampradaya has elaborately discussed Nirgun Sakar form of Lord Krishna in the article "Nirgun Sakar Parbrahma Shri Krishna"

The renowned Bhagawat narrator Pt. Vaikunthnath Shastri "Tadeeya" has elaborately discussed "Pushtimarg" on the basis of *Shrimad Bhagawat Mahapuran* in the article "Pushtimarg" written in Sanskrit.

Nanddas is considered to be the best poet only next to Surdas and Paramananddas

among the eight poets. His place is very important in literature written in *brajbhasha* due to his versatile genius, easy verse and soft stanzas of the poems. ''Bhramar Geet'' is his famous composition in which there is mentioned the victory of Sagun upon Nirgun, and the victory of ''Prem'' (Love) on "Yoga and Gyan Marg'' in the form of dialogue between Uddhava and Gopis. Dr. Vishwanath Prasad, the well known scholar of Hindi, has elaborately dealt with this subject.

The renowned physician of Ayurveda Shri Shivkumar Shastri has discussed Ayurveda with reference to the worship of *Suddha Adwait.* Dr Gopivallabh Shashtri has dealt with the duties of Vaishnavas of Pushtimarg in the modern age in his article. Pt. Hariprasad Sharma (Haridas) has beautifully described Charanat Dham, the place of appearance (birth) of Shri Goswamiji. Shri Mohandas Advocate has discussed the importance of this place from the geographical point of view. Shri Vitthaldas Bapodara has introduced us to the music of Pushtimarg and Haveli Sangeet. The present Kirtania Shri Shyamlalji has concluded this part with the description of the nature of Kalindgiri Nandini Maharani Shri Yamunaji in his article ''Mukundrativardhini''

There have been published memoirs of the well-known Viashnavas related to Shri Muralidharlalji Maharaj in part 'C' of *Pusthi Shashthapeetha Darpan.* There have been published in the book certain standard portraits of *Chhappan Bhog* arranged by Shri Shyamabetiji and certain other historical portraits found with great difficulty have also been published in this volume. The conclusion of *Pushti Shashthapeetha Darpan* has been written by Shri Ghanshyamdas Shah. The geneology of Acharya Shri Vallabhacharyaji along with various portaits has also been published in this book.

In my opinion, there has been collected sufficient material to understand *Pushtimarg* in *Pushti Shashthapeetha Darpan.* By reading this book, we shall acquire the standard historical knowledge about the foundation of *Shashthapeetha* of Kashi. We have a divine glimpse of the personality of the late Reverend Shri Muralidharlalji Maharaj. We are at the same time acquainted with his total surrender to God. We also have a divine glimpse of Shri Vallabhacharyaji, the founder of Pushtimarg, right from his incarnation to his entry into the next world. There has also been given a detailed account of his education, marriage, and his tour of the earth. This book has been decorated with many non-available portraits and this has added to the importance of the great book. I, fully, hope and believe that this valuable book will be immensely useful in all respects to our devoted Vaishnavas and the persons having interest in Pushti Shashthapeetha. One must read *Pushti Shashthapeetha Darpan* for the detailed knowledge of Pushti Shashthapeetha.

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

अनुक्रमणिका

(खण्ड ग)

परिशिष्ट

चित्र सूची

२३. श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे बगीचा में व्यावहुला को मनोरथ भयो। सब स्वरूप विराजे
२४. श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे मि. चै. शु. दूसरी तीज गुरुवार शिशिर ऋतु वा दिन श्री गुसाईंजी को उत्सव दोहरो मंडान भयो। श्री गोपाललालजी पीली घटा में विराजे, श्री मुकुन्दरायजी के मंदिर में वसन्त पञ्चमी को उत्सव भयो। सब स्वरूप विराजे
२५. श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे बगीचा में गुलाब के फूल के पालना भये। सब स्वरूप विराजे, श्री मुकुन्दरायजी के मंदिर में गुलाबी घटा गुलाब की मंडली भयी। सब स्वरूप विराजे
२६. श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे शीशमहल में हिंडोला भये, श्री मुकुन्दरायजी विराजे
२७. श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे जन्माष्टमी के पालना को नन्द महोत्सव को मनोरथ भयो, सब स्वरूप विराजे
२८. श्री वल्लभाचार्यचरण, श्री विट्ठलनाथजी गुसाईंजी एवं सातो बालक
२९. षष्ठगृहाधिपति गो. श्री यदुनाथजी महाराज
३०. षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी महाराज विराजे हैं।
३१. षष्ठगृहाधिपति श्री जीवनलालजी महाराज राजसी वेष में
३२. श्रीनाथजी को राजभोग समय निज मंदिर में श्री गिरिधारीजी महाराज तथा षष्ठगृहाधिपति श्री जीवनलालजी महाराज
३३. श्री जीवनलालजी महाराज का बाल्यकाल
३४. श्री जीवनलालजी महाराज़ के गोद में विराजमान श्री गिरिधरलालजी (बड़े लालजी)
३५. चित्र के मध्य में श्री जीवनलालजी महाराज एवं उनके दाहिने काशीनरेश श्री ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह जी
३६. श्री गिरिधरलालजी महाराज की किशोरावस्था
३७. शेठ श्री गोविन्ददासजी, जबलपुर के निवास स्थान पर विराजमान ठाकुर श्री गोपाललालजी के मनोरथ विशेष पर श्री गिरिधरलालजी महाराज (काशी) पधारे
३८. षष्ठगृहाधिपति नि. ली. गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के जन्मदिवस पर मार्कण्डेय पूजन पश्चात् आपश्री वैष्णवन् को दर्शन का लाभ प्रदान करते हुये
३९. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की युवावस्था
४०. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री श्री गोकुल गोविन्द घाट श्री महाप्रभुजी बैठक में ठाड़े
४१. प्रस्ताव स्थल पर विराजमान श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री
४२. सिंघासन पर आसीन श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं श्री शरद्वल्लभा बेटीजी तथा वैष्णवजन
४३. षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर में "श्री यमुना तटपर तीन हिंडोले" के मनोरथ में ठाड़े श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री
४४. चरणाटधाम में बड़े तालाब पर नाव के मनोरथ में विराजे श्री महाप्रभुजी, श्री गुसाईंजी एवं श्री गिरिराजजी, साथ में श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री
४५. नाटीइमली भरत मिलाप में हाथी पर पधारते हुए श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं आपश्री के पीछे छत्र लिये परम भगवदीय हरिदासजी
४६. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री जन्मदिवस पर मार्कण्डेय पूजन में विराजते। आपश्री के बाएं तरफ बैठे प. भ. जगनजी
४७. गो. श्री शरद्वल्लभा बेटीजी के मुंडन प्रस्ताव के अवसर पर गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजते हुये
४८. षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी श्री नाथद्वारा सप्तस्वरूपोत्सव में पधारते हुये गोलघर, काशी में शोभायात्रा की झाँकी
४९. श्री ठाकुरजी जिस बस में विराजकर श्रीनाथद्वारा पधारे
५०. श्रीनाथद्वारा में श्री मुकुन्दरायजी का पधारना
५१. श्रीनाथद्वारा में कार में से पधारते हुए श्री ठाकुरजी
५२. श्रीनाथद्वारा लालबाग में सुखपाल में पधारते हुए श्री ठाकुरजी
५३. लालबाग से शोभायात्रा निकलती हुयी
५४. लालबाग से श्रीनाथद्वारा शहर पधारते हुए
५५. श्रीजी मंदिर में षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी का पर्दापण
५६. प्रीतमपोल, श्री गोकुलनाथजी मन्दिर में पधारते हुये
५७. निज मंदिर में पधारते हुए श्री झाँपीजी
५८. बगीचा में मनोरथ में पधारते हुए सप्तस्वरूप
५९. श्रीनाथद्वारा षष्ठपीठ श्री मुकुन्दरायजी मन्दिर में हाथी दाँत के पालना के पास में विराजे श्री महाराजश्री एवं पीछे बड़े मुखिया श्री गिरिधरजी
६०. तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज के साथ गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराज विराजमान

६१. तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज एवं गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराज मोतीमहल श्रीनाथद्वारा में विराजते हुए

६२. तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज को श्रीनाथद्वारा मोतीमहल में पवित्रा धराते हुए ष० गृ० धि० श्री मुरलीधरलालजी महाराज एवं अन्य गोस्वामी बालक

६३. पुष्टिमार्गीय वैष्णवसभा, षष्ठपीठ, काशी पण्डित सम्मेलन, मोतीझील, मध्य में प्रधान गृहाधिपति श्री गोविन्दलालजी महाराज, बायीं ओर खड़े श्री दाऊजी, प्रथमलालजी और दाहिने ओर खड़े श्री राकेशजी, द्वितीय लालजी, बायीं ओर कुर्सी पर विराजमान गो. श्री बृजभूषणलालजी महाराज और उनके पास कुर्सी पर विराजमान तिलकायितश्री के चि. बेटीजी, दाहिने ओर कुर्सी पर विराजमान श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं उनके पास कुर्सी पर चि. श्री बृजेशकुमारजी

६४. मोतीझील काशी में विद्वत् गोष्ठी में विराजमान तिलकायितश्री एवं श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री व अन्य आचार्य बालक

६५. श्रीनाथद्वारा से वापसी में हरदोयी में प.भ. जगनजी के निवास स्थान पर श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजमान

६६. काशी की विराट धर्मसभा में विराजित गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री तृ. गृ. धि. गो. श्री बृजभूषणलालजी महाराज कोटावाले एवं अन्य आचार्य तथा मठाधीश, विद्वत् समुदाय एवं वैष्णवगण

६७. श्री मुरलीधरलाल महाराजश्री के अध्यक्षता में ष. पी. श्री गोपाल मन्दिर प्राङ्गण में आयोजित श्री वल्लभाचार्यचरण प्राकट्योत्सव की वृहद् सभा

६८. श्री मुरलीधरलालजी महाराज श्री मद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान के माध्यम से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में वल्लभ चेअर की स्थापना पर प्रस्तोता श्री पं. कुबेरनाथ शुक्ल को पच्चीस हजार मुद्राएं प्रदान करते हुये

६९. श्रीमद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुये श्री मुरलीधरलालजी महाराज। इस संस्थान के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन काशी के मूर्धन्य विद्वान पं. श्री राजराजेश्वर शास्त्री द्राविड द्वारा हुआ

७०. श्री वल्लभ युवक परिषद् काशी के शारदीय नवरात्र के अवसर पर श्री बड़े महाराज के मन्दिर में प्रवचन करते हुए श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

७१. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के संरक्षण में नियमित अष्टछाप कीर्तन पाठशाला में भाग लेते हुए आबाल-वृद्ध वैष्णवगण

७२. काशी की प्राचीन भगवद् मण्डली परम्परा में श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजमान

७३. भगवदीय मण्डल में विराजमान श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

७४. भ. म. के भागवत सप्ताह में श्री लक्ष्मणजी व्यास को प्रसाद देते हुए श्री महाराजश्री

७५. मध्य में श्री मुरलीधरलालजी महाराज। आपश्री के दाएँ श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री 'तदीय' और बायें पं. श्री केदारनाथजी जेतली

७६. काशी की विद्वत् सभा में पधारते हुये महाराजश्री

७७. श्री महाप्रभुजी के उत्सव पर पञ्चगङ्गाघाट बैठक, काशी में दुग्धस्नान कराते हुये श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

७८. शीशमहल में विराजकर शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी के चित्र का दर्शन कराते हुये

७९. श्री महाराजश्री से चर्चा करती हुई श्रीमती मेकडोनल्ड (शिकागो, यु.एस.ए.)

८०. कलकत्ता कोठी, बगीचा आशापुर बग्घी पर पधारते श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री

८१. गो. श्री व्रजभूषणलालजी महाराज, चापासनी, जामनगर, नडीयाद

८२. गो. श्री व्रजभूषणलालजी महाराजश्री के लालजी १. गो. श्री विठ्ठलनाथजी, २. गो. श्री हरिरायजी, ३. श्री व्रजरत्नलालजी, ४. गो. श्री श्याममनोहरजी, ५. गो. श्री नवनीतलालजी, ६. गो. श्री बालकृष्णलालजी

८३. षष्ठगृह, काशी की गादी पर श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री की तिलकविधि करती हुई गो. श्री शरद्वल्लभा बेटीजी

८४. तिलकविधि में शु. मा. श्री गिरिधरजी महाराजश्री की गादीजी के गोद विराजने के अवसर का चित्र।

८५. षष्ठगृह, काशी की गादी पर श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री का तिलक हुआ उस अवसर का चित्र। गो. श्री शरद्वल्लभा बेटीजी महाराज के सन्मुख में ज्येष्ठभ्राता गो. श्री विठ्ठलनाथजी, ष. पी. धी. गो. श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री एवं अ. सौ. राधिका बहूजी तथा चि. प्रियेन्दु बावा

८६. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की छवि के निकट विराजमान ष. पी.धी.गो. श्री श्याममनोहरजी महाराज, षष्ठपीठ, काशी

८७. ष. पी. धी. गो. श्री श्याममनोहरजी महाराज एवं चि. गो. श्री प्रियेन्दु बावा

८८. श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर, षष्ठपीठ, काशी का नगाड़खाना
८९. षष्ठपीठ काशी श्री गोपाल मन्दिर का एक भव्य दृश्य
९०. श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर सिंहपौर-गोवर्धन चौक, ढोली पटिया
९१. कृष्ण भण्डार कार्यालय, षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर, काशी
९२. षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर गौशाला
९३. षष्ठपीठ श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर के बगीचा का एक विहङ्गम दृश्य
९४. षष्ठपीठ काशी श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर परिसर स्थित गो. श्री तुलसीदासजी की गुफा जिसमें गोस्वामीजी ने बैठकर विनयपत्रिका की रचना की
९५. श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर का प्राचीन शीशमहल
९६. श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मन्दिर परिसर स्थित अष्टछाप भक्त कवि श्री नंददासजी की गुफा जिसमें श्री नंददासजी ने बैठकर भ्रमरगीत की रचना की
९७. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक का मुख्य द्वार व नगाड़खाना
९८. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक का सिंहपौर एवं ढोलीपटिया
९९. गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराज का चरणाट धाम स्थित बैठकजी कक्ष
१००. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के निज बैठक का एक दृश्य
१०१. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के निज बैठक का द्वार
१०२. चरणाटधाम बैठकजी स्थित श्री आचार्यकूप
१०३. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक की निकुंज
१०४. चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी गुसाईंजी के बैठक की कमल तलैया एवं बारद्वारी एक विहङ्गम दृश्य
१०५. चरणाटधाम स्थित श्री गिरिधरजी महाराज सत्संग कक्ष
१०६. चरणाटधाम स्थित बैठकजी परिसर में विचरण करती हुई बैठकजी की गौएं
१०७. श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल का सिंहपौर
१०८. श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल का मुख्य द्वार
१०९. अडैल बैठक का निजमन्दिर द्वार
११०. चतुर्थलालजी गो. श्री गोकुलनाथजी
१११. श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल कमलचौक
११२. श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल का एक विहङ्गम दृश्य
११३. अडैल-आचार्यश्री की बैठक, प्राचीन कमल तलैया
११४. जतीपुरा-श्री यदुनाथजी की बैठक श्रीगिरिराज तरहटी
११५. निज मन्दिर श्री मुकुन्दरायजी, श्रीनाथद्वारा
११६. मन्दिर श्री मुकुन्दरायजी, पष्ठपीठ, प्रीतमपोल, श्रीनाथद्वारा
११७. मन्दिर श्री मुकुन्दरायजी, श्रीनाथद्वारा (ऊपरी भाग)
११८ से १२७ गो. श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के बहूजी गो. श्री प्रेमप्रिया बहूजी कृत सन् १९४८ ई. के कार्तिक मास में छप्पन भोग के अवसर पे विभिन्न मनोरथ क्रमशः भये-
छाक को मनोरथ को दर्शन
मेवा की साँझी को मनोरथ को दर्शन
धोली पटिया पर दान को मनोरथ को दर्शन
धोली पटिया पर शरद् को मनोरथ भयो
श्री गोवर्धन चौक में व्यावहुलो को मनोरथ भयो
छप्पन भोग को दर्शन
हिंडोला के मनोरथ
गो. श्री शरद्वल्लभा बेटीजी श्री गोवर्धन चौक में श्री मद्भागवत में प्रवचन करते हुए
श्री मद्भागवत सप्ताह में व्यासपीठ पर आसीन शास्त्री श्री मदनलालजी (मन्दसौर)
छप्पन भोग के समापन पर काशी के वैष्णवों के मध्य में विराजमान सप्तमपीठाधीश्वर गो. श्री घनश्यामलालजी महाराज (कामवन)
१२८. गो श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का यज्ञोपवीत
१२९. नि. ली. गो. श्री कृष्णप्रिया बेटीजी एवं श्री शरद्वल्लभा बेटीजी
१३०. नि. ली. गो. श्री प्रेमप्रिया बहूजी महाराज (श्री अम्माजी)
१३१. नि. ली. गो. श्री कृष्णप्रिया बेटीजी
१३२. ष. पी. धी. गो. श्री जीवनलालजी महाराजश्री कलकत्ता कोठीवालों के आसापुर वाले बगीचा में गुलाबबाड़ी के अवसर पर राजसी वेश में विराजमान
१३३. गो. श्री गोपाललालजी महाराजश्री के गोद में विराजमान गो. श्री गिरिधरलालजी एवं गो. श्री मुरलीधरलालजी
१३४. गो. श्री श्याममनोहरजी महाराज प. भ. वैष्णव चम्पाबेन (बेहरिन वाले) को प्रसादी माला प्रदान करते हुए। साथ में आपश्री के अग्रज गो. श्री विठ्ठलनाथजी महाराज भी विराजमान हैं

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण

खण्ड
[क]

॥ श्रीमन्मुकुन्दगोपालौ जयतः ॥

॥ दैवोद्धारप्रयत्नात्मा स्मृतिमात्रार्तिनाशनः ॥

भाद्र शु. १४ बुधे

गो० श्री जीवनजी महाराज की हवेली, गोपालनिवास, गोपालमन्दिर : वाराणसी-१ I क्र. २.२३

दिनांक २८ । ९ । १९६६

स्वस्ति श्रीशुद्धाद्वैत-पुष्टिमार्गीय-षष्ठपीठस्थानालङ्कृत-गोस्वामिश्रीजीवनात्मज-गोस्वामिश्रीमुरलीधरलालजी-महाराजानां स्वकीयेषु श्रीभगवत्सेवापरायणान्तःकरणेषु परमवैष्णवधार्मिकेषु श्री..आशिषः । शमिह तत्रास्तु । अपरञ्च श्रीकान्हावल्लभजीमाहाराजके वचनामृत ५२ मे सूँ (वचनामृत ३२ में) सेवाक्रम लिखे है सो यहाँ लिखु हूँ ,, विचार
वेलायक तथा याको अनुअकरण करबे योग्य है । जासु स्वास्थ्य तथाल्स
जो नित्यसेवा की रीत तो एसी है सो सबेरमे दिन ऊगे पूर्व मे श्रीठाकुरजीको (बकार्यसौकर्यहोस के
जगावेन सो सवाप्रहर' पोनेचार घंटा, डेढ प्रहर' साढेचार घंटा, ए नित्यसेवाक्रम
केर अनोसर करावने सो १३ घड़ीको ५ घंटा मिनिट १२ । के नित्य, मानलोक
धुक कम बेस कदाचित होय' अनोसर जरूरी है ही; श्रीगुसाइजी एसे लिखतहे,
पिछले सात घड़ी पाछलो दिन रहे तब उत्थापन करावनो २ घंटा, ४८ मिनिट भये
इतनेमे दिन मुदे छिपते पहिले, सैन करनी पुष्टि मार्गकी मर्यादा तो एसी है
शीतच्चा लेमे बेग राखवेकी मर्यादा है रात बड़ीहोय, दिन छोटे होयसो
शीतऋतुमे बेग ५ या ६ घड़ी सूर्योदयते जगायके सेवाक्रम चालु राखने
को पेहर दिन चढे पहिले या पेहेर डेढ पेहर तक राजभोग होही चुकुनेच
प्रभुनको कोइ तरह सुभी जगाये पाछे अबेर सबेर घड़ी आधिकी भी होनी (हियेजरूरसो
अनुचित मान्योजाय, भम होय पुष्टिकी रीत नहीहै वात्सल्यता भाव
मे बाधक है । स्वामि सेवक भावमे भी बाधक है । मेसब राजस, आदी
सेवाक्रम, तामसकु सम्बन्धित होय, सात्विकादि त्रिगुणको लोप होयजायहे.
श्री माहाप्रभुआचार्यनकी कानी करके प्रभु भक्त वत्सल है जैसे करे सो कृपा
सुहे अंगीकार करिलेत हे । आपनको उपरोक्त बातको मुख्यलक्ष राखना
सो कर्तव्य रूप धर्म है I ध्यानरहे अवश्य, गो. मुरलीधरस्य । भक्ति भाव यहाँ विषे प्रतिदिन वर्धमान राख कुशल पत्र लिखोगे। सर्वभार उचित हीहै । पंक्तिमाप

श्रीनाथजी वल्लभाचार्यौ जयतो: । (मार्ग॰ कृ॰ दशमी २०४४,
ता॰ १५।११। ८७

श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य – निबन्धमे आज्ञा किये हैं प्रमाणचतुष्टय के
स्वमार्ग पुष्टी का सर्व प्रकार से अवलम्ब है यथा॰ वेदा: श्रीकृष्णवाक्यानि व्यास
सूत्राणि चैवहि । समाधि भाषा-व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयं । – तथा श्रीगो
कुलेशजी २४ वचनामृत मे – स्पष्ट मार्ग की प्रणालिका को सरल भाषा मे
कहते है १ असमर्पित २ असमर्पित, ३ अन्यदेवादिक का भजन, ४ नि
ज श्री पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीप्रभून से पडे दीतीय, के तरफ भावना न जाय, अथ
यो विसमे २४ वचनामृत मे स्पष्ट स्वधर्मो निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:
गीताजी के वचन द्वारा वर्णित. स्वपुष्टि मार्ग श्रीमहाप्रभूनकी भेट द्वाराही
स्पर्श स्वरूप – अपरस नियम परंपरा से चले भै है – इच्छा पूर्वक भरोसा
श्रीमहाप्रभून पर रखकर निभावने की पूर्णरूपेण हृदयमे भावना रखेंगे
तो जो लक्ष है – पुष्टि मार्ग का – कभिन २ दभि अवश्य पहुंच जा सकोगे,
श्रीमहाप्रभु निबंधमे गुरु के लक्षण कहे – "कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दंभादिरहि
तं नरं । श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात् । कृष्णसेवातत्पर हो १ दंभ-
आदि सांसारिक भोगपदार्थ मे केवल दुःखानुभव ही मानना, इन मे निर्लिप्त होना
श्रीभागवत धर्म सनातन वैष्णव आचार्यो परिपूर्ण तत्व से विरक्त महापुरुष ऐसे
गुरु हो, जिनको आदरपूर्वक, भजे – जो जिनके उपदेश मन्त्र द्वारा अपने
को कृतार्थ कर – भाव-शरणागति को प्राप्त करे . सभी आचार्यो ने
पुष्टिमार्ग के जो उपदेश दिये है या वेद वचनों द्वारा वि प्रमाव है प्रमा
ण. रखकर सर्व प्रतिपादन किये – प्रेमम तो भाव रस अनुभवैकगम्य
है; देहाध्यास, इन्द्रियाध्यास, मनोमय विषयरूपी तरंग – इन सबसे अधिक
दूर रहे. जहां क हो मन बुद्धि मन को तौलता है । रजोगुण, तमोगुण
युक्त विचार धारा ही जीव को दबोच, देने मे अविलम्ब सहायक हो
उठते है, गीतामे – त्रिभि गुणमयै भावैरेभि सर्वमिदं जगत्
मोहितं नाभिजानाति एभि: सर्वमिदं जगत् । इति हासको देखते माया

जो है बड़े होय, या छोटे, ऋषि मुनि सब को समय २ पर घेरा है मरह चुकी है। भूतकाल मे — मुख्य उद्देश वर्त्तमान यही है की पुष्टिमार्ग मे श्री वल्लभ प्रतिपादित जो सिद्धान्त मेड़ मर्याद चलि आइ है इसके विपरीत किस हद तक, वो कहा से। कितनी अधिक व्यासक्ति अवहया होग इ जो, हमारे पूर्व पुरुष आशा करते है — उस हद के बाहर जो अन्यत्र स्थित प्रथा हो चुकी हो — उसका निवारण कैसे हो सके इस को बचाने का मार्ग ढुंढना प्रभु कृपया यही मुख्य उद्देश वर्त्तमान मे है। सबका मंगल चलै यहै। श्रीगोकुल सेवा प्रणाली मेड़ मर्याद — श्री जी के गृह की सब वस्तुए — यावत आगम भावी जो राजकुमार है सुयोग्यता से सर्वोत्तम मुजब चलाते होवे पवित्र जीवन हो यही मुख्य कर्त्तव्य है वैष्णवजन तथा पूर्ण विचार शिक्षा करते शान्त रूपसे प्रभु के भरोसे आगम कार्य करेगे।

पूर्णानंद नाम धारण करके

श्रीमहाप्रभुजी ने सन्यास लेकर, हनुमानघाट पर निवास अध्ययन करते समय स्वात्मज श्रीगोपीनाथ श्रीविट्ठलनाथजी गुसाइजी, दामोदरदास हरसानी कृष्णदास मेघन आदि सेवक आपके दर्शन को आये, आपसे विनति की. हमारा क्या कर्त्तव्य है — तब श्रीमहाप्रभुजी ने पृथ्वी पर, साडे तीन श्लोक लिख दीये जो शिक्षा श्लोकी नाम से ग्रंथ है। सब आत्मज इत्यादि को का हृदय अत्यंत क्लेशित भया न श्रीनाथजी प्रगट होय के, समचित्तस्य विश्वासः श्रीगोपीजनवल्लभे — ये भक्ता दे रोचनीये न कहीं चित्त। इन विश्वास रखे तो कृतार्थ होगे। सो एतदंश राज हो का सेवक हो अंतिम वित्त श्री आचार्य महाप्रभुन के जो आज्ञा है ध्यान रखो तो सर्व सिद्धी तथा कार्य शीघ्र होयेगे। ग्रंथो का अनुशीलन सत्संग बराबर होता रहना देश काल वीर स्थिती, दुस्संग दोष महाबाधक रूपे है। सर्व धाउचित है।

॥ श्री मुकुन्द गोपालो जयतः ॥ श्री वल्लभ विट्ठलौ जयतः।

जो जीव श्रीगुरुदेव का आश्रय लेते भये सम्प्रदाय सिद्धान्त के अनुसार हार्दिक भावना को दृढ बनाकर प्रत्येक कार्य सम्पन्न करते विचार के अनुसार करते है उनको प्रायः धोका नहीं खाना पड़ता, और जल्दी बाजी न करना है — क्यो ? की ठीक २ मार्ग दर्शन कराने वाले व्यक्ति प्राप्त नहीं होते, स्थूल हो तो फिर क्या तत्त्व रहस्य पूछना है — समझने को चलना ओ।

आपका ... रघुवीर २.

॥ श्रीमुकुन्दगोपाललालौ विजयेते ॥

॥ श्यामः सदा दीव्यतु मानसे मे ॥

श्री वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास

षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्रीश्याममनोहरजी महाराज

श्रीश्रीनाथं नमामि श्रीनवनीतप्रियं तथा। नौमि श्रीमथुरेशं श्रीविट्ठलेशं दयार्णवम्॥
नौमि श्रीद्वारिकाधीशं सर्वकामार्थदायकम्। श्रीमद्गोकुलनाथञ्च नौमि कारूण्य विग्रहम्॥
तथा नमामि तं शश्वद्यः श्रीगोकुलचन्द्रमाः। श्रीमन्मुकुन्दरायाख्यं नौमि भक्तार्थ पूरकम्॥
नमामि लीलाललितं श्रीमन्मदनमोहनम्। नमामि श्रीबालकृष्णं श्रीमन्नटवरं तथा॥

नानामतेषु प्रविवेककारि, श्रीपुष्टिमार्गप्रवहः प्रदर्शि।
श्रीवल्लभाचार्यपदारविन्दं, सुषट्पदीभूतमना नतोऽस्मि॥
रासादिलीलारसपूरितांगं, निजान्तरङ्गानुजराजहंसम्।
मायीन्द्रकुम्भीन्द्रहरीन्द्रमीशं, श्रीविट्ठलेशं प्रणमामि नित्यम्॥

श्रीमत्प्रभुचरणात्मजगोस्वामीन्द्रो महाराजः। यत्कृपया मयि राजनि पुष्टिफला राज्यवरलक्ष्मीः॥
श्रीमद्गिरिधरं वन्दे यदुनाथकुलोद्भवम्। यत्कृपादृष्टिपातेन पतितः पावनो भवेत्॥

अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीमद्-वल्लभाचार्यचरण का प्रा० वि० सं० १५३५ में वै० कृ० ११ को मध्यप्रदेश रायपुर के पास चम्पारण्य नामक स्थान पर हुआ। आपश्री ने भगवद् आज्ञा से ही अपनी अतुल प्रतिभा के द्वारा शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद निर्गुण पुष्टि भक्तिमार्ग का प्राकट्य एवं स्थापन किया। जिस समय आचार्यचरण का प्राकट्य चम्पारण्य में हुआ उसी समय श्रीगोवर्धन पर्वत पर श्रीगोवर्धननाथजी 'श्रीनाथजी' के मुखारविन्द का भी प्राकट्य हुआ। कुछ कालान्तर से श्रीआचार्यचरण ने ही श्रीनाथजी के स्वरूप का श्रीगोवर्धन पर्वत से पूर्ण प्राकट्य करवाकर वि० सं० १५४९ में मन्दिर में पाट विराजया एवं पुष्टिरीति से सेवा प्रकार का प्रारम्भ किया। मूलतः यही सेवा प्रकार पुष्टिमार्ग में अद्यावधि प्रवर्तित है। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण ने भगवदाज्ञा से ही विवाह करके गृहस्थाश्रम को अंगीकार किया। आपश्री को दो पुत्ररत्नों की प्रासि हुई। जिनमें प्रथम श्रीगोपीनाथजी एवं द्वितीय श्रीविठ्ठलनाथजी (गुसाईंजी) हुए।

श्रीवल्लभाचार्यजी के प्रमुख दो सेव्य स्वरूप हैं। श्रीनाथजी गोपालपुरा (जतीपुरा) में विराजते थे और श्री नवनीतप्रियाजी अड़ैल में कुछ समय एवं बाद में श्रीमद्गोकुल में विराजते थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के लीला प्रवेश के बाद आपश्री के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी प्रधान आचार्य गद्दी पर विराजमान हुए एवं श्रीनाथजी की सेवा आपको प्रास हुई। द्वितीय पुत्र श्रीविठ्ठलनाथजी अड़ैल एवं बाद में श्रीगोकुल में विराजकर श्रीनवनीत प्रियाजी की

सेवा करते थे। श्रीआचार्यचरण के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी ज्यादा समय भूतल पर नहीं विराजे तथा आपश्री के एकमात्र पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी भी कौमार्यावस्था में ही लीला प्रवेश कर गये। अत: दोनों स्थानों एवं स्वरूपों का उत्तरदायित्व श्रीविठ्ठलनाथजी पर स्वत: ही आ गया। अतएव श्रीविठ्ठलनाथजी प्रमुख आचार्य गद्दी पर विराजमान हुए। श्रीविठ्ठलनाथजी के दो विवाह हुए। आपश्री के प्रथम पत्नी (बहुजी) श्रीमती रूक्मिणीजी से ६ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ हुईं। द्वितीय पत्नी श्रीमती पद्मावतीजी से एक पुत्र हुए। अर्थात् श्रीरूक्मिणीजी से क्रमश: श्रीगिरिधरजी, श्रीगोविन्दरायजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीरघुनाथजी एवं श्री यदुनाथजी इस प्रकार ६ पुत्र हुए तथा श्रीशोभाजी, श्रीयमुनाजी, श्रीकमलाजी और श्रीदेवकाजी ये चार पुत्रियाँ हुई। द्वितीय बहूजी श्रीपद्मावतीजी से एकमात्र पुत्र 'सप्तमलालजी' श्रीघनश्यामजी हुए। इस प्रकार श्रीविठ्ठलनाथजी के कुल सात पुत्र हुए।

श्रीगुसाईंजी ने अपने जीवनकाल में ही अपने पुत्रों को भिन्न-भिन्न सेव्य स्वरूप पधराकर उनके गृह भी पृथक्-पृथक् व्यवस्थित कर दिये थे। प्रमुख श्रीवल्लभाचार्यजी की गद्दी पर स्वयं विराजमान रहे एवं श्रीनाथजी तथा श्रीनवनीतप्रियाजी की सेवा आप स्वयं करते रहे।

श्रीविठ्ठलनाथजी गुसाईंजी ने सर्वप्रथम जब अपने सातों पुत्रों का विभाग करने का विचार किया तब ज्येष्ठ होने के कारण श्रीगिरिधरजी को अपने वंशपरम्परा के बड़ों के ठाकुरजी श्रीमदनमोहनजी (वर्तमान में सप्तम स्वरूप) को पधराने का निर्णय किया और सबसे कनिष्ठ होने के कारण श्रीघनश्यामजी को छोटे स्वरूप श्री बालकृष्णजी (जो निपट छोटा स्वरूप अंगुष्ठ मात्र है, और जिनके साथ श्रीघनश्यामजी खेलते भी थे) पधराने का निश्चय किया। यह स्वरूप श्रीमहाप्रभुजी के सेव्य ''बंटीवारे'' ठाकुरजी है। परन्तु इस निर्णय को पुन: इसलिये परिवर्तित किया गया, चूंकि श्रीघनश्यामजी श्रीगुसाईंजी के सब पुत्रों में कनिष्ठ अवश्य थे किन्तु अपनी माता के ज्येष्ठ एकमात्र पुत्र थे एवं उन्हें भी ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीवत् द्वितीय ज्येष्ठता क्रम में अधिकार प्राप्त होता था। अत: उन्हें अपने घर के वंशपरम्परागत स्वरूप श्रीमदनमोहनजी पधराया गया और श्रीगिरिधरजी को श्री मथुराधीशजी पधराया गया। श्रीबालकृष्णजी जो निपट छोटा स्वरूप था वह बड़े बहुजी के कनिष्ठ होने के कारण श्रीयदुनाथजी (श्रीमहाराजजी) को पधराने का निर्णय किया गया। परन्तु यह बात जब सप्तमलालजी श्रीघनश्यामजी को ज्ञात हुई तो आपने उन निपट छोटे स्वरूप श्रीबालकृष्णजी को अपने मुखारविन्द में छुपा लिया। जब श्रीयदुनाथजी को पधराने के लिए श्रीबालकृष्णजी के उस स्वरूप को खोजा गया तो वह स्वरूप मिला नहीं, तब श्रीगुसाईं जी ने दूसरे श्रीबालकृष्णजी जो उस समय श्रीनवनीतप्रियाजी के पास विराजते थे, उन्हें श्रीयदुनाथजी को पधराने का विचार किया। परन्तु षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने इस स्वरूप को स्वीकार नहीं किया और स्वयं तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी के साथ ही एक ही गृह में विराजकर तृतीय स्वरूप श्री द्वारिकाधीशजी की ही सेवा करते रहे, यावज्जीवन। इस प्रकार श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी के समय में षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के षष्ठगृह का एवं षष्ठस्वरूप का पृथक्करण ही नहीं हो पाया। अर्थात् षष्ठगृह अलग से बना ही नहीं था। श्रीगुसाईंजी के समय में तो प्रथम गृह से लेकर पंचम और फिर षष्ठ को छोड़कर सीधे सप्तमगृह की रचना एवं पृथक्करण हुआ था जो निम्नलिखित है–

१. प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी को प्रथम गृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ प्रथम निधिस्वरूप श्रीमथुराधीशजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप कोटा (राजस्थान) में विराजमान हैं।

२. द्वितीय लालजी श्रीगोविन्दरायजी को द्वितीय गृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ द्वितीय निधिस्वरूप श्री विठ्ठलनाथजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप श्रीनाथद्वारा में ही विराजमान हैं।

३. तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी को तृतीय गृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ तृतीय निधिस्वरूप श्री द्वारिकाधीशजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप कांकरोली (राजस्थान) में विराजमान हैं।

४. चतुर्थ लालजी श्रीगोकुलनाथजी को चतुर्थ गृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ चतुर्थ निधिस्वरूप श्रीगोकुलनाथजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप श्रीमद्गोकुल में विराजमान हैं।

५. पंचम लालजी श्रीरघुनाथजी को पंचम गृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ पंचम निधिस्वरूप श्रीगोकुल-चन्द्रमाजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप कामवन (कॉमा) (राजस्थान) में विराजमान हैं।

६. षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का अलग से कोई गृह नहीं बना तथा न ही अलग से कोई स्वरूप प्राप्त हुआ। आपश्री तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी के साथ ही विराजकर तृतीयनिधि श्रीद्वारिकाधीशजी की ही सेवा करते रहे।

७. सप्तम लालजी श्रीघनश्यामजी को सप्तमगृह के सम्पूर्ण अधिकार के साथ सप्तम निधिस्वरूप श्रीमदनमोहनजी प्राप्त हुए। वर्तमान में आप कामवन (कॉमा) (राजस्थान) में विराजमान हैं।

इस तरह श्रीयदुनाथजी द्वारा श्रीबालकृष्णजी का स्वरूप नहीं स्वीकारने पर श्रीगुसाईंजी ने उन स्वरूप को पुनः श्रीनवनीतप्रियाजी के पास ही पधरा दिया। बाद में वही स्वरूप श्रीनाथजी के पास पधराया गया जो अद्यावधि वहीं पर विराजमान हैं। इन्हीं श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज ने श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को पधरा देने का निश्चय किया, परन्तु तिलकायितश्री के लीलाप्रवेश के बाद श्रीलक्ष्मीबहूजी ने उस श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप के बदले में श्रीमुकुन्दरायजी को पधराकर षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार तिलकायितश्री की आज्ञानुसार श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को प्रदान किया। अतः मूल विभागान्तर्गत **श्रीगुसाईंजी के विचारित जो षष्ठस्वरूप हैं, वह प्रथम तो जो निपट छोटा स्वरूप था एवं जिसे सप्तमलालजी श्रीघनश्यामजी ने अपने मुखारविन्द में छुपा लिया था वह आज भी कामवन में ही श्रीमदनमोहनजी सप्तमनिधि के पास विराजमान हैं। द्वितीय विचारित षष्ठस्वरूप जिसे श्रीयदुनाथजी षष्ठलालजी ने स्वीकार नहीं किया था, वह स्वरूप आज भी श्रीश्रीजी के प्रधान बड़े गृह में ही विराजमान है। जिन्हें जयन्ती आदि उत्सवों पर पंचामृत स्नान कराया जाता है।** इस पूरे इतिहास का प्रामाण्य श्री यदुनाथजी के ही वंशज मथुरावाले 'श्रीरमणजी' अपने हस्तलिखित वचनामृत में आज्ञा करते हैं कि **"श्री बालकृष्णजी कहीं पधारे नहीं हैं वे आज भी बड़े घर में ही विराजे हैं"**।

इससे स्पष्टतः सिद्ध होता है कि 'श्रीबालकृष्णलालजी' (जो वर्तमान में सूरत में विराजते हैं) षष्ठगृह के स्वरूप नहीं हैं, वे तो तृतीयगृह के उपग्रह में श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप हैं। श्रीगुसाईंजी के काल में षष्ठगृह के षष्ठस्वरूप का प्रकार ही सिद्ध नहीं होता है। अतएव श्रीदाऊजीमहाराज तिलकायितश्री ने कालान्तर में श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों को षष्ठनिधि स्वरूपत्वेन 'श्रीमुकुन्दरायजी' पधराकर षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार '**हटड़ी की महाराजजी की आड़ी की आरती, पालकी**' प्रदान किया। फलतः '**श्रीमुकुन्दरायजी' षष्ठनिधिस्वरूप हुए और काशीगृह 'षष्ठगृहपीठ' हुआ।**

उपर्युक्त विषय में इतिहासकारों में कुछ मतभेद भी प्राप्त होते हैं। कुछ इतिहासज्ञ मानते हैं कि जब षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने श्रीगुसाईंजी द्वारा द्वितीय विचारित श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को स्वीकार नहीं किया तब तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी ने उन छोटे श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को श्रीद्वारिकाधीशजी तृतीय

गृहपीठ के स्वरूप के 'गोद' के औत्संगिक स्वरूप के रूप में पालना झूलाने के लिये श्रीगुसाईंजी से मांग लिया और श्रीगुसाईंजी ने उन्हे गोद के स्वरूपत्वेन पधरा भी दिया था। परन्तु श्रीयदुनाथजी षष्ठलालजी ने अपने जीवनकाल में अपने भाग में प्राप्त सेव्य स्वरूप के रूप में श्रीबालकृष्णजी को पधराकर कभी भी सेवा नहीं की, अपितु तृतीय निधिस्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की ही सेवा करते थे। श्रीबालकृष्णजी जब-जब श्रीनाथद्वारा श्रीजी के पास पधारे तब-तब तृतीय निधिस्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप के रूप में ही पधारते रहे। षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के सेव्यस्वरूप के रूप में कभी भी नहीं पधारते रहे। इसीलिये श्रीबालकृष्णजी (सूरत) का षष्ठनिधि-स्वरूपत्वेन कहीं कोई भी प्रकार सिद्ध नहीं होता है।

अतएव मंगलाचरण के जो प्राचीन श्लोक है, उनमें श्रीगुसाईंजी के सातों पुत्रों का एवं उनके अपने-अपने सेव्य स्वरूपों का नमन किया गया है परन्तु उसमें भी श्रीयदुनाथजी षष्ठलालजी के किसी भी स्वरूप का नामोल्लेख नहीं किया गया है। अपितु श्रीबालकृष्णलाल का नाम औत्संगिक (गोद के) स्वरूप के साथ ही लिया गया है, जो निम्नलिखित है-

श्रीगोवर्धननाथपादयुगलं हैयङ्गवीनप्रियं,
नित्यं श्रीमथुराधिपं सुखकरं श्रीविट्ठलेशं मुदा।
श्रीमद्वारवतीशगोकुलपतिः श्रीगोकुलेन्दुं विभुं
श्री मन्मन्मथमोहनं नटवरं श्रीबालकृष्णं भजे॥
श्रीमद्वल्लभविठ्ठलौ गिरिधरम्, इत्यादिः

उपर्युक्त श्लोक में श्री गोवर्धनधरण श्रीनाथजी से प्रारम्भ करके क्रमशः प्र० नि० स्व० श्रीमथुराधीशजी, द्वि०नि० स्व० श्रीविट्ठलनाथजी, तृ० नि० स्व० श्रीद्वारिकाधीशजी, च० नि० स्व० श्रीगोकुलनाथजी, पं० नि० स्व० श्रीगोकुलचन्द्रमाजी का स्मरण करके फिर सीधा तुरन्त सप्तम निधि स्वरूप श्रीमदनमोहनजी का स्मरण किया गया है। षष्ठस्वरूप का स्थान रिक्त है तथा बाद में प्रथम निधिस्वरूप श्रीमथुरेशजी के गोद के स्वरूप श्री नटवरलालजी (अहमदाबाद वाले) का स्मरण है, एवं फिर क्रमशः तृतीय निधिस्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप श्रीबालकृष्णजी (सूरतवालों) का स्मरण किया गया है। यदि श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी के समय ही षष्ठनिधि का प्रकार हो चुका होता तो इस श्लोक में पंचमनिधि श्रीचन्द्रमाजी के बाद क्रम प्राप्त श्री बालकृष्णजी का नाम अवश्य होता और तत्पश्चात् सप्तम निधि श्रीमदनमोहनजी का नाम होता, परन्तु ऐसा नहीं है, अतः श्रीबालकृष्णजी षष्ठस्वरूप नहीं है, अपितु श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के ही स्वरूप हैं। जैसे श्री नटवरलालजी श्रीमथुराधीशजी के गोद के ही स्वरूप हैं।

उक्त इतिहाससिद्ध प्रकार की पुष्टि श्रीगुसाईंजी के समय में हुए सप्तस्वरूपोत्सव के प्रसंग से और भी स्पष्ट हो जाती है-

वि० सं० १६३८ से १६४० के लगभग प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी के मनोरथ से श्रीजी के साथ अपने-अपने सेव्यस्वरूपों को पधरा करके अन्नकूट अरोगाने का मनोरथ सिद्ध हुआ। तब षष्ठगृह तथा षष्ठ स्वरूप की पृथक् स्थिति न होने से श्रीगुसाईंजी ने **"याते लौकिक बढ़ेगो"** ऐसी आज्ञा भी किया, साथ-साथ श्रीगिरिधरजी के विशेष आग्रह को ही भगवद्इच्छा मानते हुऐ मनोरथ की आज्ञा भी दिया। गोपालपुरा (जतीपुरा) में यह मनोरथ सिद्ध भया। श्रीनाथजी के पास श्रीनवनीतप्रियाजी को श्रीगुसाईंजी ने पधराया। श्रीमथुराधीशजी को

प्र० ला० श्रीगिरिधरजी ने पधराया। श्रीविठ्ठलनाथजी को द्वि० ला० श्रीगोविन्दरायजी ने पधराया। श्रीद्वारिकाधीशजी को तृ० ला० श्रीबालकृष्णजी ने पधराया। श्रीगोकुलनाथजी को च० ला० श्रीगोकुलनाथजी ने पधराया। श्रीगोकुलचन्द्रमाजी को पं० ला० श्रीरघुनाथजी ने पधराया। षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने इस मनोरथ में भाग नहीं लिया, अनुपस्थित रहकर। परन्तु बाद में श्रीगुसाईंजी के द्वारा प्रेषित राजा आसकरनजी के बहुत समझाने पर वे पधारे तो अवश्य परन्तु आपके चित्त में पृथक् स्वरूप की प्राप्ति न होने से खिन्नता बनी रही। श्रीमदनमोहनजी को स० ला० श्रीघनश्यामजी ने पधराया।

षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजीको कोई स्वरूप भाग रूप में षष्ठ स्वरूपत्वेन प्राप्त नहीं हुआ था। अत: आपश्री ने अनुपस्थित रहकर षष्ठस्वरूप की स्थिति का नहीं होना सिद्ध किया है। तस्मात् इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि श्रीगुसाईंजी के समय षष्ठगृह तथा षष्ठस्वरूप का प्रकार सिद्ध नहीं हुआ था।

श्रीगिरिधरलालजी महाराज (कांकरोली) के वचनामृत के अनुसार षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के लीलाप्रवेश करने के बाद आपश्री के ज्येष्ठ पुत्र श्रीमधुसूदनजी ने तत्कालीन तृतीय गादी के वंश में उत्तराधिकारी श्री द्वारिकेशजी से श्रीबालकृष्णजी अपने यहाँ अलग से पधरा देने को कहा। पहिले तो श्रीद्वारिकेशजी ने मना कर दिया और कहा कि **''हमारे दादाजी की आज्ञा हमकूँ पधराय देवेकी नहीं है, और केई दिनसों हमारे श्री द्वारिकाधीश की गोद में बिराजे हैं, सो न देइंगे''**। तब श्रीमधुसूदनजी ने चतुर्थ लालजी श्रीगोकुलनाथजी (काकाजी) द्वारा आज्ञा करवाकर अपने यहाँ अलग से पधराये। परन्तु कुछ समय बाद ही ठाकुरजी श्री बालकृष्णजी (सूरतवालों) ने श्रीमधुसूदनजी को स्वप्न द्वारा आज्ञा किया कि **'हमको तो वहाँ ही' (श्री द्वारिकाधीशजी की गोद में ही) विराजनो है**। तब श्रीमधुसूदनजी तुरन्त ही श्रीबालकृष्णजी को संपुटजी में पधराकर श्रीद्वारिकाधीशजी के पास ले आये। परन्तु तृतीयेश श्रीद्वारिकेशजी ने पुन: पधराने से मना कर दिया। तो पुन: श्रीमधुसूदनजी ने चतुर्थ लालजी श्रीगोकुलनाथजी (काकाजी) से आज्ञा करवाकर वापिस श्रीबालकृष्णजी को श्रीद्वारिकाधीशजी की गोद में पधराये। उस समय तृतीयेश श्रीद्वारिकेशजी ने स्पष्ट कहा कि 'इस तरह बार-बार श्रीठाकुरजी को लाना-ले जाना ठीक नहीं होता, अत: श्रीमधुसूदनजी षष्ठगृह से ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी की 'लेख' लिख दें तो हम पधरावें।' **तब श्रीगोकुनाथजी चतुर्थ लालजी की साक्षी में श्रीमधुसूदनजी ने षष्ठगृह से ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी का 'फारखती' पत्र लिख दिया**। यहाँ पर आकर जो थोड़ा-बहुत संशय ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी का षष्ठ स्वरूपत्वेन रहता था वह भी सम्पूर्ण निवृत्त हो गया। अब से ठाकुरजी **श्रीबालकृष्णलाल सम्पूर्ण रूप से तृतीय गृह में श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप ही हो गये**। भविष्य में वो जहाँ कहीं विराजेगें श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप हीकहे जावेंगे। यह फारखती पत्र आज भी तृतीय गृह में सुरक्षित है, ऐसा सुना जाता है।

तात्पर्य यही कि श्रीबालकृष्णप्रभु (सूरतवालों) की स्वयं की भी इच्छा तृतीय निधि श्रीद्वारिकाधीशजी की गोद के स्वरूप के रूप में ही विराजने की थी और है भी। षष्ठ निधिस्वरूपत्वेन विराजने की नहीं है। अब इतनी स्पष्ट भगवद् आज्ञा को भी अनसुनी करके यदि कोई मनस्वी आचरण अर्थात् भगवद् आज्ञा से विपरीत प्रचार कार्य या इच्छा रखता है तो वह उसका **महासाहस** मात्र है एवं सम्पूर्ण अनधिकार चेष्टा ही है। भगवद् इच्छा तो सर्वोपरि है **''निजेच्छात: करिष्यति''** और इसीलिये षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के ज्येष्ठात्मज श्रीमधुसूदनजी ने, एवं स्वयं चतुर्थ लालजी श्रीगोकुलनाथजी ने 'भगवद् इच्छा को ही सर्वोपरि अन्तिम मानकर षष्ठगृह से ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी (सूरत-वालों) का 'फारखती' पत्र लिखा/लिखवाया था।

अतः ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी को षष्ठ स्वरूपत्वेन स्थापित करना वह उन्हीं की आज्ञा का अर्थात् भगवद् आज्ञा का स्पष्टतः उल्लंघन करना ही है ।

वस्तुतः ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के ही स्वरूप हैं इस विषय में द्वितीय गृह के श्रीहरिरायचरण का भी स्पष्ट वचन प्राप्त होता है। श्रीहरिरायजी कृत स्वरूप भावना प्राचीन हस्तलिखित प्रति में स्पष्ट उल्लिखित है कि **''श्रीबालकृष्णजी श्रीद्वारिकानाथजी के गोद के ठाकुरजी हैं ॥ ताते अन्नकूट में श्री द्वारिकानाथजी के पास झांपी में पधराये ॥ न्यारी पालकी नाहीं ॥** और भी एक अन्य प्राचीन हस्तलिखित पत्रात्मक **''अन्नकूटोत्सव प्रशस्ति''** नामक लघुग्रन्थ में सप्तस्वरूपोत्सव प्रसंग में **श्रीबालकृष्णजी का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । उसमें भी षष्ठस्थान रिक्त है ।** इसी तरह २५२ वैष्णवों की वार्ता में वार्ता सं० १६२ में ''एक विरक्त ब्राह्मण गुजरात को जाको श्रीगुसाईंजी ने सात स्वरूपन की भावना कही ।'' इस वार्ता में भी श्रीगुसाईंजी ने पञ्चम स्वरूप श्रीगोकुलचन्द्रमाजी की भावना कहकर के सीधी सप्तम स्वरूप श्रीमदनमोहनजी की भावना कही है। अतः यह सिद्ध होता है कि श्रीगुसाईंजी के समय में षष्ठ स्वरूप का स्थान रिक्त ही था ।

हमारा कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीबालकृष्णजी तृतीय गृह के गोद के ही स्वरूप थे, हैं और रहेंगे । वि० सं० १७२६ में तृतीय गृह के ही श्रीव्रजरायजी महाराज ने बादशाह औरंगजेब से राजनगर (अहमदाबाद), गुजरात के सूबेदार के नाम एक आज्ञा-पत्र लिखवाकर जब बलपूर्वक श्रीबालकृष्णजी को तृतीय निधिस्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद से पालना झूलते समय पधराया, वह तृतीय गृह में निहित अपने अधिकार के तहत् था । श्रीव्रजरायजी महाराज ने तो पहिले बादशाह से तृतीय गृह में अपना अधिकार स्वत्व मानते हुए श्री द्वारिकाधीशजी को ही दिलाने को कहा था, परन्तु बादशाह द्वारा इन्कार कर दिये जाने पर श्रीव्रजरायजी ने कहा कि **''बड़े देवस्वरूप आप नहीं दिलाते तो उनकी गोद के छोटे देवस्वरूप ही दिला दीजिये''** इस पर बादशाह ने छोटे देवस्वरूप दिलाने को गुजरात के सूबेदार पर पत्र लिखा । इस घटना से स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि तृतीय गृह के सूरतवाले श्रीव्रजरायजी ने श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को तृतीय गृह में अपने निहित अधिकार के तहत् प्राप्त किया न कि षष्ठगृह के अधिकार से । श्रीव्रजरायजी स्वयं तृतीय गृह के उपगृह में ही थे, जैसा कि वंशवृक्ष से स्पष्ट होता है । अतः तब से लेकर आज तक श्रीबालकृष्णजी तृतीय गृह के उपगृह सूरत में श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप के रूप में ही विराजमान हैं ।

यहाँ पर प्रासंगिक होने से एक बात और भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि विद्यावयोवृद्ध नि० ली० गो० श्री व्रजरत्नलालजी महाराज सूरतवालों ने भी नड़ीयाद केस में दी गई अपनी ''जुबानी'' में स्पष्ट शब्दो में अपने आपको प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी के वंश का ही स्वीकार किया है न कि ''षष्ठ लालजी श्रीयदुनाथजी के वंश का'' । पुनश्च सूरत के मन्दिर की स्थापना भी तृतीय गृह के आचार्य बालक द्वारा होना स्वीकार किया है। इसी सन्दर्भ में दी गई नि० ली० गो० श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज (सूरत) की ''जुबानी'' का अंश प्रस्तुत है– **''अमो श्री गिरिधरजी ना धरमां आवीए । एटले श्रीविठ्ठलनाथजी ना पेहेला लालजी ना वंश मां आवीए । सूरत नुं स्थान दत्तक क्रमे अमोने आवेलुं । ते श्रीविठ्ठलनाथजी ना त्रीजा लालजी श्रीबालकृष्णजी ना धरमां आवे । सूरत नी हवेली शामड़ाजी (श्यामलजी) ना पुत्र श्रीव्रजरायजी महाराजे स्थापना करेली । श्रीव्रजरायजी महाराज श्रीविठ्ठलनाथजी ना त्रीजा लालजी श्रीबालकृष्णजी ना घरमां आवे ।''** यह स्वीकृति सूरतवाले नि० ली० गो० श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज की स्वयं की स्वमुख की है। जो इतिहास सिद्ध सत्य है ।

कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीव्रजरायजी महाराज (जो स्वयं तृतीय गृह के ही थे) ने तृतीय निधिस्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की गोद से श्रीबालकृष्ण प्रभु को बलपूर्वक पधारकर सूरत ले गये एवं वहाँ पर उन्होंने मन्दिर की स्थापना करके श्रीबालकृष्ण प्रभु को पधराया। अर्थात सूरत का गृह एवं उसमें विराजमान स्वरूप दोनों तृतीय गृह के उपगृह एवं गोद के स्वरूप हुए । न कि षष्ठगृह के । और यही गृह एवं स्वरूप दत्तक क्रम से वर्तमान सूरत गृह के गोस्वामी आचार्यों के पूर्वजों को प्राप्त हुए थे । अत: प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी के वंश में होते हुए भी दत्तक विधानानुसार ये गोस्वामी आचार्य तृतीय गृह के उपगृह में स्वत: ही प्राप्त हो गये । जो आज भी उसी क्रम में प्रवर्तमान होते हुए स्थित हैं । इससे अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि **सूरतगृह एवं स्वरूप दोनों तृतीय गृह के उपगृह के अन्तर्गत आते हैं** । सूरतगृह का किसी भी रूप में षष्ठगृह से लेशमात्र भी सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता है ।

इस प्रकार षष्ठगृह एवं षष्ठ स्वरूप का स्थान जिस तरह श्रीगुसाईंजी के समय रिक्त था वैसे ही रिक्त बना रहा । श्रीजी में षष्ठगृह का कोई भी क्रम, सेवा प्रकार आदि वि० सं० १८८० के पूर्व तक नही होता रहा ।

अब श्रीमुकुन्दरायजी (काशी) का षष्ठ स्वरूपत्व किस तरह सिद्ध हुआ, और काशी को षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार किस तरह प्राप्त हुए इसका युक्तियुक्त प्रामाणिक एवं भावपूर्ण विश्लेषण करते हैं ।

वि० सं० १८७९ में गो. तिलकायित श्रीदामोदरजी (श्रीदाऊजी) महाराज ने सप्तस्वरूप का मनोरथ किया । कार्तित सुदी-१ को अन्नकूट अरोगाया । तब श्रीजी के पास ६ पालकी पधारी । अर्थात् प्रथम गृह से लेकर पंचम एवं षष्ठगृह को छोड़कर सप्तम गृह की पालकी पधारी । चूंकि षष्ठगृह का प्रकार पृथक रूप में श्री गुसाईंजी के समय से ही नहीं हुआ था, अत: षष्ठगृह से कोई स्वरूप या पालकी नहीं पधारी । इस अलौकिक अवसर पर षष्ठ लालजी श्रीयदुनाथजी के वंशज शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवाले वहाँ पर विराजमान थे । उस समय अन्य वल्लभ कुल के बालक अर्थात् प्रथम गृह से लेकर पंचम एवं सप्तम गृह के बालक श्रीजी में अपने-अपने स्वरूप के साथ अपनी-अपनी सेवा में तत्पर थे। परन्तु ऐसे अलौकिक आनन्दपूर्ण समय में भी षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के वंशज श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को अत्यन्त उदास देखकर अन्य आचार्य बालकों ने प्रश्न किया ''**जो या समय ऐसो अलौकिक आनन्द है तामें आपको चित्त उदास क्यों है**'' ? यह प्रश्न सुनकर प्रथम बार तो आपश्री ने 'कुछ नहीं' ऐसा कहकर कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु पुन: वही प्रश्न होने पर श्रीगिरिधरजी महाराज ने कहा कि ''**देखो हमारे बड़ेन को (श्रीषष्ठलालजी, श्रीयदुनाथजी को) श्रीजी के घर में कछु नाम नहीं है, नतो हटड़ी की आरती न पालकी, या बात की चित्त में निरन्तर उदासीनता है ।**'' यह उत्तर सुनकर अन्य वल्लभकुल बालक मौन हो गये । अन्नकूट मनोरथ का समस्त सेवाकार्य सानन्द सम्पन्न हुआ, सब बालक अपने-अपने स्वरूपों केसाथ अपने-अपने घर पधारे । परन्तु श्रीगिरिधरजी महाराज के चित्त में उदासीनता बनी रही ।

उपर्युक्त उत्सव समापन के बाद भी श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) वहीं श्रीनाथद्वारा में ही विराजमान रहे । नित्य यथा अवसर तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज से आपश्री का सत्संग होता था । तिलकायितश्री सेवा सिद्धान्तान्तर्गत कई समस्याओं का समाधान श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) से करवाते थे । इस तरह तिलकायितश्री अनेक प्रकार के प्रश्नों के द्वारा श्रीगिरिधरजी महाराज की परीक्षा भी करते रहे । जब श्रीदाऊजी महाराज तिलकायित ने अच्छी तरह से देख लिया कि श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) श्रीभागवततत्वज्ञ, दम्भादिरहित, कृष्ण सेवापर एवं सब प्रकार से निपुण और योग्य है तब वि० सं० १८७९ में माघ शु० १५ पूर्णिमा,

चन्द्रग्रहण के अवसर पर उनसे 'गोपालमन्त्र-दीक्षा' लेने का निश्चय किया। परन्तु श्रीदाऊजी महाराज के निकटतम आचार्य बालकों ने कहा कि इनसे गोपालमन्त्र लेना ठीक नहीं है, यदि लेना हो तो अपनी परम्परा के आचार्य बालक से लेना चाहिये। तब श्रीदाऊजी महाराज ने सहज भाव से उस बात को स्वीकार करते हुए भगवद् आज्ञा पर इस निर्णय को छोड़ दिया। उस समय २१ वल्लभकुल बालकों के नाम की चिट्ठियाँ तैयार करके श्रीनाथजी के सन्मुख डाली गई और जब उठाई गई तो उसमें श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों के नाम की चिट्ठी ही खुली। अतः श्रीदाऊजी महाराज ने श्रीनाथजी की आज्ञा से ही शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों से ही गोपालमन्त्र की दीक्षा लिया। दीक्षोपरान्त श्रीदाऊजी महाराज तिलकायितश्री ने श्रीगिरिधरजी महाराज से कहा कि आपको गुरुदक्षिणा में क्या देवें? उत्तर में श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने कहा **''हम मांगेगें सो आपसूँ दियो न जावेगो''** तब श्रीदाऊजी महाराज ने कहा **''तुम मांगोगे सो हम देंगे''** तब श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने मांगा–**''हमारे बड़ेन को श्रीजी के घर में कछु नाम नहीं है, बड़ेन ने श्रीठाकुरजीहू पधराये नहीं हैं। ताते श्रीजी के पास श्रीठाकुरजी बिराजे हैं तामेसूं एक-स्वरूप पधराय दीजिये''**। तब श्रीदाऊजी महाराज ने आज्ञा किया **''वस्तु तो बहोत मांगी ये कैसे दीनी जाय''** तब श्रीगिरिधरजी महाराज ने कहा **''आपके मन में आवे तो सहज है''**। तब श्रीदाऊजी महाराज ने कहा **''हम आपसूं वचन में आय गये हैं, हमको हू अनुभवभयो है जो आप 'श्रीमहाराजजी' प्रगटे हो, सो बिना ठाकुरजी पधराये पिंड न छोड़ोगे''** तब श्रीगिरिधरजी महाराज मौन रहे। ''मौनं स्वीकृति लक्षणम्''।

उक्त वार्तालाप के बाद कुछ समय व्यतीत हो गया तो श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने तिलकायित श्री दाऊजी महाराज को श्रीठाकुरजी पधराने के विषय में पुनः विनती किया एवं आग्रहपूर्वक वि० स० १८८० आश्विन सु० ६ को एक पत्र लिखवाया तथा वि० सं० १८८० क्वार सु. ५ को एक खत लिखवाया। जिनमें श्री नवनीतप्रियाजी के वारा के श्रृंगार तथा श्रीनाथजी की षष्ठ लालजी श्रीयदुनाथजी के घर की आड़ी की हटड़ी की आरती पालकी एवं श्रीठाकुरजी पधरा देने का लिखा गया। इस तरह वि० सं० १८८० से षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार अर्थात् स्वरूपत्वेन एवं गृहत्वेन, काशी को प्राप्त हुए। यह अधिकार प्राप्ति श्रीश्रीजी की इच्छा से एवं श्रीदाऊजी महाराज तिलकायितश्री की कृपा से तथा श्रीशुद्धाद्वैतमार्तण्ड गिरिधरजी महाराज के परिश्रम से सिद्ध हुई।

उपर्युक्त लेख पत्र देने के बाद तदनुसार श्रीठाकुरजी पधराने का निश्चय हुआ परन्तु इसी बीच दुर्भाग्य से तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज वि० सं० १८८२ फाल्गुन कृ० ३० को लीलाप्रवेश कर गये। इसके बाद श्री गिरिधरजी महाराज ने कुछ समय व्यतीत होने के बाद श्रीदाऊजी महाराज के बहूजी से प्रार्थना किया कि **''हमकूं श्रीदाऊजी महाराज ने कछु देवेकूं कहे हते सो आप जाने हौं ?''** तब श्रीबहूजी ने आज्ञा किया कि **''हम जाने है''** तब आपने पुनः विनती किया कि आप पत्र में लिख दें तो अच्छा रहेगा। तब श्रीबहूजी महाराज ने लेखपत्र लिख दिया। तदनन्तर समय सौकर्य देख के **(वि० सं० १८८५ को दीपावली के दिन शाम को सर्वप्रथम श्री गिरिधरजी महाराज (काशी) ने श्रीयदुनाथजी की आड़ी की षष्ठगृह की हटड़ी की आरती श्रीजी की करी एवं दूसरे दिन प्रातः का० सु० १ को राजभोग सरने के बाद 'श्रीमुकुन्दरायजी' का स्वरूप श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों को पधरा दिया गया। षष्ठगृह का स्थान जो अभी तक रिक्त था वह पूर्ण हुआ तथा षष्ठनिधि स्वरूप का स्थान जो अभी तक रिक्त था वह भी पूर्ण हुआ। षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी हुए एवं षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार लेख-पत्र करके षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी**

की तरफ की हटड़ी की आरती एवं पालकी श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को प्रदान किया गया। इस प्रकार षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार काशीगृह को प्राप्त हुए, षष्ठ गृहाधिपती श्रीगिरिधरजी महाराज हुए एवं षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के बांटे के षष्ठस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी हुए।

वस्तुत: सातों स्वरूपों का क्रम श्रीगुसाईंजी के सात बालकों से हैं, न कि स्वरूपों से। कारण कि यदि श्रीमथुराधीशजी को सप्तम लालजी श्रीघनश्यामजी प्राप्त करते तो श्रीमथुराधीशजी सप्तम स्वरूप कहे जाते एवं श्रीमदनमोहनजी प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी द्वारा प्राप्त किये जाने पर प्रथम स्वरूप कहे जाते। कहने का तात्पर्य यही कि षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने जब श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को स्वीकार ही नहीं किया और अपने भाग के स्वरूप के रूप में अपने जीवनकाल में कभी भी सेवा नहीं किया, तो उन्हें हम षष्ठस्वरूप कैसे कह सकते हैं। मूलत: श्रीयदुनाथजी के देने को जिन श्रीबालाकृष्णजी के स्वरूप का विचार श्रीगुसाईंजी ने किया था, एवं श्रीयदुनाथजी ने स्वीकार नहीं किया तब उन स्वरूप को तो पुन: श्रीजी के पास ही पधरा दिया गया था जो आज भी वहीं पर विराजमान हैं। इसका उल्लेख हम लेख के प्रारम्भ में कर चुके हैं। इसी विषय में यदि हम दूसरे मतानुसार विचार करते हैं तब भी जिस श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को श्रीयदुनाथजी द्वारा स्वीकार नहीं किया गया उसे तृतीय लालजी ने श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद में विराजने के लिए श्रीगुसाईंजी से मांग लिया तथा श्रीगुसाईंजी ने उन्हें गोद के स्वरूप के रूप में दे भी दिया। इसीलिये तब से लेकर वि० सं० १८८५ के पूर्व तक श्रीजी में षष्ठगृह का कोई क्रम नहीं रहा। अपितु श्रीबालकृष्णजी के सूरत पधारने के बाद भी उनकी तरफ से कभी षष्ठगृह का कोई भी परिसंवाद उपस्थित नहीं किया गया। अर्थात् वि० सं० १७२६ से १८७९ तक याने १५३ वर्षों के एक सुदीर्घकालीन अन्तराल में एवं उसके पश्चात् भी लम्बे समय तक श्रीबालकृष्णजी का षष्ठस्वरूपत्वेन कोई प्रकार प्राप्त नहीं होता है। अतएव तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय ने षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के वंशज शुद्धाद्वैतमार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों को षष्ठनिधिस्वरूपत्वेन श्रीमुकुन्दरायजी पधराकर षष्ठगृह की श्रीमहाराजजी की आड़ी की हटड़ी की आरती, पालकी देकर षष्ठगृह के समस्त अधिकार प्रदान किये।

वि० सं० १८८५ में षष्ठनिधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी एवं षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के बाद पुन: वि० सं० १८९६ में काशीस्थ षष्ठगृहाधिपति श्रीगिरिधरजी महाराज ने षष्ठनिधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी को काशी से नाथद्वारा पधराकर मनोरथ करने का विचार किया। उस समय वहाँ के तिलकायित श्रीगोविन्दरायजी तथा उनके माता श्रीलक्ष्मी बहूजी से श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने आज्ञा प्राप्त की। वहां से तिलकायितश्री की सहर्ष स्वीकृति आ जाने के बाद श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) अपने षष्ठनिधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी को आषाढ़ मास के पूर्व नाथद्वारा पधरा लाये। आषाढ़ मास में श्रीनाथजी के साथ षष्ठ निधिस्वरूप श्रीमुकुन्द प्रभु का छप्पन भोग का मनोरथ सिद्ध भया। तदनन्तर श्रीगिरिधरजी महाराज ने कार्तिक मास में चार स्वरूपों का उत्सव करने का विचार किया। आषाढ़ शु० ५ को श्रीलक्ष्मी बहूजी ने तथा आषाढ़ शु० ७ को श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने पत्र द्वारा विज्ञप्ति की कि श्रीद्वारिकाधीशजी को का० शु० १० के दिन चार स्वरूपों के उत्सव में श्रीजी के पास पधरावें। श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) ने तो अपने पत्र में अत्यधिक नम्रता के साथ लिखा कि यदि आप श्रीद्वारिकाधीशजी को नाथद्वारा नहीं पधरावेंगे तो यह चार स्वरूप का मनोरथ सिद्ध नहीं होगा और मेरी लाज रखना आपके हाथ में है। श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) के अनुरोध को स्वीकार करते हुए तृतीय गृहाधिपति श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज ने अन्नकूटोत्सव पर एवं पुन: का० शु० १० को चार स्वरूपोत्सव पर

श्रीद्वारिकाधीशजी को श्रीजी द्वार पधराकर श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) के अनुरोध की रक्षा किया। **इस तरह वि० सं० १८९६ में चार स्वरूपों का मनोरथ सिद्ध भया। इस समय श्रीनाथजी के पास श्रीनवनीत प्रियाजी, श्रीविठ्ठलनाथजी, श्रीद्वारिकाधीशजी, श्रीमुकुन्दरायजी पधारे और महान आनन्दोत्साह के साथ यह अलौकिक चार स्वरूप का महोत्सव पूर्ण हुआ।**

यहाँ पर मुख्य समझने का विषय यह है कि, यदि श्रीगुसाईंजी के समय से ही षष्ठगृह एवं/या षष्ठस्वरूप की स्थिति होती तो तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को षष्ठनिधिस्वरूपत्वेन श्रीमुकुन्दरायजी पधराकर षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार **'हटड़ी की आरती, पालकी'** क्यों प्रदान करते? क्यों उन्होनें प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि अन्य गृहों के अधिकार एवं स्वरूप किसी को प्रदान नहीं किया? अर्थ स्पष्ट है कि अन्य प्रथम से पंचम एवं सप्तम गृहों की स्थिति तो श्रीगुसाईंजी के समय से ही सिद्ध थी अत: किसी को प्रदान करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था, परन्तु चूंकि षष्ठगृह, स्वरूप की स्थिति श्री गुसाईंजी के समय नहीं थी अत: श्री दाऊजी महाराज ने षष्ठगृहाधिकार एवं षष्ठस्वरूप को श्रीयदुनाथकुलोद्भव श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को प्रदान किया। षष्ठगृहाधिकार एवं षष्ठनिधि स्वरूप प्रदान की प्रक्रिया से पूर्व श्रीनाथजी में षष्ठगृह सेवा प्रकार एवं षष्ठस्वरूप का कोई भी क्रम प्राप्त नहीं होता है। इसीलिये तो वि० सं० १८७९ में श्रीजी में जब सप्तस्वरूपोत्सव हुआ तब श्रीयदुनाथजी के वंश में होने के कारण श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को ही अन्त:करण में कष्ट हुआ कि **'देखो हमारे बड़ेन को (षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी को) या घर में (प्रधान बड़े घर में) कछु नाम नहीं है, न तो हटड़ी की आरती न पालकी'**। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रीगुसाईंजी के अवशिष्ट कार्य को उन्हीं के स्थान पर विराजमान तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज ने श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को षष्ठगृह के समस्त अधिकारों के साथ षष्ठनिधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी पधराकर पूर्ण किया एवं षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के अवशिष्ट प्राप्य स्वरूप गृहाधिकार को उन्ही के वंशज श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों ने प्रधानगृह से प्राप्त करके पूर्ण किया।

वि० सं० २०२३ में एक बार पुन: श्रीमुकुन्दप्रभु को श्रीजीद्वार पधराने का सुअवसर प्राप्त हुआ। नि. ली. तिलकायित श्रीगोविन्दलालजी महाराज ने सप्तस्वरूपोत्सव करने का संकल्प किया। षष्ठनिधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी को पधराने के वास्ते तत्कालीन षष्ठपीठाधीश्वर श्रीमुरलीधरलालजी महाराज (काशी) को निमंत्रण भेजा। उस मनोरथ में भी **श्रीमुकुन्दरायजी ही षष्ठगृहनिधिस्वरूपत्वेन वहां पर विराजे।** उक्त मनोरथ में श्रीनाथजी, श्रीनवनीतप्रियाजी, श्रीविठ्ठलनाथजी, श्रीद्वारिकाधीशजी, श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, श्रीमुकुन्दरायजी, श्रीमदनमोहनजी एवं श्रीमथुराधीशजी की गोद के स्वरूप श्रीनटवरलालजी साथ विराजकर छप्पन भोग अरोगे तथा पवित्रा एकादशी पर सब स्वरूप साथ विराजकर पवित्रा भी धरे। इस मनोरथ का विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ के अन्य लेख में किया गया है। इस प्रकार यह अलौकिक मनोरथ श्रा० शु० ९, को सिद्ध भया। **इस अवसर पर भी श्रीबालकृष्णलाल (सूरत) षष्ठ गृहस्वरूपाधिकार नहीं होने से नहीं पधारे।**

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि सात स्वरूप में श्रीमुकुन्दरायजी हैं। श्रीगुसाईंजी के छट्ठे लालजी श्रीयदुनाथजी का "हक्क" जो उस (श्रीगुसाईंजी के) वक्तभगवदिच्छावश (श्रीयदुनाथजी को) प्राप्त नहीं हुआ था वही कालान्तर में श्रीगुसाईंजी के ही बड़े गृह से उन्हीं के स्वरूप टीकेत श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय ने षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के वंशज एवं उन्हीं के स्वरूप शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को श्रीठाकुरजी सहित सम्पूर्ण षष्ठगृहाधिकार प्रदान करके पूर्ण किया। उसी विषय के (षष्ठगृहाधिकार के) लेखपत्रों

का विवरण निम्नलिखित है–

१. प्रथम लेखपत्र : तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय का लेखपत्र है। यह वि० सं० १८८० आश्विन शु. ५ गुरुवार को लिखा गया है। इसमें तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वि० ने षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को दिये हैं। इस लेखपत्र में श्रीलक्ष्मीबहूजी तथा श्रीचारूमति बहूजी की लिखित सम्मति है।

२. द्वितीय लेखपत्र : तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय का है। यह वि० सं० १८८० आश्विन शु० ६ शुक्रवार का लिखा गया है। इस पत्र में स्वरूप पधरा देने का लिखा है। इसमें भी श्रीलक्ष्मी बहूजी तथा श्री चारुमति बहूजी की लिखित सम्मति है।

३. तृतीय लेखपत्र : तिलकायित श्री दाऊजी महाराज द्वि० का दक्षिण हैदराबाद में लिखा गया है। यह पत्र श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) के पत्र कार्तिक कृ० ५ के प्रत्युत्तर में लिखा गया है। वि० सं० १८८२ कार्तिक शु० ५ का है। इसमें श्रीठाकुरजी पधारदेने का तथा षष्ठगृह बना देने की आज्ञा है।

४. चतुर्थ लेखपत्र : श्रीलक्ष्मी बहूजी का है। इसमें सेवा, शृंगार, आरती एवं श्रीठाकुरजी पधारदेने बाबत विषय की पुष्टि की गई है। वि० सं० १८८३ माघ शु० ५ का है।

५. पंचम लेखपत्र : श्रीलक्ष्मी बहूजी का है। वि० सं० १८८३ पौष शु० ३ रविवार का है। इसमें तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय ने जो (स्वरूप पधराकर षष्ठगृहाधिकार प्रदान की) आज्ञा दिया था उसको पुनः लेखबद्ध करके...... ''वह हमें पूर्ण मान्य है'' ऐसा प्रमाणित किया गया है।

६. षष्ठ लेखपत्र : श्रीलक्ष्मीबहूजी तथा श्रीचारुमति बहूजी का है। यह पत्र वि० सं० १८८५ कार्तिक शु० १ को श्रीठाकुरजी श्रीमुकुन्दरायजी पधराये उसी दिन का है। इस पत्र में षष्ठ स्वरूप पधारकर सम्पूर्ण षष्ठगृहाधिकार प्रदान किया है। श्रीजी के बड़े गृह में सप्त स्वरूप पधारें तब किस तरह पधारें, कैसे विराजे आदि विवरण भी दिया गया है। पुनश्च श्रीजी के घर में तिलकायितश्री एवं परिचारक के बाद सम्पूर्ण सेवा श्रृंगार का अधिकार भी षष्ठगृह काशी के टीकेत को प्रदान किया गया है।

उपर्युक्त लेखपत्र में साक्षीरूप में जो दो विशेष हस्ताक्षर हैं वो प्रथम–गो० श्रीप्रद्युम्नजी सुत श्रीयदुनाथजी की गवाही है वह बड़ौदा के घर की स्वीकृति है। द्वितीय–गो० श्रीपुरुषोत्तमजी की गवाही है वह मथुरा के गृह की स्वीकृति है।

७. सप्तम लेखपत्र : श्रीलक्ष्मी बहूजी लालजी श्रीगोविन्दरायजी का है। वि० सं० १८८५ मार्ग कृ० १० भौमवार का है। यह पत्र समग्र वैष्णवों के सूचनार्थ सार्वजनिक है। इसमें स्पष्ट उल्लिखित है कि श्रीमुकुन्दरायजी को श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) को षष्ठनिधि स्वरूपत्वेन सम्पूर्ण षष्ठगृहाधिकार के साथ पधरा दिया गया है। अतः अब से समग्र वैष्णव जन षष्ठस्वरूप की भेंट आदि सब षष्ठगृह काशी प्रेषित करेंगे। ऐसी हमारी आज्ञा है।

इन उपर्युक्त लेखपत्रों में जिन–जिन गो. आचार्यों के साक्षी रूप में हस्ताक्षर हैं वे नीचे लिखे अनुसार है–

१. गो० श्रीगोविन्दजी।   २. गो० श्रीद्वारिकेशजी (परिचारक श्रीजी)।

३. गो० श्रीगोपेश्वरजी।   ४. गो० श्रीगोकुलनाथजी सुत पुरुषोत्तमजी।

५. गो० श्रीब्रजपालजी । ६. गो० श्रीप्रद्युम्नजी सुत श्रीयदुनाथजी ।

७. गो० श्रीविठ्ठलनाथजी । ८. गो० श्रीगोपेश्वरजी सुत श्रीकृष्णरायजी (श्री दादाजी की आज्ञातें) ।

९. गो० श्रीगोवर्धनजी । १०. गो० श्रीजमुनाबहूजी ।

तथा अधिकारी श्रीदेवकृष्ण की साक्षी हैं ।

अतएव श्री श्रीनाथजी सूं आदि लेके सात स्वरूपन को

अनुक्रम	*अब टीकेत*	*स्थान*
श्रीश्रीनाथजी	**श्रीदाऊजी महाराज (श्रीराजीवजी)**	**नाथद्वारा**
श्रीनवनीतप्रियाजी	**श्रीदाऊजी महाराज (श्रीराजीवजी)**	**नाथद्वारा**
श्रीमथुराधीशजी	**श्रीविठ्ठलनाथजी महाराज (श्रीलालमणी जी)**	**कोटा**
श्रीविठ्ठलनाथजी	**श्रीकल्याणरायजी महाराज**	**नाथद्वारा**
श्रीद्वारिकाधीशजी	**श्रीब्रजेशकुमारजी महाराज**	**कांकरोली**
श्रीगोकुलनाथजी	**श्रीदेवकीनन्दनजी महाराज (सुरेश बाबा)**	**गोकुल**
श्रीगोकुलचन्द्रमाजी	**श्रीवल्लभलालजी महाराज**	**कामवन**
श्रीमुकुन्दरायजी	**श्रीश्याममनोहरजी महाराज**	**काशी**
श्रीमदनमोहनजी	**श्रीघनश्यामलालजी महाराज**	**कामवन**

श्रीजी के प्रधान गृह से प्राप्त षष्ठ स्वरूप एवं षष्ठ गृहाधिकार लेखपत्रों में यहाँ तक स्पष्ट किया गया है कि **यदि भविष्य में कोई इन लेखपत्रों में जो लिखा है उससे विपरीत करता है या इस लिखे में कसर करेगा तो वह समाज पंचन में मिथ्यावादी कहा जावेगा तथा वह श्रीगोवर्धनधर निकुंजनायक श्रीश्रीनाथजी से विमुख होगा। विचारिये यहाँ पर तिलकायितश्री श्रीदाऊजी महाराज तथा उनके बहूजी ने अत्यन्त कृपापूर्वक षष्ठगृह काशी के लिए कितनी ठोस एवं अविचल आज्ञा प्रदान किया है ।** अतः काशी का षष्ठगृहत्व एवं श्रीमुकुन्दरायजी का षष्ठस्वरूपत्व सर्वथा निर्विचकित्सित एवं निर्विवाद है । ये लेखपत्र आज भी हमारे षष्ठगृह काशी में सुरक्षित विराजमान है । सम्बन्धित कोई भी जिज्ञासु यदि दर्शन करना चाहे तो कर सकता है ।

कुल मिलाकर हमारा कहने का तात्पर्य यही है, कि षष्ठगृह की पृथक् स्थिति तथा षष्ठनिधिस्वरूप का प्रकार श्रीगुसाईंजी के समय सर्वथा नहीं था । प्रथम गृह से लेकर पंचम गृह एवं षष्ठगृह को छोड़कर सप्तमगृह की जो छै गद्दियाँ हैं उनका निर्माण, स्थापना, अधिकार एवं स्वरूपों का प्रकार, स्वीकृति सहकृत प्रदान जो भी हुआ वह बड़े प्रधानगृह अर्थात् श्रीजी के गृह से, वहीं के गृहाधीश द्वारा हुआ है । षष्ठगृह की पृथक् स्थिति एवं षष्ठस्वरूप का स्वीकृति सहकृत प्रदान किसी भी कारणवश उस समय नहीं हो सका था । अतः तदनन्तर कालान्तर में श्रीगुसाईंजी के इस अवशिष्ट कार्य को उसी प्रधान गद्दी के आचार्य तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज ने षष्ठ लालजी श्रीयदुनाथजी के ही वंशज श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवालों को षष्ठनिधिस्वरूपत्वेन श्रीमुकुन्दरायजी पधराकर एवं षष्ठगृह के समस्त अधिकार देकर पूर्ण किया । श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) की हर प्रकार से योग्यता की अभितः परीक्षा करने के बाद एवं इस विषय पर पूर्णतः विचार करने के बाद ही तिलकायित

श्रीदाऊजी महाराज ने ये षष्ठस्वरूप, गृहाधिकार प्रदान किये थे ।

इस प्रकार श्रीगोवर्धनधारी श्रीनाथजी एवं श्रीमुकुन्दप्रभु की इच्छा से ही षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी (महाराजजी) के कुल में उत्पन्न काशीस्थ षष्ठपीठाधीश्वर शुद्धाद्वैतमार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज ने अपने अगाध पाण्डित्य, अतुल प्रताप, वल्लभीय पुष्टि सेवारस मर्मज्ञता, भोगराग शृंगार में विशेषता, रसभाव गाम्भीर्य आदि अनेक गुणों से तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज को प्रसन्न किया तथा श्रीदाऊजी महाराज को गोपालमंत्र की दीक्षा दिया एवं गुरुदक्षिणा में षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को प्राप्त किया और षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार 'हटड़ी की आरती महाराजजी की आड़ी की, पालकी' आदि प्राप्त करके षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को वि० सं० १८८५ माघ शु० ४ चतुर्थी को काशी में श्रीगोपाल मन्दिर जीवनजी की हवेली में पधराया था ।

भुविभक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत् पिता ।
स्ववंशे स्थापिताशेष स्वमाहात्म्यस्मयापहः ॥

ऐसे श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण के वंश में प्रकट तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज (जिन्होंने श्रीमुकुन्दरायजी पधराया) साक्षात् श्रीगुसाईंजी श्रीविठ्ठलनाथजी के स्वरूप अवतार थे । इसी तरह श्रीगिरिधरजी महाराज (काशी) (जिन्होनें षष्ठ निधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी एवं षष्ठगृहाधिकार प्राप्त किया) साक्षात् षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के स्वरूप अवतार थे । इसीलिये श्रीदाऊजी महाराज ने भी आज्ञा किया है कि **''आप महाराजजी प्रगटे हो, ठाकुरजी लिये बिना पिंड न छोड़ोगे''** । स्पष्ट है कि श्रीगिरिधरजी महाराज श्री यदुनाथजी का ही पुनः प्राकट्य था और श्रीयदुनाथजी षष्ठलालजी को श्रीगुसाईंजी के सिवा और कोई ठाकुरजी नहीं पधरा सकता, अतः श्रीदाऊजी महाराज श्रीगुसाईंजी का ही पुनः प्राकट्य था । इसी षष्ठगृह के निर्माणार्थ एवं षष्ठ स्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी प्रदानार्थ तथा प्रदान की स्वीकृत्यर्थ ही इन दोनों आचार्यों (श्रीगुसाईंजी एवं श्री यदुनाथजी) का पुनः प्राकट्य हुआ, अवशिष्ट कार्य की पूर्ति के लिये । युगभेद हो सकता है परन्तु स्वरूपभेद वा लीलाभेद नहीं होता । तात्पर्य यही है कि वही लीला युगभेद से यहां प्रकट हुई । लीला वही है, स्वरूप वही है, प्रदाता एवं आदाता भी वही है, बस केवल युगभेद है ।

अतः निर्गलितार्थ यही आता है कि षष्ठ-निधिस्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के ही ठाकुरजी हैं, और श्रीगुसाईंजी ने ही श्रीयदुनाथजी को पधराया है एवं षष्ठगृह पीठ काशी श्रीगुसाईंजी कृत ही है, ऐसा कहना सम्पूर्णतः भावभावनापूर्ण प्रमाण सिद्ध सत् सिद्धान्त है, एकमात्र सत्य है तथा ज्वलन्त ऐतिहासिक तथ्य है ।

॥ वस्तुतः भगवत् इच्छा ही है ॥
॥ तथैव तस्य लीलेति ॥

उद्घोषितोत्रेतिहासः भगवत्कृपया मया ।
षष्ठगृहस्य सुधिभिः चिन्तनीयो विशेषतः ॥
वन्दे श्रीयदुनाथं मुकुन्दसेवाभावरसमर्मज्ञम् ।
यत्कृपया मे चेतः ध्यायति सततं मुकुन्दाघ्रिम् ॥

●

॥ श्रीमुकुन्दगोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठगृह काशी का इतिहास

–श्रीराधेकृष्ण अग्रवाल (काजूबाबू)

लेखक वंश परम्परा से पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय के अनुयायी हैं और जो धार्मिक संस्कार की विरासत आपको प्राप्त हुई है, वह प्रत्यक्ष रूप से आपके जीवन में दृष्टिगोचर होती है। सन् ८४ में श्री गोपाल मन्दिर के लगभग १२५ वर्षों के अन्तराल में आयोजित ऐतिहासिक छप्पन भोग महोत्सव का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न कराकर अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। आप कितनी ही सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं के संरक्षण मण्डल में अध्यक्ष/उपाध्याक्ष/प्रधानमंत्री व सक्रिय सदस्य के रूप में कार्यरत् हैं। बनारसी वस्त्र उद्योग में एक अग्रणी व्यवसायी रहते हुए भी आपने विद्वानों की पंक्ति में एक गौरवपूर्ण स्थान बनाके रखा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आपके दो लेख दिये हुए हैं। ये आपकी विद्वत्ता और प्रतिभा के परिचायक हैं।

पीठ की परम्परा सनातन धर्म में अनादि काल से चली आ रही है। सहस्त्रों युगों पूर्व जब नगाधिराज हिमालय की सुरम्य उपत्यकाओं में दक्ष प्रजापति ने महान् यज्ञ का आयोजन किया था। उस समय उन्होंने वैयक्तिक वैमनस्यवश अपने जामाता आशुतोष भगवान् शिव को आमंत्रित नहीं किया व यज्ञ में देव गणों के भाग में भी उनका स्थान सुरक्षित नहीं रखा। शिव की अर्धांगिनी महासती अपने पति के निषेध के बावजूद पितृप्रेमवश यज्ञ में सम्मिलित होने पहुचीं तो अपने पिता की उदासीनता एवं यज्ञ में देवताओं के लिए सुरक्षित अपने पति के भाग की अवहेलना को न सहन कर सकीं और उन्होंने इस अवहलेना के प्रति विरोध प्रगट किया एवं अपने अंगों से अग्नि प्रज्वलित करके उसी में दग्ध हो गयीं। भगवान् शिव उनके वियोग में उनके मृत शरीर को लेकर सम्पूर्ण जगत में भ्रमण करने लगे, और जहाँ–जहाँ उनके अंग गिरे वहाँ–वहाँ शक्ति पीठों की स्थापना हुई। सम्पूर्ण देश में इस प्रकार के ५१ शक्ति पीठ प्रसिद्ध है। कई सहस्त्र वर्ष पूर्व आदिशंकराचार्य ने जब बौद्ध धर्म के प्रभाव को क्षीण करने एवं सनातन धर्म का पुनरुद्धार करके समुन्नत करने का बीड़ा उठाया तब उन्होंने समग्र देश के चारों कोनों पर चार शांकर पीठों की स्थापना की। इसी क्रम में श्रीनिम्बार्काचार्य, श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीमध्वाचार्य द्वारा भी जो अपने अपने सम्प्रदायों की गद्दियाँ स्थान–स्थान पर स्थापित की गईं वे गद्दियाँ उस उस सम्प्रदाय की प्रधान पीठ के नाम से विख्यात हैं।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के मूल पुरुष व श्रीगोविन्दाचार्यजी के पौत्र एवं वल्लभदीक्षित के पुत्र श्री यज्ञनारायण भट्ट ने अपने जीवन काल में ३२ सोमयज्ञ करके जो सोम यज्ञों की शृंखला व परम्परा प्रारम्भ की थी, वह उनके वंशज श्रीलक्ष्मणभट्टजी द्वारा सौवाँ सोम यज्ञ करके परिपूर्ण हुई। श्रीयज्ञनारायणभट्ट को साक्षात् भगवान कृष्ण ने स्वप्न में आज्ञा प्रदान की थी कि सौ सोमयज्ञ पूर्ण होने पर मैं स्वयं तुम्हारे वंश में अवतार ग्रहण करूंगा। तद्नुसार श्रीलक्ष्मणभट्टजी की धर्मपत्नी श्रीइलम्मागारूजी के गर्भ से मि० वैसाख कृष्ण पक्ष एकादशी सम्वत् १५३५ को श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का प्राकट्य हुआ। श्रीमद्वल्लभ ने पुष्टिमार्ग के नाम से जन साधारण के लिए एक विलक्षण एवं अलौकिक मार्ग का प्रवर्तन किया। श्रीशंकराचार्य के मायावाद के निराकरण में जिन चार महान् आचार्यों ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं विवेचन किया, उनमें आचार्य श्रीवल्लभ अन्तिम आचार्य थे। लेकिन उनके शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का दार्शनिक पक्ष सबसे प्रबल था एवं वैज्ञानिकता से परिपूर्ण था। भगवान् श्रीकृष्ण ने परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् अर्थात् सज्जनों की रक्षा एवं असुरों के संहार के

लिए अवतार लिया था तो आचार्य प्रवर श्रीवल्लभ का प्राकट्य दैवी जीवो के उद्धारार्थ एवं आसुरी शक्तियों के विनाशार्थ हुआ था। आज पाँच शताब्दियों से अधिक व्यतीत.हो जाने के बाद भी उनके सिद्धान्त उतने ही प्रासंगिक है जितने आपके आविर्भाव के समय थे।

विक्रम सं० १५६८ की आश्विन कृष्ण द्वादशी को आपके प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथजी का प्रागट्य अड़ैल में हुआ, तदनन्तर सम्वत् १५७२ की पौष कृष्ण नौमी को विन्ध्य की मनोरम उपत्यकाओं में स्थित पौराणिक चरणाद्रि के पावन स्थल पर आपके द्वितीय पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ। आचार्य श्रीगोपीनाथजी शेषावतार माने जाते है एवं आचार्य श्रीविट्ठल की मान्यता पाण्डुरंग श्रीविट्ठल के अवतार के रूप में है।

आचार्यप्रवर श्रीगोपीनाथजी अत्यन्त प्रकाण्ड विद्वान् थे। श्रीमद्वल्लभाचार्य के पश्चात् वे आचार्य गद्दी पर विराजमान हुए लेकिन युवावस्था में ही उनका लीला प्रवेश हो जाने से श्रीवल्लभाचार्यचरण के द्वितीय पुत्र गो० श्रीविट्ठलनाथजी आचार्य गद्दी पर विराजमान हुए और उन्होंने आचार्यश्री के साम्प्रदायिक सिद्धान्तों एवं पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली को व्यापक आयाम प्रदान किया। आचार्य श्रीविट्ठल ने जिन्हें सम्प्रदाय में श्रीगुसाईंजी कहा जाता है, लगभग ७५ वर्षों की अवस्था तक अत्यन्त मनोयोग एवं कुशलतापूर्वक सम्प्रदाय का संचालन किया। उन्होंने पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली का अत्यन्त वृहद् स्वरूप में विस्तार किया एवं सम्पूर्ण देश में अनेकों बार भ्रमण करके असंख्य जीवों को पुष्टिमार्गीय दीक्षा प्रदान किया। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने तो अड़ैल में ही स्थायी रूप से निवास स्थान रखा था और वहीं से उन्होंने अपनी समस्त गतिविधियों का संचालन किया। आपने तीन बार पृथ्वी परिक्रमा किया एवं असंख्य जीवों को शरण में लेकर पुष्टिमार्ग में स्वीकार किया। लेकिन श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसाईंजी ने जतीपुरा में गोवर्धनधरण श्रीश्रीनाथजी की सेवा एवं गोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी की सेवा में निरन्तर पहुँचते हुए भी मथुरा में सतघरा को अपने निवास स्थान के रूप में प्रतिष्ठित किया और वहीं से निरन्तर अनेकों बार सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर अपने पितृचरण द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया। कालान्तर में आपने सम्वत् १६२७ से गोकुल में अपने स्थायी निवास की व्यवस्था कर ली। अपने उत्कर्ष काल में आपश्री ने अष्टछाप की स्थापना करके हिन्दी साहित्य को एक ऐसी धरोहर प्रदान किया, जिससे आज शताब्दियों से पुष्टिमार्गीय जन ही नहीं बल्कि पुष्टिमार्गेतर समस्त साहित्यानुरागी एवं भक्तजन अद्यावधि रसाप्लावित हो रहे हैं।

श्रीगुसाईंजी के सात पुत्र हुए। भक्त प्रवर नाभादासजी ने भक्त माल में श्रीगुसाईंजी के सातों बालकों के विषय में निम्न छप्पय लिखा है–

छप्पय:–

श्रीगिरिधर जू सरस शील, गोविन्द जू साथहि।
बालकृष्ण जस बीर धीर, श्रीगोकुलनाथहिं॥
श्रीरघुनाथ जू महाराज श्रीयदुनाथहिं भज।
श्रीघनश्याम जू पगे प्रभु, अनुरागी सुधि सजि॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी उत्तरार्ध भक्तमाल में लिखा है।

गुरुवर गोपीनाथ प्रगट पुरुषोत्तम प्यारे।
श्रीगिरिधर गोविन्द राय रूक्मिनी दुलारे॥

बालकृष्ण श्रीवल्लभ माला विजयप्रकाशन।
श्रीरघुपति यदुनाथ श्यामघन भवभयनाशन ॥

श्रीगुसाईंजी के छठें बालक श्रीयदुनाथजी का प्रागट्य वि० सं० १६१५ की चैत्र शुक्ला षष्ठी को अड़ैल में हुआ। श्रीयदुनाथजी ने बाल्यकाल से ही सभी प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन करके प्रकाण्ड विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। आपश्री का आयुर्वेद में बड़ा ही वृहद अध्ययन था। आपका विवाह संस्कार वि० सं० १६३० के लगभग गोकुल में हुआ, वैसे तो आपका सभी भाईयों से पूर्ण अनुराग था। लेकिन विशेष रूप से तृतीय अग्रज श्रीबालकृष्णजी से विशेष सौहार्द था। श्रीगुसाईंजी ने जब अपने पुत्रों में सेव्य स्वरूपों का बटवारा किया था, तब श्रीबालकृष्णजी को श्रीद्वारकाधीशजी एवं श्रीयदुनाथजी को श्रीबालकृष्णजी पधराने का विचार किया। श्रीबालकृष्ण जी के स्वरूप अत्यन्त छोटे थे इससे श्रीयदुनाथजी ने स्वीकार नहीं किया। श्रीबालकृष्णजी ने श्रीगुसाईंजी से श्रीबालकृष्णजी का स्वरूप अपने सेव्य श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के ठाकुर के रूप में माँग लिया। इस तरह षष्ठगृह स्वरूप का स्थान रिक्त रहा। श्रीयदुनाथजी अपने अग्रज श्रीबालकृष्णजी महाराज से विशेष स्नेह होने के कारण उनके पास रह कर ही श्रीद्वारकाधीशजी की सेवा करते रहे। लेकिन अपनी इच्छानुकूल स्वरूप न मिलने से वह अत्यन्त असन्तुष्ट थे। श्रीगुसाईंजी ने जतीपुरा में सातों स्वरूपों को श्रीनाथजी के पास पधराकर सात स्वरूपों का उत्सव किया तो श्रीयदुनाथजी बटवारे से असंतुष्ट रहने के कारण गोकुल से जतीपुरा नहीं पधारे। श्रीगुसाईंजी ने अपने सेवक राजा आसकरनजी को उन्हें बुलाने वास्ते गोकुल भेजा तब वह श्रीयदुनाथजी को समझा-बुझाकर जतीपुरा लाये। लेकिन श्रीयदुनाथजी का असन्तोष दूर नहीं हुआ। श्रीयदुनाथजी ने श्रीवल्लभदिग्विजय नामक ग्रन्थ की रचना सं० १६५८ में किया। आपका लीला प्रवेश वि० सं० १६६० में कहा जाता है। श्रीयदुनाथजी को पाँच पुत्र हुए जिनका नाम (१) श्रीमधुसूदनजी (जन्म मि० चैत्र शुक्ल द्वितीया सं० १६३४) (२) श्रीरामचन्द्रजी (जन्म मि० भाद्रपद शुक्ल सप्तमी सं० १६३८) (३) श्रीजगन्नाथजी (जन्म मि० श्रावण शुक्ल द्वितीया सं० १६४२) (४) श्रीबालकृष्णजी (जन्म मि० ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया सं० १६४४) एवं (५) श्रीगोपीनाथजी (जन्म मि० आश्विन कृष्ण तृतीया सं० १६४७) था। इनमें चौथे एवं पांचवें पुत्र का वंश नहीं चला। प्रथम लगायत तृतीय बालकों का वंश अद्यावधि चल रहा है। वैसे तृतीय पुत्र श्रीजगन्नाथजी का वंश नहीं चला, अतः षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के प्रथम पुत्र के गृह से श्रीचिम्मनलालजी गोद आये इस तरह श्रीजगन्नाथजी का वंश सम्प्रति षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी एवं श्रीगोपाललालजी सेव्य स्वरूपों की सेवा में काशी में विराजमान है।

भगवान श्री कृष्ण ने पाण्डवों युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन को क्रमशः श्रीकल्याणरायजी, श्री मदनमोहनजी एवं गोपाललालजी पधराया था, जिनकी सेवा उन्होंने अपने जीवन काल तक लिया। तदनन्तर श्री कृष्ण के लीला-विस्तार के पश्चात् पाण्डवों ने भी महाप्रस्थान किया तब भगवान् श्रीकृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभजी को पधरा दिया। तत्पश्चात् श्रीवज्रनाभजी जब पाण्डवों के वंशजों एवं उनकी रानियों से मिलने हस्तिनापुर गये तो उन्होंने पाण्डवों की रानियों का भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम देख कर श्रीगोपाललाल जी का स्वरूप पाण्डवों के महल में पधरा दिया। उस समय से पाण्डवों के वंशजों द्वारा श्रीगोपाललालजी की सेवा बराबर चलती रही। हस्तिनापुर से जब पाण्डव वंशज उदयपुर गये तो वहाँ के राजमहल में श्रीगोपाललालजी की सेवा उनकी वंशज लाडबाई धारबाई तक चलती रही। श्रीलाडबाई धारबाई काशी आयीं वहाँ पर श्रीगुसाईजी की शिष्य हुई एवं श्रीगुसाईंजी ने श्रीगोपाललालजी को पाट बैठाया, तत्पश्चात् श्रीगोपाललालजी की सेवा पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणालिका

के अनुसार प्रारम्भ हुई। श्रीलाडबाई धारबाई अपनी वृद्धावस्था में श्रीगोपाललालजी को लेकर बृजभूमि में आ गईं और वहीं पर यथाशक्ति सेवा करती रहीं। अत्यन्त अशक्त होने पर श्रीलाडबाई धारबाई ने श्रीगुसाईंजी के प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी से विनती किया कि श्रीगुसाईजी द्वारा पाट बैठाये ठाकुर श्रीगोपाललालजी को आप अपने यहाँ पधरा लें, साथ में मेरे पास जो चार लाख मुद्रायें हैं वह भी आप स्वीकार कर लें। जिससे सेवा निष्कंटक रूप से चलती रहे। श्रीगिरिधरजी ने ठाकुरजी को पधराना तो स्वीकार कर लिया, लेकिन राजद्रव्य अरिष्ट होने से स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, तत्पश्चात् लाडबाई धारबाई ने गौडीय सम्प्रदाय के आचार्यों से स्वरूप स्वीकार करने के लिए विनती किया। यह बात जब चतुर्थ बालक श्रीगोकुलनाथजी को ज्ञात हुई तो उन्होंने तत्काल वृन्दावन पधारकर दोनों वैष्णवों से सम्पर्क स्थापित किया और कहा कि हमारे पिताश्री द्वारा पाट बैठाये गये ठाकुर को हम गोडीय गोस्वामियों के यहाँ नहीं पधारने देंगे। तब लाडबाई धारबाई ने बड़े श्रीगिरिधरजी द्वारा स्वरूप स्वीकार करने की एवं मुद्राओं को अस्वीकार करने की वार्ता सब श्रीगोकुलनाथजी के सामने प्रस्तुत किया और उन्होंने कहा कि मैं तो अपना अन्त समय समझकर आपकी शरण में आयी हूँ। इस पर श्रीगोकुलनाथ जी ने द्रव्य सहित श्रीठाकुरजी को पधराकर ठाकुर को तो श्रीगोकुलेशप्रभु के निकट पधरा दिया जहाँ उनकी सेवा प्रारम्भ हुई एवं द्रव्य को दीवाल में चुनवा दिया। तेरह वर्षों तक श्रीगोपाललालजी की सेवा श्रीगोकुलेशप्रभु के साथ चलती रही, तत्पश्चात् श्रीयदुनाथजी लीला में पधारे। तब श्रीयदुनाथजी के तीनों बालकों ने मिलकर श्रीगोकुनाथजी से विनती किया कि हमारे पिता के हिस्से में कोई सेव्य स्वरूप प्राप्त नहीं हुए। इस पर श्रीगोकुलनाथजी ने तीनों बालकों को तीन स्वरूप पधरा दिया। जिसमें श्रीमधुसूदनजी को श्रीकल्याणराय जी, श्रीरामचन्द्रजी को श्रीमदनमोहनजी एवं श्रीजगन्नाथजी को श्रीगोपाललालजी के स्वरूप पधरा दिया। श्रीगोपाललालजी की सेवा श्रीजगन्नाथजी के वंशज श्रीजीवनजी (जन्म मि० माघ शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० १७७५) एवं उनके पुत्र श्रीगोपालजी (जन्म मि० माघ शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० १८१०) तक गोकुल में ही, श्रीकल्याणरायजी के मन्दिर में चलती रही, जहाँ एक ही सिंहासन पर तीनों स्वरूप विराजते रहे। श्रीजगन्नाथजी के वंशज कालान्तर में श्रीगोपाललालजी को पधराकर कामवन पधारे वहाँ अनेक वर्षों तक सेवा चलती रही।

श्रीजगन्नाथजी ने षष्ठ गृह की प्रथम शाखा से श्रीचिम्मनजी (जन्म मि० आश्विन शुक्ल षष्ठी सं० १६८०) को गोद लिया श्रीचिमनजी को चार बालक (१) श्रीमाधवरायजी (जन्म मि० भाद्र पद शुक्ल तृतीया सं० १७००) (२) श्रीगोपालजी (जन्म सं० १७०२) (३) श्रीपुरुषोत्तमजी (जन्म मि० माघ कृष्ण चतुर्थी सं० १७०३) एवं (४) श्रीकल्याणरायजी (जन्म मि० भाद्र पद शुक्ल अष्टमी सं० १७०४) हुए जिनमें प्रथम तीन बालकों का वंश नहीं चला, चतुर्थ बालक श्रीकल्याणरायजी को तीन बालक क्रमशः (१) श्रीगिरिधरजी (जन्म मि० बैसाख शुक्ल प्रतिपदा सं० १७३७) (२) श्रीबृजपतिजी (जन्म मि० फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी सं० १७३९) (३) श्रीलालजी (जन्म सं० १७४२) प्रगट हुए। जिनमें द्वितीय एवं तृतीय बालकों का वंश नहीं चला। प्रथम श्रीगिरिधरजी को चार बालक क्रमशः (१) श्रीजीवनजी (जन्म मि० माघ शुक्ल पूर्णिमा सं० १७७५) (२) श्रीबृजनाथजी (जन्म मि० श्रावण शुक्ल चतुर्दशी सं० १७७७) (३) श्रीजगन्नाथजी (जन्म मि० श्रावण कृष्ण पंचमी सं० १७८१) (४) श्रीवेंकटेशजी (जन्म सं० १७८४) हुए जिनमें द्वितीय लगायत चतुर्थ बालकों का वंश नहीं चला। प्रथम श्रीजीवनजी महाराज ने षष्ठ गृह की प्रथम शाखा से श्रीगोपालजी (जन्म मि० माघ शुक्ल पूर्णिमा सं० १८१०) को गोद लिया। इन्हीं श्रीजीवनजी महाराज के समय कामवन में मेवाती लोगों द्वारा लूटपाट की घटनाएँ बहुत अधिक होने लगीं तो श्रीजीवनजी महाराज ने श्रीगोपाललालजी को विक्रम सं० १७८७ में

काशी में पधराया। सर्वप्रथम श्रीगोपाललालजी मि० भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा संवत् १७८७ को श्रीशम्भूशाह हजारी के घर विराजे तत्पश्चात् **श्रीजीवनजी महाराज ने मि० भाद्रपद कृष्ण पंचमी को अपने गृह में पधराकर पाट बैठाया।** इसके बाद श्रीगोपाललालजी थोड़े-थोड़े समय नारायण दास पंसारी, शम्भू शाह मालदही एवं गंगादास शाह के घर विराजकर पुनः श्रीजीवनजी की हवेली में विराजे। इसी समय नादिर शाह द्वारा दिल्ली में लूटपाट व भीषण अत्याचार की घटनाओं को सुनकर थोड़े समय के लिए श्रीजीवनजी महाराज ने श्रीगोपाललालजी को आजमगढ़ पधराया फिर वहाँ से लौटकर श्रीगोपाललालजी शम्भू शाह मालदही के घर सुन्दरदास शाह के बाग में एवं बनवारीदास हजारी के घर विराजे। संवत् १८०८ से सं० १८३४ तक विभिन्न स्थानों पर विराजकर मि० बैसाख शुक्ल तृतीया संवत् १८३४ अक्षय तृतीया के दिन श्रीगोपालमन्दिर में पुनः विराजे जहाँ पर अद्यावधि विराजमान है। **श्रीजीवनजी महाराज के नाम से ही काशी की यह हवेली श्रीजीवनजी की हवेली के नाम से विख्यात हुई एवं इनके दत्तक पुत्र श्रीगोपालजी महाराज के नाम से यह मन्दिर गोपाल मंदिर के नाम से विख्यात हुआ। श्रीगोपालजी महाराज के वंश में सं० १८४७ को पौष कृष्ण तृतीया को शुभ घड़ी शुभ मुहूर्त में शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज का प्रागट्य हुआ।** जिन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं सेवा परायणता तथा सम्प्रदाय विषयक अगाध जानकारी के बल पर सम्पूर्ण पुष्टि सम्प्रदाय में काशी के घर का नाम अग्रिम पंक्ति में प्रतिष्ठित किया। उनकी महत्ता के प्रतिपादन के लिए तत्कालीन ग्रन्थों में भी साक्ष्य प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हैं। इस सम्बन्ध में श्रीगिरिधरलालजी महाराज काँकरौली वाले के १२० वचनामृत की सं० ३० से निम्नलिखित उद्धरण उल्लेखनीय है। **अब के समय में काशी वारे श्रीगिरिधिरजी सरीखे पंडित नहीं सुने हैं।** वचनामृत सं० ९५ में गिरिधरलालजी पुनः लिखते हैं कि **श्रीगिरिधरजी महाराज काशी वालों की मानसी सेवा स्वतः सिद्ध थी। आपश्री ने निरन्तर १६ माह तक प्रतिदिन रात्रि के पिछले प्रहर से सूर्योदय तक कटिपर्यन्त जल में रहकर एक काँच हाथ में लेकर एक हाथ में माला लेकर गोपाल मन्त्र का पुरश्चरण किया सो वह काँच ऐसा सिद्ध हुआ कि उसमें श्रीनाथजी के दर्शन समय-समय पर तथा ऋतु अनुसार जो भी मनोरथ होते थे, उन सभी मनोरथों के दर्शन होते थे। आपश्री अन्तरङ्ग वैष्णवों को कृपा पूर्वक दर्शन कराया करते थे। श्रीगिरिधरजी महाराज के वचनामृत सं० ३० में यह भी लिखा है कि श्रीगिरिधरजी काशी वालों के सेवक श्रीमुकुन्ददास ने श्रीमद्भागवत की रस प्रबोधिनी टीका किया है। जो कि फिलहाल अन्वेषणीय है।** वचनामृत सं० ४६ से ज्ञात होता है कि श्रीगिरिधरजी महाराज ने नाथद्वारा में श्रीजी के तीन बार छप्पन भोग का मनोरथ कराया। जिसमें से एक मनोरथ में वचनामृतकर्ता श्री गिरिधरजी स्वयं भी उपस्थित थे। वचनामृत सं० ९५ में ही उल्लिखित है कि **श्रीगिरिधरजी महाराज पुष्टिमार्ग के सूर्यरूप थे।** सातों स्वरूपों को भेले करके उनकी छप्पन भोग कराने की बहुत इच्छा थी। लेकिन यह इच्छा पूर्ण न हो सकी एवं श्रीजीद्वार में ही आप श्री वि० सं० १८९८ के लगभग लीला में प्रविष्ट हुए।

काशी के वैष्णव समाज के लिए ही नहीं समस्त पूर्वांचल के प्रति हमारे श्रीगिरिधरजी महाराज की यह महान् देन है कि उन्होंने श्रीश्रीनाथजी की गोद में जो स्वरूप विराजते थे उनमें सबसे महान् निधि श्रीमुकुन्दरायजी को अपने पाण्डित्य के परम प्रताप से नाथद्वारा के तत्कालीन तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज की आज्ञा से प्राप्त किया एवं साथ ही साथ षष्ठगृहपीठ की मान्यता एवं श्रीजीद्वार में षष्ठगृह की श्रीयदुनाथजी की आड़ी की हटरी की आरती पालकी का भी अधिकार प्राप्त किया जो अद्यावधि अविरल रूप से चला आ रहा है। **वि० सं० १८८५ की कार्तिक कृष्ण अमावस्या को श्रीजीद्वार में श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्रीयदुनाथजी**

की आड़ी की हटड़ी आरती किया । दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को श्रीजी के संग श्रीमुकुन्दराय जी भी राजभोग अरोगे फिर तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज की बहूजी की आज्ञा से मुखिया जी ने श्रीमुकुन्दरायजी को श्रीनाथजी के सामने मिलाप कर पधरा दिया एवं बड़े धूमधाम से कीर्तन व साज समाज के साथ श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्रीमुकुन्दरायजी को संपुट में पधराकर नाथद्वारा में स्थित अपने मन्दिर में पाट बैठाया एवं दोबारा राजभोग अरोगे । उसके बाद पुन: श्रीजी के मन्दिर में अन्नकूट आरोगने के लिए प्रभु पालकी में पधारे । पालकी मणिकोठा में पधारी एवं अन्नकूट आरोगकर प्रभु पुन: अपने मन्दिर में पधारे । मि० मार्ग० कृ० १० सं० १८८५ को नाथद्वारा से श्रीमुकुन्दप्रभु की यात्रा प्रारम्भ हुई । मार्ग में राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के अनेकानेक प्रदेशों को सनाथ करते हुए मि० माघ शु० तृतीया को काशी से १० कोस पूर्व प्रभु का मुकाम हुआ । वहाँ से बहुत बड़ी शोभायात्रा के साथ श्रीमुकुन्दप्रभु काशी पधारकर गोपाल बाग स्थित बंगला में बिराजे । वहाँ मि० माघ शुक्ल चतुर्थी को प्रात: काल मंगलभोग आरोगकर मंगला के दर्शन खुले फिर गोपीवल्लभभोग आरोगकर हाथी, घोड़ा, डंका, दुन्दभि व सम्पूर्ण वैष्णव समाज के साथ प्रभु श्री गोपाललालजी के मन्दिर में पधारे एवं दोनों स्वरूप भेले राजभोग आरोगे । श्रीगोपाललालजी के फूलघर के स्थान पर श्रीमुकुन्दरायजी के मन्दिर का निर्माण का निश्चय हो चुका था उसी स्थान पर माघ शुक्ल त्रयोदशी सं. १८८५ को श्रीमुकुन्दरायजी के मन्दिर के नीव की स्थापना हुई । निर्माण कार्य समाप्त होने पर सं० १८८७ की मि० बैसाख शुक्ल षष्ठी को मन्दिर में वास्तु शान्ति हुई व मि० बैसाख शुक्ल सप्तमी को श्रीमुकुन्दरायजी अपने निजमन्दिर में पधारे । श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा प्रकार का विस्तार किया एवं ऐसा लाड़ लड़ाया जो अतुलनीय, अद्वितीय एवं अवर्णनीय है । उनके द्वारा स्थापित सेवा प्रणालिका एवं परम्परा तब से आज तक काशी के घर में अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है ।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में वर्णन है कि श्रीमारकण्डेय ऋषि को जब भगवद् मायावश प्रलय का दर्शन करने की अभिलाषा हुई तो सहस्त्रों वर्षों तक प्रलय समुद्र में भटकने का अनुभव करने के पश्चात् भगवत्कृपा से वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम् श्री मुकुन्द प्रभु का दर्शन हुआ, ऐसे श्रीमुकुन्दप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यचरण के पूर्वजों के यज्ञोपवीत में उलझकर श्रीयमुनाजल से प्राप्त हुये । प्राचीन पुस्तकों में उल्लेख है कि वे ही श्रीमुकुन्दप्रभु के स्वरूप आचार्यचरण को अपने पित्रज श्रीजनार्दनभट्ट द्वारा प्राप्त हुए । उल्लिखित है कि आचार्य श्रीवल्लभ ने श्रीजनार्दनभट्टजी से श्रीशालिग्राम, श्रीभागवतजी की पुस्तक एवं श्रीमुकुन्दरायजी के स्वरूप को लेने की इच्छा प्रगट की तो श्रीभट्टजी ने उनको प्राचीन इतिहास का वर्णन करते हुए बताया कि श्रीशालिग्रामशिला ब्रह्माजी से पूजित एवं कृष्णावतार के समय श्रीठाकुरजी के मुखारबिन्द से स्पर्शित है । श्रीभागवतजी की पुस्तक गरुड़ाचार्य ने दिये हैं एवं श्रीमुकुन्दरायजी के स्वरूप जो उपरोक्त वर्णन के अनुसार हमारे पूर्वजों को प्राप्त हुए थे श्रीगोविन्दाचार्य ने दिये हैं । श्रीभट्टजी ने उपरोक्त तीनों निधियों को श्रीआचार्यचरण के माथे पधरा दिया एवं श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण ने उक्त तीनों निधियों को एक ताम्रपेटिका में पधराकर अपनी सम्पूर्ण पृथ्वी परिक्रमाओं में अपने साथ रखा था एवं नित्य निरन्तर पृथ्वी परिक्रमण के समय भी उक्त निधियों की सेवा करते रहे । श्रीदामोदरदासजी हरसानी प्रभृति उनके प्रमुख वैष्णवों को आपने श्रीमुकुन्दप्रभु के सानिध्य में ही शरण में लिया एवं ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा प्रदान किया । **वार्ताओं में प्रसिद्ध है कि महाप्रभु जब काशी पधारे तो श्रीमुकुन्दरायजी ने काशी में ही विराजने की अभिलाषा प्रगट किया तब आपश्री ने विनती किया कि कालान्तर में यह बात सिद्ध होयगी ।** श्रीमदाचार्य-चरण के लीला विस्तार के पश्चात् कुछ समय तक श्रीनाथजी के मुखिया श्रीरामदासजी ने पूछरी पर श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में श्रीमुकुन्दराय जी की सेवा किया । भगवदीय श्रीरामदासजी

का परिश्रम गोवर्धनधरण श्रीनाथजी द्वारा देखा नहीं गया तो उन्होंने श्रीगुसाईजी से आज्ञा किया कि श्रीमुकुन्दरायजी को मेरे पास पधराओ तब श्रीगुसाईजी ने रामदास को बताया श्रीजी की ऐसी आज्ञा है। तब श्रीरामदासजी ने विनती किया कि यह निधि तो आपकी है और अत्यन्त हर्षपूर्वक श्रीमुकुन्दरायजी को श्रीनाथजी के पास पधरा दिया, तब से काशी पधारने तक श्रीमुकुन्दरायजी श्रीगिरिराज जतीपुरा में तत्पश्चात् श्रीजी के सिहाड़ पधारने पर नित्य उनके साथ ही विराजते रहे एवं वि० सं० १८८५ में तिलकायित श्री दाऊजी महाराज द्वितीय की आज्ञानुसार षष्ठ गृह के महाप्रतापी शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज के माथे पधराने जाने तक वही पर विराजित रहे। श्रीगिरिधरजी महाराज ने काशी में श्रीमुकुन्दप्रभु की आज्ञानुसार श्रीगोपाललालजी के मन्दिर के फूलघर की ओर एक भूखण्ड क्रय करके नवीन मन्दिर सिद्ध कराया एवं विक्रम संवत् १८८७ की बैसाख मास की शुक्ल पक्ष षष्ठी तिथि को वास्तुशान्ति कराया एवं बैसाख शुक्ल सप्तमी को नवीन मन्दिर में बड़े धूमधाम से श्री मुकुन्द प्रभु को बड़े आनन्दपूर्वक पधराया, जहाँ पर आज तक प्रभु बड़े सुखद रूप में विराज रहे हैं।

व्रज भूमि के बाद पूर्व की ओर सहस्त्रों किलो-मीटर के प्रदेश में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आंध्र प्रदेश, तामिलनाडु, केरल आदि प्रान्तों में देखा जाये तो श्रीमुकुन्दरायजी ही सप्त निधियों में से एक मात्र विराजमान हैं। जिनके पधारने एवं विराजने से देश के ये हिस्से सनाथ हुए हैं। इन सम्पूर्ण प्रदेशों में से अधिकांश में काशी के घर के अतिरिक्त वल्लभकुल के कोई भी गोस्वामी बालक स्थायी रूप से नहीं विराजते हैं। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने श्रीगोवर्धनधरण, श्रीश्रीनाथजी की सेवा अपने जीवन काल में तो की ही है परन्तु उन्होंने श्रीमुकुन्दरायजी को जीवनभर अपने साथ पधराये रखा है, तथा प्रतिदिन जीवनपर्यन्त श्रीमुकुन्दरायजी के सान्निध्य, संस्पर्श एवं सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया है। इस दृष्टि से भी श्रीमुकुन्दरायंजी का महत्व श्रीश्रीनाथजी से कम वैष्णव समाज के लिए नहीं है। श्रीयमुनाष्टक में भी श्रीआचार्यचरण ने श्रीमुकुन्दरायजी का तीन-तीन बार मुकुन्दरतिवर्धिनी, मुररिपो मुकुन्दप्रिये तथा भवति वै मुकुन्दे रतिः आदि शब्दों से स्तवन किया है। जिससे श्रीमुकुन्दरायजी का महत्त्व स्वयं प्रतिपादित है। श्रीगिरिधरजी महाराज का प्रागट्य श्रीयदुनाथजी का था। तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज जिन्होंने आपश्री को श्रीमुकुन्दरायजी जैसी निधि प्रदान की थी, स्वयं अपने मुख से आज्ञा की कि **आप स्वयं श्रीयंदुनाथजी के अवतार हो**। आप अपने हिस्से में श्रीमुकुन्दरायजी को बिना लिए नहीं छोड़ेंगे। तत्कालीन समस्त गोस्वामी बालकों में केवल श्री गिरिधरजी महाराज का ही यह परम प्रताप था कि मिती आश्विन शुक्ल द्वितीया सं० १८८० को तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज ने यह लिखित अधिकार दिया कि आपके षष्ठगृह काशी के जो भी टिकैत श्रीजी द्वार में पधारें तो श्रीनवनीतप्रियाजी का वारा का शृंगार एवं श्रीजी की यदुनाथजी की आड़ी की हटरी की आरती उन्हें अवश्य मिलेगी। मि० आश्विन शुक्ल षष्ठी सं० १८८० को तिलकायितश्री ने अपने हस्ताक्षर एवं मुहरपूर्वक यह भी लिखित रूप से दिया है कि श्रीमुकुन्दरायजी को हम न रहे तो हमारे उत्तराधिकारी आपको अवश्य पधरावेंगे। तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज तथा उनकी श्रीबहूजी श्रीमहालक्ष्मी बहूजी ने श्रीगिरिधरजी महाराज से ही गोपालमन्त्र की दीक्षा ली थी। श्रीगिरिधरजी महाराज के पूर्व श्रीजीद्वार में सिर्फ छःपालकी पधारती थी। षष्ठगृह की पालकी एवं आरती का प्रकरण ही नहीं था। आपने बड़े प्रयत्नपूर्वक षष्ठगृह काशी की तरफ से षष्ठगृह की पालकी एवं आरती का अधिकार प्राप्त किया। श्रीगिरिधरजी महाराज को श्रीतिलकायितश्री के यहाँ से श्रीमुकुन्दरायजी के साथ ही साथ श्रीनाथजी की ध्वजा श्रीसुदर्शनजी एवं श्रीवेणुजी एवं श्रीआचार्य चरण के हस्ताक्षर भी प्राप्त हुए थे जिनमें श्रीसुदर्शनजी एवं श्रीध्वजाजी तो मन्दिर के शिखर पर विराजित है जिनके दर्शन एवं सेवा का सौभाग्य नित्य

निरन्तर वैष्णवजनों को अविरल रूप से प्राप्त हो रहा है। श्रीवेणुजी नित्य श्रीमुकुन्दप्रभु के साथ में विराजित हैं एवं महाप्रभु के हस्ताक्षर प्रभु के सिंहासन के बगल में रजत पेटिका में विराजमान हैं। वस्तुतः श्रीगिरिधरजी महाराज का काल षष्ठपीठ काशी के लिए चरमोत्कर्ष का समय था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने श्रीगिरिधरजी महाराज के विषय में उत्तरार्ध भक्तमाल में निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं।

श्रीगिरधर गुरु सेइकै घर सेवा पधराई।
तारे निज कुल जीव सब हरिपद भक्ति दृढाईः।
बालकपन में खेलत ही पाषान तिरायो।
वादी दच्छिन जीति, पन्थ निज सुदृढ़दृढायो।
श्रीमुकुन्द भवधुन्धहरण काशी पधरायो।
थापी कुलमरजादा, अनुभव प्रगट दिखायो॥
पूरे करि ग्रन्थ अनेक पुनि, आपहु बहु बिरचे नये।
लखि कठिनकाल फिर आपुही,
आचारज गिरधर भये॥

इस प्रकार श्रीगिरिधरजी महाराज की अनेकानेक लीलाएं एवं चरित्र हैं। उनका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है।

श्रीगिरिधरजी महाराज की तीन बहूजी थीं उनको दो बेटियाँ हुईं जिनमें एक पुत्री को प्रदेश भ्रमण करते समय सिंह उठा ले गया था। इनकी दूसरी बेटीजी श्रीश्यामा बेटीजी षष्ठपीठ की उत्तराधिकारिणी हुई जो अत्यन्त प्रतापी एवं विदुषी एवं कुशल प्रशासक थी। श्रीश्यामाबेटीजी ने अनेक वर्षों तक षष्ठपीठकाशी की गतिविधियों का बड़ी कुशलतापूर्वक संचालन किया। श्रीश्यामाबेटीजी की तीन लालियाँ थीं सबसे छोटी लाली का विवाह श्रीयदुनाथजी के ही वंशज श्रीकल्याणरायजी से हुआ था जिनको तीन बालक श्री गोपाललालजी, श्रीजीवनलालजी एवं श्रीबालकृष्णजी हुए। श्रीगोपाललालजी तो मथुरा गृह के अधिपति हुए। श्रीबालकृष्णजी तृतीय गृह काँकरोली में गोद गये। श्रीगिरिधरजीमहाराज को कोई बालक न होने से श्रीश्यामाबेटीजी ने अपने दौहित्र श्रीजीवनलालजी महाराज को षष्ठगृह की प्रथम परम्परा से षष्ठपीठ काशी के आचार्य पद पर तिलक करके अभिषिक्त किया। तत्पूर्व सं० १९२९ में श्रीमुकुन्दरायजी के छप्पनभोग का महान् आयोजन किया जिसमें उन्होंने अन्यान्य अनेकों वृहद् मनोरथों का भी बड़े उत्साह के साथ आयोजन किया। श्रीश्यामाबेटीजी कृत छप्पनभोग के विषय में श्रीगिरधरलालजी के वचनामृत में निम्न उल्लेख है।

''और काशी में श्रीगिरधरजी की बेटीजी श्रीश्यामा बेटीजी ने श्रीमुकुन्दरायजी को छप्पनभोग कियो सो तामे सब उत्सव बरस दिनों के भये सो तामे श्रीगोपाललालजी, श्रीमुकुन्दरायजी भेले विराजे और भेले सामग्री अरोगे। ता समय बाहिर की तैयारी सब लाला किशनजी ने करी। जो लौकिक को तथा अलौकिक को आनन्द भारी भयो सो जाति को समुदाय भारी भयो जो आछो भयो रोशनी बोहोत सुन्दर भई और ताही समय बाबा जीवनलाल के जनेऊ को आनन्द आछो भयो, या मनोरथ के दोहा कवित्त छन्द नारायण तथा लाला किशनजी ने किये हैं। सो यह मनोर्थ सं० १९२९ के चैत्र मास में भयो।''

श्री श्यामा बेटीजी के विषय में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उत्तरार्ध भक्तमाल में कहते हैं।

श्रीगिरधर की सुता सतोगुन मय सब अंगा।
हरि सेवा में चतुर पतित पावन जिमि गंगा॥
षटरितु छप्पन भोग मनोरथ करि मन भायो।
वृन्दावन को अनुभव काशी प्रगटि दिखायो॥
थिर थापी करि सब रीति निज,
सुजस दशहु दिशि में छयो।
वारानसि प्रगट प्रभाव,
श्रीश्यामा बेटीजी को भयो॥

षष्ठपीठ काशी के आचार्य श्रीजीवनलालजी महाराज का प्रागट्य मि० ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा सं० १९२३ को काशी में हुआ था। आपश्री ने श्रीपुरुषोत्तमजी ख्यालवाले से दीक्षा प्राप्त की थी। आपके समय में भी गोपालमन्दिर पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का प्रमुख आध्यात्मिक आकर्षण का केन्द्र बना रहा। आपका स्वरूप इतना आकर्षक एवं प्रभावशाली था कि जो भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में आता था, आपके दर्शन मात्र से ही प्रभावित होकर विनयावनत हो जाता था। श्रीजीवनलालजी महाराज के समय में काशीराज श्रीईश्वरीप्रसादनारायणसिंह के साथ इतना प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया था कि श्रीईश्वरीप्रसादनारायणसिंह जी स्वयं गोपालमन्दिर पधारते थे जिसमें से एक अवसर का चित्र महाराजश्री के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है। आपश्री का लीला प्रवेश वि० सं० १९६० की वैसाख कृष्ण एकादशी को हुआ। आपको चार लालजी (१) श्रीगिरिधरलालजी (जन्म मि० माघ शुक्ल पूर्णिमा सं० १९५३) (२) श्री राजीव लोचनजी (जन्म मि० चैत्र शुक्ल द्वादशी सं० १९५४) में (३) श्रीलालजी (जन्म सं० १९५६) (४) श्री मुरलीधरलालजी (श्रीत्रिलोकीभूषणजी) (जन्म मि० चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सं० १९६१) प्रगट हुए तथा दो बेटियाँ श्रीश्यामप्रिया बेटीजी तथा श्रीचन्द्रप्रिया बेटीजी हुईं। आपके द्वितीय एवं तृतीय बालक अत्यन्त अल्प आयु में लीला प्रवेश किये। प्रथम श्रीगिरिधरलालजी महाराज बड़े ही प्रतापी एवं रसिक थे। आपश्री यद्यपि बहुत कम समय तक भूतल पर विराजे लेकिन आपने अपनी विद्वत्ता, व्यवहार कुशलता एवं मृदुभाषिता से काशी के समस्त वैष्णव समाज को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। श्रीगिरिधरलालजी महाराज के समय से ही श्रीवल्लभजयन्ती का आयोजन हुआ करता था जिसका वि० सं० १९६८ का एक चित्र पूज्य महाराजश्री के व्यक्तिगत संकलन में भी उपलब्ध है। आपश्री ने श्रीमुकुन्दप्रभु के विरह में व्याकुल होकर अनेक पदों की रचनायें भी की थी जिनमें दो पद जो उपलब्ध हुए हैं उनका उल्लेख किया जाता है।

(१)

कहा री करौं मेरो मुकुन्द रिसायो।
मैं मन्दभागिन मरम न जान्यो
मनमोहन सो मन नही मान्यो।
देखो सखी सब अवगुण मेरे
ताते पिया परदेश छायो।

प्रीतरीति वश भयो है साँवरो
धन्य वे सुहागिन जिन वे रमायो ।

धिक ये तनमन धिक ये जीवन
श्यामसुन्दर मेरे महल न आयो ।

धिक ये जन्म दियो मेरी मैया
जन्मत ही विष क्यों नहीं प्यायो ।

देखो सखी अवस्था या तन की
मन ही मन चकृत भरमायो ।

गिरधर कहे प्रभु वेग मिलोगे
नातर यह तन जात जरायो ।

(२)

नैनन ही निरखत श्रीमुकुन्द मुसकन
घायल सी मैं होय रही री ।

दिन नहि चैन रैन नहिं निद्रा
कासू कँहू दुख जाय दही री ॥

निश दिन भूख प्यास नहिं लागत
इन चरणों की मैं चेरी मई री ।

गिरधर कहे प्रभु प्राण प्यारे
जित देखो तित मुकुन्द भई री ॥

आपश्री के महान् रसमय एवं कवित्व शक्ति की एक अत्यन्त छोटी सी झलक उपरोक्त दोनों पदों से प्राप्त होती है एवं इन दो पदों की तुलना श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसाईंजी कृत नव विज्ञप्तियाँ की भावनाओं से की जा सकती है । अगर आपश्री कुछ और वर्षों तक भूतल पर विराजते तो वैष्णव समाज को पुष्टिमार्गीय साहित्य का अत्यन्त लाभ प्राप्त होता इसमें कोई सन्देह नहीं है । आप श्री का लीला प्रवेश मिती ज्येष्ट कृष्ण द्वितीया वि० सं० १९८४ को लगभग हुआ । आपश्री की बहूजी महाराज काफी समय तक विराजीं । पूज्य महाराजश्री के लीला प्रवेश के कुछ वर्षों पूर्व ही आपश्री ने नित्य लीला में प्रवेश किया और उल्लेखनीय है कि उनका संस्कार पूज्य महाराजश्री के करकमलों द्वारा ही काशी के मणिकर्णिका क्षेत्र में हुआ था । श्रीगिरिधरलालजी महाराज को दो बालक हुए लेकिन दोनों बालक अत्यन्त अल्पवय में ही लीला में पधारे ।

श्रीजीवनलालजी महाराज के चतुर्थ बालक श्रीमुरलीधरलालजी महाराज का प्रागट्य मि० चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सं० १९६१ को हुआ और लीला प्रवेश सं० २०३९ भाद्रपद कृष्ण एकादशी को हुआ । आपश्री का पूर्ण जीवन चरित्र लेखक द्वारा इसी ग्रन्थ में अलग से विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है । आपश्री ने ७८ वर्ष की अवस्था तक षष्ठपीठ काशी के आचार्य के रूप में षष्ठपीठ की पुष्टिमार्गीय सेवा परम्परा सिद्धान्तों एवं सेवा

प्रणालिका के साथ ही साथ इस पीठ की समस्त गतिविधियों का कुशलतापूर्वक संचालन किया। आपश्री की सबसे बड़ी विशेषता थी कि जो भी व्यक्ति आपके सम्पर्क में आता था वह यही समझता था कि आपश्री की कृपा सबसे अधिक उस पर ही है। काशी में आज भी आपके द्वारा दीक्षित वैष्णवजन एवं आपके सम्पर्क में आये हुए असंख्य व्यक्ति विद्यमान है जिनके द्वारा आपके जीवन, आचरण एवं उपदेशों की चर्चायें भगवद्चरित्रों की तरह होती रहती हैं। जब भी आपके विषय में चर्चा छिड़ जाती है तो प्रसंग पर प्रसंग निकलते चले आते हैं, व समय का भान किञ्चित भी नहीं रह जाता।

श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने बाल्यकाल से ही अपनी अद्भूत प्रतिभा से समस्त पुष्टिमार्ग के ग्रन्थों, संस्कृत के अन्यान्य ग्रन्थों, कीर्तन आदि की अल्प समय में ही शिक्षा प्राप्त कर अत्यन्त दक्षता प्राप्त कर ली थी। यथासमय आपका यज्ञोपवीत सम्पन्न हुआ, तत्पश्चात् वि०सं० १९७८ के लगभग कामवन के पंचम पीठाधीश्वर श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी महाराज की दौहित्री श्रीकुसुमसुन्दरीजी से आपका विवाह सम्पन्न हुआ जो विवाह के पश्चात् श्रीप्रेमप्रियाबहूजी के नाम से प्रसिद्ध हुईं। वे ललित कलाओं में सम्प्रदाय की सेवाप्रणाली एवं तत्सम्बन्धी अनेकों प्रकार की रचनाओं में अत्यन्त दक्ष थीं। उनके हाथ से बनी पिछवाई, वस्त्र एवं आभरण इत्यादि आज तक श्रीमुकुन्दरायजी, श्रीगोपाललालजी एवं श्रीवल्लभगीताकृष्णभवन में विराजित श्रीमदनमोहनलालजी की सेवा में अंगीकार हो रहे हैं। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने अपने प्रारम्भिक काल में प्राय: देश के सभी भागों में प्रवास करके सम्प्रदाय के प्रचार प्रसार में अद्भुत योगदान किया एवं सहस्त्रों जीवों को दीक्षित किया। काशी के वैष्णव समाज, विद्वत्समाज एवं सभी सम्भ्रान्त परिवारों में यहाँ तक कि काशीनरेश पर भी आपका बहुत प्रभाव था एवं सभी से अत्यन्त आत्मीय सम्बन्ध रहा। वि० सं० १९८५ में काशी में बहुत बड़ा ब्राह्मण महासम्मेलन हुआ। जिसमें श्रीशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, नाथद्वारा व काँकरोली एवं मथुरा के गोस्वामी बालकों तथा सम्पूर्ण देश के विद्वानों ने भाग लिया। उस सम्मेलन में आपने संस्कृत में अपने ओजस्वी वक्तव्य द्वारा विद्वानों को चमत्कृत कर दिया था। काशी की समस्त धार्मिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में आपश्री प्राय: पधारते रहते थे एवं अपने सदुपदेशों से जन-जन को रसप्लावित करते रहते थे। आज से ४१ वर्ष पूर्व काशी की पुष्टिमार्गीय सभा के द्वारा १५ अगस्त सन् १९५७ को मोतीझील में विशाल पंडित सम्मेलन का आयोजन हुआ था जिसमें आपश्री ने अपनी विद्वत्तापूर्ण, सरस एवं सारगर्भित प्रवचन से वहाँ पर उपस्थित समस्त विद्वत्जनों एवं उपस्थित समस्त लोगों को मुग्ध कर दिया था। साम्प्रदायिक विषयों में आपकी अगाध जानकारी से देश के समस्त गोस्वामी बालक आपसे प्रभावित थे एवं प्रेरणा प्राप्त करते थे, अपनी शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया करते थे।

वि० सं० २०२३ श्रावण शुक्ल नवमी को श्रीनाथद्वारा में सात स्वरूपोत्सव छप्पनभोग का महान् आयोजन सम्पन्न हुआ। तत्कालीन श्रीनाथद्वारा के तिलकायंत श्रीगोविन्दलालजी महाराज का निमन्त्रण प्राप्त होने पर तथा षष्ठगृह काशी को जो श्रीनाथद्वारा से षष्ठपीठ का अधिकार प्राप्त है तदनुसार श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने षष्ठनिधि स्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी को बड़े धूमधाम से असंख्य वैष्णवों के साथ श्रीनाथद्वारा उपयुक्त अवसर पर पधराया जिसका विस्तार से उल्लेख इस ग्रन्थ में प्रकाशित आपश्री के जीवन चरित्र वाले लेख में तथा श्री गो० मुरलीधरलालजी महाराज के सान्निध्य में हुए विशिष्ट मनोरथ एवं अन्य विशिष्ट मनोरथ वाले लेख में किया हुआ है। श्रीमुकुन्दरायजी के काशी पधारने के बाद पुन: श्रीजी द्वार पधारने का यह द्वितीय अवसर था। इसके पूर्व श्रीगिरिधरजी महाराज ने ही वि० सं० १८९६ में षष्ठ निधि श्री मुकुन्दरायजी को श्रीनाथद्वारा पधराकर चार स्वरूप का मनोरथ किया था।

आपश्री ने अपने जीवनकाल में अनेकानेक संस्थाओं की स्थापना वैष्णवजनों को प्रेरित करके किया। वि० सं० २०१७ में आपने वैष्णव समाज के द्वारा साम्प्रदायिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए श्रीमद्वल्लभसिद्धान्त सेवा संस्थान की स्थापना किया। संस्था द्वारा श्रीगोपालमन्दिर के सामने स्थित प्राचीन हवेली जो श्रीरणछोड़जी के मन्दिर के नाम से विख्यात थी, क्रय करके उसी में कार्य प्रारम्भ कराया गया। तब से अनवरत संस्था पूज्य महाराजश्री से प्रेरणा एवं आशीर्वाद प्राप्त कर सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार एवं सम्वर्धन में गतिशील है। भवन में श्रीमहाप्रभुजी की सेवा निरन्तर होती है एवं सत्संग भी नियमित रूप से होता है। पूज्य महाराजश्री के समय में ही संस्थान ने संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रयत्न करके वल्लभचेयर की स्थापना कराई, जहाँ वल्लभवेदान्त की शिक्षा प्रदान करके वल्लभ वेदान्त के आचार्य की उपाधि प्रदान की जाती है। भवन में संगीत विद्यालय एवं पुस्तकालय भी नियमित रूप से चलता है। आपश्री आजीवन संस्था के धार्मिक प्रधान के पद पर रहे।

आपश्री की प्रेरणा से ही वैष्णव युवकों द्वारा श्रीवल्लभ युवक परिषद् की स्थापना ई० सन् १९७४ में हुई परिषद् स्थापना काल से ही आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में प्रगति के पथ पर अग्रसर है। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज की दो सुपुत्रियाँ हुईं जिनमें श्रीकृष्णप्रिया बेटीजी का प्रागट्य सं० १९८० की आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को हुआ। जिस प्रकार गुरु पूर्णिमा के दिन आपश्री का प्रकट्य हुआ उसी प्रकार वें साक्षात् गुरु स्वरूपा थीं। उन्होंने अपनी अध्ययन-शीलता, विद्वत्ता एवं सेवापरायणता के बल पर काशी के समस्त वैष्णव समाज को मुग्ध कर दिया था। वे प्रकाण्ड विदुषी एवं सेवा भावी थीं। उन्होंने सं० २००८ में श्रीशुद्धाद्वैत जप-यज्ञ समिति की स्थापना की थी जिसके माध्यम से उन्होंने सम्पूर्ण वैष्णव समाज विशेषकर महिला समाज में अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न किया एवं सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार का अद्भुत प्रयास किया। महिला समाज में उन्होंने पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों का, आचार्यचरण के ग्रन्थों का, भगवन्नाम के गुणगान इत्यादि के प्रचार का व्यापक रूप से कार्य किया। आपश्री ने स्वयं कई लेखों एवं कीर्तनों की रचनाएँ करके पुष्टिमार्ग के साहित्य की भी अद्‌भूत सेवा किया। पृथ्वी पर इतनी प्रतिभाशाली विभूतियाँ कम समय ही विराज पाती हैं। जैसा कि अनेकों दिव्य विभूतियों के साथ होता है। श्रीश्रीकृष्ण प्रिया बेटीजी ने भी युवावस्था में ही वि० सं० २०१५ सन् १९५८ में लीला विस्तार किया। आपश्री के जीवनकाल में ही पूज्य महाराजश्री की द्वितीय पुत्री श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी आपकी समस्त गतिविधियों में उनकी सहयोगी रही जिससे उनके पश्चात् समिति के कार्यों में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी का जन्म मि० आश्विन शुक्ल पूर्णिमा वि० सं० १९८९ (शरदपूर्णिमा) को हुआ वे अपनी बड़ी बहन की सुयोग्य उत्तराधिकारिणी थी उन्होंने श्रीशुद्धाद्वैत जप-यज्ञ समिति के कार्यों एवं ठाकुर श्रीमदनमोहनलालजी की सेवा प्रणालिका में बहुत कुछ विस्तार किया एवं अपनी अद्भुत प्रतिभा से वैष्णव समाज एवं महिला समाज की अतुलनीय सेवा किया। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि षष्ठपीठ की गौरवमयी परम्परा को श्रीकृष्ण प्रिया बेटीजी एवं श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी ने अपने प्रयासों से और भी अधिक गौरवान्वित किया और अपने पूर्वजों के यश एवं कीर्ति का अत्यधिक विस्तार किया। लगभग चालीस वर्षों से श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी श्रीशुद्धाद्वैत जप-यज्ञ समिति के समस्त कार्यों एवं ठाकुर श्रीमदनमोहनलालजी की सेवा का निर्वाह अत्यन्त मनोयोगपूर्वक कर रही हैं। भगवत् लीलावश सं० १९८२ में भाद्रपद कृष्ण एकादशी को षष्ठपीठाधीश्वर गो० १०८ श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के लीला प्रवेश के पश्चात् षष्ठपीठ श्रीगोपालमन्दिर की सम्पूर्ण जिम्मेदारी श्रीप्रेमप्रिया बहूजी महाराज के ऊपर आ गयी। आपश्री ने गो० श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी को इस उत्तरदायित्व को वहन करने की आज्ञा दी तब आपने बड़े ही धैर्य एवं कुशलता का परिचय देते हुए अपनी

जिम्मेदारी का अद्भुत रूप से निर्वाह किया एवं बड़े दक्षतापूर्वक षष्ठपीठ की समस्त गतिविधियों का अपने मातृचरण के संरक्षण में संचालन किया। षष्ठगृह के लिए यह बड़े ही गौरव का विषय है कि इस गृह में श्रीश्यामा बेटीजी, श्रीकृष्णप्रिया बेटीजी एवं श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी जैसी महान् विदुषी एवं कार्यकुशल बेटियाँ प्रगट हुईं जिन्होंने इस पीठ की गौरवशाली परम्परा को उज्ज्वल किया। गो० श्री प्रेमप्रिया बहुजी महाराज के जीवन की एक बहुत उपलब्धि रही कि आपने सम्वत् २०४१ की कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को लगभग ११३ वर्षों के अन्तराल के पश्चात् श्रीमुकुन्दरायजी एवं श्रीगोपाललालजी के सम्मुख छप्पनभोग का आयोजन बड़े ही वृहत रूप में किया। लगभग दस दिनों तक बहुत बड़े-बड़े मनोरथों का आयोजन हुआ। देश के सभी भागों से विशेषकर पूर्वी उत्तरप्रदेश के लाखों वैष्णवों ने भाग लेकर सेवा एवं विविध मनोरथों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया। सप्तमपीठाधीश्वर गो० श्रीघनश्यामलालजी महाराज का इस आयोजन की व्यवस्था में बड़ा ही सक्रिय सहयोग रहा। उन्होंने इस आयोजन में बहुत पहले से पधार कर पूरे दिन तक विराज कर समस्त सामग्रियों का रजिस्टर तैयार कराया तथा अन्य सभी व्यवस्थाओं में पूर्ण रूप से जो सहयोग दिया वह भविष्य में कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। इस अवसर पर पञ्चम पीठ से भी गोस्वामी बालक पधारे थे।

उपर्युक्त आयोजन के पश्चात् अब गो० श्रीप्रेमप्रिया बहुजी महाराज के ऊपर एक बड़ा ही महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व आ गया था कि षष्ठपीठ काशी की गादी पर कोई सुयोग्य गोस्वामी बालक को तिलक करके आसीन किया जाय। इस हेतु चतुर्दिक विचार-विमर्श करके वि० सं० २०४४ की माघ सुदी ४ श्रीमुकुन्दरायजी के पाटोत्सव के दिन बड़ौदा के श्रीमथुरेश्वरजी महाराज के पुत्र गो० श्रीयोगेश्वरजी का तिलक होना निश्चित हुआ था। परन्तु अचानक श्रीप्रेमप्रिया बहूजी का तीन दिन पहले ही माघ सुदी १ को लीला प्रवेश हो गया जिससे कि वह उपयुक्त कार्यक्रम निश्चित तिथि को न होकर और बाद में अम्माजी के ही आज्ञानुसार गो० श्रीशरद्वल्लभाबेटीजी ने वि० सं० २०४५ की वैसाख मास की दशमी दिनांक १२ अप्रैल सन् १९८८ को गो० श्रीयोगेश्वरजी का तिलक किया। श्रीयोगेश्वरजी महाराज लगभग ३ वर्ष ५ महीना ही विराजे। तिलक के पश्चात् योगेश्वर बावा का मन काशी में नहीं लगा और जब भी यहाँ से वे बड़ौदा पधारते थे तो परिवार छोड़कर आने की उनकी इच्छा नहीं होती थी। अप्रैल सन् १९९० में श्री शरद्वल्लभा बेटीजी ने काशी से श्रीराधेकृष्ण अग्रवाल एवं श्रीबलद्देवदास गुप्ता को योगेश्वर बावा को पधराने के लिए बड़ौदा भेजा। दोनों वैष्णवों ने बड़ौदा में एवं बम्बई में विराज रहे श्रीमथुरेश्वरजी महाराज एवं योगेश्वर बावा से बात करके उनको काशी पधारने के लिए बहुत आग्रह किया, यहाँ तक कि बम्बई से काशी के लिए विमान में स्थान भी आरक्षित करा लिया था। लेकिन श्रीयोगेश्वर बावा इतना व्यग्र हो गये थे कि श्रीमथुरेश्वरजी महाराज ने दोनों वैष्णवों से कहा कि इस परिस्थिति में इनको पधराना उचित नहीं होगा। फिर ये लोग काशी वापस आ गये। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में काशी से श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी, श्रीराधेकृष्ण अग्रवाल श्रीगणेशदास गुप्ता एडवोकेट व श्रीगोपालदास गुप्त एडवोकेट बम्बई गये वहाँ पर १२ सितम्बर सन् १९९१ को श्रीयोगेश्वरजी ने अपना त्यागपत्र लिखकर एवं उसकी रजिस्ट्री कराके षष्ठपीठ की गादी से सदा सदा के लिये सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

नन्दनन्दन की लीलाओं का कोई पार नहीं है। जिनसे सेवा लेना चाहते हैं उसी से लेते हैं। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने अपने जीवनकाल में ही जामनगर के महाप्रतापी गोस्वामी श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज से अनुरोध किया था कि अपने ६ बालकों में से किसी एक को षष्ठपीठ की गादी के उत्तराधिकारी के रूप में प्रदान कर दें। यह एक सुयोग है कि वि० सं० २०२३ में जब श्रीमुकुन्दरायजी तिलकायित श्रीगोविन्दलालजी महाराज कृत

छप्पन भोग में नाथद्वारा पधारे थे तो श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने भगवत् इच्छावश अकस्मात् वर्तमान् षष्ठपीठाधीश्वर श्रीश्याममनोहरजी महाराज को अपने श्रीहस्त से पकड़कर श्रीमुकुन्दरायजी के चरणस्पर्श कराया था जबकि उस समय श्रीश्याममनोहरजी महाराज की काशी पधारने एवं यहाँ की गादी पर तिलक होने की कोई कल्पना भी नहीं थी। तत्पश्चात् में जामनगर के श्री व्रजभूषण लालजी द्वारा व्रज चौरासी कोस की यात्रा का आयोजन हुआ तो श्री मुरलीधर लालजी महाराज कुनवारे पर जतीपुरा पधारे और उनसे आग्रह किया कि अपने ६ बालकों में किसी एक को काशी की गादी के लिए प्रदान कर दें। तब श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज ने कहा कि हमारे छहो पुत्र यहाँ उपस्थित हैं, आप किसी एक की आज्ञा करें तब श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने श्रीगिरिराजजी के सम्मुख ही श्रीश्याममनोहरजी महाराज के लिए आज्ञा किया। कामवन में ब्रजयात्रा पहुँचने पर महाराजश्री ने पुन: उनसे अनुरोध किया। पूज्यपाद महाराजश्री के साथ गये श्रीबालकृष्ण जोशी द्वारा जन्मपत्रिका मिलाने पर सर्वाधिक अनुकूल जन्मपत्रिका वर्तमान पीठाधीश्वर श्रीश्याममनोहरजी महाराज की ही निकली। तब पूज्यपाद महाराजश्री ने आज्ञा किया कि हम आपको श्रीमुकुन्दरायजी के पाटोत्सव मि० माघ शुक्ल चतुर्थी के पूर्व बुलावेंगे एवं पाटोत्सव के दिन तिलक का कार्यक्रम निश्चित है परन्तु किसी कारणवश भगवत् इच्छा से यह कार्य पाटोत्सव पर सम्पन्न नहीं हो सका। अत: पूज्यपाद महाराजश्री ने लीला प्रवेश के अत्यन्त निकट पूर्व गोपाल मन्दिर के अधिकारी श्रीशिवबलजी द्वारा जामनगर आपको बुलाने के लिए पत्र भी लिखवाया था तथा तार भी करवाया था। लेकिन जब श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज, श्रीश्याममनोहरलालजी महाराज को साथ में लिवाकर काशी पधारे तो महाराजश्री का नित्य लीला प्रवेश हो चुका था। उस समय की शोकमय परिस्थिति में इस विषय में कोई बात सम्भव न हो सकी। एकाएक अस्वस्थ एवं लीला विस्तार हो जाने के कारण पूज्याद महाराजश्री की यह अभिलाषा उनके जीवनकाल में पूर्ण न हो सकी थी। सत्य संकल्प श्रीमुरलीधरलालजी की अभिलाषा अपूर्ण कैसे रहती। श्रीमुकुन्दगोपाल प्रभु को तो उनके मनोरथ की पूर्ति करनी ही थी। श्रीयोगेश्वरबाबा के त्यागपत्र के पश्चात् श्रीशरदवल्लभा बेटीजी महाराज ने जामनगर के श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज के प्रथम पुत्र श्रीबिट्ठलनाथजी महाराज से जब सम्पर्क किया तो उन्होंने सहर्ष अपने चतुर्थ भ्राता महान् यशस्वी विद्वान् एवं सेवा परायण गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी महाराज को षष्ठपीठ की गादी के लिए प्रदान् की स्वीकृति दे दी।

वैष्णव समाज में हर्ष की लहर फैल गई। वि० सं० २०४८ की माघ शुक्ल चतुर्थी दिनांक ८ फरवरी सन् १९९२ को श्रीमुकन्दरायजी के पाटोत्सव के महान् पावन शुभ अवसर पर शुभ मुहूर्त व शुभ नक्षत्र में श्रीशरदंवल्लभा बेटीजी महाराज ने गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी महाराज पुत्र गोस्वामी श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज को श्रीमुकुन्दरायजी, श्रीगोपाललालजी एवं श्रीगिरधरजी महाराज की गादी एवं श्रीमुरलीधरलालजी महाराज की चरण पादुका के सम्मुख तिलक करके षष्ठगृह पीठ के आचार्य पद पर आसीन किया। काशी का समस्त वैष्णव समाज इस आनन्द एवं उल्लास के सुअवसर पर उपस्थित था। तब से गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी महाराज स्थायी रूप से षष्ठपीठ की इस महान् गादी पर आसीन हुए एवं बड़े ही कुशलतापूर्वक इस पीठ की गतिविधियों का संचालन कर रहे हैं। आपने काशी के वैष्णव समाज के समस्त वर्गों, आबाल, वृद्ध वनिताओं से सामन्जस्य स्थापित करते हुए सम्पूर्ण वैष्णव समाज में नवीन आशाओं, उल्लास एवं उत्साह का संचार किया है। आपश्री की सबसे बड़ी विशेषता है कि वैष्णवों के प्रत्येक वर्ग को सामन्जस्य स्थापित करते हुए साथ में ले चलते हैं। विचारों एवं कार्यों में मतभेद होने पर भी आपश्री अपने व्यक्तित्व एवं वचनों से सामने वाले को इतना प्रभावित कर लेते हैं कि वह स्वयं नतमस्तक हो जाता है। आपकी बहूजी सौ. श्रीराधिका बहूजी महाराज भी अत्यन्त मिलनसार सेवापरायण एवं सामग्री तथा सम्प्रदाय की साज-सज्जा आदि में अत्यन्त निष्णात है।

श्रीश्याममनोहरजी महाराज ने मिति चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सं० २०५१ (सन् १९९४) को काशी के वैष्णव समाज के सहयोग से काशी तथा सम्पूर्ण देश-प्रदेश में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों एवं आदर्शों के प्रचार के लिए सम्प्रदाय की गतिविधियों को सरलतापूर्वक संचालन करने के उद्देश्य से श्रीमुकुन्दगोपाल सेवा संस्थान की स्थापना किया। विगत वर्षों से संस्थान श्रीवल्लभदर्शन के प्रचार-प्रसार में निष्ठापूर्वक लगा हुआ है एवं श्रीमदाचार्यचरण की बैठकों के उत्थान के प्रथम चरण में श्रीचरणाटधाम में श्रीगुसाईं श्रीविठ्ठलनाथजी की प्राकट्य स्थली पर स्थित बैठक के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ कर चुका है। संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष श्रीमहाप्रभुजी, गुसाईं श्रीविठ्ठलनाथजी एवं गो० १०८ श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के प्रागट्य उत्सव के अवसर पर कई दिनों तक भव्य रूप से आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त भी वर्ष के सभी उत्सवों तथा अवसरों पर बड़े उत्साहपूर्वक समारोह का आयोजन किया जाता है जिसमें पूज्य महाराजश्री के सन्निध्य में काशी के विद्वानों एवं वैष्णवों के द्वारा अपने-अपने विचार व्यक्त किये जाते हैं। समयानुसार कीर्तन एवं बधाई का आयोजन होता रहता है। प्रत्येक एकादशी पर आपश्री के द्वारा वैष्णव समाज के मध्य नियमित रूप से प्रवचन का कार्यक्रम होता है। श्री आचार्यचरण एवं उनके वंशजों की बैठकों के जीर्णोद्धार व विस्तार के उद्देश्य की प्रथम शृंखला में पूज्यपाद श्री ने श्रीचरणाटधाम के लिए अखिल भारतीय जीर्णोद्धार समिति की स्थापना किया है। जिसमें देश के सभी भागों से वैष्णव जन मनोनीत किये गये हैं। चरणाटधाम में अतिथि गृह एवं बैठक के पुर्ननिर्माण का कार्य प्रारम्भ हो चुका है एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर है। षष्ठपीठ काशी के श्रीगोवर्धन जतीपुरा स्थित विशाल भूखण्ड पर भी निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए पूज्यपाद महाराजश्री द्वारा एक ट्रस्ट की स्थापना की गयी है जो वहाँ पर निर्माण कार्य प्रारम्भ करने की तैयारी में हैं। वहाँ पर भी एक सुव्यवस्थित अतिथिगृह सत्संग कक्ष तथा वहाँ पर स्थापित श्रीयदुनाथजी की बैठक के वृहद् रूप में निर्माण की योजना है। हमारे श्रीश्याममनोहरजी महाराज का स्वभाव एवं व्यवहार इतना सरल है कि काशी का सम्पूर्ण वैष्णव समाज ही नहीं बल्कि वैष्णव समाज के अतिरिक्त सम्पूर्ण जन-जन आपश्री से प्रभावित एवं आकर्षित है। आपश्री के लालजी श्रीप्रियेन्दु बावा (जन्म सं० २०४४ मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी) हैं जो आपश्री के साथ-साथ प्रभु की सेवा में पधारते रहते हैं। काशी का वैष्णव समाज जो लगभग चालीस वर्षों से प्रभु की सेवा में सपरिवार गोस्वामी बालकों के दर्शन के लिए लालायित था उसकी वर्षों पुरानी अभिलाषा आपके परिवार सहित सेवा में पधारने से परिपूर्ण हुई है। आपश्री की एक बेटीजी श्रीरूपमंजरी बेटीजी (प्राकट्य मि० आश्विन कृष्ण द्वितीय वि० सं० २०४८) हैं वे भी सेवा में जब पधारती हैं तो वैष्णव समाज दर्शन करके रस प्लावित हो जाता है। प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे श्रीश्याममनोहरजी महाराज श्रीप्रियेन्दु बावा एवं उनका सम्पूर्ण परिवार चिरंजीवी रहे एवं निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रंसर होता रहे तथा सम्पूर्ण देश-विदेश के वैष्णव समाज एवं जन-जन में देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति प्रकाशित होते रहें, यही अभिलाषा है।

षष्ठपीठ की इस परम पावन स्थली के लिए यह बड़े ही गौरव का विषय है कि श्रीमुकुन्दगोपाल प्रभु की यह लीला स्थली अत्यन्त प्राचीन स्थलों से परिवेष्टित है। मन्दिर नवकूपी तीर्थ परिसर में ही विद्यमान है जिसमें अत्यन्त पवित्र नौ कूप मौजूद हैं। मन्दिर के बगीचे के दक्षिण-पश्चिम के कोने पर गोस्वामी तुलसीदासजी एवं उनके सहोदर भ्राता श्रीनन्ददासजी की गुफा है जिसमें गोस्वामी तुलसीदासजी ने सोलहवीं शताब्दी में अपनी विनय पत्रिका ग्रन्थ की रचना किया था। अष्टछाप के महान् भगवदीय श्रीनन्ददासजी ने इसी स्थल पर विराजकर लगभग उसी समय अपने महान रसमय ग्रन्थ भ्रमरगीत की रचना की थी। मन्दिर का सिंहपौर बड़ा ही आकर्षक है। मन्दिर के पृष्ठ भाग में बड़ा ही रमणीक एवं विशाल बगीचा स्थित है। जिसमें किसी समय शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

श्रीगिरिधरजी महाराज की माताश्री अपने सेव्य स्वरूप श्रीगोपाललालजी को लाड़ लड़ाया करती थीं एवं एक सुन्दर गाड़ी में श्रीगोपाललालजी को घुमाया करती थीं। बगीचे के दक्षिण की ओर बड़ा ही भव्य शीशमहल है जिसमें बड़े दुर्लभ शीशे झाड़-फानुष इत्यादि स्थित है। बगीचे के उत्तर-पूर्व कोने में कमल तलैया स्थित है एवं उत्तर-पश्चिम की ओर श्रीमुरलीधरलालजी द्वारा स्थापित शिलाओं पर उत्कीर्ण ब्रज ८४ कोस का प्रतिरूप एक बारादरी में स्थापित है जिसकी वैष्णवजन नित्य नियमपूर्वक परिक्रमा किया करते हैं एवं श्रीगिरिराजजी तथा सभी व्रज के स्थलों के पूजन का सौभाग्य भी प्राप्त करते हैं। बगीचे के उत्तर पूर्व के कोने में एक अत्यन्त प्राचीन विष्णु स्वरूप (चतुर्भुज मूर्ति) स्थापित है। मन्दिर के उत्तर पूर्व अन्तिम सीमा में ही एक मन्दिर में श्रीबटुकभैरव की मूर्ति स्थापित है जो काशीखण्ड में वर्णित है। बटुक भैरव की सेवा-पूजा की व्यवस्था मन्दिर की ओर से ही होती है। मन्दिर के दक्षिण पूर्व में एक गौशाला का नवीन भवन श्रीश्याममनोहरजी महाराज के समय में निर्मित हुआ है जिसमें गायों की सेवा बडे सुचारु व सुन्दर रूप से होती है। सिंहपौर के दक्षिण पश्चिम की ओर श्रीगोपाललालजी का सर्वप्रथम स्थापित मन्दिर स्थित है जिसमें श्रीगोपाललालजी की सेवा होती थी। बाद में श्रीमुकुन्दरायजी के काशी पधारने पर प्राचीन मन्दिर के उत्तर की ओर नवीन मन्दिर निर्मित हुआ जिसमें श्रीमुकुन्दरायजी पधारे, बहुत वर्षों तक श्रीगोपाललालजी एवं श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा अलग-अलग चलती रही। कालान्तर में श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के समय में आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व श्रीमुकुन्दरायजी के चौक में ही श्रीगोपाललालजी श्रीमुकुन्दप्रभु के निज मन्दिर में उनके दाहिनी ओर विराजे जहाँ पर आज तक दोनों स्वरूपों की सेवा हो रही है। श्रीगोपाललालजी का चौक बड़ा होने से बड़े-बड़े उत्सवों एवं मनोरथों के आयोजन उसी चौक में होते हैं। श्रीमुकुन्दरायजी के मन्दिर के आगे के चौक में स्थित हाथी पोल पर दो विशाल हाथी बने हैं जिनकी शोभा दर्शनीय है। उसी चौक में तुलसी चौरा भी स्थित है जिसके पूर्व भाग में श्रीगोवर्धननाथजी का मन्दिर एवं श्रीजीवनजी श्रीगिरिधरजी की गादी एवं श्रीमुरलीधरजी महाराज की चरणपादुका की सेवा भी होती है, उसी कक्ष में वर्तमान में श्रीगोकुलनाथजी की वस्त्र सेवा एवं चरणपादुका भी विराजते हैं। गोवर्धन चौक में एक विशाल टीनशेड बना हुआ है जिसको मिलाकर पूरे चौक में सहस्त्रों वैष्णवजन बैठ सकते हैं। श्रीगोवर्धन चौक के इस प्रांगण में प्राय: बड़े-बड़े समारोहों का आयोजन होता रहता है। मन्दिर के पूर्वद्वार एवं उसके भी पूर्व की ओर विशाल द्वार के बीच में स्थित चौड़े गलियारे में मुकूट, शृंगार इत्यादि की दुकाने स्थित हैं। जन्माष्टमी, अन्नकूट के अवसरों पर इन उत्सवों में वैष्णवजन बड़ी संख्या में सेवा सम्बन्धी खरीददारी के लिए आते हैं।

षष्ठपीठ की व्यवस्था के अन्तर्गत श्रीमद्-वल्लभाचार्य की चौरासी बैठकों में दो अत्यन्त महत्वपूर्ण बैठक श्रीअड़ैल की बैठक एवं चुनार की बैठक है। यह बड़े गौरव का विषय है कि श्रीआचार्यचरण के दोनों बालकों का श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीगुसाईजी का प्रागट्य भी क्रमश: श्रीअड़ैल एवं चुनार की बैठक में ही हुआ था। श्रीगुसाईंजी के पुत्रों में श्रीघनश्यामजी के अतिरिक्त समस्त बालकों का प्रागट्य श्रीअड़ैल की बैठक में ही हुआ था। श्रीमदाचार्यचरण ने भी अपने गृहस्थ आश्रम का अधिकांश समय अड़ैल में ही व्यतीत किया था। पुष्टिमार्ग की महान् निधि श्रीनवनीतप्रियाजी भी बहुत वर्षों तक अडैल में विराजे थे। अड़ैल व चुनार की बैठकों के अतिरिक्त नाथद्वारा में श्रीजी के मन्दिर परिसर में ही प्रीतमपोली श्रीमुकुन्दरायजी का मन्दिर स्थित है। जहाँ पर कुछ समय तक काशी के गृह को प्राप्त होने के बाद श्रीमुकुन्दरायजी विराजे थे। इस मन्दिर के पुनर्निर्माण की योजना भी सम्प्रति विचाराधीन हैं। जतीपुरा में श्रीगिरिराज की तलहटी में ही मन्दिर का एक बहुत विशाल भूखण्ड स्थित है जिसमें स्थित श्रीयदुनाथजी की बैठक का जीर्णोद्धार सत्संग कक्ष एवं अतिथि भवन के निर्माण

की योजना बन चुकी है। अत्यन्त शीघ्र ही इस योजना के अनुसार कार्य प्रारम्भ होने की आशा है।

मन्दिर की सेवा व्यवस्था में षष्ठपीठ काशी की पारम्परिक व्यवस्था के अनुसार निज मन्दिर की प्रभु की सेवा नित्य सेवा एवं उत्सव की सेवा के लिए औदीच्य ब्राह्मण नियुक्त किये जाते हैं। सम्प्रदाय के प्राचीन इतिहास में उल्लेख है कि श्रीश्रीनाथजी के प्रागट्य के पश्चात् अनेक वर्षों तक बंगाली ब्राह्मण श्रीजी की सेवा करते थे। कालान्तर में उनके द्वारा आचार-विचार की शुद्धि एवं सम्प्रदाय की सेवा प्रणालिका का समुचित रूप से निर्वाह न होने पर श्रीजी के अधिकारी श्रीकृष्णदासजी ने उनको हटाकर साचोरा ब्राह्मणों को नियुक्त किया। कुछ समय पश्चात् श्रीगुसाईंजी द्वारा श्री की सेवा में औदीच्य ब्राह्मणों को भी नियुक्त किया गया। तब से अनवरत रूप से पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में साचोरा एवं औदीच्य ब्राह्मणों को नियुक्त किया जाता रहा। इसी परम्परा के अनुसार कालान्तर में श्रीगोपाललालजी के काशी पधारने पर भी इसी परम्परा का निर्वाह होता रहा। क़तिपय कारणों से षष्ठपीठ काशीगृह में साचोरा ब्राह्मणों को सेवा से वंचित कर दिया गया तब से अविरल रूप में यहाँ पर औदीच्य ब्राह्मणों द्वारा निरन्तर सेवा का क्रम चला आ रहा है। शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज द्वारा षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी जब काशी पधराये गये उस समय सिद्धपुर के पंडित जयरामजी मुखिया श्रीमुकुन्दरायजी के साथ ही काशी आये एवं उनको श्रीमुकुन्दरायजी के बड़े मुखि़या का पद प्रदान किया गया। मुखियाजी को श्रीगिरिधरजी महाराज द्वारा एक भवन भी प्रदान किया गया। बहुत दिनों तक श्रीजयरामजी मुखिया के वंशज लोग श्रीमुकुन्दरायजी एवं श्रीगोपाललालजी की सेवा करते रहे। इस परिवार के श्रीभैयाजी श्रीकेदारजी मुखिया का उल्लेख षष्ठपीठधीश्वर गो० १०८ श्रीमुरलीधरलालजी महाराज भी प्राय: अपने वचनामृत के दौरान किया करते थे। काशी से जब श्रीमुकुन्दरायजी सन् १९६६ में सात स्वरूप के उत्सव के लिए श्रीनाथद्वारा पधारे तब भी पूज्य महाराज श्री इसी परिवार के श्रीद्वारिकानाथजी एवं श्रीनरसिंहलालजी को साथ में श्रीठाकुरजी की सेवा के लिए श्रीनाथद्वारा लिवा गये थे। बीच के अन्तराल में इस परिवार द्वारा सिल्क के व्यापार में लग जाने के कारण श्रीकेशवजी मुखिया नियुक्त किये गये थे। जिन्होंने काफी समय तक श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा-कार्य का निर्वाह बड़े कुशलता एवं तल्लीनता-पूर्वक किया। श्रीकेशवजी मुखिया के पश्चात् श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा श्रीकृष्णसुन्दरजी ने भी किया एवं थोड़े दिनों के लिए श्रीगोवर्धनजी भी जो पहले काफी समय तक जतीपुरा में प्रथम निधि श्रीमथुराधीशजी की सेवा कर चुके थे और वहाँ से निवृत्त हो गये थे, वे भी काशी आये एवं श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा बड़े सुन्दर रूप में की। उनके पश्चात् कुछ समय तक श्रीगिरिधरजी मुखिया जो श्रीकेशवजी के समय श्रीगोपाललालजी के मुखिया थे उन्होंने भी श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा काफी समय तक की। कई वर्षों तक श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा करने के पश्चात् वे अस्वस्थ हो गये थे और उनका गोलोकवास हो गया। इसके पश्चात् यहाँ पर गोकुल से श्रीनाथूरामजी मुखिया आये जिन्होंने लगभग २५ वर्षों तक श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। श्रीनाथूरामजी के कार्यकाल में सन् १९८४ में काशी में श्रीमुकुन्दरायजी एवं श्रीगोपाललालजी का छप्पनभोग क़ा कार्यक्रम बड़े विशाल रूप में सम्पन्न हुआ उसमें भी श्रीद्वारकानाथजी श्रीनरसिंहलालजी तथा इन दोनों ही मुखिया लोगों ने अपने पूरे परिवार के साथ सेवा में पहुँचकर कार्यक्रम को सुचारू रूप से सम्पन्न कराने में पूर्णरूप से सहयोग दिया और इसके साथ ही साथ इस परिवार के श्रीनटवरजी को श्रीगोपाललालजी का चरण स्पर्श कराकर मुखिया का दायित्व प्रदान किया गया। कुछ समय पश्चात् ही इनको श्रीमुकुन्दजी का चरणस्पर्श का अधिकार दिया गया जिससे इनको श्रीमुकुन्दरायजी का मुखिया पद सम्भालने का मार्ग प्रशस्त हो गया। श्रीनाथूरामजी मुखिया की अवस्था काफी हो गयी थी और कुछ समय बाद

उनको शल्य क्रिया कराकर चिकित्सा करानी पड़ी और वह अत्यन्त शिथिल हो गये, अन्ततः सं० २०५४ में वे श्रीजी की शरण में पहुँचे और उसके पश्चात् श्रीनटवरजी को पूर्णतः श्रीमुकुन्दरायजी के बड़े मुखिया का पद प्रदान किया गया जिसके दायित्व का वह कुशलता पूर्वक निर्वहन कर रहे हैं। श्रीगोपाललालजी की सेवा में श्रीगिरिधरजी मुखिया के पश्चात् श्रीतुलसीरामजी नियुक्त हुए थे जो आज तक पूर्ण रूप से श्रीगोपाललालजी की सेवा जिम्मेदारी निभा रहे है।

मंदिर के उपाध्याय की परम्परा का कोई प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है, आज से लगभग ५ दशक पूर्व श्रीगंगाधरजी शास्त्री गोपालमन्दिर के उपाध्याय थे जो बड़े प्रतिभाशाली एवं प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके पुत्र श्रीपद्मनाभजी बड़े ही सरल एवं सेवाभावी थे, उन्होंने उपाध्याय का पद न सम्भाल कर चुनार की बैठकजी में सम्पूर्ण सेवा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था तथा जीवन पर्यन्त वे चुनार की बैठकजी में श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसाईजी की सेवा में तल्लीनतापूर्वक लगे रहे। सेवा के साथ-साथ उन्होंने श्रीबैठकजी के बाहर की भी सम्पूर्ण व्यवस्था का पूरा दायित्व स्वयं सम्भाल रखा था। सन् १९८५ में जब वे अत्यधिक अस्वस्थ एवं शिथिल हो गये थे तो उनको काशी लाया गया और यहीं पर वे श्रीमहाप्रभुजी की शरण को प्राप्त हुए। वर्तमान् में मंदिर के उपाध्याय के रूप में श्रीबापटजी सेवा प्रदान कर रहे हैं। मन्दिर के जोशी श्रीरामनाथजी ने लगभग ७० वर्ष की अवस्था तक अपने दायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह किया और उसके बाद उनका गोलोकवास होने के पश्चात् उनके पुत्र श्रीदिनेशचन्द्रजी गोपालमन्दिर के इस पद की समस्त जिम्मेदारियों का निर्वाह कर रहे हैं।

षष्ठगृह में कीर्तनियों की एक महान् सुदृढ़ एवं समृद्ध परम्परा रही है। श्रीजीवनलालजी महाराज तक तो कीर्तनियों का इतिहास कोई प्राप्त नहीं है। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के बाल्यकाल में आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा में श्रीरामनारायणजी एवं श्रीगोपाललाल जी की सेवा में श्रीगोविन्दरायजी प्रमुख कीर्तनियाँ थे। दोनों ही अष्टछाप एवं पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणालिका के महान् जानकार थे। उनके समय में ही बीकानेर के बन्धुद्वय श्रीगोपालजी भट्ट एवं श्रीउद्धवजी भट्ट बड़े महान् कीर्तनकार हुए जिनमें बड़े भ्राता श्रीगोपालजी भट्ट ने काफी समय श्रीगोपालमन्दिर में सेवा किया। श्रीउद्धवजी भट्ट ने मऊ में परमभगवदीय श्रीब्रजभूषणदासजी जो काशी घर के ही सेवक थे उनके यहाँ मन्दिर में लगभग २५ वर्षों तक कीर्तन की सेवा किया। श्रीउद्धवजी भट्ट का गला इतना सुरीला था कि एक समय मऊ में मन्दिर के नीचे से स्वामी करपात्री जी गुजर रहे थे उनके पद लालित्य से प्रभावित होकर ऊपर मन्दिर के प्रांगण में पधारे एवं उन्होंने कीर्तन श्रवण का बड़ा ही भावविभोर होकर रसास्वादन किया एवं पूरे चातुर्मास्य जब तक वे मऊ में रहे, नित्य नियमपूर्वक दोनों समय कीर्तन सुनने के लिए आते रहे। जब कभी भी उद्धवजी भट्ट काशी आते थे, तब पूज्यपाद श्रीमुरलीधरलालजी महाराजश्री उनको विशेष रूप से श्रीमुकुन्दरायजी एवं श्रीगोपाललालजी के सम्मुख कीर्तन करने की आज्ञा दिया करते थे। उपरोक्त कीर्तनकारों के पश्चात् गोपालमन्दिर में श्रीमुकुन्दरायजी की सेवा में श्रीसीतारामजी एवं श्रीगोपाललालजी की सेवा में श्रीमन्नूजी आये, जो कीर्तन के साथ-साथ मृदंग वादन के भी महान् कलाकार थे। इन दोनों कीर्तनकारों के समय में ही श्रीगोपाललालजी श्रीमुकुन्दराय जी भेले विराजे। इसी बीच श्रीमन्नूजी का गोलोकवास हो गया, कीर्तन की सेवा एक ही चौक में होने लगी, जिसमें श्रीसीतारामजी ही कीर्तन की सेवा करते रहे। बीच में कुछ दिनों के लिए श्रीदाऊजी जतीपुरा से आये एवं उनके पश्चात् श्रीगोपालजी भट्ट जतीपुरा से आकर बहुत थोड़े-थोड़े समय तक कीर्तन की सेवा किये लेकिन प्रमुख सेवा श्रीसीतारामजी की ही रही।

श्रीसीतारामजी कीर्तनकार के साथ ही बड़े भावुक हृदय व संवेदनशील थे। बड़े ही निःस्पृह व रसिक भी थे। श्रीमुकुन्दरायजी श्रीगोपाललालजी के बगीचे के उत्तर द्वार के ऊपर स्थित बारादरी में ही उनका निवास स्थान था जिसमें प्रभु की कीर्तन सेवा से बचे समय में वैष्णव घरों के बालकों की भीड़ लगी रहती थी जिनको वे बड़े ही तन्मयता एवं मनोयोगपूर्वक कीर्तन व पखावज इत्यादि की शिक्षा दिया करते थे एवं अभ्यास कराया करते थे। उनके द्वारा तैयार किये हुए वैष्णवों की काफी अच्छी संख्या इस समय भी विद्यमान है जो समय-समय पर मन्दिर की कीर्तन सेवा में पहुंचते रहते हैं। श्रीसीतारामजी का शरीर जब काफी अस्वस्थ हो गया था तो वे कुछ दिनों के लिए श्रीवल्लभराम शालिग्राम मेहता हास्पिटल, रामघाट में भर्ती हुए थे। वैष्णवजन अक्सर उनका हालचाल लेने के लिए अस्पताल जाया करते थे तो वे यही कहा करते थे कि शरीर की कोई चिन्ता तो नहीं है लेकिन प्रभु की सेवा छूट गई है इसकी हृदय में बड़ी वेदना है। वस्तुतः श्री सीतारामजी कीर्तनिया के रूप में अष्टछाप के भगवदियों का दर्शन वैष्णवजनों को हुआ करता था। श्रीसीतारामजी कीर्तनीया के बाद कुछ समय के लिए पुनः ब्रज के श्रीदाऊजी आये लेकिन वे स्थायी रूप से यहाँ टिक नहीं सके, तत्पश्चात् ब्रज के कमई ग्राम के श्रीश्यामलाल शर्मा जी कीर्तनिया यहाँ आये जो आज तक अनवरत रूप से श्रीमुकुन्दगोपालप्रभु की कीर्तन सेवा में तल्लीन हैं एवं बड़े ही सुचारू रूप से इस उत्तरदायित्व को निभा रहे हैं। कीर्तन करने वाले वैष्णवजनों से भी उनका बड़ा ताल-मेल है एवं वैष्णवजन भी उनके सहृदय व्यवहार से बराबर उनके कीर्तनों के समय प्रभु के सन्निधान में उनका साथ देते रहते हैं। विगत एक वर्ष से वैष्णव घर की महिलाओं को भी कीर्तन की शिक्षा देने के लिए सान्ध्य कक्षाएं श्रीमुकुन्दगोपाल सेवा संस्थान की ओर से श्रीश्यामलालजी कीर्तनिया के निर्देशन में आयोजित की जा रही है, जिसमें काफी अच्छी संख्या में महिलायें भाग ले रही हैं एवं मन्दिर में आयोजित समारोहों में ये महिलायें बड़े ही सुन्दर रूप में कार्यक्रम प्रस्तुत करती हैं।

मन्दिर के अधिकारी के पद पर लगभग ७० वर्ष पूर्व श्रीश्रीनाथदासजी अग्रवाल आसीन हुए जिनको पेशकार साहब कहा जाता था। उन्होंने लगभग २० वर्ष इस पद को सुशोभित किया था, उसके पश्चात् इस पद पर श्रीसंकठा मिश्र आये। उन्होंने भी लगभग २५ वर्ष सेवा किया। तत्पश्चात् श्रीशिववलजी अधिकारी के पद पर रहे। इन्हीं के समय षष्ठपीठाधीश्वर गो. श्रीमुरलीधरलालजी महाराज नित्य लीला में पधारे। कुछ अपरिहार्य कारणों से श्रीशिवबलजी पद निवृत्त हो गये और इस पद पर श्रीबालासुब्रहम्हण्यम् जो पहले पंचम पीठ कामवन में सेवा कर चुके थे, इस पद पर आये और ५-६ वर्षों तक सेवा में रहे और बाद में वे पारिवारिक उत्तरदायित्व के कारण अपने देश दक्षिण की ओर चले गये। उसके पश्चात् श्रीविश्वनाथशर्माजी लगभग १-२ वर्षों तक इस पद पर रहे। वर्तमान में श्रीयदुनाथजी शुक्ल इस पद पर बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

षष्ठगृह काशी में छड़ीदारों की परम्परा का ठाकुर श्रीमुकुन्दरायजी के काशी पधारने तक का कोई लिखित इतिहास नहीं है। श्रीमुकुन्दरायजी जब काशी पधारे तब शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज ने छड़ी की सेवा के लिए श्रीमनुदासजी गुजराती को ताम्रपत्र लिखकर वंश परम्परागत रूप में अधिकार प्रदान किया था। इनके पूर्वज श्रीपीताम्बरदासजी वि० सं० १७९४ में अहमदाबाद से काशी आये थे। जिनकी चौथी पीढ़ी में मनूदासजी हुए थे। मनुदासजी के पश्चात उनके पुत्र श्रीवल्लभदासजी ने छड़ी की सेवा किया। वे श्रीश्यामा बेटीजी के समकालीन थे। श्रीवल्लभदासजी के पश्चात् उनके पुत्र गनेशदासजी ने छड़ी की सेवा किया। उनको कोई पुत्र नहीं हुआ। उनकी एक पुत्री रंगीली कुअर थी, जिनके पति बालमुकुन्ददास थे। लेकिन उनको छड़ी की सेवा नहीं मिली। श्रीगनेशदासजी के दौहित्र श्रीपुरुषोत्तमदासजी को छड़ी की सेवा मिली जिन्होंने काफी समय तक

श्रीमुकुन्दरायजी की छड़ी की सेवा किया। श्रीपुरुषोत्तमदासजी को भी कोई पुत्र नहीं हुआ। उनके दामाद श्रीगोपालदास सोनावाले के दो पुत्र जो केवल एक या दो वर्ष की अवस्था के थे, उनकी कम उम्र के कारण श्रीगोपालदास जी ने श्रीपुरुषोत्तमदासजी के उत्तराधिकार में सेवा नहीं लिया। दोहरा मंडान के अवसर पर श्रीपुरुषोत्तमदासजी के साथ साथ प्रतिवर्ष श्रीहरीदासजी समाधानी को दूसरी छड़ी की सेवा मिला करती थी। श्रीहरीदासजी की फोटो श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के साथ हाथी पर पूज्यपाद महाराजश्री के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है।

श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने छड़ी की सेवा श्रीनरसिंहदासजी सोनावाले को दिया। वे अविवाहित थे तथा प्राय: अस्वस्थ रहा करते थे, जिससे उनके जीवनकाल में ही उनके छोटे भाई श्रीकन्हैयालालजी सोनावाले सेवा में पहुँचते रहे। श्रीकन्हैयालालजी के पश्चात् उनके पुत्र श्रीठाकुरदासजी को सेवा मिली जो आज तक बड़े ही निष्ठा एवं नियमपूर्वक इस सेवा का निर्वाह कर रहे हैं। श्रीपुरुषोत्तमदासजी के समय में ही श्रीठाकुरदासजी की छड़ी की सेवा चालू रही। दोहरा मंडान में श्रीपुरुषोत्तमदासजी के साथ श्रीठाकुरदासजी भी छड़ी सेवा में पहुँचते रहे। श्रीपुरुषोत्तमदासजी के पश्चात् सं. २०४१ तक श्रीठाकुरदासजी अकेले छड़ी की सेवा करते रहे। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के नित्य लीला प्रवेश के पश्चात सं० २०४१ सन् १९८४ में श्रीमुकुन्दरायजी के छप्पनभोग के आयोजन का निश्चय हुआ, जिसमें दो छड़ीदारों की सेवा आवश्यक थी। श्रीमुरलीधरलालजी महाराज की बहूजी श्रीप्रेमप्रिया बहूजी ने इस अवसर पर श्रीठाकुरदासजी सोनावाले के छोटे भाई श्रीरघुनाथ दासजी सोनावाले को दूसरी छड़ी की सेवा प्रदान किया, तब से आज तक दोनों भाई छड़ी की सेवा बड़े ही मनोयोगपूर्वक निरन्तर कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि सं० २०२३ में जब श्रीमुकुन्दरायजी सप्तस्वरूपों के उत्सव पर नाथद्वारा पधारे थे तो उस समय श्रीमुरलीधरलालजी महाराज ने श्रीमुकुन्ददास जी सतभइया वालों को श्रीमुकुन्दरायजी की छड़ी की सेवा विशेष रूप से प्रदान किया था।

काशी की वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास बड़ा ही गौरवशाली रहा है, श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण एवं श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसाईंजी के पश्चात् उनके षष्ठ लालजी श्रीयदुनाथजी से लेकर आज तक इस पीठ में नित्य-निरन्तर अनेकानेक महान् विभूतियों का प्रागट्य होता रहा है जिन्होंने अपने विद्वत्ता, आचरण एवं उपदेशों से इस पीठ की परम्पराओं की ख्याति सम्पूर्ण देश विदेश में स्थापित किया है। श्रीजीवनजी, श्रीगोपालजी, श्रीगिरिधरजी महाराज, श्रीश्यामा बेटीजी, श्रीजीवनलालजी, श्रीमुरलीधरलालजी, श्रीकृष्णप्रिया बेटीजी इस श्रृंखला की महान् कड़ी थे, आज भी इस वंश की श्रीशरद्वल्लभा बेटीजी पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों एवं भगवद्गुणानुवाद का प्रचार बड़े मनोयोगपूर्वक महिला समाज में कर रही हैं। वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गो० १०८ श्रीश्याममनोहरजी महाराज भी इस गद्दी पर विराजने के बाद इस पीठ के अपने पूर्वजों की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। उनके लालजी श्रीप्रियेन्दुबावा से भी काशी के वैष्णव समाज को बड़ी आकांक्षायें एवं अभिलाषायें हैं। वैष्णव समाज श्रीप्रियेन्दुबावा में श्रीमुरलीधरलालजी महाराज की मुखाकृति का दर्शन करता है और हृदय से प्रभु से विनती करता है कि बावा साहब भी अपने महान् पूर्वजों की परम्परा को अधिकाधिक पुष्पित पल्लवित एवं प्रकाशित करते रहें। और समस्त वैष्णव समाज की इस परिवार के प्रति यही अभिलाषा रहती है कि:-

युग-युग राज करो श्रीगोकुल
युग-युग राज करो।

॥ श्रीमुकुन्दगोपाललालौ जयतः ॥

॥ श्यामः सदा दीव्यतु मानसे मे ॥

षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का जीवनचरित्र

गो० श्रीश्याममनोहरजी महाराज

मुकुन्दपरिरम्भिणी, भुजलताभिसम्मर्दिनी ।
समुन्नतनितम्बिनी, रसतरङ्गकल्लोलिनी ॥
अहर्निशविलोकिनी, ह्यधरसीधुसञ्चुम्बिनी ।
मुकुन्दरतिवर्धिनी, जयतु नित्यसंयोगिनी ॥
यदुनाथ भवद्धरिज्ञानकलं
भवदङ्घ्रिसरोरुहभक्तिकरम् ।
यमुनारसरूपसरूपवरं
मुदितोऽस्मि नमामि मुकुन्दयुतम् ॥

सम्पूर्ण विश्व में आस्तिकवादियों के लिए 'अवतार' शब्द अनजाना नहीं है । अवतार का सिद्धान्त आध्यात्मिक जगत् के नियम की एक भावपूर्ण अभिव्यक्ति है । अवतार परमात्मा का मनुष्यादि योनि में अवतरण है, न कि मनुष्यादि का परब्रह्म परमात्मा में आरोहण । उस सनातन परब्रह्म का 'जो अविरल ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटना के साथ विद्यमान है', अवतार लेना एक गम्भीरतम अर्थ का प्रकटन् है । भगवद्गीता आदि शास्त्रों में भी स्पष्टत: उल्लेख प्राप्त होते हैं कि भगवान् परब्रह्म जगत् में किसी विशेष प्रयोजन को पूर्ण करने के लिये ही अपने आपको सीमित करके अवतार ग्रहण करते हैं । परन्तु तब भी भगवान् के सीमित दृश्यमान स्वरूप में असीमित ज्ञान, बल विद्यमान रहतां है । इसका प्रमाण शास्त्रों में वर्णित भगवद् अवतार लीलाओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

उपर्युक्त सनातन अवतार परम्परा में ही वि० सं० १५३५ में महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण का प्राकट्य हुआ । आपश्री साक्षात् भगवन्मुखावतार हैं । आपके द्वितीय कुमार भगवान् श्रीविठ्ठलेशावतार श्रीगुसाईं श्रीविठ्ठलनाथजी का प्राकट्य वि० सं० १५७२ में हुआ । आपश्री को सात पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई । आपके सातों पुत्रों में सबसे बड़े श्रीगिरिधरजी धर्मीस्वरूप भगवद् अवतार हुए एवं कनिष्ठ छ: पुत्र क्रमशः ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्य स्वरूप भगवद् धर्म के अवतार हुए ।

श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी के सात पुत्रों में हमारे इस निबन्ध के चरित्रनायक षष्ठकुमार गो० श्रीयदुनाथजी ''षष्ठलालजी'' हैं, जो कि भगवान् के ज्ञानस्वरूप कें अवतार हुए । श्रीगुसाईंजी आपश्री को महाराजजी कहकर भी सम्बोधित करते थे । अत: आपका उपनाम महाराजजी भी है ।

गो० श्रीयदुनाथजी ''षष्ठलालजी'' का प्राकट्य वि० सं० १६१५ मि० चैत्र शु० ६ रविवार को प्रयाग के निकट स्थित देवरख अलर्कपुर (अड़ेल) ग्राम में स्थित श्रीवल्लभाचार्यचरण की निजगृहकी बैठक में हुआ । आपके प्राकट्य का वर्णन रसिकदासजी ने इस प्रकार किया है –

श्रीविठ्ठलनाथ के धाम बधाई।
ज्ञान रूप प्रकटे श्रीयदुपति छट्ठे सुवन सुखदाई।
छठ्ठ अमल मधुमास सुखद ऋतु मधुपन रूप दिखाई।
परम प्रवीन कृष्ण सेवा पर अतिकर भक्ति दृढ़ाई।
श्री महाराणी पति प्रिय पूरण अशरण शरण कहाई।
देत अभय फल निज दासन कों कीरति त्रभुवन छाई।
कर्त्ता हर्त्ता कारण जग के पालत सुख दरसाई॥
गुण अनन्त कहा बरनसके मुख रसिकदास शिरनाई॥

बाल्यकाल से ही आपके अन्दर सहज ज्ञान की स्थिति विद्यमान थी। आपश्री की बालसुलभ चेष्टाओं, बाल-लीलाओं में भी ज्ञान का गाम्भीर्य स्पष्टत: परिलक्षित होता था। आपश्री का विद्याध्ययन प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परानुसार ही ठोस रूप से सम्पादित हुआ। आपश्री का यज्ञोपवीत संस्कार वि० सं० १६२३ के लगभग श्रीमद्गोकुल में कुलमर्यादानकूल सुसम्पन्न हुआ। आपश्री का विवाह वि० सं० १६३० के लगभग श्रीमद्गोकुल में ही आनन्दपूर्वक हुआ। आपकी बहूजी का नाम सौ. श्रीमहारानी बहूजी है।

श्रीवल्लभसम्प्रदाय में षष्ठगृह की परम्परा षष्ठलालजी गो० श्रीयदुनाथजी से ही प्रारम्भ होती है। आपके पितृचरण श्रीगुसाईंजी ने अपने सातों पुत्रों का बंटवारा करने का जब निश्चय किया तब षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी को श्रीबालकृष्णजी का स्वरूप सेवार्थ पधराने का विचार किया। परन्तु षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने अपने भाग के स्वरूप के रूप में श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को स्वीकार नहीं किया। तब तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी ने उन श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को अपने यहां विराजमान तृतीय निधि स्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की गोद के स्वरूप के स्थान पर विराजमान करने के लिये श्रीगुसाईंजी से मांग लिया। तब से ही श्रीबालकृष्णजी श्रीद्वारिकाधीशजी के गोद के स्वरूप ही कहे जाते हैं न की षष्ठ स्वरूप। कालान्तर में ये ही श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप बलपूर्वक सूरत पधरा लिये गये, जो आजतक वहीं पर (तृतीय गृह के उपग्रह में) विराजमान हैं। परन्तु आज भी श्रीद्वारिकाधीशजी की गोद में भावात्मक स्वरूप से श्रीबालकृष्णजी नित्य प्रति विराजमान हैं और रहेंगे भी, क्योंकि श्रीबालकृष्णजी अपनी निजेच्छा से तो वहीं पर विराजे थे। इस प्रकार श्रीगुसाईंजी के समय षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी को कोई भी पृथक् स्वरूप बंटवारे में प्राप्त नहीं हुए तथा षष्ठगृह का भी पृथक्करण नहीं हुआ।

आपश्री का जीवन पूरा संघर्षमय रहा। आपने अपने जीवन में भगवत्सेवा को ही सर्वोच्च स्थान प्रदान किया। वैसे तो आपका अपने समग्र भ्राताओं के साथ स्नेह था परन्तु तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी के साथ आपका अत्यन्त घनिष्ठ स्नेह बाल्यकाल से ही रहा। अत: आपने उन्हीं के साथ तृतीय गृह में ही विराजकर तृतीय निधि स्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की ही सेवा करने का निश्चय किया।

श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी के समय जो सातों बालकों का विभाग हुआ था तब षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का विभाग ही नहीं हुआ था। अत: आपका रहन-सहन आदि सब तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजी के साथ ही होता रहा। यहां तक कि आपने आजीवन उन्हीं के भाग में प्राप्त तृतीय निधि स्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की सेवा करी। किन्तु अपने षष्ठगृह का पृथक्करण न होने से तथा पृथक् स्वरूप की प्राप्ति भी नहीं होने से आपके चित्त में निरन्तर विरह होता रहता था। श्रीगुसाईंजी के समय में प्रथम लालजी श्रीगिरिधरजी के मनोरथ से जब

सप्तस्वरूपोत्सव का मनोरथ हुआ तब षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी उस उत्सव में सम्मिलित नहीं हुए। परन्तु बाद में श्रीगुसाईंजी ने अपने शिष्य राजा आसकरनजी को अपने षष्ठपुत्र श्रीयदुनाथजी को समझाकर बुला लाने को भेजा तब केवल श्रीगुसाईंजी की आज्ञा पालन हेतु ही आपश्री पधारे तो अवश्य, किन्तु पृथक् स्वरूप प्राप्ति न होने से आपका असन्तोष दूर नहीं हुआ। इस घटना से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि श्रीगुसाईंजी के काल में षष्ठगृह या षष्ठस्वरूप का बंटवारा सर्वथा नहीं ही हुआ था। यदि हुआ होता तो श्रीयदुनाथजी भी अपने षष्ठस्वरूप को पधराकर उस उत्सव में पूर्णरूप से आनन्दपूर्वक अवश्य ही सम्मिलित होते।

श्रीयदुनाथजी बड़े ही विद्वान् आचार्य थे। आपश्री परम सेवा रसिक होने के साथ-साथ अति गम्भीर थे। अपने हृदय की व्यथा प्रकट नहीं होने देते थे। भक्तियोग आपको साक्षात् सिद्ध था। आपश्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन पृथक् स्वरूप की प्राप्ति न होने से '**निज स्वरूप**' की प्राप्ति की अभिलाषा में '**उन्हीं अभीष्ट स्वरूप**' के विप्रयोग में ही व्यतीत किया। "**विरहानुभवैकार्थ सर्वत्यागोपदेशकः**" यह श्रीवल्लभाचार्यचरण का स्वरूप आपश्री में प्रत्यक्ष फलित होता है। इसी विरह ताप का परिणाम था कि आपश्री के लीलाप्रवेश के तकरीबन अढ़ाई सौ वर्ष के पश्चात् आपके ही वंश के आचार्य श्रीगिरिधरजी महाराज काशी वालों को षष्ठनिधि स्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी की प्राप्ति उसी प्रधान श्रीगुसाईंजी के गृह से हुई और अद्यावधि षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी की ही आड़ी से श्रीमुकुन्दप्रभु सेवा अंगीकार करते हैं–

"न हि भगवदिच्छा केनापि ज्ञातुं शक्या"
"न हि भगवदिच्छा केनापि निश्चेतुं शक्या"
(सु० भा०)

भगवदिच्छा को कोई भी नहीं जान सकता। परन्तु श्रीप्रभुचरण श्रीगुसाईंजी तो आप स्वयं साक्षात् भगवत्स्वरूप थे अतः आपतो जानते ही थे कि श्रीयदुनाथजी श्रीमहाप्रभु के ही चतुर्थ अवतार हैं और ये "**महाराज**" अपने निजस्वरूप "**श्रीमुकुन्दरायजी**" को ही प्राप्त करके सन्तुष्ट होंगे परन्तु भगवदिच्छा सर्वोपरि है। भगवान् की इच्छा श्रीयदुनाथजी को फिलहाल विरहदान करने की है अतः उसी का अनुसरण करते हुए श्रीगुसाईंजी ने श्रीयदुनाथजी को उस समय कोई भी स्वरूप नहीं पधराया। श्रीयदुनाथजी भी आप ज्ञानस्वरूपावतार होने से भगवदिच्छित प्रकार को भातिभाँति जानते थे अतएव आपने भी श्रीगुसाईंजी द्वारा सामान्यतया विचारित श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को स्वीकार नहीं किया, तथा अपने अभीष्ट स्वरूप के विप्रयोग में ही आपश्री विराजे।

वस्तुतः श्रीगुसाईंजी तो जानते ही थे कि षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी की आसक्ति "**श्यामत्वं निजशोभया परवपुर्ध्यानेन यद्गौरतां**" ऐसे श्रीवल्लभाचार्यचरण के निजस्वरूप श्रीमकुन्दप्रभु में ही है। परन्तु यावत् काल पर्यन्त भगवदिच्छित विप्रयोग श्रीयदुनाथजी को एवं आपके वंश को प्राप्त होना था तावत् काल पर्यन्त श्रीमुकुन्दप्रभु आपको या आपके वंश को प्राप्त नहीं हुए। इस तरह उस भगवत्प्रदत्त विप्रयोग काल का जब समापन हुआ तो श्रीगुसाईंजी के प्रधान गृह से ही श्रीगुसाईंजी के ही अवतार स्वरूप तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय ने श्रीयदुनाथजी के वंश में प्रकट उन्हीं के अवतार स्वरूप शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज को (श्रीयदुनाथजी एवं श्रीगुसाईंजी उभयाचार्यों द्वारा इच्छित) षष्ठ स्वरूपत्वेन श्रीमुकुन्दरायप्रभु को षष्ठगृह के सम्पूर्ण, (हटड़ी की महाराजजी की आड़ी की आरती, पालकी) अधिकार के साथ पधराकर श्रीगुसाईंजी के अवशिष्ट "**बंटवारे**" के कार्य को पूर्ण किया एवं श्रीगिरिधरजी महाराज ने भी सहर्ष इस "**बंटवारे**" को स्वीकार करते हुए श्रीयदुनाथजी

के अवशिष्ट प्राप्याधिकार को पूर्ण किया। इस प्रकार षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का स्वरूप न प्राप्त होने का असन्तोष सुदीर्घ काल के बाद जाकर दूर हुआ।

भगवदिच्छा फलबल कल्प्या होती है। जब जो घटना घटित हो जाती है तब उसके घटन के बल से ही उस घटना में निहित भगवदिच्छा का अनुमान किया जा सकता है। फल से पूर्व उसका परिज्ञान नहीं होता। हाँ कुछ अवतारी महापुरुषों को भगवत्कृपा बल से भगवद्इच्छा का परिज्ञान होता भी है तो वे भगवदिच्छा के विपरीत कदापि आचरण नहीं करते। उनको तो भगवदिच्छा के यथावत् पालन में एवं अनायास घटित भगवल्लीला के विलास में विलसित होने में ही परमानन्द की अनुभूति होती है। अतः तदिच्छानुकूल ही तत्सुख में वे महापुरुष स्वयं भी सहयोगी हो जाते हैं। इस सम्पूर्ण सपरिकर भगवल्लीला विलास को सामान्य लौकिक ऐतिहासिक घटना मानकर हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये परन्तु इसके द्वारा हमें श्रीयदुनाथजी के **''अभीष्ट स्वरूप''** का परिज्ञान करके भगवल्लीला के वैलक्षण्य से अपने आपको अभिभूत कर लेना ही परम फल है।

षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का जीवन चरित्र अपने आपमें एक जीवन दर्शन है, साक्षात् भगवल्लीला का अनुभव है, जो भगवल्लीला के नित्यत्व, एकत्व में निहित अनेकत्व, अनवरतत्व, कालाद्यनवच्छिन्नत्व, लोकवत्व में अलौकिकत्व आदि अनेकानेक प्रकारों को प्रकट करता है। जिस प्रकार कुमारिकाओं के प्रसंग में **''मयेमारंस्यथ क्षपा''** तथा **''व्रजे गोप्यो भविष्यथ''** इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि उन व्रजगोपियों के साथ रमण करने के लिये ही भगवान् परब्रह्म ने सारस्वत कल्प में प्रकट होकर उन भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण किया था। उसी तरह षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी को स्वरूप न पधराने से षष्ठगृह के बंटवारे का कार्य जो अवशिष्ट रहा था उसे ही पूर्ण करने के लिये श्रीगुसाईंजी ने तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज द्वितीय के रूप में पुनः प्राकट्य ग्रहण किया और षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने श्रीगिरिधरजी महाराज 'काशी' के रूप में पुनः प्राकट्य ग्रहण करके उस लीला को सम्पन्न किया।

षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का उत्सव चैत्र शु० ६ को आता है। यही दिवस श्रीयमुनाजी के उत्सव **''श्रीयमुनाछठ्ठ''** के नाम से भी प्रसिद्ध है। श्रीयदुनाथजी का लीला भावना में श्रीयमुनाजी का ही स्वरूप है और श्रीयमुनाजी श्रीमुकुन्दरायप्रभु के बिना कैसे विराज सकती हैं। श्रीयदुनाथजी का स्वरूप तो साक्षात् **''श्रीमुकुन्दरतिवर्धिनी''** का स्वरूप है। इसीलिये जब श्रीगुसाईंजी ने श्रीयदुनाथजी को ठाकुरजी श्रीबालकृष्णजी, जो की **''पूतना वध लीला''** के स्वरूप हैं पधराने का विचार किया तब षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने स्वीकार नहीं किया, कारण आपश्री की **''रति''** तो **श्रीमुकुन्दप्रभु** में रही। परन्तु इस गूढ़ रति को आप प्रकट करना भी नहीं चाहते थे **''प्रीत हिये में राखिये''** इसीलिये आपने स्वीकार नहीं किया तथा श्रीगुसाईंजी भी आप सब कुछ जानते हुए भी मौन रहे। उस वक्त सामान्य जन ने यही समझा की इन्होंने अति छोटे स्वरूप होने से स्वीकार नहीं किया है। इस तरह कालान्तर में विप्रयोग का जब सम्यक् परिपाक हो गया तब वे ही दोनों स्वरूप (श्रीगुसाईंजी एवं श्रीयदुनाथजी) पुनः प्रकट हुए और वह लीला सम्पन्न हुई।

पुष्टिमार्ग में षष्ठलालजी श्री यदुनाथजी को चतुर्थ श्रीवल्लभ स्वरूप भी कहा जाता है।

प्रथम श्रीवल्लभाधीश प्रभु स्वयम्।

द्वितीय वल्लभ स्वरूप श्री विठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी हुए।

तृतीय वल्लभ स्वरूप चतुर्थलालजी श्रीगोकुलनाथजी हुए।

एवं चतुर्थ वल्लभ स्वरूप षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी हुए।

अतएव परमानन्द दास जी ने अपने पद में लिखा है **''श्रीयदुनाथ महाप्रभु पूरण भगवान्''**। तात्पर्य यही कि श्रीयदुनाथजी स्वयं श्रीवल्लभाधीश प्रभु का ही प्राकट्य हैं इसीलिये तो षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी ने **श्रीबालकृष्णजी के स्वरूप को न पधराकर कालान्तर में अपने ''निजस्वरूप'' श्रीमुकुन्दप्रभु को ही पुनः अपने ही स्वरूप श्रीगिरिधरजी महाराज ''काशी'' के माथे पधरवाया।**

आपश्री का स्वभाव अत्यन्त कृपालू था। किसी के कष्ट को आप सह नहीं सकते थे। पतित से पतित शरणागत का आप उद्धार करते थे **''पतित उद्धारण महाराज रसना चातक ज्यौं रहाउ''** (श्रीचतुर्भुजदासजी) आपश्री का घर का नाम महाराज था। श्रीगुसाईंजी प्यार से आपको महाराज कहते थे और इसीलिये आपके बहूजी का नाम भी महारानीजी रखा गया।

श्रीयदुनाथजी आयुर्वेदशास्त्र में भी पारङ्गत थे। कई वैष्णव अपने रोग का निदान तथा उपचार भी आपके मार्गदर्शन में करवाते थे। आपश्री स्वभाव से चिन्तनशील एवं गम्भीर होते हुए भी हंसमुख थे। ऐतिहासिक लेखन में आपश्री की विशेष अभिरूचि थी। इतिहास लेखन की कला भी आपश्री में बेजोड़ थी। आपश्री का रचित ऐतिहासिक ग्रन्थ श्रीवल्लभ दिग्विजय प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि० सं० १६५८ है। कहते हैं कि इस ग्रन्थ का प्रारम्भ प्रयाग संगम के निकट स्थित अलर्कपुर (अड़ैल) में हुआ एवं समापन नर्मदा नदी के तट पर हुआ था। आपश्री ने श्रीवल्लभाचार्यचरण के ८४ बैठकों के स्थलों की पदयात्रा भी किया था। आपश्री की वाक्पटुता, एवं निर्णयशक्ति अद्वितीय थी। आपश्री का स्वरूप भव्य था। विशाल ललाट, कमलदल जैसे विशाल नेत्र एवं विशेषतः आप ज्ञानमुद्रा में विराजते थे। श्रीवल्लभाख्यान में श्रीगोपालदासजी ने आपश्री का वर्णन इस प्रकार किया है –

यदुपति जीवन जगतना सदा मन प्रसन्न हुलास रे रसना।
नाहते महाराणी तणा, मुख माधुरी विलास रे रसना॥

आपश्री विशेषतः श्रीयमुनातट पर ही सन्ध्या-जपादि करने को पधारते थे। कहते हैं कि एकबार श्रीयमुनातट पर श्रीमद्गोकुल में आपश्री विराजमान थे। अपलक दृष्टि से श्रीयमुनाजी को आप निहार रहे थे तभी यकायक भावावेश में आपश्री के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उसी अवस्था में आपके श्रीमुख से स्वतः ही गान निःसरित हो गया। लगभग एक सहस्त्र पदों से आपश्री ने श्रीयमुनालहरी का गान किया तब श्रीयमुनाजी साक्षात् प्रकट होकर पधारी और साक्षात् आपश्री से श्रीयमुनाजी का मिलन हुआ और फिर आपश्री श्रीयमुनाजी में समाविष्ट हो गये। इस तरह वि० सं० १६६० के लगभग आपने लीलाप्रवेश किया।

आपश्री की श्रीयमुनाजी में अनिर्वचनीय प्रीति थी। वस्तुतः आप स्वयं वही स्वरूप थे। श्रीयमुनाजी और श्रीमुकुन्दप्रभु का प्रगाढ़ सम्बन्ध श्रीयमुनाष्टक से सम्पूर्ण प्रमाणित है। आपश्री कई बार भावावेश में, चर्चा प्रसंगों में श्रीमधुरेशप्रभु (षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी) एवं श्रीयमुनाजी के कई अलौकिक प्रसंगों की चर्चा निजजनों से करते थे। श्रीयमुनाजी का स्वरूप तो नित्य संयोगिनी का है। षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु मानो मधुर वृक्ष हैं और श्रीमुकुन्दरतिवर्धिनी श्रीयमुनाजी मानो माधुरी लता होकर मधुर वृक्ष रूपी अपने स्वामी श्रीमुकुन्द प्रभु से नित्य लिपटी हुई है। **तात्पर्य यही कि श्रीमुकुन्द-रतिवर्धिनी श्रीयमुनाजी स्वरूप श्रीषष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी का नित्य संयोग तो श्रीमुकुन्दप्रभु से ही था, है, और रहेगा।** श्रीयदुनाथजी श्रीमुकुन्दप्रभु के हैं और रहेगें तथा

षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी के हैं और रहेंगे । इसमें रंचक मात्र भी सन्देह का अवकाश नहीं ही है ।

श्रीयदुनाथजी के पांच लालजी (पुत्र) एवं एक बेटीजी (कन्या) हुई । प्रथम पुत्र श्रीमधुसूदनजी (जन्म वि० सं० १६३४ चै० शु० २) द्वितीय पुत्र श्रीरामचन्द्रजी (जन्म वि० सं० १६३८ भा० शु० ७) तृतीय पुत्र श्रीजगन्नाथजी (जन्म वि० सं० १६४२ श्रा० शु० २) चतुर्थ पुत्र श्रीबालकृष्णजी (जन्म वि० सं० १६४४ ज्ये० शु० ३) पंचम पुत्र श्रीगोपीनाथजी (जन्म वि० सं० १६४७ आश्विन कृ० ३) थे । एवं कन्या का नाम श्रीदमयन्तीजी था । इनमें से क्रमशः श्रीमधुसूदनजी एवं श्रीरामचन्द्रजी का वंश चला । तृतीय लालजी श्रीजगन्नाथजी का वंश षष्ठगृह के प्रथम गृह से श्रीचिम्मनलालजी गोद आये । इस तरह प्रथम तीन पुत्रों का वंश चला । कनिष्ठ दोनों लालजी का वंश नहीं चला । इस प्रकार आपश्री के पाँचों पुत्र भी विशिष्ट प्रतिभासम्पन्न एवं अपने पिता के समान ही सेवा रसिक थे ।

जय यदुनाथ अनाथनाथ शरणागतवत्सल । जय षष्ठ सुवन प्रकटे यदुपति विठ्ठलगृह ॥
जय महारानी पति ज्ञानरूप पूरण भगवान् । जय मुकुन्द सेवा रसिक महाराज महाप्रभु ॥

गूढ़ं चरित्रं रचितं मयाऽत्र महाप्रभोः श्रीमहाराजनाम्नः ।
त्रुटिर्यदि स्याद्कृपयन्तु नाथ यतो त्वदीयत्वयुतस्सदाऽहम् ॥

श्रीनाथजी सूँआदि लेके सात स्वरूपन के पाटोत्सव की मिती

श्री श्रीनाथजी	–	फा०कृ० ७
श्री नवनीतप्रियाजी	–	**
श्री मथुराधीशजी	–	फा० शु० ७
श्री विठ्ठलनाथजी	–	वै० कृ० ७
श्री द्वारिकाधीशजी	–	आषाढ़ शु० ५
श्री गोकुलनाथजी	–	श्रा० शु० ५
श्री गोकुलचन्द्रमाजी	–	श्रा० कृ० ४
श्री मुकुन्दरायजी	–	माघ शु० ४
श्री मदनमोहनजी	–	मार्ग० शु० ५

** मिती अन्वेषणीय है

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य सूँ आदि ले के गोसाईं श्री विठ्ठलनाथजी के सातोलालजी के उत्सव की मिती

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी	–	वै० कृ० ११
गोसाईं श्री विठ्ठलनाथजी	–	पौ० कृ० ९
गो० श्री गिरिधरजी	–	का० शु० १२
गो० श्री गोविन्दजी	–	मार्ग० कृ० ८
गो० श्री बालकृष्णजी	–	आश्विन कृ० १३
गो० श्री गोकुलनाथजी	–	मार्ग० शु० ७
गो० श्री रघुनाथजी	–	का० शु० १२
गो० श्री यदुनाथजी	–	चै० शु० ६
गो० श्री घनश्यामजी	–	मार्ग० कृ० १३

॥ श्री मुकुन्दगोपाललालौ विजयेते ॥

यदुकुलभूषण षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैत मार्तण्ड गो० श्री गिरिधरजी महाराज

–मुखिया श्री नटवरजी शुक्ल

लेखक के पिता मुखिया श्री नृसिंहलाल हरीराम शुक्ल का एक लेख अन्यत्र इस ग्रन्थ में प्रकाशित है । लगभग सात-आठ पीढ़ी से वंशपरम्परागत आपके वंश के बालक श्री गोपाल मंदिर में मुखिया पद पर प्रतिष्ठित रहकर श्रीमन्मुकुन्द प्रभु की सेवा में रत् रहे हैं । प्रस्तुत लेख आपकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा का परिचायक है ।

श्रीमद्गिरिधरं वन्दे यदुनाथकुलोद्भवम् ।
यत् कृपादृष्टि पातेन पतितः पावनो भवेत् ॥

अर्थ–

(श्री यदुनाथजी महाराज के कुल में जिनका उद्भव हुआ है और जिनकी कृपादृष्टि पड़ते ही पतित से पतित भी पावन हो जाता है उन श्री गिरिधरजी महाराज का सादर वन्दन है ।)

काशिस्थ विद्वानों द्वारा आपश्री के प्रशस्ति में उपरोक्त श्लोक देते हुए आप श्री को शुद्धाद्वैत मार्तण्ड उपाधि से अलंकृत किया गया ।

श्री गिरिधरजी महाराज का प्रागट्य वल्लभकुल सम्प्रदाय में यदि एक विस्मयकारी, अभूतपूर्व व चमत्कारिक घटना माना जाय तो अतिश्योक्ति न होगी क्योंकि आपश्री का जब प्रागट्य हुआ उस समय सम्प्रदाय की व्यवस्था एक निश्चित मानदण्ड पर स्थायित्व लिए हुए चल रही थी । जहाँ श्रीजी की सेवा तिलकायित अपनी निश्चित परम्परानुसार कर रहे थे तो बाकी षष्ठनिधियों की सेवा उनके गृहाधिपति अपने-अपने यहाँ आनन्द से करने में संलग्न थे लेकिन उसमें षष्ठगृह के निधिस्वरूप का (श्री यदुनाथजी के) न तो कोई अलग स्थान था नहीं उनके पालकी पधराने की व्यवस्था थी और नहीं उनकी हटरी की आरती का अधिकार था। अर्थात् षष्ठगृह की लुप्तप्रायः स्थिति चल रही थी । और इस सम्बन्ध में कभी कोई चर्चा या वाद भी नहीं उठा कि षष्ठगृह का भी अपना अस्तित्व होना चाहिए । तब एक ऐसा स्थिरता का कार्यक्रम चल रहा था जिसमें परिवर्तन की कल्पना न तो तिलकायितश्री को थी और न ही अन्य वल्लभकुल गोस्वामी बालकों को । लेकिन कालचक्र की गति बहुत ही चलायमान है और उसके आगे स्थिरता और स्थूलता का कोई अवलम्ब नहीं है । क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार प्रभु स्वयं काल हैं तो फिर इनको निश्चित सीमा में या स्थिरता में बांधना असम्भव है और यदि प्रभु बंध भी जाते हैं तो यह उनकी लीला का ही एक अंग है, अतः जिस समय श्रीगुसाईंजी महाराज ने अपने सभी सातों बालकों के मध्य सप्तस्वरूपों (सात निधीयों) का बँटवारा किया तो श्रीयदुनाथजी महाराज ने अपनी आसक्ति श्रीनवनीतप्रियाजी में ही दिखाई (छठे बा.) और अपने लिए विचारित श्री बालकृष्णजी के स्वरूप नहीं पधराये । आप श्रीगोवर्धननाथजी, लालन श्रीनवनीतप्रियाजी में ही आसक्त रहते हुए वे तृतीय निधि स्वरूप श्रीद्वारिकाधीशजी की ही सेवा आजीवन करते रहे । अस्तु ।

कालान्तर में षष्ठलालजी श्रीयदुनाथजी महाराज के कुल में आठवी पीढ़ी में श्रीगोपाललालजी महाराज के गृह में अ० सौ० गो० श्रीमती कृष्णावती बहु जी की कुक्षि से श्रीगिरिधरजी महाराज का प्रागट्य सं. १८४७ पौष कृष्ण तृतीया को हुआ। श्रीगिरिधरजी महाराज के समस्त वैदिक संस्कार काशी में ही हुए। तदनुसार यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त वेदारम्भ संस्कार यहीं हुआ, काशी के उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा विद्याभ्यास हुआ। काशी के सुप्रसिद्ध बालशास्त्रीजी प्रभृति विशिष्ट विद्वानों द्वारा श्रीगिरिधरजी महाराज ने वेदवेदांग का सम्पूर्ण स्वाध्याय कर पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया। साथ ही साथ कर्मकाण्ड में भी पूर्ण प्रवीणता हासिल कर ली थी। शनैः शनैः आप श्री समस्त वेदोपनिषद्, शास्त्रों और साम्प्रदायिक ग्रन्थों के पूर्ण ज्ञाता हो गये और अन्ततोगत्वा आप उसके पूर्ण विद्वान हुए। आप श्री की साम्प्रदायिक सेवा भावना तथा स्वरूपासक्ति का आपश्री के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा, साथ ही आप वैदिक कर्मकाण्ड के साथ उपासना काण्ड के ज्ञाता तथा आचरणकर्ता थे। आपश्री ने आचार्यचरण के विष्णुस्वामी परम्परानुसार जो गोपालोपासना का क्रम था उसी प्रकार की गोपालोपासना की और कुछ समय उपरान्त आपश्री ने गोपालमंत्र सिद्ध कर लिया। और इसी क्रम में श्रीगिरिधरजी महाराज ने अपने निजगुरु गो० द्वारिकेशजी महाराज का सान्निध्य प्राप्त कर उनसे दीक्षा ली। अपने गुरु की कृपा से आपश्री ने कई कठोर उपासना एवं स्वाध्याय द्वारा कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जिसका दर्शन आपश्री की वाक्पटुता, प्रत्युत्पन्नमति के रूप में अनेकों बार हुआ। इसी क्रम में आपश्री ने सूर्य ग्रहण में दर्पण सिद्ध कर ''दर्पण सिद्धि'' यंत्र तैयार कर लिया, जिसके द्वारा कहा जाता है कि आपश्री नित्य अपने सेव्य लीलात्मक स्वरूप श्रीनाथजी के श्रृंगार की अलौकिक छटा का दर्शन प्राप्त करते थे। साथ ही साथ आपश्री धर्म सम्बन्धी वाद-विवाद में हर जगह हमेशा विजयी रहे और उस समय के सर्वमान्य आचार्य हुए।

पुनश्च: आपश्री को उस समय के सम्प्रदाय के वरिष्ठ आचार्य श्रीगोपेश्वरजी महाराज (द्वितीय पीठाधीश्वर) से सभी सम्प्रदायगत स्वाध्याय का अच्छा मार्गदर्शन प्राप्त हुआ ज़िससे आप काफी प्रभावित हुए।

श्रीगिरधरजी महाराज ने विद्वत्तापूर्ण ढंग से विविध ग्रन्थों की टीका व रचनाएं की वह आपश्री के पाण्डित्य व वांगमय स्वरूप की झाँकी भी कराता है। आपके प्रमुख ग्रन्थों में **अणुभाष्य विवरण, हरितोषिणी, बालप्रबोधिनी, श्रुतिरहस्य** एवं **शुद्धाद्वैत मार्तण्डादि** ग्रन्थ सम्प्रदाय की प्रमुख अध्ययन निधि है। इसके अलावा आपश्री ने ''**श्री सुबोधिनी पर टीका**'' भी लिखी तो साथ में आप श्री का '**उत्सव निर्णय ग्रन्थ**' भी सम्प्रदाय में श्रीपुरुषोत्तमजी कृत '**उत्सव प्रतान**' ग्रन्थ के समकक्ष है और यह मान्य तथा संक्षिप्त में अकाट्य निर्णय प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। इसी प्रकार शुद्धाद्वैत मार्तण्ड ग्रन्थ तो विद्वानों के लिए ब्रह्मवाद का अच्छा प्रतिपादन करने वाला और मार्गनिर्देशन प्रदान करने वाला ग्रन्थ है।

श्रीगिरिधरजी महाराज ने आचार्यचरण श्री महाप्रभु के साथ स्वरूप का सुन्दर बोधगम्य निरूपण किया है। साथ ही उनके प्रति अनन्य श्रद्धाभक्ति प्रकट करते हुए अपनी रचनाओं में सादर वन्दन किया है। जिससे आपश्री का श्रीमन्महाप्रभु के प्रति अनुराग भी हरिरायमहाप्रभु के समकक्ष लाता है। जिस प्रकार श्री हरिराय चरण का श्रीजी के साथ सेवानुभाव व सेवातत्परता हर घड़ी रहती थी और साथ में स्वाध्याय चिन्तन, ग्रन्थावलोकन, पत्रावलम्बन और उस अनुरूप उपदेश कार्य उस समय के हर वल्लभ कुल बालक निर्णयात्मक रूप में स्वीकार करते थे। ठीक उसी प्रकार की स्वरूपात्मक स्थिति श्रीगिरिधरजी महाराज की अपने काल में रही और उनके निर्णय समाधान व वादखंडन को सभी ने स्वीकार किया। शुद्धाद्वैतवाद के स्थापन कार्य में आचार्य चरण श्री महाप्रभु व उनके अनन्तर जितने भी आचार्य हुए उन सभी ने सम्प्रदाय में अलौकिक ग्रन्थों की रचना की व

शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद को पूर्णरूपेण स्थापित करने का कार्य किया परन्तु उसका पूर्णत्व कार्य श्रीगिरिधरजी महाराज द्वारा सरल, सुबोध व संक्षिप्तकरण रूप में हुआ। यदि बात को साहित्य के सन्दर्भ में कहा जाय तो ज्यादा सरल होगा कि श्रीगिरिधरजी महाराज ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। आप श्री के शुद्धाद्वैत मार्तण्ड ग्रन्थ रचना में शांकर, निम्बार्क, रामानुज व अन्य सभी मतावलम्बियों को पूर्णरूपेण निरूत्तर कर दिया है। साथ ही आपश्री ने मायावाद के सर्वोच्च खन्डनकर्ता स्वरूप आचार्यचरण श्री महाप्रभु का ''मायावाद निराकर्ता'' के रूप में निरूपण किया है।

श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्री आचार्यचरण, श्रीगुसाईंजी एवं अपने मूल पुरुष श्रीयदुनाथजी महाराज का स्मरण इस प्रकार किया है।

श्रीमदाचार्यचरणौ श्रीविठ्ठलपदाम्बुजे।
श्रीमतां यदुनाथानां श्रीमद्‌गिरिधरः सुधीः॥

चरणाम्बुजकिंजल्कपरागान् प्रणिपत्यतम्।
शुद्धाद्वैतविचारार्कं तनुते सुधियां मुदे॥

इसी प्रकार अपने पिताश्री एवं माताश्री का एवं अपने निजगुरू श्रीद्वारकेशजी महाराज का स्मरण व नमन भी सुन्दर ढंग से करते हैं-

श्रीमद्‌गोस्वामी गोपाल पितुश्चरण पंकजम्।
श्रीमन्मातुः पादयुगं कृष्णावत्या नतो स्म्यहम्॥

गुरो गोस्वामिनः श्रीमद् द्वारिकानाथशर्मणः।
पादारविन्दयुगलं प्रणमामि पुनः पुनः॥

इसी प्रकार हम देखते हैं कि श्रीगिरिधरजी महाराज उच्चकोटि की विद्वत्ता के साथ-साथ अपनी रचनाओं में श्रद्धाभाव का भी सुन्दर समन्वय रखते थे।

श्रीगिरिधरजी महाराज की (श्रीगोवर्धननाथजी) श्रीनाथजी में परम आसक्ति थी। इसी कारण आपश्री काशी से बारबार नाथद्वारा पधारते रहे और अनन्य भाव से आप श्रीजी की सेवा का आनन्द लेते रहे। लेकिन आपश्री के अन्तःकरण में अपने षष्ठगृहाधिपति श्रीयदुनाथजी महाराज एवं षष्ठनिधि स्वरूप श्रीमुकुन्दरायजी का कोई अलग स्थान व अस्तित्व न होने का निरन्तर खेद रहता था। लेकिन यह बात कभी भी आपने प्रकट नहीं की। वि. सं. १८७९ में (तिलकायित श्री मद्‌गोस्वामी) श्रीदामोदरलालजी महाराज (द्वि० दाऊजी महाराज) ने सप्तस्वरूप के मनोरथ का आयोजन किया। उसमें कार्तिक सुदी १ को श्रीजी को अन्नकूट अरोगाये और छः घरों की पालकी पधारी। उस समय श्रीगिरिधरजी महाराज भी वहाँ पधारे, सो आपके मन में बहुत ही विरह, ताप, क्लेश हुआ कि छः ओ घरो की पालकी पधारी लेकिन हमारे बड़ेन का यहाँ कुछ भी नाम नहीं है और नहीं हमारे घर की पालकी पधारी नहीं हमारे घर की हटरी की आरती उतारी। सभी वल्लभ कुल बालक अपने-अपने स्वरूप की सेवा में आनन्दचित्त से लगे हैं लेकिन श्रीगिरिधरजी महाराज का अन्तःकरण विरह में तापमय हो रहा था तभी किसी ज्ञाति बन्धु ने पूछा कि आपका चित्त उदास क्यों है तो आपश्री की विरहाग्नि फूट पड़ी कि देखो श्रीनाथजी के घर में हमारे बड़े लोगों (श्रीयदुनाथजी महाराज) की न तो हटरी की आरती और न ही पालकी पधारी इसलिए हमारे चित्त में बहुत ही उदासी है। यह सुन के सब कोई चुप हो गए। लेकिन श्रीगिरिधरजी

महाराज के मन में यह बात बहुत ही दृढ़ रूप से समाहित थी तो अन्तःकरण में यह भी भाव था कि छठें घर (श्रीयदुनाथजी) की आरती और पालकी का अधिकार संकल्पपूर्वक प्राप्त करना ही है तभी हमारे बड़ों का नाम इस घर में कायम होगा। लेकिन यह कोई साधारण कार्य नहीं था कि सहज में प्राप्त हो जाय। इसके लिए सेवा-शृंगार रीति में मर्मज्ञता, साम्प्रायिक ग्रन्थों पर पाण्डित्यपूर्ण अधिकार तथा वेदशास्त्रों, उपनिषद् का सम्पूर्ण स्वाध्यायपूर्ण चिन्तन तथा साथ में सिद्ध यौगिक चमत्कारिक स्वरूप होना भी अत्यावश्यक था। जोकि श्रीगिरधरजी महाराज में पूर्णरूपेण विद्यमान था। प्रतीक्षा तो बस अवसर मात्र की थी। अस्तु।

सप्तस्वरूपोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। श्रीगिरधरजी महाराज ने अपनी सेवा, मर्मज्ञता व पान्डित्य का स्वरूप बोध प्रकट कर दिया। आपश्री के इस स्वरूप का बोध श्री तिलकायित दाऊजी महाराज के अन्तःकरण में अच्छी तरह हो गया था। तिलकायितश्री का उद्देश्य गोपाल मंत्र की दीक्षा लेने के लिए गुरु करने का भी था। सो उस समय अनेक वल्लभ वंशज उनके यहाँ विराज रहे थे जिसमें श्रीगिरिधरजी महाराज भी थे, लेकिन वय में लगभग सबसे छोटे थे। सो प्रायः सेवा सम्बन्धी प्रकरण में तिलकायित श्री आपसे प्रश्न करते और आप तुरंत शंका समाधान कर देते जिससे तिलकायित श्रीदाऊजी आप पर बहुत प्रसन्न होते और आपकी त्वरित बुद्धि की प्रशंसा भी करते जबकि दूसरे सभी वल्लभ कुल बालक निरुत्तर हो जाते थे। इसमें कुछ प्रसंग का यहाँ वर्णन कर देना समीचीन होगा क्योंकि तभी हमें श्रीगिरिधरजी महाराज की विद्वतापूर्ण तीक्ष्ण बुद्धि का बोध होगा।

प्रसंग १. : जब भी दाऊजी महाराज ने श्री नवनीतप्रियाजी को लालबाग में पधरा कर वर्ष भर के मनोरथ किये और आपसे पूछा कि ये शास्त्रसम्मत हैं तो आपने कहा कि निकुंज में खटऋतु तो सर्वदा विराजत हैं। जासमे जैसी इच्छा होय वैसी सिद्धि हो जाय। निकुंज लीला गुप्त हती सो आपने प्रकट कर दिखाय दीनी यह सुन कर तिलकायित दाऊजी बहुत प्रसन्न हुए।

प्रसंग २. : एक समय श्री दाऊजी महाराज ने सबसे पूछा कि श्रीनवनीतप्रियाजी ४ लोटा से क्यों स्नान कर रहे हैं तो कुछ ने कहा कि ऐसी रीत है परन्तु श्रीगिरधरजी महाराज से पूछी तो आपने विद्वत्तापूर्ण ढंग से उत्तर दियो कि ४ लोटा से जो आप प्रभु स्नान करते हैं वे ४ वेद हैं, सो अभिषेक करत है। तब श्री दाऊजी ने पूछी की वेद पढ़त नहीं तो आप श्री ने उत्तर दियो की श्रुतिरूपा आप मूर्तिवत् अभिषेक करत है तहां वेद पढ़े को कहा काम है। यह सुनकर श्री दाऊजी बहुत प्रसन्न हुए।

प्रसंग ३. : एक समय श्रीदाऊजी महाराज जी ने पूछी कि श्रीनवनीतप्रियाजी के यहाँ नीचे की सीढ़ी पर खिलौना क्यों नहीं मढ़े है तो आपश्री ने उत्तर दियो की जितने लीलास्थ पदार्थ हैं वे सब निर्गुण है तथा प्राकृत गुण सदृश्य है- ताते एक पाट दूसरी बीच की सीढ़ी, तीसरो सिंहासन, पाट है सो तामस को स्थान यहाँ शतरंज चौपड़ मढ़े है सो प्रौढ़ लीला को भाव है और खिलौना, फिरंकी, झुनझुना इत्यादि बाल भाव है। सो बाललीला में प्रौढ़लीला को अनुपम भाव है। और दूसरी सीढ़ी राजस है ताते वहाँ प्रादुर्भाव सम्भव है ताते खिलौना मढ़े है और सिंहासन है सो सात्विक भाव है ताते सत्व ते ज्ञान होत है और रसात्मक पुरूषोत्तम है सो रस की सामग्री चाहिए तासू झारी, बंटा, वेणू, माला इत्यादि सब मढ़े है। सिंहासन पर है सो सब पदार्थ रसात्मक है। ये सुन के श्रीदाऊजी महाराज बहुत ही प्रसन्न भए।

प्रसंग ४. : एक दिन श्रीदाऊजी महाराज ने पूछी कि श्रीमदाचार्य महाप्रभुजी पलंगड़ी पर क्यों विराजे। तब आपश्री ने उत्तर दियो की आचार्य चरण को स्वरूप है सो रास लीलात्मक और शैय्या पलंगड़ी है, सो

रसाधार है और रसात्मक पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक है श्री मदाचार्य यातें पलंगड़ी पर ही विराजे।

प्रसंग ५. : एक दिन श्रीदाऊजी महाराज ने पूछी की श्रीनाथजी के पास श्रीमदनमोहनजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीमुकुन्दरायजी विराजे ताको हेत कहाँ, तहाँ आप श्री कहते हैं-जहाँ पूर्ण प्रादुर्भाव है तहाँ ४ स्वरूप करके प्रादुर्भाव होत है वासूदेव संकरर्षण प्रद्युम्न अनिरूद्ध ये व्युहात्मक जैसे रामावतार में राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न और पुरुषोत्तम क्षेत्र में जगन्नाथजी, बलभ्रदजी, सुभद्राजी, सुदर्शनजी ये चार स्वरूप करिके विराजे हैं और श्रीकृष्णावतार में श्रीकृष्णजी, बलदेवजी, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूप करिके प्रकट भए और चार वेद है उनके अधिदैविक स्वरूप आप हैं। याते ४ स्वरूप करिके आप विराजें हैं। और गूढ़ भाव है कि निकुंज में आप ४ रूप सू विराजे है वामभागा, श्रूतिरूपा, ऋषिरूपा श्रीयमुनाजी ये यूधाधिपति ४ स्वरूप है जैसे रासक्रीड़ा में भक्तन के जितने रूप हते तितने स्वरूप प्रादुर्भाव होय के मनोरथ पूर्ण किए तैसे ही ये ४ स्वरूप ते प्रादुर्भाव होये के चारो यूधाधिपतिन के मनोरथ पूर्ण करत है। मुख्य स्वामिनी वृषभानुजा वामभाग है तदर्थ श्रीनाथजी को स्वरूप और श्रुतिरूपा दक्षिणभाग तदर्थ मदनमोहनजी को स्वरूप और ऋषिरूपा को मनोरथ पूर्ण करत श्रीबालकृष्णजी को स्वरूप और श्रीयमुनाजी के स्वरूप पूर्णकर्ता श्रीमुकुन्दरायजी को स्वरूप है, अतएव मुकुन्दप्रिये। मुकुन्दरति वर्द्धिनी श्री यमुनाष्टक में आचार्यचरण ने कही है और रास क्रीड़ा में भगवान् अन्तर्ध्यान भए तब सब भक्तन आए के यमुनाजी के तट पर गान कियो तब भगवद् प्राप्ति भए याते ब्रह्मसम्बन्ध की मुख्यता श्रीमुकुन्दरायजी के सान्निध्य में ही है। इस प्रकार आंपश्री ने सुन्दर प्रतिपादन कर श्रीदाऊजी महाराज को अनिर्वचनीय सुख दियो।

प्रसंग ६. : एक समय श्रीदाऊजी महाराज ने पूछी कि ठाकुर जी मुकुट इत्यादि टेढ़ी क्यों धरे है तो आपश्री ने कही कि सुधा के दान के अभिप्राय ते धरे हैं। जैसे पात्र में अमृत भरो होय और सो जब टेढ़ो होय सो रस निकले तासू टेढ़ो धरे है और जब वेणूनाद करें हैं तब टेढ़ो मुखारविन्द करिके सुधारसदानार्थ वेणू नाद करे हैं। यह सुन के आपश्री बहुत प्रसन्न भऐ।

प्रसंग ७. : एक दिन श्रीदाऊजी महाराज ने पूछी कि जो श्रीनाथजी के पास सात स्वरूप हटरी पर और अन्नकूट पर ही पधारत है ताको कहा भाव है तब आपश्री ने कही कि जो हटरी है सो बाल भाव है अपने यहाँ तथा सर्वत्र हटरी बालक बैठे हैं सो ये मनोरथ ब्रजभक्तन ने निकुंज में कियो है श्रीनाथजी को मंदिर है सो निकुंज है वहाँ ब्रजभक्त सात्विकादि भेद करिके अनन्त भक्त आवें हैं तिनके मनोरथ पूर्ण करणार्थ सब स्वरूप पधारत हैं ता सू श्रीगोसाईंजी ने मनोरथ कियो है और जो अन्नकूट है सो पुष्टिमार्गीय यज्ञ है याते सब स्वरूप यज्ञादि देवतान के भाव सूं पधारे हैं।

प्रसंग ८. : एक दिन श्रीदाऊजी महाराज ने पूछी कि अष्टधा स्वरूप में कौन-कौन स्वरूप आवें हैं तब आपश्री ने उत्तर दियो कि- अष्टधास्वरूप में श्रीनाथजी, श्री मथुरानाथजी, श्री विठ्ठलरायजी, श्री द्वारकानाथजी, श्री गोकुलनाथजी, श्री चन्द्रमाजी, श्री मुकुन्दरायजी, श्री मदनमोहनजी ये अष्टधास्वरूप संयोग पृथकत्व न्याय करके जो आप अष्टधास्वरूप और चतुर्धा स्वरूप में हूं हैं अर्थात् ''षोडश गोपिका मध्ये अष्टकृष्णाऽभवन्ति या भाव सू विराजे है। ऐसे आप श्री ने प्रतिपादन किए।''

उपरोक्त प्रंसगों के अलावा अनेकानेक ऐसे प्रसंग है जिनमें श्रीगिरिधरजी महाराज ने सम्प्रदाय की सुन्दर विवेचना प्रस्तुत की है, रामानुज मत के आचार्य अनन्ताचार्य को परास्त कर शुद्धाद्वैत के मत को अच्छी प्रकार प्रतिपादित और प्रतिष्ठित किया साथ ही शास्त्रार्थ में निरूत्तर कर दिया। ये सभी प्रसंग ऐसे हैं जो आपश्री के

तीक्ष्ण बुद्धिबल और तेजस्विता का बोध कराते हैं तभी तो श्री दाऊजी महाराज ने एक दिन आपसे पूछा कि आपसे जो भी प्रश्न पूछते है उसका उत्तर आप बिना किसी पोथीग्रन्थ के देखे तुरन्त दे देते हैं इसका क्या कारण है तो आपश्री ने कहा कि यह स्वगुरु श्री द्वारकेशजी महाराज की कृपा है क्योंकि एक बार हमसे गुरु ने कुछ पूछी ताको उत्तर तुरन्त ही दियो तो गुरु प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिये कि तुमसे कोई भी वेदशास्त्र या सम्प्रदाय या किसी भी भाव में प्रश्न करेगो वाको तुम तुरन्त समाधान कर दोगे। तथास्तु।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री गिरिधरजी महाराज के मुखारविन्द में साक्षात् सरस्वती का निवास रहा है।

तिलकायित श्रीदाऊजी महाराज का व्यक्तित्व बहुत ही उदार विशाल था। श्रीगिरिधरजी महाराज के नाथद्वारा प्रवास व तिलकायितश्री से आपके निरन्तर विचारों के आदान-प्रदान से स्थिति पूर्ण घनिष्ठता व स्नेह में बदल गयी, साथ ही श्री गिरिधरजी द्वारा अनेकानेक शंका-समाधान से श्री दाऊजी महाराज अत्यन्त प्रसन्न थे। वे आप में ही श्रीयदुनाथजी महाराज के स्वरूप को देखते थे और अपनी पूर्ण श्रद्धा व आस्था प्रगट करने लगे, इसी का परिणाम था कि जब तिलकायितश्री ने गोपाल मंत्र की दीक्षा आपश्री से लेने का विचार किया तो अपने स्वजनों से विरोध हुआ पर आप दृढ़ रहे और सभी विवाद का पटाक्षेप करके आपने इक्कीस वल्लभ कुल बालकों के नाम की चिट्ठी श्रीनाथजी के सन्मुख पधरायी तो उसमें से श्री गिरिधरजी महाराज के नाम की चिट्ठी ही आयी और आए भी क्यों न ? जैसे स्वर्ण अग्नि के संयोग होने पर कंचन और भी जागृत होकर चमक के साथ निकलता है। उसी प्रकार श्री गिरिधरजी महाराज स्वर्णकांचन सी चमक लिए हुए तिलकायित श्री के अन्तःकरण में प्रगट हुए।

पुनश्च वि. सं. १८७९ के माघ सुदी १५ को चन्द्रग्रहण पड़ा सो श्री दाऊजी महाराज ने बड़ा पर्व जानकर गोपाल मंत्र की दीक्षा श्रीगिरिधरजी महाराज से ले ली। दीक्षोपरान्त गुरुदक्षिणा का प्रश्न उपस्थित हुआ तो श्री द्वारकेशजी महाराज ने कहा कि ये स्वजनों से लौकिक द्रव्यादि तो लेंगे नहीं लेकिन आप शान्तचित्त रहें। फिर कुछ समय बाद जब तिलकायित श्री ने पुनः प्रश्न उठाया कि आप दक्षिणा में कौन सी ऐसी अलौकिक वस्तु मांगना चाहते हैं तब आपश्री ने अवसर जानकर तुरन्त ही कहा कि हम जो मांगेंगे वह आपसे दिया नहीं जाएगा। पर तिलकायित दाऊजी महाराज जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, बड़े ही उदारमना चरित्र के नायक रहे, कहा कि आप जो भी मांगेंगे हम वचनपूर्वक कहते है वही दियो जाएगो तब आपश्री ने कहा हमको तो श्रीयदुनाथजी महाराज के घर के ठाकुर उनकी हटरी की आरती व पालकी पधारे यही मांगना है क्योंकि षष्ठगृहाधिपति श्रीयदुनाथजी के घर का यहाँ कुछ भी नाम नहीं है यही तापक्लेश और विरह सबसे ज्यादा है। वहीं पर श्री दाऊजी महाराज को यह आभास व भगवत् प्रेरणा भी हो गयी कि ये श्रीगिरिधरजी महाराज साक्षात् श्रीयदुनाथजी महाराज के स्वरूप हैं और अब षष्ठगृह की पालकी पधराने, हटरी की आरती तथा षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को पधराने का उचित समय शायद श्रीजी की आज्ञा से हो गया है। कुछ उहापोह के बाद अन्ततोगत्वा ति. श्रीदाऊजी महाराज ने सहर्ष षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को पधराने का वचन दिया। लेकिन श्रीगिरिधरजी महाराज तो कालदृष्टा थे वे इतने पर भी सन्तुष्ट नहीं थे आपश्री ने विनती करी की आपके वचन तो सत्य संकल्प के समान है परन्तु भविष्य को कोई नहीं जानता, अतः आप इसे लिखित दस्तावेज में माड़ देवें तो अतिशय कृपा होयगी। अन्ततः श्रीदाऊजी महाराज ने वि. सं. १८८० आश्विन सुदी ६ को लिखित दस्तावेज षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी के पधराने का श्रीगिरिधरजी महाराज के माथे माड़ दिया और अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी। साथ में श्रीजी के वेणूजी व आचार्य चरण के हस्ताक्षर भी प्रदान कर दिये और श्रीनवनीतप्रियाजी

के श्रृंगार वारा हटरी की आरती भी लिखित रूप में माढ़ के प्रदान कर दी। लेकिन श्री दाऊजी महाराज ने आपको यह सावधान किया कि अभी पधराने की व्यवस्था का समय ठीक नहीं है। कुछ कालोपरांत उचित समय पर षष्ठीनिधि को आय पधराय ले जाओ। तब तक आप आनंद से षष्ठनिधि के मंदिर निर्माण व व्यवस्था कार्य करे।

इतना वचन लेकर श्रीगिरिधरजी महाराज वापस काशी पधारे और पूर्ण उत्साह से श्रीजी के वेणू जी को श्री गोपाललालजी के पास पधरा कर सानन्द प्रभु का अन्नकूट किया और उसके बाद आपने श्रीमुकुन्दरायजी के मन्दिर की आधारशिला पूजन कर उस कार्य को शुरू कर दिया। इधर आप द्रव्यादि संग्रह व जनसम्पर्क के सिलसिले में दक्षिण पधारे उधर ति. श्री दाऊजी महाराज परदेश करते हुए श्री गोकुल में आकर लीला में पधारे। सो श्रीगिरिधरजी महाराज के लिए एक बार फिर बहुत ही धर्मसंकट की घड़ी आयी लेकिन आपश्री विचलित नहीं हुए। तभी संयोग से श्रीलक्ष्मीबहुजी (धर्मपत्नी श्री दाऊ जी महाराज) का आपको तुरंत पधारने का बुलावा आया और आप श्रीजीद्वार पधारे। श्रीलक्ष्मीबहुजी महाराज से आपने कहा कि महाराज श्री हमको ठाकुरजी पधराने कह गए हैं सो ये बात की आपको जानकारी है? तब श्रीलक्ष्मीबहूजी ने कहा कि हमको जानकारी है। तब पुन: आपश्री ने कहा कि आप इसे लिखित रूप में माढ़ कर हमें दें। तो बहुजी महाराज ने लिखित माढ़ कर दे दिया तब आपश्री ने दाऊजी महाराज के लिखित दस्तावेज दिखाए तो बहुजी महाराज बोले कि आपने ऐसा क्यूं किया तो आपश्री ने उत्तर दिया कि मुझे आपके भी तो हस्ताक्षर चाहिए क्योंकि आप उनकी धर्मपत्नी हैं। पुनश्च आपने विनती की कि आप अपने भैया बन्धन से भी एक साक्षीपत्र लिखवां कर दे दें तो ठीक रहेगा क्योंकि लौकिक में लोग बिना बात के विभ्रम की स्थिति बाद में खड़ा कर देते हैं। तब श्री बहुजी महाराज ने विधिवत् एक शपथपत्र लिखवाया जिसमें षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी की पालकी पधराने की विधि क्रम तथा श्रीजी के पास विराजने का स्थान छठे घर की हटरी की आरती सविधिपूर्वक लिख दिया और साक्षी में श्रीगोपेश्वरजी महाराज द्वितीय पीठाधीश श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, श्रीगोवर्धनजी बम्बईवाले, श्रीद्वारकेशजी महाराज तथा श्रीनाथजी के अधिकारी श्रीदेवकृष्णजी साक्षी सहित शपथ-पत्र विधिवत् लिख दिया गया। इस प्रकार वह शुभ घड़ी आ ही गयी जिसकी श्रीगिरिधरजी महाराज के अन्त:करण में बड़ी ही उत्साह और उमंगता से प्रतीक्षा थी। वि. सं. १८८५ का० सु० १ श्रीजी के यहाँ से राजभोग अरोग के श्री मुकुन्दरायजी (षष्ठनिधी) व गोद में श्रीअनन्तशेषजी सम्पुट में विराजकर आनन्द मंगल करते बधाई गाते अपने नाथद्वारा स्थित मंदिर में आकर पाट पर विराजे दुबारा राजभोग अरोगे और श्रीगिरिधरजी महाराज ने आनन्द से पाटोत्सव के तिलक किये आरती उतारीं। तदन्तर पुन: जब श्रीजी के यहाँ अन्नकुट अरोगने के लिए षष्ठनिधी श्रीमुकुन्दरायजी को पधराने का श्रीमांजी महाराज एवं बहु जी महाराज का आमंत्रण लेकर श्रीजी के अधिकारी श्रीगिरिधरजी महाराज के पास आए तब आपश्री ने हर्षातिरेक पूर्वक श्रीमुकुन्दरायजी की पालकी पधराने की तैयारी करी और फिर पूरे साज सामाज छड़ी, छांगीरी, झण्डा, निशाना सहित पुष्पवृष्टि होते में श्रीयदुनाथजी के छठ्ठे घर की पालकी में षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवारों के माथे विराजकर श्रीजी के पास अन्नकूट अरोगने पधारे। ऊपर से श्रीमुकुन्दरायजी के मन्दिर से लेकर श्रीजी के द्वार तक पक्का जाब्ता फौज की पंगत सुरक्षा व्यवस्था के लिए खड़ी थी। श्रीजी के सम्मुख होकर श्रीमुकुन्दरायजी श्रीजी के पास विराजे और आनन्दपूर्वक अन्नकुट अरोगें। श्रीगिरिधरजी महाराज की प्रसन्नता का पारावार नहीं उनके आनन्दमन का वर्णन कठिन था और हो भी क्यों नहीं, कहाँ सदा से छ: घर की पालकी ही पधारे और हटरी की आरती भी छ: घर की तरफ से होय और श्रीयदुनाथजीमहाराज

का कुछ भी नाम नहीं वह कार्य आज श्रीयदुनाथवंशोद्भव श्रीगिरिधरजी महाराज काशीवारों के माथे विराजकर पूर्ण हुआ और छठवें घर की रीत परम्परा श्रीगिरिधरजी महाराज को कायम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और साथ में आपश्री को षष्ठगृहाधिपति का पद भी प्राप्त हो गया।

पुनश्चः श्रीजी द्वार से पूरे लावलश्कर साजसमाज सेवक सहित श्रीमुकुन्दरायजी काशी पधारे। अगहनवदी ११ को प्रस्थान करके जगह-जगह प्रवास करते हुए सुखपाल में और नाना प्रकार की लीला करते हुए और श्रीगिरिधरजी महाराज यशोदोत्संगलालित भाव से सेवा करते हुए श्रीमुकुन्दरायजी को वि० सं० १८८५ माघ सुदी ४ को काशी लाकर पाट पर पधराये और तिलक, आरती भई। यह दूसरो पाट उत्सव मानो गयो घर को उत्सव। काशी में जब श्रीमुकुन्दरायजी को ले श्री गिरिधरजी महाराज षष्ठपीठाधीश के रूप में पधारे तो ऐसा हर्षोल्लास के साथ स्वागत हुआ जो कि अवर्णनीय व अनिर्वचनीय सुख देने वाला था। मानों शिव की काशी नगरी मुकुन्दमय हो गयी थी। और श्रीगिरिधरजी महाराज का स्वरूप विजयी व देदीप्यमान झलक रहा था। और यह स्वाभाविक भी था, यह सम्प्रदाय का एक ऐतिहासिक क्षण था।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि श्रीगिरिधरजी महाराज के पाण्डित्य विद्वत्ता आदि का पहले ज़ो गुणानुवाद किया गया था वह प्रसंगों में और श्रीमुकुन्दरायजी को प्राप्त करने तथा यदुनाथजी के घर की हटरी की आरती तथा पालकी पधराने और अपने कुल का नाम स्थापित करने में पूर्ण सहायक रहा जो शायद अन्य किसी के वश की बात भी नहीं। तभी तो श्रीगिरिधरजी महाराज की उत्कट अभिलाषा श्रीमुकुन्दरायजी को प्राप्त करने की जो कि इस श्लोक से प्रकट है–

श्री मुकुन्दराय ! त्वच्चरणसरोजे मन्मनो भंगः
वांस करोतु संततमत्स्त्वां पतिं विभुं नौमि ॥

ठीक उसी प्रकार जैसे स्त्री अपने पति को पाने की अभिलाषा में रत् रहती है। लेकिन साथ ही आपश्री अपने पितृत्व स्वरूप श्रीगोपाललालजी का स्तवन भी सादर करते हुए स्मरण कहते हैं क्योंकि इन्हीं की सेवा कृपा बल से श्रीमुकुन्दरायजी प्राप्त हुए।

श्रीमद्गोपाललालस्य पातुः संसारसागरात्।
हृदयेकलाभ्ये तत्पादपद्महर्निशम्।

श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्रीमहाराजजी के स्वरूप में प्रगट होकर जो अलौकिक कार्य किया है वह अविस्मणीय है। श्रीमुकुन्दप्रभु षष्ठगृह काशी के अक्षुष्ण निधी है तो सम्प्रदाय के देदीप्यमान स्वरूप है। आपने अपनी विद्वत्ता से अपने समय के सभी पंडितों को नतमस्तक किया तो अपने सिद्ध यौगिक स्वरूप से चमत्कार भी दिखाया। आपने श्रीमहाप्रभु के स्वरूप को वैदिक प्रमाणों द्वारा निगमन कर उनका माहात्म्य बतलाया है तो अपने श्रीयदुनाथजी के कुल को पुनः पुनः चमत्कृत भी किया है। सम्प्रदाय के ग्रन्थों का पुनरावलोकन एवं सरल टीकाकरण के द्वारा आपश्री ने विदुषजनों को एक दीपक भी दे दी। लेकिन सबसे उज्जवल धवल और आनन्दमय पक्ष आपश्री का ये रहा कि शिव की नगरी काशीपुरी जिसमें जीव मृत्युपरांत शिवमय हो जाता है उस शिव धाम में श्रीगिरिधरजी महाराज ने श्रीमुकुन्दप्रभु को पधराकर "मुक्तिं ददातिती मुकुन्दः" व्याख्या को चरितार्थ कर दिया, अर्थात काशी के जीव मुक्ति और भक्ति दोनों के समन्वय से पूर्णानन्द रसमयनन्दनन्दन श्री मुकुन्दप्रभु के श्रीगोलोकधाम का अनिर्वचनीय सुख पा रहे हैं तो मुकुन्दरतिवर्द्धिनी श्रीयमुनाजी के रूप में पतित

पावनी भागीरथी गंगा का पान भी कर रहे हैं तो साथ में सरस्वती के साक्षात् रूप में श्रीगिरिधरजी महाराज के अलौकिक स्वरूप का भी दर्शन प्राप्त हो रहा है ।

ऐसे श्रीयदुकुलभूषण, महाचरितनायक, शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, षष्ठगृहाधिपति श्रीगोस्वामी वर्य १०८ श्रीगिरिधरजी महाराज के श्रीचरणों में शत्-शत् नमन एवं सादर वन्दन हैं ।

श्रीगिरिधरजी महाराज ने ब्रह्मसूत्र त्रिसूत्री अणुभाष्य टीका के प्रारम्भ में अपने मूलपुरुष श्री यदुनाथजी से लेकर अपने पू० पितृचरण तक सबों को निम्नलिखित श्लोकों में वन्दन किया है–

श्रीमत्प्रभुचरणात्मजगोस्वामीन्द्रोमहाराजः ।
यत्कृपया मयि राजनि पुष्टिफला राज्यवरलक्ष्मीः ॥
तत्सूनोर्मधुसूदनस्य चरणौ प्रद्युम्ननामा विभुर्योऽ-
भूत्तत्तनयस्तदीयचरणौ नौम्यर्थदौ सन्ततम् ।
श्रीमद्विठ्ठलनाथनामतनयो योऽभूत्तु सर्वार्थदः
तत्पादौ प्रणमामि तस्य तनयः प्रद्युम्ननामा विभुः ॥
तत्पादाब्जयुगं नमामि तनयो यस्तस्य सेवार्थभूः
श्रीमद्विठ्ठलनाथनाम पुरुषस्तत्पादयुग्मे नतिः ।
तस्याऽऽसीत्तनयौ मदीयजनको गोपालनामा विभुः
गोस्वामीकुलवारिधौ हिमकरस्तत्पादपद्मे नतिः ॥

●

धन्य-धन्य पौष मास बदी तीज रे आज सोहेलो ॥
प्रगट्या-प्रगट्या श्री गिरधर लाल रे आज सोहेलो ॥
धन्य श्री जीवन जी ने घेर रे आज सोहेलो ॥
श्री गोपाल जी ने सुत थया रे आज सोहेलो ॥
धन्य श्री कृष्णावती बहुजी कुख रे आज सोहेलो ॥
जेने ऐवा सुत प्रगट्या रे आज सोहेलो ॥
ते समय दान बहु दीध रे आज सोहेलो ॥
भुषण वस्त्र विप्र ने दिधा रे आज सोहेलो ॥
त्यां तो भक्त नी भीड़ अपार रे आज सोहेलो ॥
भक्त सहु मिलि मंगल गावे रे आज सोहेलो ॥
बाजे ढोल झाँझ मृदंग रे आज सोहेलो ॥
त्यां तो वाजिन्त्र बाजे अनेक रे आज सोहेलो ॥
हथा कुमकुम ना देवाय रे आज सोहेलो ॥
द्वारे कलशी खम्भ रोपाय रे आज सोहेलो ॥
चौक मा चित्र साथिया थापे रे आज सोहेलो ॥
प्रगट्या प्राण ना आधार रे आज सोहेलो ॥
वैष्णव नाचे हरखे गाये रे आज सोहेलो ॥
त्यां तो पुष्प नी वरखा थाये रे आज सोहेलो ॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ श्री १०८ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज का जीवन चरित्र

–श्रीराधेकृष्ण अग्रवाल (काजूबाबू)

आज से ९५ वर्ष पूर्व वि० सं० १९६१ की चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण के वंश में श्री वल्लभ की गोकुल कही जाने वाली काशी में एक ऐसी दिव्य विभूति का प्राकट्य हुआ, जिसने पूर्वांचल के एक मात्र पुष्टिमार्ग के केन्द्र श्री गोपाल मन्दिर काशी में षष्ठपीठ गोपाल मन्दिर की गादी पर विराजकर सम्पूर्ण भारत में पुष्टिमार्गीय सेवा साधना का एक ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया जो समस्त वैष्णवजनों के लिए अनुकरणीय एवं वन्दनीय है। लगभग ८० वर्षों तक षष्ठपीठानुयायी वैष्णवजनों का अद्भुत नेतृत्व करते हुए आपने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते हुए सम्पूर्ण धरती को आप्लावित एवं आह्लादित किया।

काशी की इस गौरवशाली षष्ठपीठ पर अनेकानेक महान विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनको इस 'पीठ' की महत्ता अत्यन्त सम्मानित स्थिति में पहुँचाने का महान श्रेय प्राप्त है। शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज एवं उनकी सुपुत्री श्री श्यामाबेटीजी एवं उनके द्वारा षष्ठपीठ की गादी पर विराजित उनके दौहित्र श्री जीवनलालजी इस शृंखला के महान स्तम्भ थे। आपश्री के दो पुत्र हुऐ, बड़े श्री गिरिधरलालजी एवं द्वितीय श्री मुरलीधरलालजी थे। आपश्री को एक पुत्री श्री बेटीजी हुई। इस महान गृह में श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने प्रादुर्भूत होकर बाल्यकाल से ही अपने अद्भुत चरित्रों एवं लीलाओं के द्वारा जन-जन को आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था।

नित्यलीलास्थ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज श्री की माता श्री श्री प्रभावती बहूजी अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं अपूर्व विदुषी थी। बाल्यकाल से ही उन्होंने श्री मुरलीधरलालजी महाराज के हृदय एवं आचरण में अलौकिक संस्कारों का समावेश करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। षोडश ग्रन्थों एवं विभिन्न स्तोत्रों के पाठ के साथ ही साथ पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों एवं उनके आदर्शों का अध्ययन एवं उनको उनके आचरण में उतारने का उन्होंने पूर्ण प्रयास किया था। पूज्यपाद महाराजश्री अक्सर अंतरंग वैष्णवों को बताया करते थे कि उनकी माताजी यह कठोरतापूर्वक आदेश दिया करती थीं कि अमुक अमुक पाठ एवं जपकर लेने पर ही कलेवा मिलेगा। अपनी माताश्री के प्रति गुरुचरणों की इतनी अगाध श्रद्धा थी कि उन्होंने प्रभावती प्रकाशन के नाम से ही एक संस्था पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित किया था। यज्ञोपवीत व विद्याध्ययन के पश्चात् आपश्री का विवाह कामवन के पंचम पीठाधीश्वर श्री देवकीनन्दनजी महाराज की दौहित्री श्री प्रेमाप्रियाबेटीजी से संवत् १९७८ में हुआ। किशोरावस्था तक पहुँचने पर आपने देश के सम्पूर्ण भागों में प्रवास करने का कार्यक्रम बनाया व अनेकानेक यात्रायें आयोजित की, जिनके माध्यम से पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का अगाध प्रचार एवं प्रसार किया।

काशी के वैष्णव समाज के साथ-साथ यहाँ के सम्भ्रान्त परिवारों में आपश्री विशेष लोकप्रिय थे। एवं काशी के विद्वत्समाज में भी आपश्री को विशेष आदर प्राप्त था। काशी नरेश के साथ आपका बड़ा ही सौहार्दपूर्ण

व्यवहार था। गोपाल मन्दिर के विशेष उत्सवों-महोत्सवों के अवसर पर बराबर काशी नरेश के यहाँ महाप्रसाद भेजा जाता था एवं काशी के विश्वप्रसिद्ध भरत मिलाप में महाराज काशीनरेश के साथ पूज्य महाराजश्री भी हाथी पर सवार होकर भरतमिलाप का दर्शन करने पधारते रहे। उल्लेखनीय है कि काशी नरेश के हाथी से महाराजश्री का हाथी थोड़ा आगे ही रहा करता था।

कालान्तर में अपरिहार्य कारणों से आचार्यश्री ने भरत मिलाप में पधारना समाप्त कर दिया था, परन्तु सेवरी मंगल व गिरि सुमेर की झाँकी पर तथा इसके अलावा इच्छानुसार अन्य लीलाओं में भी बराबर दर्शन के लिए पधारते रहते थे। काशीनरेश से आपका इतना आत्मीय सम्बन्ध था कि वे आपके लीला प्रवेश के सिर्फ एक दिन पहले ही रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में जहाँ आपका इलाज चल रहा था, स्वयं मिलने एवं हाल लेने पधारे थे।

विक्रम सम्वत् १९८५ में काशी में देश के सम्पूर्ण विद्वानों के साविध्य में ब्राह्मण महासम्मेलन आयोजित हुआ था। इस अभूतपूर्व सम्मेलन में नाथद्वारा, काँकरोली, मथुरा एवं काशी के गोस्वामी बालकों के साथ चारों वैष्णव सम्प्रदायों के आचार्यों ने भी भाग लिया था जिसमें पधार कर आपश्री ने अपने अद्भुत वक्तव्य द्वारा सम्पूर्ण विद्वानों को चमत्कृत कर दिया था।

लगभग ३० वर्ष पूर्व काशी में १०८ श्रीमद्भागवत सप्ताह माध्व गौडीय चैतन्य सम्प्रदायाचार्य गो० श्री पुरुषोत्तमजी महाराज की अध्यक्षता में आयोजित हुआ था जिसमें आपश्री अपनी गरिमा के अनुकूल छत्र छड़ीदार सहित वैष्णव समाज के साथ पधारे थे और गो० श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज ने आपको बड़ा ही आदर एवं सम्मान प्रदान किया था। उपरोक्त अवसर पर आपने अपने उद्बोधन में यह आज्ञा किया था कि श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण ने श्रीमद्भागवत को प्रमाण रूप में स्वीकार कर प्रस्थानत्रयी को प्रस्थान चतुष्टय का स्वरूप प्रदान किया था। श्रीमद्भागवत के विषय में विशद चर्चा करते हुए आपने अपने प्रभावशाली वक्तव्य से उपस्थित समस्त श्रोताओं को मुग्ध कर दिया था। आपश्री के श्रीमद्भागवत प्रेम व श्रीमद्भागवत के गूढ़ ज्ञान ने वैष्णवजनों के हृदय में बहुत बड़ा स्थान बना लिया था। इसके अलावा भी प्राय: आपश्री वाराणसी के धार्मिक एवं आध्यात्मिक आयोजनों में पधारते थे एवं वहाँ उपस्थित विद्वत् समाज तथा सम्भ्रान्त लोगों द्वारा आपश्री को मर्यादा व सम्मान प्राप्त किया जाता रहा।

पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली की अगाध जानकारी आपको अपने पूर्वज शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्रीगिरिधरजी महाराज से विरासत में प्राप्त थी एवं देश में जहाँ-जहाँ भी आप पुष्टिमार्गीय साम्प्रायिक आयोजनों एवं अन्यान्य गोस्वामी बालकों के परिवारों में विवाह प्रस्तावादि कार्यक्रमों में पधारते थे, वहाँ-वहाँ अपनी अगाध जानकारी के कारण पूर्णरूप से समादृत होते थे। बल्लभ सम्प्रदाय के प्राय: सभी गोस्वामी बालक आपसे अपनी शंकाओं का समाधान किया करते थे।

षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी जब श्रीनाथद्वारा पधारे थे तो इसी प्रकार एक बड़ा अद्भुत प्रसंग उपस्थित हुआ था। रक्षाबन्धन के दिन आपश्री ने श्रीजी के मुखिया जी को संदेश भेजा कि मुझे श्री के श्रृंगार में पहुँचना है। मुखियाजी बड़े असमंजस में पड़े, जब वे तिलकायितश्री के यहाँ आज्ञा लेने गये तो तिलकायितश्री ने कहा कि हमारे पूर्वजों का गुरु गृह काशी का घराना है व काशी के घर के गोस्वामी बालकों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे श्री के किसी भी उत्सव में नाथद्वारा में मौजूद रहें तो यदि वे चाहें तो श्रृंगार व आरती में पहुँचने का उन्हें सर्वप्रथम अधिकार है। इस प्रकार आपश्री अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सदैव जागरूक रहा करते थे।

साम्प्रदायिक मर्यादाओं के पालन में आपश्री का महान आग्रह रहा करता था।

अर्धशती पूर्व मेरी माताजी व्रजयात्रा एवं श्रीनाथ द्वारा यात्रा के लिए गयी थी तो आपश्री ने देहली में विराज रहे, तिलकायितश्री दामोदर लालजी का पता दिया था तथा आग्रह किया था, कि वहाँ जाकर जरूर उनका चरण स्पर्श करना। गो० तिलकायित १०८ श्री गोविन्दलालजी महाराज लगभग चार-पाँच दशक पूर्व काशी पधारे थे एवं मोती झील में ठहरे थे। षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर के प्रांगण में जब तिलकायितश्री पधारे तब महाराजश्री ने उनको साष्टांग दण्डवत् किया। तिलकायितश्री बड़े ही संकोच में पड़ गये थे और उन्होंने ऐसा न करने का आग्रह किया तो महाराजश्री ने कहा कि तिलकायित होने के नाते आपके उच्च पद का सम्मान करना मेरा परम कर्तव्य है। लगभग तीस वर्ष पूर्व वर्तमान तिलकायित श्री दाऊजी महाराज काशी पधारे थे तथा गायघाट स्थित बिड़ला भवन में ठहरे थे। उन्होंने महाराजश्री से विनम्र अनुरोध किया कि प्रेङ्खपर्यंक शयनम् का पर्यंकस्वरूप दिव्य पालना नाथद्वारा में तो है नहीं, आपके यहाँ ही है उसका मैं दर्शन करना चाहता हूँ। महाराजश्री एकाकी होने के कारण उपरोक्त प्राचीन पालना निकालते नहीं थे। लगभग ५०-६० वर्षों से उपर्युक्त पालने का दर्शन जन साधारण को नहीं हुआ था। लेकिन महाराजश्री ने श्री दाऊजी महाराज का आग्रह स्वीकार करके पालना का दर्शन कराना स्वीकार किया। आनन-फानन में कुछ खास-खास वैष्णवों को सूचना दी गयी एवं कुछ भाग्यशाली जनों को आपश्री की कृपा से उस दुर्लभ पालने का अर्द्धशताब्दी के बाद दर्शन हुआ। लेखक को स्मरण है कि उपरोक्त पालने के दर्शन के समय रागमालकोष में प्रेङ्खपर्यंक शयनम् आदि पद गाये जा रहे थे।

सन् १९६६ ईस्वी में श्रीनाथद्वारा के तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज ने नाथद्वारा में सात स्वरूप का उत्सव करके छप्पनभोग का बहुत बड़ा आयोजन करने का संकल्प किया। महाराजश्री बहुत चिन्तित थे कि इस अवसर पर श्री मुकुन्दरायजी को वहाँ पधराया जाय या नहीं। श्रीजी द्वार से लगातार निमंत्रण पर निमंत्रण आ रहे थे और आपश्री कोई निर्णय नहीं कर पा रहे थे। उसी समय श्री तिलकायितश्री ने कलकत्ते वाले काकू बाबू को भेजा जिन्होंने महाराजश्री तिलकायितश्री का निमंत्रण निवेदित किया और बहुत समझाया कि नाथद्वारा से जो षष्ठपीठ का अधिकार प्राप्त है उसके अनुसार श्री मुकुन्दरायजी को पधराना अति आवश्यक है। पूज्य महाराजश्री को यह बात बड़ी ही समीचीन व उचित लगी। आपश्री ने श्री मुकुन्द प्रभु को नाथद्वारा पधराने की घोषणा कर दी। वैष्णवजनों में हर्ष की लहर फैल गई व सहस्त्रों वैष्णवों ने साथ में धूमधाम से जाने का निर्णय कर लिया। प्रभु की यात्रा प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम कानपुर होते हुए मथुरा पधारे। मथुरा में अलौकिक लीला का दर्शन हुआ। मथुरा में श्री यमुना जी का जल सीढ़ियों को पारकर वल्लभ घाट से विश्राम घाट की पूरी सड़कों पर हिलोरें ले रहा था। उसी जल में होते हुए श्री मुकुन्दरायजी को पंधराकर महाराजश्री ने श्री बड़े मदनमोहनजी के मन्दिर में विराजित किया।

कृष्णावतार में वसुदेवजी द्वारा कृष्ण कन्हैया को यमुना जल के बीच से पधराने की लीला का पुनः साक्षात् दर्शन हुआ। महाराजश्री ने जैसे ही श्री यमुनाजी से प्रभु की झाँपी का स्पर्श कराके मन्दिर के अन्दर प्रवेश किया, श्री यमुनाजी का जल घटना शुरू हो गया। मानो मुकुन्दरतिवर्द्धिनी, मुररिपोः, मुकुन्दप्रिये, भवति वै मुकुन्देरतिः इत्यादि श्लोकों से यमुनाष्टक स्तोत्र में वर्णित श्री यमुना महारानी श्री मुकुन्द प्रभु के चरणों को स्पर्श करने वास्ते ही आह्लादित एवं आप्लावित हो रही थी। उफान के पश्चात् श्री चरणार-विन्दों का स्पर्श होते ही शान्त होने का उपक्रम करने लगीं। मथुरा से जतीपुरा भरतपुर होते हुए श्री मुकुन्द प्रभु की यात्रा आगे बढ़ी व उत्तर प्रदेश के बाद राजस्थान की धरती को स्पर्श करते हुए अनेकानेक प्रदेशों को सनाथ करते हुए मि० श्रावण शुक्ल अष्टमी

दिनांक २३ अगस्त, १९६६ को नाथद्वारा पहुँची। तिलकायितश्री को आपके पधारने का समाचार प्राप्त हो ही चुका था, उन्होंने श्रीजीद्वार से बाहर ही बड़े धूमधाम से श्री मुकुन्द प्रभु एवं महाराजश्री का स्वागत किया एवं बाजे-गाजे के साथ कीर्तन करते हुए प्रभु को श्रीजी के मन्दिर के परिसर में ही स्थित श्री गोकुलनाथजी के मन्दिर में पधराया। कई दिन तक अनेकानेक दिव्य मनोरथों का आयोजन हुआ। आपश्री काशी के हाथी दाँत का दुर्लभ पालना जिसके जोड़ का पालना विश्वभर में कोई नहीं है, साथ में ले गये थे। उस पालने में श्री नवनीतप्रियाजी पधारे एवं असंख्य वैष्णवों ने उनका दर्शन किया। नाथद्वारा में श्रीजी के स्वर्ण हिण्डोले में श्री मुकुन्द प्रभु विराजे व वैष्णवजनों ने उनके दर्शन का लाभ भी प्राप्त किया। मि० श्रावण शुक्ल नवमी दिनांक २४ अगस्त, १९६६ को छप्पनभोग का महामहोत्सव आयोजित हुआ। सात स्वरूपों में अधिकांश स्वरूप श्रीजी द्वार पहुँच चुके थे। छप्पनभोग में सभी स्वरूप विराजे एवं लगभग १२ घंटों तक लगातार दर्शन चलता रहा एवं शताब्दियों बाद वैष्णवों को सप्तस्वरूपों के दर्शनों का अद्भुत लाभ प्राप्त हुआ। छप्पनभोग के समय कौन-कौन से स्वरूप श्रीनाथजी के सम्मुख कहाँ-कहाँ विराजे इसका उल्लेख महाराजश्री ने लिखित रूप में रखा है। श्रीजी के साथ छप्पनभोग के पश्चात् श्री विठ्ठलनाथजी के मन्दिर में तत्पश्चात् कांकरोली श्री द्वारकाधीशजी के साथ श्री मुकुन्दप्रभु छप्पनभोग अरोगे तथा समस्त उपस्थित वैष्णवजनों को दोनों स्थानों पर दर्शनों का लाभ प्राप्त हुआ। इस आयोजन के पश्चात् थोड़े समय तक नाथद्वारा में विराजकर श्री मुकुन्दप्रभु जयपुर, भरतपुर होते हुए जतीपुरा पधारे, वहाँ पर पूज्य महाराजश्री मोती महल में ठहरे थे और वहीं पर श्री मुकुन्द प्रभु का भी मुकाम हुआ। श्री गिरिराजजी के मुखारबिन्द पर कुनवारा का आयोजन हुआ जिसमें प्रथम निधि स्वरूप श्री मथुराधीशजी के साथ श्री मुकुन्दरायजी कुनवारा अरोगे प्रथमपीठाधीश्वर श्री रणछोड़लालजी महाराज (प्रथमेश जी) ने जो उस समय जतीपुरा में विराज रहे थे पूज्य महाराजश्री का बड़ा ही स्वागत एवं सम्मान किया। लेखक को स्मरण है कि पूज्य महाराजश्री उन दिनों जब भी श्री मथुराधीश के दर्शनों के लिए पधारे तब-तब श्री प्रथमेशजी ने श्री मथुराधीश की आरती एवं माला इत्यादि की सेवा स्वयं न करके उनको करने का अवसर दिया। जन्माष्टमी तक जतीपुरा में मोतीमहल में ही प्रभु विराजे एवं जन्माष्टमी का उत्सव वहीं पर मनाया। जन्माष्टमी के उत्सव के लिए पूज्यपाद महाराजश्री बहुत सा साहित्य साथ में नहीं ले गये थे, इस निमित्त उन्होंने अपने विशेष कृपापात्र परम भगवदीय श्री रामकृष्णदासजी नागर हाथीदाँत वालों को काशी भेजा जो समस्त साहित्य मन्दिर से निकाल कर जतीपुरा ले गये एवं जतीपुरा में जन्माष्टमी का महोत्सव बड़े आनन्दपूर्वक मनाया गया। तत्पश्चात् पूज्य महाराजश्री प्रभु को पधरा कर हरदोई ले गये, जहाँ महाराजश्री के खवास तथा परमभगवदीय श्री जगनजी के घर पर विराजे। और वहाँ पर बड़ा सुन्दर मनोरथ का आयोजन हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से चलकर लखनऊ में मुकाम हुआ जहाँ वैष्णव समाज ने बड़े उल्लास के साथ स्वागत किया एवं अनेक दिव्य मनोरथों का आयोजन भी हुआ। लखनऊ के पश्चात् यात्रा काशी की ओर अग्रसर हुई एवं काशी के वैष्णव समाज ने काशी के बाहर ही प्रभु का अभूतपूर्व स्वागत किया। सारनाथ में परम भगवदीय सोनावाला के बगीचा में श्री मुकुन्द प्रभु का मुकाम हुआ। प्रभु वहाँ विराजे एवं वहाँ भी बड़े ही भव्य मनोरथों का आयोजन हुआ। जिसका वैष्णव समाज ने अद्भुत आनन्द प्राप्त किया। तत्पश्चात् बड़ी भव्य शोभा यात्रा के साथ प्रभु निज मन्दिर की ओर विजय किए एवं मन्दिर में पुनः विराजमान हुए।

पूज्यपाद महाराजश्री की हार्दिक अभिलाषा थी कि श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गोपाललालजी को एक बार चुनार पधराकर छप्पनभोग एवं श्री गोपाललालजी को पधराकर ब्रज ८४ कोस की यात्रा का आयोजन किया जाय। उनके जीवन काल में उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी, लेकिन ऐसा पूर्ण विश्वास है कि सत्य

संकल्प पूज्य महाराजश्री के दोनों मनोरथ किसी न किसी प्रकार किसी समय अवश्य पूर्ण होंगे। काशी के षष्ठगृह के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य की ८४ बैठकों में दो प्रमुख बैठकें अड़ैल तथा चुनार की यहीं की व्यवस्था के अन्तर्गत हैं। पूज्य पाद महाराजश्री को चुनार की बैठक से बहुत विशेष लगाव था। श्री गुसाईं जी के उत्सव के समय प्रतिवर्ष आपश्री नियमित रूप से एक सप्ताह के लिए पधारा करते थे। उस अवसर पर प्राय: श्री दीक्षितजी महाराज भी बम्बई से अनेक वैष्णवों के साथ प्रतिवर्ष अपना आने का कार्यक्रम अवश्य बनाते थे। कतिपय वर्षों में जामनगर से श्री बृजभूषणलालजी एवं कोटा से प्रथमेश श्री रणछोड़लालजी महाराज एवं बम्बई के मोटा मन्दिर से कई गोस्वामी बालक भी पधारे थे जिससे उत्सव की शोभा विशेष रूप से बहुत बढ़ी थी। इसके अलावा भी वर्ष में जब कभी भी आपश्री की इच्छा होती थी चुनार पधारने का कार्यक्रम बना लिया करते थे। विशेष अवसरों पर आप अड़ैल भी अवश्य पधारते थे, उल्लेखनीय है कि श्री मद्वल्लभाचार्यचरण ने अपने गृहस्थ आश्रम का काफी समय अड़ैल में ही व्यतीत किया था तथा उनके प्रथम पुत्र श्रो गोपीनाथजी एवं श्री गुसाईंजी के छ: बालकों का प्रागट्य अड़ैल में ही हुआ था। यह भी सर्वविदित है कि गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी का प्रागट्य चुनार (चरणाटधाम) में हुआ था और वहाँ की मान्यता श्री आचार्यचरण की जन्मस्थली चम्पारण के बाद पुष्टिजगत में दूसरे स्थान पर है।

पूज्य महाराजश्री का प्राय: यह प्रयत्न रहता था कि वैष्णवजनों के बालकगण भी चुनार में सभी आयोजनों में अवश्य जावें तथा वहाँ रहने का कार्यक्रम बनावें और वहाँ पर पधारने पर आपश्री अक्सर बालकों को अपने पास बुलाकर पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त, प्रणाली, सेवा, शृंगार इत्यादि के विषय में उनको जानकारी देते थे तथा उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करके उनकी रुचि इन विषयों पर जागृत करने का प्रयत्न किया करते थे। बालकों से आपको अत्यन्त लगाव था। काशी में जब आपश्री विराजते थे तो प्राय: बालकों को अपने पास बुलाकर उनकी रुचि, साम्प्रदायिक क्रियाकलापों की ओर परिवर्तित करने का प्रयत्न करते रहते थे, बड़े सरल एवं सुबोध शब्दों में आपश्री बालकों को इस प्रकार समझाते थे कि उनके हृदय में अलौकिक संस्कार अन्तरतम तक प्रविष्ट हो जाते थे। बालकगण आपश्री की ओर इतना अधिक आकर्षित हो गये थे कि उनके पास नित्य निरन्तर बालकों की भीड़ लगी रहती थी।

नन्दनन्दन की लीलाओं का कोई पार नहीं है। पूज्यपाद महाराजश्री के ज्येष्ठ भ्राता गो० १०८ श्री गिरिधरलालजी महाराज युवा अवस्था में ही लीला संवरण कर चुके थे। उनकी कोई भी सन्तान भूतल पर विराजमान नहीं थी। उनके दो बालक भी अल्पायु में ही लीला विस्तार कर चुके थे। श्री मुरलीधरलालजी महाराज के यहाँ एक पुत्र व दो पुत्रियों का प्राकट्य हुआ। प्रथम श्री कृष्णप्रिया बेटीजी का प्राकट्य वि० सं० १९८० की आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को हुआ। तत्पश्चात् एक बालक प्रकट हुए। जो सात मास की अत्यन्त अल्पायु में ही श्रीनाथद्वारा में लीला प्रवेश कर गये। उसके कुछ वर्षों पश्चात् श्री शरद्वल्लभा बेटीजी का प्राकट्य आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को हुआ। यथासमय दोनों बेटीजी का मुण्डन संस्कार सम्पन्न हुआ जिसका चित्र आज भी पूज्य महाराजश्री के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है। श्री कृष्णप्रिया बेटीजी का विवाह सं० १९९१ के वैशाख शुक्ल नवमी को बड़े ही धूमधाम से काशी षष्ठपीठ के प्रांगण में सम्पन्न हुआ तथा श्री शरद्वल्लभा बेटीजी का विवाह भी यथासमय सम्पन्न हुआ। दोनों ही विवाह के संस्कारों में देश के अनेक गोस्वामी बालकों ने बड़े ही उत्साहपूर्वक भाग लिया था। तथा दोनों अवसरों पर अनेकानेक दिव्य एवं भव्य मनोरथों का आयोजन हुआ था। विवाह के पश्चात् कुछ समय तक ही दोनों ही बेटीजी महाराज अपने-अपने पतिगृह में रही। लेकिन उन

लोगों का जीवन सांसारिक क्रियाकलापों या लौकिक सुखों के उपभोग के लिए था ही नहीं, उनका जीवन तो अलौकिक उद्देश्यों के लिए पुष्टि सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार के लिए एवं सांसारिक प्रवाह में बह रहे जीवों में सरस भक्तिमार्ग का प्रचार करके उनकी जीवन धारा को परिवर्तित करने के उच्च उद्देश्यों के लिए था, वे थोड़े समय पश्चात् ही अपने-अपने पतिगृह को छोड़कर काशी आ गयी थीं और बड़े ही मनोयोग, उत्साह एवं निष्ठापूर्वक अपने महान् उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु प्रवृत्त हो गईं। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि षष्ठपीठ की उपरोक्त दोनों श्री बेटीजी महाराज किसी भी अन्यान्य गोस्वामी बालकों से कम प्रतिभाशाली नहीं हैं। काशी के वैष्णव समाज में श्री कृष्णप्रिया बेटीजी ने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। समस्त समाज एवं विशेषकर महिला समाज में अभूतपूर्व जागृति का सूत्रपात किया। महिला समाज जहाँ षोडश ग्रन्थों का पाठ भी ठीक से नहीं कर पाता था, वहाँ महिलायें शुद्ध एवं सस्वर रूप से श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भागवद्गीता एवं षोडश ग्रन्थों आदि का पाठ करने लगीं।

काशी के विद्वत्समाज को भी श्री कृष्णप्रिया बेटीजी एवं श्री शरदवल्लभा बेटीजी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा एवं विद्वत्ता एवं सरसता से पूर्ण रूप से प्रभावित किया। श्रीमद्वल्लभाचार्य की जयन्ती महोत्सव पर प्रति वर्ष स्थायी रूप से आपने अत्यन्त विशाल शोभायात्रा का आयोजन करके बड़ा अद्भुत स्वरूप प्रदान किया। तब से अनवरत रूप से इस आयोजन का कार्यक्रम प्रतिवर्ष होता आ रहा है।

वि० सं० २००९ मिती वैशाख कृष्ण ११ को श्री कृष्णप्रिया बेटीजी द्वारा श्री शुद्धाद्वैत जप-यज्ञ समिति की स्थापना हुई एवं उसकी प्रथम शोभायात्रा आयोजित होकर दुलहिनजी की कोठी स्थित कृष्णबाग में मुख्य समारोह के रूप में सभा में परिणत हुई। इस शोभा यात्रा का शुभारम्भ कर श्री मुरलीधरलालजी महाराज स्वयं सम्पूर्ण शोभा यात्रा में वैष्णव समाज के साथ पधारे थे, तथा उस निमित्त आयोजित सभा में वैष्णव सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए आपने जो प्रथम उद्बोधन किया था वह अत्यन्त प्रभावशाली एवं प्रेरणादायक रहा। उन्हीं का आशीर्वाद प्राप्त कर प्रारम्भ से ही यह समिति पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों एवं कार्यकलापों के प्रचार-प्रसार में अत्यन्त सफल रही। पूज्यपाद महाराजश्री के जीवनकाल में ही श्री कृष्णप्रिया बेटीजी एवं श्री शरदवल्लभा बेटीजी ने पूरे देश में राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर ली थी एवं समिति की शाखायें हैदराबाद, कलकत्ता, जबलपुर तथा लखनऊ इत्यादि में स्थापित हो चुकी थी।

पुष्टिमार्ग की दो मुख्य धारायें हैं। एक स्वरूप सेवा की एवं दूसरी नाम सेवा की। पूज्यपाद महाराज श्री ने जहाँ स्वरूप सेवा का अनुकरणीय स्वरूप समस्त वैष्णव समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। वहीं हमारी श्री कृष्णप्रिया बेटीजी एवं शरदवल्लभा बेटीजी ने स्वरूप सेवा के साथ-साथ नाम सेवा का भी अनुकरणीय एवं अतुलनीय स्वरूप प्रकट किया।

कतिपय वर्षों पूर्व सन् १९७८ के लगभग श्री बृजभूषणलालजी महाराज चापासेनी, जामनगर के द्वारा व्रजयात्रा का आयोजन हुआ था जिसमें महाराजश्री भी यात्रा के कुनवारे पर पधारे थे। आपकी बड़ी हार्दिक अभिलाषा थी कि आपके किसी बालक को अपने उत्तराधिकारी के रूप में घोषित करें। तदर्थ आपने श्री बृजभूषणलालजी महाराज से श्री गिरिराजजी के सम्मुख ही एक बालक को माँगा, तब श्री बृजभूषणलालजी महाराज ने कहा कि हमारे छहो बालकों में जिसके लिए आप आज्ञा करें, मुझे स्वीकार है। पूज्य महाराजश्री ने वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर श्री श्याममनोहरलालजी के लिए उनसे आज्ञा किया। श्री श्याममनोहरलालजी महाराज की जन्मपत्रिका भी पूज्य महाराजश्री ने अपनी जन्म पत्रिका मिलवाई तो बहुत ही अनुकूल थी। श्री बृजभूषणलालजी

महाराज ने उनकी आज्ञा स्वीकार कर लिया था। श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने कुनवारे पर श्री गिरिराजजी की आरती किया एवं अपने मुकाम पर पधारे। उसके पश्चात् महाराजश्री पुनः उसी ब्रजयात्रा के कामवन मुकाम पर भी पधारे और श्री बृजभूषणलालजी महाराज से आज्ञा किया कि श्री मुकुन्दरायजी के पाटोत्सव पर आपको बुलावेंगे। संयोगवश उस समय उनकी इच्छा कार्यान्वित नहीं हो सकी जो कालान्तर में आपश्री के लीला विस्तार के लगभग १२ वर्षों के बाद फलीभूत हुई एवं यह भी एक सुयोग ही कहा जायेगा कि श्री श्याममनोहरलालजी महाराज का तिलक जैसा कि पूज्य महाराजश्री की अभिलाषा थी, श्री मुकुन्दरायजी के पाटोत्सव के दिन ही हुआ। महान् पुरुषों के संकल्प अमोघ होते हैं। श्री श्याममनोहरलालजी महाराज को षष्ठपीठ की गादी पर तिलक होना, इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है।

जिस प्रकार आचार्य चरण दैवी जीवों के कल्याण व उद्धार के लिए अत्यन्त व्याकुल रहते थे एवं श्रावण मास की अर्धरात्रि में गोकुल के गोविन्द घाट पर विश्राम करते समय भी आप अहर्निश इसी चिन्ता में लीन रहते थे, उसी प्रकार पूज्य श्री गो० मुरलीधरलालजी महाराजश्री भी अहर्निश वैष्णवजनों के उद्धार के लिए अत्यन्त जागरूक रहते थे।

आपका यह अत्यन्त आग्रह रहा करता था कि सेवाशृंगार, कीर्तन सामग्री तथा सम्प्रदाय की सभी विधाओं में सम्पूर्ण वैष्णव समाज में काशी के वैष्णवों का मूर्धन्य स्थान बना रहे। जिस समय वैष्णवजन आपके चरणस्पर्श एवं दर्शन के लिए जाया करते थे, आपश्री घंटों तक सम्प्रदाय के सभी विषयों पर बड़ी विशद् चर्चा किया करते थे। दर्शन के बाद टेरा आने पर प्रभु के निज प्रांगण में भी आप सेवाशृंगार विषयक चर्चा छेड़ देते थे जो अनवरत रूप से दूसरे दर्शनों के खुलने तक चलती रहती थी।

आपश्री कृपा के अगाध सागर थे, कभी-कभी जब आपश्री कृपा के अतिरेक में आवेश में आ जाते थे तो अपने निज अन्तरंग वैष्णवों को आज्ञा दिया करते थे कि दण्डवत करो, और दण्डवत करने पर उन वैष्णवों के मस्तक पर अपने चरणारबिन्द धरकर उन्हें कृत-कृत्य कर दिया करते थे। उनके अन्तरंग वैष्णवों को प्रायः इस कृपा का आस्वादन प्राप्त हो जाता था। लेखक पर स्वयं भी अनेकानेक अवसरों पर कृपासिन्धु श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने इस कृपा की वर्षा की थी।

सेवा हो अथवा शृंगार, भगवत् चर्चा हो अथवा कीर्तन, किसी में भी सम्मिलित होने के पश्चात् उनको समय का भान नहीं रहता था। वैष्णवजनों की सेवा का पूर्ण रूप से अंगीकार होता रहे, इस दृष्टि से उनकी निरन्तर यह प्रेरणा रहा करती थी कि वैष्णवजनों के घर में जो भी सामग्री सर्वप्रथम आवे उसका थोड़ा सा अंश श्री प्रभु की सेवा में अंगीकार हो जाए तो समस्त सामग्री को अंगीकृत सामग्री का स्थान प्राप्त हो जाता है।

अपनी प्रमेय शक्ति का आपको इतना विश्वास था कि इन पंक्तियों के लेखक के पिता की अंतिम बीमारी के समय जब आपश्री पधारे तो पिताश्री ने विनती किया कि कृपानाथ आपको बड़ा ही श्रम हुआ तो आपने तुरन्त उत्तर दिया कि जब हम प्रभु के धाम से इस धरा-धाम पर जीवों के कल्याण के लिए अवतरित हुए हैं तो यहाँ तक आने पर श्रम कैसा। आश्विन मास की अमावस्या का दिना था, आपने आज्ञा किया कि याद है आज दान का अन्तिम दिवस है। तुरन्त घर के सभी उपस्थित सदस्यों ने आपश्री के हस्त में दान दिया जिसको बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

आपश्री हृदय से अत्यन्त कोमल थे, लेकिन व्यवहार में बड़े ही कठोर थे। सेवा, शृंगार एवं प्रणालिका के

विषय में कोई भी व्यतिक्रम न उत्पन्न हो इस विषय में आप अत्यन्त दृढ़ रहा करते थे। आपश्री अक्सर यह आज्ञा किया करते थे कि श्री आचार्य चरण के सिद्धान्तों एवं सेवा प्रणालिका के विषय में कोई व्यतिक्रम उत्पन्न न हो, इसके लिए मैंने जिन वैष्णवों को व्यवस्था के लिए नियुक्त किया है, उनको अत्यन्त कठोर होना पड़ेगा। इस विषय में पूज्य महाराजश्री ने अपने लिखे ट्रस्टडीड में स्पष्ट रूप से उल्लेख भी किया है एवं समय-समय पर आपश्री ट्रस्टीगणों को इस विषय में सदैव जागरूक रहने के लिए प्रेरित करते रहते थे।

पूज्य अम्मा जी महाराज ने आपके लीला विस्तार के पश्चात् एकबार स्वयं अपने श्रीमुख से आज्ञा किया था कि आप श्री षष्ठगृह काशी के लौह पुरुष थे। आपश्री जब कभी अस्वस्थता का अनुभव करते थे, आपको आयुर्वेदिक औषधियों का ही आग्रह रहा करता था। आपको विश्वास था कि हमारे देश के वातावरण के परिवेश में आयुर्वेदिक औषधियाँ ही सर्वथा अनुकूल पड़ेगी। आज से लगभग ६० वर्ष पूर्व लगभग सं० १९९५ में आपश्री बड़े ही गम्भीर रूप से उदर रोग से पीड़ित हो गये थे उस समय मेरे पितामह स्वर्गीय श्री बृजभूषणदासजी मौजूद थे, उन पर महाराजश्री को बड़ा ही अटूट विश्वास था। उनकी सलाह के अनुसार महाराजश्री ने भारतीजी वैद्य की चिकित्सा करवाया था। अनेकों वैष्णवों एवं परिचितों ने यह अनुरोध किया कि इतनी बढ़ी हुई बीमारी में वैद्य के भरोसे न रहकर डाक्टरी इलाज किया जाय, लेकिन महाराजश्री ने इसे स्वीकार नहीं किया और भारतीजी वैद्य का ही इलाज कई महीने तक चला, जिससे आपश्री पूर्णरूप से स्वस्थ हुए। उस समय आपकी अस्वस्थता इतनी बढ़ गई थी कि लोगों को उनसे मिलना व दर्शन करना वर्जित था। आपश्री ने मऊ के मेरे पितामह श्री वृजभूषणदासजी को बुलाकर अपनी देखभाल के लिए नियुक्त किया एवं यह निर्देश दिया था कि कोई व्यक्ति भी बिना उनके निर्देश के मेरे पास प्रवेश न करें।

मऊ के परिवार पर आपश्री की अत्यन्त विशेष कृपा थी। अपनी उपर्युक्त अस्वस्थता के पश्चात् जब पुरुषोत्तम मास आया तो श्री बृजभूषणदासजी ने आपश्री से मऊ पधारने की विनती किया। पुरुषोत्तम मास में अनेक वैष्णवजन नित्य नियमपूर्वक पूज्य महाराजश्री का चरणस्पर्श किया करते हैं। सो उन वैष्णवों ने आपश्री से आग्रह किया कि इस मास में आपश्री के परदेश पधारने पर हमलोगों का नियम खण्डित हो जायेगा, लेकिन आपश्री ने मऊ पधारने का आग्रह स्वीकार कर ही लिया और पधारे। मऊ में रेलवे स्टेशन पर ही आपश्री का बडा ही भव्य स्वागत किया गया। स्टेशन से श्री बृजभूषणदासजी ने स्वयं बग्घी चलाकर आपश्री को ठहरने के मुकाम तक पधराया। आपश्री के सान्निध्य में वहाँ बड़े ही भव्य मनोरथों का आयोजन हुआ। वहाँ पर तमसा नदी में श्री ठाकुरजी का नाव का बड़ा ही भव्य मनोरथ हुआ। आपश्री ने श्री ठाकुरजी के नाव पर पधारने के पूर्व नदी में श्री यमुनाजी का स्मरण करके उनकी भावना से नदी का अधिवासन किया और वहाँ पर वैष्णवजनों से आज्ञा किया कि अब से तुम लोग इस नदी में नित्य निरन्तर श्री यमुनाजी की भावना करना। आज तक मऊ में वैष्णव परिवार के लोग इस नदी में श्री यमुनाजी की भावना करते हैं और जब नदी के तट पर जाते हैं तो इसी भाव से श्री यमुनाष्टक का पाठ कर श्री यमुना महारानी का स्तवन करते है। असीम वैभव एवं सम्पन्नता के मध्य रहकर भी आपश्री को सांसारिक शौक नहीं था। नित्य निरन्तर प्रभु की सेवा स्मरण एवं वैष्णवजनों के आत्मिक, आध्यात्मिक, अलौकिक अभ्युदय की व्यवस्था किस प्रकार से की जा सकती है, इसी के लिए आपश्री नित्य निरन्तर प्रयत्नशील रहा करते थे।

देश-विदेश से आपश्री के पास वैष्णवजन अपनी-अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिए एवं अपने द्वारा किये हुए कार्यों की सफलता के लिए आपश्री का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आया करते थे जिनमें कभी-कभी

भारत से बाहर के विदेशीजन भी रहते थे। ऐसे ही ऐक समय एक विदेशी व्यक्ति काशी किसी विषय पर शोध करने आये थे, जिनके साथ महाराजश्री एवं श्री कुमुदचन्द चौधरी का चित्र भी उपलब्ध है। जो इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है। गोपाल मन्दिर में समय-समय आप श्री के निर्देशन में अनेकानेक आयोजन भी निरन्तर हुआ करते थे। श्री मद्वल्लभाचार्यजी की जयन्ती पर प्रतिवर्ष आपश्री की अध्यक्षता में वल्लभ जयन्ती उत्सव का आयोजन होता था जिसमें बधाई कीर्तन आदि के साथ विद्वानों का प्रवचन हुआ करता था एवं वैष्णवजन भी अपने विचार व्यक्त किया करते थे। लगभग ४५ वर्ष पूर्व गोवर्धन चौक के प्रांगण में वाराणसी के विख्यात रंगमंच कर्मी एवं नाट्य कला के विशेषज्ञ गोस्वामी बद्रीदास के निर्देशन में लगभग १० दिनों तक कृष्ण लीला का अभूतपूर्व मंचन हुआ था, जिसमें किसी व्यावसायिक कलाकार ने भाग नहीं लिया था बल्कि काशी के वैष्णव घराने के ही बालक-बालिकाओं एवं युवक-युवतियों ने भाग लिया था। गोवर्धन चौक में ढालदार बैठने के स्थान का निर्माण हुआ था एवं टीन शेड के नीचे का पूरा स्थान लीला के मंचन के लिए सुरक्षित था। साज-सज्जा एवं पर्दा इत्यादि की व्यवस्था भी बड़े ही अद्भुत स्वरूप में की गई थी। प्राचीन वैष्णवों का कहना था कि इस प्रकार भव्य आयोजन इसके पहले कभी भी नहीं हुआ था न तो इसके बाद इस प्रकार का आयोजन आज तक सम्भव हुआ।

इस आयोजन के कुछ वर्ष के बाद नन्दगाँव के श्री गिरराज प्रसाद मदनमोहन की रासमण्डली काशी पधारी जिसके द्वारा लगभग एक सप्ताह तक श्री कृष्ण रासलीला का बड़ा ही सुन्दर आयोजन हुआ। अन्तिम दो दिन मण्डली द्वारा उद्धव लीला एवं सुदामा लीला प्रस्तुत की गयी जिसमें श्री गिरराज प्रसाद जी ने स्वयं उद्धवजी एवं सुदामाजी का पार्ट किया था। दोनों चरित्रों का निर्वाह कलाकार द्वारा इतना भावपूर्ण एवं ओजस्वी था कि दर्शकों की भावना अतिरेक की चरम सीमा तक पहुँच गई एवं अनेकों वैष्णवों के कण्ठ व नेत्र भर गये।

वैष्णव समाज पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार में सक्रिय रूप से भाग लेता रहे, इस उद्देश्य से आपश्री ने वि० सं० २०१७ दिनांक १७ अप्रैल सन् १९६० को श्रीमद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान की स्थापना किया जिसके लिए श्री गोपाल मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने स्थित श्री रणछोड़जी के मन्दिर के नाम से विख्यात हवेली को क्रय कराके, उसमें संस्थान के क्रियाकलापों को प्रारम्भ कराया, अपने सम्पूर्ण जीवन काल में आपश्री का वरद्हस्त एवं संरक्षण संस्थान को प्राप्त रहा। आपश्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से संवत् २०२३ सन् १९६६ के लगभग वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में वल्लभ चेयर की स्थापना कराने में संस्थान सफल रहा, इस अवसर पर संस्थान की ओर से पूज्य महाराजश्री ने पचीस हजार की चेक भी विश्वविद्यालय के प्रस्तोता श्री कुबेरनाथ शुक्ल को प्रदान किया था जिसका चित्र इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है। वल्लभ चेयर में पुष्टिमार्गीय शुद्धाद्वैत सिद्धान्तों के सम्पूर्ण अध्ययन एवं वल्लभ वेदान्त की परीक्षा में सफल होने वाले विद्वानों को शास्त्री एवं आचार्य की उपाधि प्राप्त होने लगी।

सम्प्रदाय के युवक भी अपने जीवन को अभ्युदय एवं उन्नतिशील बनाने में तथा पुष्टिमार्गीय गतिविधियों में अभिरुचि लेते रहे। इस उद्देश्य से आपश्री ने सन् १९७४ में श्री वल्लभ जयन्ती के दिन श्री वल्लभ युवक परिषद की स्थापना करने के लिये आज्ञा की। जिसका पालन करते हुये युवक समाज द्वारा श्री वल्लभ युवक परिषद की स्थापना हुई। परिषद अनेक वर्षों से साम्प्रदायिक गतिविधियों में बराबर जागरूक है। अपनी शारीरिक सुविधाओं का आपश्री को किंचित मात्र भी ध्यान नहीं रहा करता था। प्रभु की सेवा में एवं सेवा व्यवस्था में आपश्री का चित्त निरन्तर लीन रहा करता था। श्री मुकुन्दरायजी के स्वरूप अत्यन्त छोटे थे। शृंगार धराने में

कभी-कभी प्रभु मचल जाते थे एवं श्रृंगार नहीं धरते थे तो तुरन्त आपश्री अत्यन्त सुन्दर सामग्री सिद्ध कराके भोग धरा करते थे। फिर तो बालक स्वरूप प्रभु तुरन्त श्रृंगार धारण कर लिया करते थे।

गोपाल मन्दिर में एक सुन्दर गौशाला चलती थी, आपश्री को गायों के प्रति अपार स्नेह रहा करता था, गौशाला की व्यवस्था में किसी प्रकार का व्यतिक्रम न हो सके, इस दृष्टि से आपने अनेक वैष्णवों को सहेज रखा था। तथा आपश्री निरन्तर इस बात के लिए जागरूक रहा करते थे कि गायों की सेवा में किसी प्रकार की कमी न होने पावे। श्री व्रज चौरासी कोस का शिलाओं पर उत्कीर्ण किया हुआ प्रतिरूप नाटी इमली स्थित नेपाल के राजपुरोहित श्री भरतराजजी के उपवन में स्थित था। करीब ६५ वर्ष पूर्व उक्त बाग जो गोपाल मन्दिर के अधिकारी श्री हरेकृष्णदास (बब्बन साव) के संरक्षण में था, के विक्रय होने का निश्चय हुआ तो पूज्य महाराजश्री ने उपर्युक्त व्रज चौरासी कोस के शिलाओं पर उत्कीर्ण प्रतिरूप को वहाँ से निकलवाकर गोपाल मन्दिर के बगीचे में स्थित गोस्वामी श्री तुलसीदासजी की गुफा के समक्ष पधराया। कतिपय वर्षों के पश्चात् आपश्री ने मन्दिर के बगीचे में उत्तर-पश्चिम के कोने में स्थित खाली स्थान पर बारादरी बनवाकर उसमें उपर्युक्त प्रतिरूप को स्थायी रूप से स्थित करा दिया जिससे काशी के वैष्णवजनों को ब्रज चौरासी कोस के दर्शन-पूजन एवं परिक्रमा का लाभ प्राप्त होने लगा, इस कार्य में श्री हरेकृष्णदासजी (बब्बन साव) एवं श्री कृष्णदासजी बर्तन वाले का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ।

आपश्री के जन्म दिवस पर बराबर सम्पूर्ण वैष्णव समाज का अत्यन्त उत्साह रहता था। अनेक वर्षों तक आपश्री के जन्मदिन पर दोहरा मण्डान का मनोरथ होता रहा जो कालान्तर में बन्द हो गया लेकिन तीन पालना का मनोरथ, कीर्तन बधाई, केसर स्नान, मारकण्डेय पूजन आदि का आयोजन बराबर बड़े वृहद रूप से होता रहा। रात्रि को संगीत का आयोजन भी हुआ करता था जिसमें भारतवर्ष के बड़े-बड़े संगीत के कलाकार बड़े ही श्रद्धा एवं उत्साहपूर्वक भाग लिया करते थे।

आपश्री का प्रेरणास्रोत था ''शास्त्रमवगत्य मनोवाग्देहै: श्रीकृष्ण: सेव्यइत्यर्थ:''

आपश्री उपर्युक्त वचनों की प्रेरणा सम्पूर्ण वैष्णव समाज को निरन्तर देते रहे एवं श्रीमद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान की स्थापना के समय भी आपने उपर्युक्त श्लोक को ही मूल रूप से रखा था।

चरित्र तो आपश्री के अगाध है, जिनको वाणी द्वारा कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। वैष्णव समाज में आज भी जब आपश्री की चर्चा छिड़ जाती है तो कब २-४ घंटा बीत जाता है पता नहीं लगता है। आपके चरित्रों की, वाणी की, प्रवचनों की, कीर्तनों की एवं आपकी सेवा-परायणता की वार्ता प्रारम्भ होते ही वैष्णव समाज की विशेषकर उन वैष्णवों की जो आपश्री के अंतरंग थे, उनकी भावनाएं इतनी उद्वेलित हो उठती हैं कि भावना के तरंगित प्रवाह को अवरूद्ध करना कठिन हो जाता है। बस यही आकांक्षा रहती है कि यह तरंगें नित्य-निरन्तर प्रवाहित होती रहें जिसमें हम एवं सम्पूर्ण वैष्णव समाज अवगाहन करता रहे।

काल का चक्र निरन्तर घूमता रहता है, महान पुरुषों के ऊपर तो काल का कोई असर होता नहीं, लेकिन जगन्नियन्ता की लीला का स्वरूप होने से महान् आचार्यगण भी काल का आदर करते हैं एवं काल के वशीभूत होने का अभिनय करते हैं। श्री मद् आचार्यचरण को भी तीन बार नित्य लीला में पधारने की भगवदाज्ञा हुई थी, जिसका आदर करते हुए आचार्यचरण ने अपनी लीला का संवरण किया था। हमारे पूज्यपाद गुरूचरण श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री को भी सं० १९८२ के श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष में शारीरिक अस्वस्थता का

अनुभव हुआ। लगभग ८-१० दिन तक तो मंदिर में ही आपश्री का उपचार हुआ, तत्पश्चात् मिती श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को आप श्री सघन उपचार हेतु श्री रामकृष्ण मिशन पधारे। जिस प्रकार आचार्यचरण नें अन्तिम ४० दिन सन्यास ग्रहण करके हनुमानघाट में व्यतीत किया था। उसी प्रकार मानों आपश्री ने भी अन्तिम ११ दिन संत शिरोमणि श्री रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में स्थापित एवं संन्यासियों द्वारा संचालित श्री रामकृष्ण मिशन अस्पताल में संन्यास आश्रमवत् विराजकर व्यतीत किये। वैष्णव समाज का निरन्तर ११ दिनों तक तांता लगा रहा। काशी के लगभग सभी लब्ध प्रतिष्ठित नागरिक, विद्वान, आचार्य आपसे मिलने के लिए आपके दर्शनों की एक झलक पाने के लिए बराबर आते रहे। आपश्री के नित्य लीला प्रवेश के सिर्फ १ दिन पूर्व मध्याह्न एवं सायंकाल की सन्धिबेला में काशीनरेश महाराज श्री विभूतिनारायण सिंहजी स्वयं आपके दर्शन एवं हाल-चाल लेने हेतु पधारे। काशीनरेश को काशी में भगवान् शिव का अवतार माना जाता है और जहाँ भी वह पधारते हैं, हर-हर महादेव के उद्घोष से उनका स्वागत् किया जाता है। मानो साक्षात् भगवान् शिव पूज्यपाद श्री महाराजश्री से मिलने पधारे हों। मिती भाद्रपद कृष्ण एकादशी संवत् २०३९ को प्रातः बाँधन ब्रह्म मूहुर्त में आपने वैष्णव समाज को अत्यन्त शोक एवं विरह की स्थिति में छोड़कर नित्य लीला में प्रवेश किया। काशी में देखते ही देखते बिजली की तरह यह समाचार चारो ओर फैल गया। आपश्री को गोपाल मंदिर के प्रांगण में श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु की लीलास्थली में पधराकर लाया गया, जहाँ पर असंख्य वैष्णवजनों ने आपश्री को अपना श्रद्धासुमन समर्पित किया। और अब आपश्री की अन्तिम यात्रा मणिकर्णिका घाट की ओर अग्रसर हुई। असंख्य वैष्णव समाज भगवत्कीर्तन करते हुए चल रहा था। मणिकर्णिका घाट पर जहाँ-जहाँ भी दृष्टि जाती थी नरमुण्ड ही दिखाई देते थे। लगभग चार घंटों तक सम्पूर्ण वैष्णव समाज वहाँ पर मौजूद रहा, तत्पश्चात् श्री गोपाल मन्दिर में आकर सम्पूर्ण वैष्णव समाज अत्यन्त शोकाकुल होकर विरह वेदना से व्यथित होकर अपने-अपने निज निवास की ओर लौटा। आपश्री ने अपने सम्पूर्ण जीवन में अपने चरित्रों से, अपने आचरणों से, अपने उद्देश्यों से एवं प्रवचनों से वैष्णव समाज को जिन आदर्शों की ओर चलने के लिए प्रेरित किया, प्रभु की कृपा से हम सम्पूर्ण वैष्णव समाज जीवन भर उन्हीं आदर्शों को अपने-अपने जीवन में अपने आचरण में उतारने के लिए प्रयत्नशील बने रहें, यही अभिलाषा एवं कामना है।

आज श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने लीला विस्तार तो अवश्य किया है लेकिन असंख्य वैष्णवजनों के हृदय में वे आज भी विराजमान हैं। उनके जीवनकाल में उनके जो-जो चरित्र थे, उन्होंने जो-जो आयोजन किये, वैष्णवजनों को वे नित्य-निरन्तर अपने उपदेशमयी वाणी से जिन अलौकिक, आध्यात्मिक एवं सरस वचनामृतों का पान कराया करते थे, वे सब वैष्णवजनों के हृदय के अन्तरतम में एक धरोहर की भाँति संगृहीत है। युगों-युगों तक उनकी स्मृति समस्त वैष्णवजनों के हृदय में रस सिंचन करती रहेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

नि० ली० पू० पा० गो० श्री १०८ मुरलीधरलालजी महाराजश्री का विद्वत्प्रेम

– *पं० श्री विश्वेश्वरशास्त्री द्राविड*

सकलशास्त्रपारङ्गत पण्डितप्रवर श्री विश्वेश्वरशास्त्रीजी द्राविड सदसद् विवेचक योग्य विद्वान् हैं। आप श्रीवल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय के संस्थापक कैलासवासी प० प्र० श्री लक्ष्मणशास्त्रीजी द्राविड के पौत्र तथा समग्र भारतवर्ष में सुविख्यात विद्वान् कैलासवासी प० प्र० पण्डिराज श्री राजेश्वरशास्त्री द्राविड के सुयोग्य मध्यम पुत्र हैं। वर्तमान में आप साङ्गवेद विद्यालय का अध्यक्ष पद अलङ्कृत कर विद्यालय का यथावत् संचालन कर रहे हैं।

वन्दे वृन्दावनचरं गोविन्दं गोपिकापतिम्।
गाः पालयन्तं गायन्तं वेणुना षड्जवादिना॥

प्रातः स्मरणीय शुद्धाद्वैत सम्प्रदायाचार्य षष्ठपीठाधीश्वर स्वनामधन्य नित्यलीला स्थित पू० पा० गो० श्री १०८ मुरलीधरलालजी महाराज महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के वंश में लोकोत्तर महापुरुष हुए।

''शास्त्रमवगत्य मनोवाग्देहैः श्रीकृष्णः सेव्य इत्यर्थः।''

महाप्रभु जी के इस सिद्धान्त को हृदयङ्गम कर आपने अपना सम्पूर्ण जीवन भगवत्सेवा में लगा दिया। लौकिक सुख-सुविधाओं को तिलांजलि देकर श्रीमद्भागवत् के एकादशस्कन्ध में वर्णित प्रकार से अहर्निश भगवत्सेवा में आप लीन रहते थे। आप सिद्धान्तरहस्य में वर्णित सेवा प्रकार का अक्षरशः पालन करते रहे। अहन्ता एवं ममता रूप संसार से आप परे रहे।

''विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षकाः।''

महाप्रभु जी की इस आज्ञानुसार महाराजश्री विद्वानों को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें सन्मार्गरक्षणार्थ प्रेरणा देते थे। इस कारण महाराजश्री को विद्वान लोग अत्यन्त श्रद्धा से देखते थे।

महाराजश्री को २० वर्ष की अवस्था में ही देश-देशान्तर में स्थित वैष्णवजन परम आदर के साथ देखते हुए आपके आदेशों के परिपालन हेतु सम्प्रदायाचार्य के रूप में मान्य कर चुके थे। आपकी विद्वत्ता एवं अलौकिकता से प्रभावित हुए इन्दौर स्थित ''श्री पुष्टिमार्गीयवैष्णवसभा'' के सदस्यों ने महाराजश्री को सम्मानपत्र समर्पित किया था। उसे यहां प्रकाशित किया जा रहा है–

॥ श्रीमद्गोवर्द्धनोद्धरणधीरो विजयते ॥

सन्मानपत्रम्

श्रुत्येकसिद्धश्रृङ्गारमूर्तिमानन्दविग्रहम्।
गोवर्द्धनधरं वन्दे श्रीराधाप्राणवल्लभम्॥ १॥

श्रीमद्गोस्वामिकुलकमलदिवाकरश्री १०८ श्रीमुरलीधरलालजीमहाराजानां चरणकमलसन्निधौ सा० प्रणतिपुरःसरं सभक्तिश्रद्धमिद्मावेदयामः –

दयासिन्धो !

श्री चरणानां शुभागमनेन परमपवित्रीकृतमिदमिन्दोरनगरमिति वैष्णवानामभूतपूर्वोऽयं प्रमोदावसराधिगमः। भवन्तो हि करुणावरुणालयानां, शरणागतदेवीजीवसुद्धारसमुत्सुकानामखण्डभूमण्डलाचार्य्यवर्य्याणां श्री १०८ श्रीवल्लभाचार्य्यचरणानां वंशालङ्कारा:। यदा चास्मिन्वनिमण्डले विविधविरुद्धवादैश्चण्डातपैरिव संतापितोऽयं धर्मकल्पवृक्षस्तदा स्वनिगमनुस्मरन् श्रीभगवान्पूर्णपुरूषोत्तमः स्ववदन वैश्वानरावतारश्रमदा चार्यस्वरूपेण समवतीर्य पुष्टिमार्गोपदेशामृतसिंचनेन पुनरपि तं संजीवयामास। इदानीं च दुर्धरकलिकालसन्तापेन भूयोऽपि भूतपूर्वामिवावस्थां गतकल्पं तं पुनरप्युज्जीवयितुं बद्धपरिकरा भवन्त इति समवलोकयतामस्माकमानन्दनिर्भराणि चेतांसि। वयमपि सर्वथा पुष्टिमार्गोपदेशमनुसृत्यैहिकीं पारलौकिकीं च समृद्धिमाप्तुकामा भवदादेशमादरेण परिपालयिष्यामः। श्रीशश्चास्मान्कर्तव्यपालनाय प्रेरणत्विदमहर्निशमभ्यर्थया-महे ॥ शम् ॥

पौ०शु० ८ सं० १९८१ — भावत्कचरणरजोधनाः

श्रीगोवर्धननाथमन्दिरम् — "श्रीपुष्टिमार्गीयवैष्णवसभा" सदस्याः

इन्दोर।

प्रातः स्मरणीय हमारे पूज्य पितामहचरण कै० धर्मप्राण श्री लक्ष्मण शास्त्री द्राविड़ जी महाराज के नेतृत्व में काशी में विक्रम संवत् १९८५ में सम्पन्न ऐतिहासिक ब्राह्मणमहासम्मेलन में महाराजश्री का विशेष योगदान रहा।

आप उस समय धर्माचार्य के रूप में विद्वत्समाज में विख्यात हो चुके थे। ब्राह्मणमहासम्मेलन में देशान्तर से समागत श्री वल्लभवंशज गोस्वामियों का सम्पूर्ण प्रबन्ध महाराज श्री ने किया था।

प्रातः स्मरणीय पूज्य पितृचरण कै० पण्डितराज श्री राजेश्वरशास्त्री द्राविड़ चरणों के साथ महाराज श्री प्रगाढ स्नेह रहा। धर्मशास्त्रीय विषयों में पितृचरणों द्वारा प्रदत्त व्यवस्था को ही आप मान्य करते रहे।

पूज्य पितृचरणों के षष्ट्यब्दप्रवेश के मङ्गल प्रसङ्ग में महाराजश्री ने पितृचरणों को मङ्गलाशासनपत्र प्रदान कर सम्मानित किया था, जो इस प्रकार हैं–

श्रीमतां मीमांसान्यायवेदान्तसांख्ययोगधर्मशास्त्रसाहित्यव्याकरण-
राजनीतिप्रभृतिविविधशास्त्रधुरन्धराणां धर्मप्राणश्रीलक्ष्मण-
शास्त्रिद्राविड़महोदयतनूजर्न्मनां "पण्डिराज" पदवी
विभूषितानां श्रीराजेश्वरशास्त्रिणां षष्ट्यब्दप्रवेश-
निमित्तकमाङ्गलिकसमारोहोत्सवप्रङ्गे
मंगलाशंसनम्

नन्दनन्दन इहाखिलवन्द्यो वृन्दकाननविहारसमुत्कः।
गोपवृन्दमहितः स मुकुन्दः सन्ततं दिशतु मङ्गलं तव॥ १॥

गुरुकृपामृतपाकसमुद्भवं यमधिगम्य तु शारदवैभवम्।
प्रकटतिस्म किलाखिलभारतद्विजमहोत्सवकाल इहाद्भुतम्॥ २॥

आचार्याणामथच विदुषां सर्वदेशस्थिताना-
मत्रैतानां पुर इतभयः शास्त्रचर्चा व्यतानीत् ।
तेन प्रीताद्विबुधविसरात् पण्डितेन्द्राभिधानं
त्रिंशद्वर्षो जगति विदितं प्रापदच्छावदानम् ॥ ३ ॥

मीमांसाद्वयमांसलो नृपनयव्याख्यानवाचस्पति-
र्न्यायव्याकृतिसांख्ययोगविलसत्साहित्यसौहित्यभूः ।
सुब्रह्मण्यसुतासुतः कृतिवरश्रीलक्ष्मणात्मोदयः
श्रीमत् ''पण्डितराज'' मान्यपदभृद् राजेश्वरो द्योतते ॥ ४ ॥

सुब्रह्मण्यनिवेशितामलमतिः श्रीलक्ष्मणात्मा सुधी-
श्रीवामाचरणप्रसादमहितश्रीशानुबद्धादरः ।
ऊनत्रिंशदवस्थयैव पुरजित्पुर्या द्युनद्यास्तटे
रम्ये साङ्गपदादिवेदविलसद्विद्यालयप्राङ्गणे ॥ ५ ॥

सोऽयं शास्त्रमतिर्मुदास्वजनकप्रेमप्रतिष्ठापिते
सोत्साहं मतिशालिशिष्यनिवहं प्रध्यापयन्निस्तुलम् ।
शास्त्रर्थावसरे निसर्गमधुरान् यच्छिष्यवक्त्रोद्गतान्
सत्तर्कान् विबुधा निशम्य परमं मोदं भजन्तेऽनिशम् ॥ ६ ॥

प्राचीनां भारतीयां श्रुतिविहितपथां राजनितिं विलुप्त-
प्रायमुद्धार्य शिष्यान् सपदि धृतधृतिः पाठयन् द्योतते यः ।
विद्यावाप्त्या समृद्धोऽपि च विनयतया नम्रतामात्रपात्रं
सोयं राजेश्वराख्यो जगति विजयते षष्टिवर्षप्रवेशे ॥ ७ ॥

श्रुतिविहितमिदानीं दर्शयन् धर्ममार्गं
स हि विबुधवरेन्द्रः सर्वविद्यानदीष्णः ।
शतमिहहि समानां शास्त्रिवर्यः प्रजीयात्
जगति सहकुटुम्बः पुत्रपौत्रादियुक्तः ॥ ८ ॥

भाद्रकृष्ण १ शनौ
वि० संवत् २०१५
श्रीगोपालमन्दिरम्, काशी

मुद्राचिह्नम्
श्री मुरलीधरलालजी महाराज,
गोपाल मन्दिर, बनारस ।

महाराजश्री ने पू० पितृचरणों के करकमलों से श्रीमद्वल्लभसिद्धान्त सेवा संस्थान का उद्घाटन कराया था । श्री गोपाल मन्दिर एवं श्री मद्वल्लभसिद्धान्त सेवा संस्थान में समय-समय पर आयोजित होने वाले विशिष्ट कार्यक्रमों में काशी के विद्वानोंको आमन्त्रि कर उन्हें उचित सत्कार से गौरवान्वित किया जाता था ।

पू० पा० प्रथमेश गो० श्री १०८ रणछोड़लालजी महाराज के काशी आगमन प्रसङ्ग में श्रीमद्वल्लभसिद्धान्त सेवा संस्थान में आयोजित विशाल विद्वत्सभा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त पंचम वर्ण की

मान्यता के विषय में विचार चला। उस समय गो० श्री १०८ मुरलीधरलालजी महाराज ने अपनी ओर से शास्त्रीय पक्ष को प्रस्तुत करने का कार्यभार पितृचरणों को सौंपा था। तदनुसार उन्होंने कहा था कि–"पंचम वैष्णव हो सकते हैं, परन्तु वर्ण नहीं। वर्ण तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चार ही हैं।" आगे चर्चा यहीं पूर्ण हो गयी। फलतः पंचम वर्ण की मान्यता का विचार विफल हो गया और शास्त्रोक्त वर्णव्यवस्था को ही मान्यता प्रदान की गयी।

"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

इत्यादि वाक्यों में चार ही वर्णों का उल्लेख प्राप्त होता है। यहां प्रसङ्गवश वैष्णवधर्म में प्रविष्ट होने पर वर्ण परिवर्तन होता है या नहीं इस पर विचार किया जाता है–

"यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणात्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥"

(श्रीमद्भागवत् स्क० ३ अ० ३३ श्लोक ६)

इस श्लोक की व्याख्या करते समय सुबोधिनीजी में महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी लिखते हैं कि–

"एवं श्लोकद्वयेन द्वितीयमप्याश्चर्यं स्थापयित्वा, रूपे आश्चर्यद्वयं प्रतिपाद्य, नाम्न्याश्चर्यद्वयमाह – यन्नामधेयेति द्वाभ्याम्। नामश्रवणादेर्धर्मद्वारा नाममाहात्म्यं साक्षान्नाम्नश्च। तत्र प्रथममाह – यस्य भगवतो नामधेयस्य गुरोः सकाशाच्छ्रवणानन्तरं यदनुकीर्तनम्, तेन श्वादोऽपि चाण्डालोऽपि सद्यः सवनाय सोमाभिषवयोग्यत्वाय सद्यस्तस्मिन्नेव जन्मनि अवकल्पते। कुतः पुनस्तव दर्शनात्, सोमाभिषवयोग्यो भवतीति किं वक्तव्यामित्यर्थः। श्रवणानन्तरं कीर्तनकथनाद् वैष्णवदीक्षया मन्त्रोपदेशपर इति केचित्। सद्यः सवनायेति सर्वमेधे – 'वायवे चाण्डालम्' इति वाक्यात्, पर्यग्निकरणपर्यन्तं तद्योग्यत्वमित्यपरे। वस्तुतस्त्वाश्चर्यरूपं माहात्म्यमेव लौकिकोपपत्त्या चेत्सिद्धयेत्, आश्चर्यमेव न भवेत्। अधर्मसंस्कृत भूतविशेषैर्हि चाण्डालादिशरीरमारभ्यते, सर्वोत्कृष्ट धर्मसंस्कृतभूतविशेषैस्तु ब्राह्मणशरीरम्। भगवन्नाम्ना दीक्षया प्राप्तेन वा सर्वान् दोषानौत्पत्तिकान् परिहृत्य, तान्येव भूतानि उत्कृष्टसंस्कारेण संस्कृतानि क्रियन्त इति नाम्नो युक्तमेव माहात्म्यम्। अनेन सर्वदोषनाशनपूर्वकसर्वगुणोपपादकत्वं नाम्न उक्तम्। श्रवणयोग्येनानुकीर्तनेन वा। श्रवणेन दोषनिवृत्तिः कीर्तनेन गुणाधानमिति वा। नन्वेतदत्याश्चर्यमुच्यत इत्याशङ्क्य कैमुतिकन्यायेन तदुपपादयतियत्प्रह्वाणाद्यत्स्मरणादि। प्रह्वो नम्रीभावो नमनमिति यावत्। नम्रीभावस्याऽऽख्यानमप्रसिद्धम्, स्मरणस्य तु वाल्मीकेः, स हि चण्डाल एव मार्गघातकः ऋषेरूपदेशात्पूर्वं महर्षिभावनां कृत्वा पश्चाद्रामस्मरणेन तस्मिन्नेव जन्मनि वाल्मीकिर्जात इति न किंचिदनुपपन्नम्। अत एव क्वचिदित्युक्तम्। यत्र नाम रूपं वा स्वसामर्थ्यं प्रकटयति, तत्रैवमेवेत्यतिप्रसक्तिरपि निवारिता। श्वादश्चाण्डालानामधमः। उत्कृष्टस्योत्तमत्वे कः सन्देह इत्यपि शब्दार्थः। ते दर्शनात् सवनाय पुनः कुतः कल्पते, पूर्वमेव जातत्वादित्यनकाराध्याहारपक्षेऽर्थः। अथवा कुत इति किमित्यर्थे अव्ययम्, किं पुनर्भगवद्दर्शनात् सवनाय कल्पत इति वक्तव्यमित्यर्थात् अव्ययम्, किं पुनर्भगवद्दर्शनात् सवनाय कल्पत इति वक्तव्यमित्यर्थात्। एवं पर्यवसानवृत्त्या नामश्रवणादेर्माहात्म्यमुक्तम्" ॥ ६ ॥

इस पर गो० श्री पुरुषोत्तमजी का सुबोधिनी प्रकाश इस प्रकार है–

"यन्नामधेयेत्यत्र। द्वितीयमिति विश्वाधारस्य स्वोदरे स्थितिरूपंम्। मन्त्रोपदेशपर इति। अनुकीर्तनशब्दो मन्त्रोपदेशपरः। तथा च, वैष्णवदीक्षाप्रकारेण प्राप्तोपदेशश्चाण्डालोऽपि तस्मिन्नेव जन्मनि सोमाभिषवयोग्यो भवतीति कस्यचिट्टीकाकारस्य मतमित्यर्थः। इदं मतं तंत्रावलम्बि। "विष्णुतत्त्वं परिज्ञाय एकं वाऽनेक भेदवत्। दीक्षयेन्मेदिनीं

सर्वां किं पुनश्चोपसंनतान्'' इति विज्ञानोपनिषत्संहितायाः षोडशे पटले कथनादिति । श्रौतावलम्बिमतान्तरमाहुः - सर्वमेध इत्यादि । तत्र द्वितीयेऽस्वरसं स्फुटीकुर्वन्तिवस्तुत इत्यादि । वाल्मीकेरिति वाल्मीकेरूपाख्यानम् । तथा च नाममाहात्म्यपक्ष एव मुख्य इत्यर्थः'' ॥ ६ ॥

यहां पर श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्लोक में समागत ''क्वचित्'' शब्द का विवरण करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि जहाँ पर भगवन्नाम अथवा भगवत्स्वरूप अपने सामर्थ्य को प्रकट करते हैं वहां पर चण्डाल शरीर में भी ब्राह्मणत्व प्राप्त होकर सोमयाग योग्यता आ जाती है । ऐसा चमत्कार पुष्टिजीव में किसी भक्त विशेष पर जब भगवत्कृपा होती है तभी होता है । ''क्वचित्'' कहकर के यह सूचति किया है कि सर्वसामान्य वैष्णवों में यह बात नहीं पायी जाती अतः भगवदनुग्रहण से वाल्मीकि में उसी जन्म से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की बात भी वल्लभाचार्य जी ने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की है । दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ग्रन्थ में ''एक मोची द्वारिका के मारग में एक ग्राम में रहता, तिनकी वार्ता'' में भी एसा ही एक प्रसङ्ग आया है जो इस प्रकार है–

वार्ता प्रसंग – १

एक समै श्रीगुसाईंजी श्रीगोकुल तें श्रीरनछोरजी के दरसन कों श्रीद्वारिकाजी पधारे । तब मारग में यह मोची रहते हतो । ता गाम के बाहिर श्रीगुसाईंजी आप के डेरा भए हते । सो श्रीगोसाईंजी रसोई करि श्रीठाकुरजी कां बोग समर्पि समयानुसार भोग सराइ आप भोजन करि आचमन करि बीरी आरोगि के गादी तकीया ऊपर बिराजे हते । सब सेवक टहलुवा महाप्रसाद ले चुके हते । ता समै यह मोची उहां आइ निकस्यो । तहां श्रीगुसाईंजी कौ दरसन भयो । सो साक्षात् पूरन पुरुषोत्तम कौ दरसन भयो । तब यह अति आनंद पाइ श्रीगुसाईंजी कों साष्टांग दंडवत् करि दोऊ हाथ जोरि बिनती करि के कह्यो, जो – महाराज! आपु कृपा करि के मोकों अपनो सेवक करिये । तब श्रीगुसाईंजी आप कृपा करि वा मोची कों नाम सुनाइ कै सेवक किये । श्रीगुसाईंजी वा मोची कों आज्ञा किये, जो – तू कहूं तें भगवत्स्वरूप ले आऊ । ताकी तू सेवा करि । तब वह मोची श्री गुसाईंजी सों कह्यो, जो – महाराज! मेरे एक श्रीसालिग्रामजी कौ स्वरूप है । तब वह सालिग्रामजी के स्वरूप कों मंगाय, ताकों श्रीगुसाईंजी पंचामृत सों स्नान कराइ, पाट बैठारि कै उनकी सेवा करिवे की आज्ञा किये । पाछें आप श्रीरनछोरजी के दरसन कों श्रीद्वारिकाजी पधारे । सो वा मोची की आसक्ति तो श्रीगुसाईंजी में भई है । सो वह मोची सालीग्रामजी में श्रीगुसाईंजी की भावना करि भगवत्सेवा करिवे लग्यो । सो तिलक छापा करे । सुंदर उज्वल वस्त्र पहिरे, धोती उपरेना । और कछू पहिरे नाहीं । ब्राह्मन की नांई रहन लाग्यो । तब वाकों गाम के ब्राह्मन सब मिलि के दुःख देन लागे । कहे, जो – तू सूद्र होंई के ब्राह्मन की चालि क्यों चलते है? तब यानें कह्यो, जो – मैं हूं ब्राह्मन हौं । तब ब्राह्मनन कही, जो – कछूं छाछ कौ दूध होत है? तब याने कही, जो – प्रभुन की कृपा होंई तो छाछ कौ हू दूध होंई । प्रभु सर्व करन समर्थ हैं । तब ब्राह्मनन कही, जो – हम देखें तो माने । तब वाने छाछ मंगाई । पाछें प्रभुन सों बिनती कीनी, जो – महाराज! श्री गुसाईंजी के संबंध करि, जो – हों ब्राह्मन भयो हों तो या छाछ कौ दूध करि दीजो । ता पाछें घरी एक पाछें देखें तो छाछ कौ दूध भयो है । तब तो सब ब्राह्मन आश्चर्य करन लागे । पाछें वा दूध की खीरि करि सब ब्राह्मन कों ख्वाय बिदा किये । तब सब वा मोची को दंडवत् करि अपने अपने घर गए । ता दिन पाछें वा मोची कों कोऊ दुःख न देतो । सब कोउ को बोहोत आदर करते ।

(दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता खण्ड २ वार्ता १२४)

उपर्युक्त वार्ता में भगवदनुग्रह से पुष्टिभक्ति का चमत्कार हुआ है । ऐसी बात क्वचित् होती है । अतः उसे

लेकर साधक अवस्था में विद्यमान वैष्णवों को वर्णमर्यादा के बन्धन को छोड़ने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अन्यथा अध:पतन हो सकता है। अतएव तत्त्वार्थदीपनिबन्ध में श्री महाप्रभु जी ने कहा हैं–

''वर्णाश्रमवतां धर्मः श्रुत्यादिषु यथोदितः।
तथैव विधिवत्कार्यः स्ववृत्त्यन्नेन जीवता॥
आचार वृत्तिहीनश्चेदर्द्धं फलति नाखिलम्॥''

(सर्वनिर्णयप्रकरण श्लो० १८५)

''स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्।
इन्द्रियाश्वविनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम्॥''

(सर्वनिर्णयप्रकरण श्लो० २३८)

स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम्।

(श्रीमद्भागवत स्क० ३ अ० २८ श्लो० २)

इस भागवतवाक्य की व्याख्या सुबोधिनी जी में–

''स्वधर्माचरणमिति स्वधर्माणां देहधर्माणां वर्णाश्रमाधिकारसिद्धानामाचरणं यथाशक्त्या कर्तव्यम्, न तु शक्तावपि सङ्कोचः। शास्त्रमापि–''यच्छक्नुयात् तत्कुर्यात्'' इति। विधर्माच्चनिवर्तनं द्वितीयं साधनम्। धर्मबाधो विधर्मः यस्मिन् क्रियमाणे स्वस्य धर्मस्य बाधो भवति। स यथाधिकारमवसेयः। यावद्देहोऽयम् तावद्वर्णाश्रमधर्मा एवं स्वधर्माः॥'' इत्यादि कहकर श्रीवल्लभाचार्य जी ने वर्णाश्रमधर्म के अनुष्ठान पर बल दिया है। अत एव भक्तिमार्ग में प्रविष्ट वैष्णव जिन्हें पुष्टिभक्ति सिद्ध नहीं हुई थी उन्हें मर्यादा में ही स्थापित रखना उन्नतिकारक होने से समस्त वैष्णवों को अपने हाथ से सखड़ी महाप्रसाद परोसने के ''बिरजो'' के मनोरथ को पुरुषोत्तमपुरी (जगन्नाथपुरी) में ही सम्पन्न करने की आज्ञा श्री गुसाई जी ने दी। इस सम्बन्ध में चौरासी वैष्णवन की वार्ता ग्रन्थ के अन्तर्गत ''मावजी पटेल और बिरजो की वार्ता'' का प्रसङ्ग इस प्रकार है–

वार्ता प्रसंग–२

एक समय उत्सव के दिन वैष्णव महाप्रसाद लेत हते। विरजो अनसखड़ी परोसत हती। तब विरजो के मन में यह मनोर्थ भयो – सगरे वैष्णव की मण्डली बैठी होई, और मैं सखड़ी महाप्रसाद परोसों। पाछें विरजो ने कृष्णभट्ट सों कही, मेरे मन में यह मनोर्थ भयो है। जो – सगरे गाम गाम के वैष्णव बुलाई सखड़ी महाप्रसाद मैं अपने हाथ सों सगरे वैष्णवन कों परोसों। तब कृष्ण भट्ट कहें, यह मनोर्थ श्री गुसाईंजी आज्ञा करें तो भक्ति भावसों सिद्ध होई सो सगरे वैष्णव के समाज सहित श्री गुसाईंजी पास श्री गोकुल जैये। तब आप कहें सो होय। परन्तु यह मनोर्थ द्रव्य साध्य है। तब विरजो आई मावजी पटेल सों कही, जो–मेरो यह मनोरथ है, सो तुम पुरण करो। सगरे वैष्णवन कों महाप्रसाद लिवाऊँ, अपनें हाथ सों। सो मैं कृष्ण भट्ट सों पूछी। तब कृष्ण भट्ट कहें द्रव्य साध्य है। वैष्णवन कों श्रीगोकुल ले जैये। तब मावजी पटेल नें कही, मो पास लक्ष मोहौर हैं। जो इतने में काम होई तो सुखेन कृष्ण भट्ट सों पूछिके मनोरथ करो। तब विरजो कृष्ण भट्ट पास आई कही, लक्ष मोहौर हैं, इतने में मनोरथ पूरण होई तो। तब कृष्ण भट्ट के कह्यो अवश्य तुम्हारो मनोरथ प्रभू पूरण करेंगे। तब कृष्ण भट्ट ने कही है, इतने में मनोरथ पूरण होइगो। तब मावजी द्रव्य भेलो करि लक्ष मोहौर विरजो कों दियो। तब विरजो लक्ष मोहौर कृष्ण भट्ट के आगे धरि बिनती करी, अब तुम्हारे हाथ है मेरो मनोरथ पूरण करो। तब

कृष्ण भट्ट गाम गाम के वैष्णवन कों पत्र लिखि के असवार गाड़ी, खरची पठाई। प्रीति पूर्वक सगरे वैष्णव गुजरात, हालार केभेले करि सबन कों न्यारो न्यारो डेरा, खर्ची दिये। पाछे उज्जैन तें सगरे वैष्णव सहित कृष्ण भट्ट, विरजो श्रीगोकुल कों चले। सो श्रीनाथजीद्वार आयके समाज सहित श्रीनाथजी के दरसन करे। श्रीनाथजी कों सामग्री, वागा, वस्त्र, आभूषन को मनोरथ करि श्रीगोकुल आये। श्रीनवनीतप्रियाजी के दरसन करे, श्रीगुसाईजी के दरसन किये। तब श्री गुसाईंजी सों कृष्णभट्ट ने बिनती करी, जो – महाराज! विरजो को यह मनोरथ भयो है। जो – सगरे वैष्णवन कों सखड़ी महाप्रसाद हों अपने हाथ सों परोसों। ताके लिये सगरे वैष्णवन के समाज सहित आपके पास आये हैं। सो आप आज्ञा देहु तब यह मनोरथ पूरण होय। तब श्री गुसाईजी मन में विचारे, जो – विरजो के बड़े भाग्य है, जो – ऐसा मनोरथ उठ्यो। परन्तु अब हम आज्ञा देंइ तो या समय तो बाधा नहीं। यह मनोरथ जगत में प्रसिद्ध होवे। परन्तु श्री आचार्य जी ने वेद मर्यादा राखी है, जो – हमतें लोग सगरे यह कहेंगे, जो – श्रीगुसाईंजी वेद मर्यादा के पालन हारे, सगरे ब्राह्मणन कों पटेल के हाथ सों सखड़ी महाप्रसाद लिवाये। या प्रकार दोष बुद्धि करि अनेक जीव को बिगार होई। और वैष्णव को मनोरथ पूरण न करियो तो पुष्टि–भक्ति को विरोध होय। ताते भक्तन के मनोरथ को तो अवश्य पूरण कर्‌यो चहिये। पाछे यह विराचार्‌यो जो–जोमें मर्यादा रहे, भक्त को मनोरथ पूरण होई, सगरे वैष्णव प्रसन्न होई, सो करनो। तब श्री गुसाईं जी ने कही, जो – यह मनोरथ तो श्रीजगन्नाथरायजी पुरुषोत्तमपुरी में सिद्ध होई। तामें पूरव के वैष्णव हू सगरे आवेंगे। तब कृष्णभट्ट ने विरजो सों कही, जो – यह मनोरथ श्रीजगन्नाथजी चलिये, तहां पुरुषोत्तमपुरी में सिद्ध होइगो। तहां पूरो मनोरथ है, सो सिद्ध होइगो। तब विरजो ने कही बहोत आछो, पुरुषोत्तम पुरी चलिये। श्री गुसाईंजी हू कृपा करि पधारे तो बहोत सुख होय। तब कृष्णभट्ट ने श्री गुसाईंजी सों बिंनती करी, जो – महाराज! आपहू कृपा करिके पुरुषोत्तमपुरी पधारो तो बहोत सुख होई। तब श्रीगुसाईंजी कहे हमहूं पधारेंगे, वैष्णव प्रसन्न होई सो करनों। पाछे श्रीनंद, पच्छिम के, वैष्णव बुलाये। मथुरा के वैष्णव संग ले श्रीगुसाईंजी सहित आगरे आये। आगरे के वैष्णव संग ले समाज सहित कासी आय कासी के वैष्णव सगरे संग लिये। या प्रकार गाम गाम के वैष्णव संग लिये। सो जाई गाम में उतरे तहां नित्य नई सामग्री के मनोरथ गाम गाम के वैष्णव के डेरा न्यारे न्यारे ठाड़े होई। तहां न्यारे न्यारे कीरतन वार्ता श्रीगुसाईंजी कों नित्य नये मनोरथ। व्योपारी अपुने गाड़ी सीधा समान के लिये संग चले। सो सगरे वैष्णव के हृदय में आनंद। नित्य श्रीगुसाईंजी को दरसन। नित्य नये उत्सव। जैसे श्रीकृष्ण की असवारी द्वारिका में निकसे, या प्रकार को। वैष्णव बूढे आदि कों असवारी द्वारिका में निकसे, या प्रकार को। वैष्णव बुढे आदि कों असवारी, भांति भांति की। जा गाम में उतरे ता गाम के के लोग अनेक सुखी भये, द्रव्यादिक सों। या प्रकार गाम गाम के वैष्णव संग ले श्रीपुरुषोत्तम पुरी आये। श्री जगन्नाथजी के दरसन किये। नाना प्रकार की सखड़ी, अनसखड़ीको थार साजि के भोजन करायो। पाछे सगरे वैष्णवन कों विरजो परोसि के प्रेम में मगन ह्वै गई। आनन्द के आंसू नेत्रन में भरे। देह सगरी में पुलकावली भई। मन में कही, धन्य श्रीगुसाईंजी हैं, और कृष्णभट्ट सरीखे भगवदीय हैं। जो–मोकों या सुख को अनुभव करोये।

पाछे कछुक दिन पुरुषोत्तमपुरी में रहिके, नित्य नये मनोरथ नाना प्रकार की सामग्री के, जा वैष्णव कों जो रुचे सो लिवाए। पाछे पुरुषोत्तमपुरी सों समाज सहित चले, सो वाही प्रकार प्रति दिन नित्य नई। ऐसे करत श्रीगोकुल आये। कछुक दिन गोकुल श्रीनाथजी द्वारे रहि नानाप्रकार के मनोरथ किये। पाछे द्रव्य बच्यो सो विरजा ने श्री गुसाईं जी को भेट कियो। तब श्री गुसाईं जी विरजो के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। जो अलौकिक,

वैष्णव को मनोरथ कियो पाछे विरजो श्रीगुसाईंजी सो बिदा होई के समाज सहित उज्जैन आई। सगरे वैष्णव को प्रीति पूर्वक महाप्रसाद लिवाई, खरची न हती तिनकों खरची, वस्त्र पात्र दे, सबन कों प्रसन्न करि बिदा किये। सो विरजो कृष्णभट्ट के संग तें भली वैष्णव भई। सगरे वैष्णव और श्रीगुसाईंजी उनसों प्रसन्न रहते। श्रीठाकुरजी सानुभावता जनावते। सो मावजी पटेल और विरजो ऐसे श्री आचार्यजी के कृपापात्र भगवदीय हते।''

(चौरासी वैष्णवन की वार्ता भाग ३ वार्ता ७८)

इससे सिद्ध होता है कि वेदमर्यादा की रक्षा में श्रीवल्लभाचार्यजी एवं श्रीगुसाईंजी का विशेष ध्यान रहा। वर्तमान समय में पुष्टिभक्ति की सिद्ध अवस्था के भक्त दुर्लभ होन से वार्ताप्रसङ्ग में समागत उच्चभक्तों के चरित्र को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर प्रवाहपतित जीवों के साथ मर्यादा को छोड़ प्रवाह में बह जाना उचित नहीं।

इस विषय पर गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमजी ने तत्त्वार्थदीपनिबन्ध के आवरण भङ्गव्याख्यान में तथा सिद्धान्त रहस्य की व्याख्या में वर्तमान समय में भगवन्नाम आदि के उपदेश को प्राप्त करने हेतु आने वाले लोगों की अधिकार मर्यादा के विवेचन में स्पष्ट कर दिया है। अत: वैष्णवां को धर्मशास्त्रीय मर्यादा का पालन करते हुए सम्प्रदायानुसार भगवत्सेवा करनी चाहिए। वर्ण परिवर्तन के भावावेश में आकर मर्यादा का उलङ्घन नहीं करना चाहिए।

श्रीवल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय एवं श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनीसभा पर महाराजश्री की विशेष कृपादृष्टि रही। वर्णाश्रम स्वराज्य सङ्घ के कार्यों में आपका अनुराग रहा। साम्प्रदायिक ग्रन्थों के अध्ययनाध्यापन को सुचारु रूप से चलाने हेतु महाराजश्री ने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में वल्लभदर्शन की गादी प्रतिष्ठापित की और उसके लिए प्रभूत धनराशि प्रदान की।

पूज्य पितृचरणों की भगवत्सायुज्यप्राप्ति के पश्चात् श्रीवल्लभाचार्य जयन्ती के मङ्गल प्रसङ्ग में श्री गोपाल मन्दिर में वेदमन्त्रपाठार्थ हम लोगों को आमन्त्रित किया जाता था। उस प्रसङ्ग में श्री गोपाल मन्दिर के विद्वान् पं० रामनाथ ज्योतिषीजी भी उपस्थित रहते थे। मन्त्रपाठ होने पर महाराजश्री घण्टों वार्ता करते हुए प्राचीन इतिहास को सुनाते थे तथा चरणाटधाम ले जाने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करते थे। महाराज श्री विद्वत्प्रेमी थे। अत: उस समय वेदमूर्ति श्री गणेशभट्ट बापट महोदय जैसे सुयोग्य विद्वानों को ध्यान देकर आमन्त्रित किया जाता था और उन्हें भगवत्प्रसाद के साथ सत्कार द्रव्य प्रदान कर गौरवान्तिवत किया जाता था। यह कार्य प्रतिवर्ष नियम से होता था।

सं० २०३८ में महाराजश्री ने साङ्गवेदविद्यालय में जगद्गुरु महाप्रभु श्री १००८ वल्लभाचार्यजी महाराज की चित्र स्थापना करायी। महाराजश्री आजीवन भगवत्सेवा में लीन रहे। लीलाप्रवेश के कुछ क्षण पूर्व लोगों के द्वारा कोई सूचना के प्राप्त न होते हुए भी स्वयं चिकित्सालय से महाराजश्री ने गोपालमन्दिर में श्रीठाकुरजी की सेवा में कच्ची पूडियां भोग में धरे जाने का अनुभव कर खेद व्यक्त किया और सेवकों को भोग सामग्री पर ध्यान देने का निर्देश दिया। मन्दिर में वह बात प्रत्यक्ष देखी गयी। इस घटना से महाराजश्री को भगवत्सानुभावता प्राप्त होने की बात स्फुट होती है।

महाराजश्री के नित्यलीलाप्रवेश होने के पश्चात् उनकी उत्तरक्रिया के समय और्ध्वदेहिक कर्माधिकारी का निर्णय तथा क्रिया के विषय में विशेष बातों का निर्णय साङ्गवेदविद्यालयस्थ श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनीसभा द्वारा ही लिया गया। त्रयोदशाह की श्रद्धांजलिसभा में महाराजश्री को श्रद्धांजलि समर्पित करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त

हुआ। महाराजश्री पुण्यश्लोकउच्चकोटि के भगवद्भक्त थे। उनके पावनस्मरण एवं उनके अनुकरणीय आदर्शमय जीवन के परिशीलन से सभी लोग अपने को धन्य (कृतार्थ) कर सकते हैं। सं० २०४३ में विद्यालय में महाराजश्री का चित्र स्थापित किया गया।

महाराजश्री की सुपुत्री आदरणीया श्री शरद्वल्लभा बेटीजी महोदय भगवत्सेवा में तत्पर रहती हैं।

श्री गोपालमन्दिर के वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर पूज्यपाद गो० श्री १०८ श्याममनोहरजी महाराज नित्यलीलास्थ पूज्यपाद गो० श्री १०८ मुरलीधरलालजी महाराज के आदर्शों की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील हैं यह काशीस्थ वैष्णवजनों के लिए परम सौभाग्य का विषय है।

●

यह सुख अनत कहाँ मैं पाऊँ।
प्रात समय दुलराय लाल को निद्रा त्याग जगाऊँ।
करि मनुहार नन्दनन्दन को मंगलभोग धराऊँ।
फेरि करूँ श्रृंगार लाल को, निज हाथन दुलराऊँ।
धेनु चरावन ग्वाल बाल संग वन में नित्य पठाऊँ।
भोग सिद्धकर निज हाथन से अपने कान्ह बुलाऊँ।
गोद विठाय लाड़िले लालन अपने हाथ जिमाऊँ।
धरि फल फूल दुपहरी को मै नित-२ भोग धराऊँ।
सांझ समय आवन की विरियाँ खिरक खडी हो जाऊँ।
आवत ही आरती उतारूँ व्यारू नित्य कराऊँ।
करि श्रृंगार वडो नितलालन चरणन खूब दबाऊँ।
आलसवन्त होंय जब हरि तब उनको शयन कराऊँ।
"राधेकृष्ण" अहर्निश प्रभु के बाल चरित गुण गाऊँ।
सुमिर-२ नित लीला उनकी मनमें अति सुख पाऊँ॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं काशीराज

प्रोफेसर गिरीशचन्द्र चौधरी

लेखक वर्तमान में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में विज्ञान संकाय के भू-विज्ञान विभाग में प्रोफेसर हैं। विज्ञान के प्रोफेसर होने के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी आप कार्यरत है तथा एक गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। हिन्दी साहित्य के दैदिप्यमान नक्षत्र श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप प्रपौत्र हैं तथा पूर्व काशीनरेश दरबार से आप वंशपरम्परागत जुड़े हुये हैं।

काशीराज दरबार एवं नि० ली० महाराजश्री के सम्बन्धों की चर्चा आते ही एक ही वाक्य बार-बार स्मृति पटल पर उभर आता है जो उनदोनों के आत्मीय सम्बन्ध का उदाहरण भी है। पू० महाराजश्री कहते थे-

"श्री गिरीशचन्द्रजी आप तो काशीराज दरबार से जुड़े हैं, कुछ ऐसी व्यवस्था बनाइये कि काशी राज मंदिर में दर्शन करने आए," बारंबार वे इन हार्दिक भावनाओं को, बड़ी आतुरता से इस वाक्य में बोलते थे। उधर काशीनरेश यह सुनकर उसी प्रकार महान भक्ति-भावना से ओत-प्रोत शब्दों से महाराजश्री के दर्शनों की कामना प्रकट करते थे। परंतु कुछ ऐसी भगवद् इच्छा हुयी कि यह संयोग मानसिक ही बना रहा। मैं समझता हूँ कि यह संयोग परोक्ष में हुआ भी ठीक उसी प्रकार से जैसा भगवान् शिव योगी रूप में कृष्ण जन्म पर नंद के घर उनका दर्शन करने आये थे। जब दोनों विभूतियाँ मिलन संयोग की कल्पना करती थी तो मुझे भी उपरोक्त कथा की कल्पना साकार होती थी। इस मिलन संयोग की भूमिका पर विचार करने से यही ध्यान आता है कि हमारे महाराजश्री जो कि अखिल ब्रह्मांड नायक श्री मुकुन्द प्रभु के अनन्य सेवक थे स्वाभाविक है कि, अपने स्वामी के अत्यंत प्रिय विश्वनाथ के अनन्य सेवक काशीराज के निकट होंगे ही। कैसा संयोग है कि जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् शिव जुड़े है उसी प्रकार काशी में काशीनरेश एवं नित्यलीलास्थ महाराजश्री। ऐसा संयोग मानव रूप में किसी भी पुष्टि सम्प्रदाय के मंदिर को या उसके अधिष्ठाता को सम्भवत: नहीं प्राप्त है। यह मणिकांचन संयोग श्री गोपाल मंदिर के अधिष्ठाता श्री जीवनजी एवं तत्कालीन काशी के शासक महाराजा चेतसिंह के काल में हुआ था। यह कोई अद्भुत लीला ही थी कि श्रीगोपाललालजी विश्वनाथ की नगरी काशी में पधारे और काशीराज दरबार ने उनको राज्यसम्मान प्रदान किया। जैसाकि पुराणों में कहा है कि शिव और कृष्ण एक दूसरे से गुथें हुए हैं उसी दृष्टि से आज भी षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर में राजभोग सरने पर पहली पुकार भगवान् विश्वनाथ की ही की जाती है।

काशीराज दरबार में लौकिक रूप से भी षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर का आत्मीय संबंध विशेष रूप से बना है। जैसा कि महाराजश्री से ज्ञात हुआ था कि काशीराज के मंदिर पधारने पर उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया जाता था जिसमें "राज सम्मान" की भावना भी निहित थी। महाराजा काशीराज भी मंदिर को स्वर्ण मुद्रायें भेटस्वरूप पधराते थे। इसके अतिरिक्त काशीराज कभी भी मंदिर में पीठाधीश्वर के द्वारा सम्पादित शुभ कार्यों में स्वयं उपस्थित रहते थे। मेरे पिता जो काशी-राज के अंगरक्षक थे, बतलाते थे कि बड़ी बेटी जी के विवाह पर महाराजा आदित्यनारायणसिंहजी गोवर्धन चौक में विवाह मंडप में कार्यपर्यन्त उपस्थित रहे।

इसके पूर्व महाराजा प्रभुनारायणसिंहजी बहादुर और महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहजी भी मंदिर में शुभकार्यों में स्वयं उपस्थित रहते थे। इस ग्रन्थ में दिये हुए एक चित्र में षष्ठपीठाधीश्वर नि० ली० गो० श्री जीवनलालजी महाराज तत्कालीन काशीनरेश महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजी अपने पार्षदों सहित दिखायी पड़ रहे हैं। प्रतीत होता है कि श्रीमान् काशीराज सभी के साथ श्री गोपाल मंदिर में पधारे थे। वृद्धावस्था में काशीराज रुग्ण एवं प्रज्ञाचक्षु भी हो गये थे। अवश्य ही नरेश आशीर्वाद हेतु मंदिर पधारे थे। गो० श्री जीवनलालजी महाराज की अपूर्व युवाछटा इस छवि में परिलक्षित है।

जैसा कि ज्ञात है कि मंदिर द्वारा मुख्य उत्सव जैसे जन्माष्टमी, अन्नकूट, देवोत्थान एकादशी पर प्रसाद रामनगर किले में पारम्परिक रूप से आज भी भेजा जा रहा है। साथ ही सुनते है कि राजतिलकों के अवसर पर मंदिर की ओर से भी तिलक होता रहा।

एक अद्भुत बात जो केवल, काशी के इसी मंदिर के आचार्य को प्राप्त है काशीराज, दरबार के द्वारा, वह है काशी का प्रमुख वैष्णव मेला भरतमिलाप में सम्मिलन। जैसा कि मालूम है नगर के लक्खी मेले में एक नाटीइमली का भरतमिलाप भी है। आश्विन सुदी एकादशी को प्रत्येक वर्ष होने वाला यह मेला काशीवासियों में वही उत्साह और उमंग प्रभुमिलन छवि प्रकट कर देता है जो राम के वनगमन के पश्चात् लौटने वाले दिन अयोध्यावासियों में दिखा था। नगर के सभी वर्ग के नागरिक क्या बाल, क्या वृद्ध नाटीइमली का भरतमिलाप देखने दौड़ पड़ते हैं और उनके अगुवा होते हैं महाराजा काशीनरेश। पारम्परिक रूप से सुसज्जित हाथी पर अपने पार्षदों सहित भगवान् के रथ की परिक्रमा कर मिलाप के पश्चात् श्री राम के विमान के आगे-आगे लौटते हैं। यह अद्भुत दृश्य अयोध्या नगरी के उस अलौकिक दृश्य को दुहरा देता है जो त्रेता युग में हुआ था। काशीराज की उपस्थिति कुछ अवर्णनीय छटा ला देती है। महाराजा स्वयं काशीवासियों के स्नेहाभिनन्दन से युक्त हर-हर महादेव का जयघोष सुनकर विभोर हो जाते हैं वही भगवान् का सानिध्य साक्षात् प्राप्त कर भक्ति रस में भी डूबे रहते हैं। ऐसे समय सोने में सुहागा का काम करती थी श्री गोपाल मंदिर के आचार्य की महान उपस्थिति। प्रतीत होता था कि स्वयं देवों के आचार्य राम के साथ कृष्णभक्त मंडली के बीच चल रहे हैं। सारा वातावरण भक्ति रस का साक्षात् दृश्य उपस्थित कर देता था। यह दृश्य केवल मंदिर के महाराज द्वारा ही पूर्ण होता था ऐसा वर्णन उन अद्वितीय क्षणों का मैंने अपने पिताजी से सुना है जो काशीराज के अंगरक्षक रिसाले का नेतृत्व करते थे। नर और नारायण का संयोग। नराधिपति काशीराज एवं सबके आचार्य मंदिर के महाराज गोस्वामी मुरलीधर लालजी द्वारा अगुवाई दैविक छटा उपस्थित करती थी। मेले की अगुवाई महाराजश्री द्वारा वास्तविक होती थी। जैसा कि अपने पिताजी से सुना था कि काशीराज की आज्ञा थी कि महाराज श्री की हाथी काशीराज के हाथी से एक हाथ आगे चला करे। यह आदर काशीराज महाराजश्री को देते थे। मैंने उस उक्त मेले की यह सुनी हुई छटा पिछले लगभग ५ दशकों में नहीं पायी है। यह उस महान आत्मा के अपने व्यक्तित्व का प्रभाव था। धर्माचार्य का व्यक्तित्व उसका चरित्र होता है और तभी वह मानव हृदय का शासक बनता है। आज के मेले में उनकी अनुपस्थिति यह अनुभव कराती है कि इस मेले का अगुवा एक अत्यन्त सरल, शांत, निष्कपट, कृष्णभक्ति सेवा से ओत-प्रोत, महान् विद्वान, पुष्टि सम्प्रदाय मर्मज्ञ, देहधारी साक्षात् देव स्वरूप आचार्य महाराजश्री सशरीर नहीं अपितु निकुंज से आशीष वर्षा कर सभी उपस्थित आत्माओं को आनंद दे रहे हैं। यह अनुभव इसलिए और भी है क्योंकि काशी विश्वनाथ के अनन्य सेवक और कृष्ण के अनन्य सेवक का अविलग संयोग भले ही लौकिक देहों में नहीं, परोक्ष रूप से सदा अविछिन्न प्रमाणित है। इसका लौकिक प्रमाण वर्तमान में काशीराज एवं पीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज द्वारा भी वही पारम्परिक सम्बन्ध पारिवारिक प्रगाढ़ता की विशेषतायुक्त उत्तरोत्तर विकसित होता देखा जा रहा है।

॥ श्री मुकुन्दगोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर नि॰ ली॰ गो॰ श्री मुरलीधरलालजी महाराज की सेवा-परायणता

मुखिया श्री नृसिंहलाल हरीराम शुक्ल

लगभग सात-आठ पीढ़ी से लेखक के वंश के बालक श्री गोपाल मंदिर में मुखिया पद पर प्रतिष्ठित होकर श्री मन्मुकुन्द प्रभु की सेवा में रहे हैं। आपके पुत्र श्री नटवरजी शुक्ल भी वर्तमान में मुखिया पद पर प्रतिष्ठित हैं और उनका एक लेख अलग से इस ग्रन्थ में प्रकाशित भी है। प्रस्तुत लेख में पू॰ महाराजश्री की सेवा परायणता विषय पर अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण तथा तथ्यपरक सामग्री आपने उपलब्ध करायी है।

यदुकुलबालकं, मुकुन्दरतिपालकं।
षष्ठपीठाधीश्वरं, प्रणमामि श्रीमुरलीधरम्॥

तीन लोक से न्यारी काशी सदा से ही धर्म विद्या का केन्द्र रही। यहाँ का महत्व सदा से ही महात्माओं को अपनी ओर आकर्षित करता रहा। भगवती गंगा के अवतरण से पूर्व के तीर्थ यहाँ आज भी विद्यमान हैं। भगवान् विष्णु के चक्र द्वारा खनित पुष्करिणी आज भी विद्यमान है जिसके विषय में कहा गया है–

मरणं मंगलं यत्र, सफलं यत्र जीवनम्।
स्वर्गस्तृणायते यत्र, येषां श्री मणिकर्णिका॥

वरुणा और अस्सी के मध्य स्थित होने से इसका नाम वाराणसी भी है। काशी की विशेषता का वर्णन काशी खंड में इस प्रकार है–

विश्वनाथ समो लिंगो, न काशी सदृशी पुरी।
मणिकर्णिका समं तीर्थं नास्ति ब्रह्मांड गोलके॥

ऐसे जनसाधारण में यह धारणा प्रचलित है कि काशी शिवपुरी है परन्तु काशी खंड में इसका प्रमाण है कि यह पुरी आधी शिवपुरी तथा आधी विष्णुपुरी है। मणिकर्णिका को मध्य मानकर उत्तर में विष्णुपुरी एवं दक्षिण में शिवपुरी की मान्यता है। यहाँ गंगा का भी उत्तरवाहिनी होने से विशेष महत्त्व है। पंच तीर्थों के मध्य बसी होने वाली काशी में पंचगंगा तीर्थ का अपना एक अलग विशेष स्थान है। यहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा, धूतपापा का संगम स्थल माना गया है। विष्णुपुरी स्थित पंचगंगा तीर्थ शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक जगद्गुरु आचार्य श्री वल्लभ का क्रीड़ा स्थल था जहाँ उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि सम्पन्न हुए थे। जहाँ पर आज भी उनकी बैठक विद्यमान है और नित्य में सुचारु रूप से वैष्णवगण अष्टयाम सेवा में लगे रहते हैं।

काशी में जिस तरह काशी विश्वनाथ का अपना सर्वोच्च स्थान है उसी प्रकार श्री गोपाल मंदिर का अपना अति विशिष्ट महत्व है। श्री गोपाल मंदिर में प्राचीन काल से श्री गोपाल प्रभु के दर्शन तो यहाँ के वैष्णवजन करते थे, परन्तु श्री गिरिधरजी महाराज के अथक परिश्रम से गुरु दक्षिणा में प्राप्त श्री मन्मुकुन्द प्रभु के काशी पधारने पर इस मन्दिर की श्री छवि दूनी हो गयी। काशीवासियों के हृदयस्थल में आज भी श्री मन्मुकुन्द प्रभु

षष्ठनिधि स्वरूप के रूप में पूज्य हैं।

श्री गिरिधरजी महाराज की विद्वत्ता का समादर काशिस्थ विद्वद्‌गण बहुत करते थे और शुद्धाद्वैत-मार्तंड उपाधि से उन्हें विभूषित किया था। उनके लिये विद्वानों ने कहा-

श्रीमद् गिरिधरं वन्दे, यदुनाथकुलोदभवम्।
यद् कृपा दृष्टिपातेन, पतितः पावनोभवेत्॥

इस सम्प्रदाय में सेवा का सबसे उच्च प्रकार अष्टयाम राजसी सेवा से होता है। उत्तम से उत्तम वस्तु प्रभु को समर्पित करना ही सेवा प्रधान लक्ष्य है। श्री गिरिधरजी महाराज एवं श्री श्यामा बेटीजी महाराज ने आजीवन सम्प्रदाय की विशेष आज्ञा तनुजा - वित्तजा मानसी सेवा का पूर्ण पालन करते हुए प्रभु का सदा सुखद विचार रखते हुए किया।

उसके बाद का काल पू० गो० जीवनलालजी महाराज का रहा है जिसमें सेवा पूर्ण सुचारु रूपेण चलती रही। आपश्री के दो बालक हुए श्री गिरिधरजी एवं श्री मुरलीधरजी। पू० गो० जीवनलालजी महाराज के गोलोकवास के समय बालक श्री मुरलीधरजी बहुत ही अल्पवय थे। आपकी शिक्षा पू० मातुश्री व बड़े भ्राताश्री गिरिधरजी एवं बड़ी बहन पू० जीजीबा के सान्निध्य में हुई।

पू० गिरिधरजी महाराजश्री ने जब श्री मन्मुकुन्द प्रभु को श्रीनाथद्वारा से काशी पधराया उस समय उन्होंने बड़े मुखिया के पद पर श्री जयरामजी औदीच्य जो कि महाराजश्री के खवासी में थे तिलक किया जिसका उल्लेख श्री मुकुन्द रायजी की वार्ता में है। इस लेख के लेखक के वो पूर्वज थे। आज भी ७-८वीं पीढ़ी में उसी वंश के बालक मुखिया पद पर प्रतिष्ठित होकर श्री मन्मुकुन्द प्रभु के चरणारविन्द की सेवा में रत् हैं।

आपश्री के समय के मुखियाओं में श्री श्यामसुन्दरजी (भैयाजी) मुखिया का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिनको आपश्री बहुत ही आदरणीय दृष्टि से देखते थे। उनके लिये आपश्री कहते कि वो हमें सेवा-शृंगार में जरा सी त्रुटि पर बड़े अप्रसन्न हो जाते और कहते आप गोस्वामी बालक हैं काशी का नाम धरायेंगे का। आपको सेवा में बहुत सावधान रहना चाहिये। आपके काशी की सेवा परम्परा का परदेश में बड़ा नाम है सेवा में ढील नहीं होनी चाहिये। आपश्री बराबर अपने मुखारविन्द से श्री मुखिया जी की बहुत ही प्रशंसा करते और कहते कि हमें तो या घर की रीति-सेवा शृंगार का ज्ञान विशेष कर इनसे प्राप्त हुआ। आपश्री की सेवा में पूर्व आचार्यों द्वारा निर्देशित मर्यादाओं, अपरस इत्यादि के नियमों को पूर्णरूपेण पालन पर बहुत आग्रह रहता था। खासा-सेवकी-जलधरिया तीनों ही प्रकार की अपरस का यथारूपेण पालन चाहते थे। जिस सेवक को निज मन्दिर, भोग मन्दिर, रसोई बालभोग इत्यादि में जहाँ तक जाने की आज्ञा प्रदान है उसका अतिक्रमण किसी प्रकार न हो इसका सदा ध्यान रखते थे।

प्रसंग-एक समय सेवकों की अनुपस्थिति से ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न तीन बजे तक शंखनाद नहीं हुए। आपश्री ने तीन व्यक्ति - बालाप्रसाद समाधानी, गोपालदासजी सोनावाले, श्यामदासजी गायघाट वालों को दुकान पर हमारे पास भेजा और तुरंत साथ में लाने की आज्ञा दी। पहुँचते ही सामना होने पर तुरंत जलघड़े में स्नान कर सेवा में पहुँचने की आज्ञा हुई। मदन खवास से ऊपर से कोरी अपरस लाकर देने को कहा। मंगला आरती उपरान्त आपश्री बोले कि श्री मुकुन्द-गोपाल प्रभु को हम सम्भाल लेंगे तुम श्री गोपीनाथजी, गिरिराज जी वगैरह को स्नान करा शृंगार धराओ। क्योंकि सेवा में उस वक्त आपश्री और हम दो ही थे। हमने चश्मे के लिये

जो कि प्लास्टिक फ्रेम का था, लगाने की आज्ञा चाही तो आपश्री ने नहीं दी और शृंगार चौकी को बगीचे की तरफ विशेष प्रकाश में ले जाकर शृंगार धराने को कहा। इतना बड़ा मर्यादा का पालन था। चि० नटवर हमारा बालक जो कि इस समय पर श्री मुकुन्द प्रभु की सेवा में मुखिया पद पर है साथ में था। आपश्री बोले कि भोग में व्यवधान होगा इसलिये इसे सखड़ी में नहला दो जिससे समय पर तैयारी मिल जाय पर निज मन्दिर की आज्ञा नहीं दी, भावना बालक में विरह उत्पन्न करने की थी। सैन भोग अरोग श्री ठाकुरजी चौक में विराजे। आपश्री ने माला धरावीरी अरोगाई, आरती प्रगटने की आज्ञा दी। चि० नटवर आरती प्रगट कर लाये तो बोले तुम उसके हाथ से लेकर आरती कराओ, चौक में श्री ठाकुरजी विराज रहे हैं उसे अभी निज मन्दिर की आज्ञा नहीं है। मर्यादा को निभाने में इतनी आस्था थी।

प्रसंग—श्री मुकुन्द प्रभु की सेवा आपश्री चिरविरह तापहर, मति रुचिर मीक्षणं प्रगटय् प्रेमायनं भावना से करते। कभी-कभी धीरे से पास बैठाकर भावुक हो जाते तो लालन की बाल्य लीला वर्णन करने लगते कि इतने हठीले हैं कि शृंगार धराओ मन न रहने पर बड़ा कर देंगे। कई दफा ऐसा करने पर विलम्ब होता देख दूधधर से दूध पूरी – पगी मलाई मंगवाकर माल सामने धरकर निवेदन करते कि जल्दी से आप शृंगार धर लें तो आपको भोग धरूं। श्री ठाकुरजी से आपका इतना तारतम्य था कि प्रभु विनती स्वीकार कर शृंगार धर लेते। आपश्री कहते भारी शृंगार का तो अपना एक अलग स्थान है, परन्तु एक गोल पाग और दुलड़ी धराकर आरसी दिखाओ और ठाकुर के हँसते हुए दर्शन न हो तो सब बेकार है। आपश्री शृंगार में सिद्धहस्त थे। आपश्री के शृंगारी रहने पर दर्शन में सदैव एक नूतनता का भास होता था जैसा कि कवि ने कहा है–

आज को शृंगार माई साँवरे गोपाल जू को
कहत न बनि आवे देखे ही बनि आवे।

आपश्री को कीर्तन से बड़ा ही लगाव था। पालना झुलाते तो अपने अवश्य कीर्तन करते कहते नवधा भक्ति की एक सीढ़ी है। अपने करते तो संग में झेलाने को कहते। सेवा के विषय में आप कहते कि किसी भी सेवा को छोटी या बड़ी न समझे। सोहनी की सेवा भी बहुत बड़ी है जिसमें शेवरी का उदाहरण देकर कहते हैं कि–गुरु आज्ञा को सर्वोपरि मान कि श्री ठाकुरजी तेरी कुटिया में अवश्य पधारेंगे। नित्य प्रति कुटिया व आने वाले मार्ग की सोहनी कर स्वच्छ रखती कि कब प्रभु पधार जाय। प्रभु को स्वयं सिद्ध कर सामग्री भोग धरने का आपको बड़ा चाव था। चुनार बैठक जी में पधारते तो स्वयं एक दिन नारंगी-भात सिद्ध कर अपने हाथ से भोग धरते। खूब सुगंध, केशरी, इलायची, मेवा वामें डारते। कहते प्रभु तो सामग्री की मकरंद ही अरोगते हैं। सामग्री भोग धरो और वाकी सुवास न उठे और चारों तरफ न फैले तो सामग्री बेकार है। 'सुगन्धिम् पुष्टि वर्धनम्' परचारगी में साथ में रखते इससे इन सब बातों की जानकारी है। आग्रह से तपेली में प्रसाद भी लिवाते स्वाद तो अवर्णनीय है। तनुजा-वित्तजा-मानसी तीनों सेवा के प्रकारों के विषय में कहते कि अपने शरीर से मनोरथ इत्यादि में अथवा नित्य की सेवा में सहयोग प्रदान करना। वित्तजा के लिये कहते कि यह कोई जरूरी नहीं कि हम दूसरों की देखादेखी करें। सेवा अपने सामर्थ्यानुसार होनी चाहिये। सोचो कि अगर चार आने की तुलसी सेवा में पधराओगे तो चरणारविन्द सहित कितनी सामग्री में पड़ेगी। एक रुपये की छोटी इलायची सेवा में पधराने से कितनी सामग्री में सुगंधि प्रभु अरोगेंगे। बड़े ही सेवा के सूक्ष्मतम भाव थे आग्रह सेवा करते रहो येन-केन-प्रकारेण यह था। घर पर मांगलिक अवसरों पर मनोरथ होता तो आप अवश्य पधारते। घर पर आपके बड़ो द्वारा ही दिया हुआ श्री गिरिधरजी महाराजश्री की पादुका जी विराजती हैं। तीन चार घंटा घर पर अवश्य

विराजते कहते 'पुताने घेर आव्यो छूँ'। श्री ठाकुरजी की आरती पश्चात् श्री पादुका जी की आरती अवश्य करते मंद मंद मुस्कान के साथ हमारी तरफ देखते रहे।

प्रसंग—सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को भली प्रकार से प्रश्नकर्ता को हृदयंगम करवा देना आपका लक्ष्य था। शास्त्रोक्त उद्धरण देकर आपका समाधान होता था। एक समय मैंने विनती की कि जै सम्प्रदाय में जन्माष्टमी के दिन प्रातः और रात्रि दो समय पंचामृत का क्रम अपने सम्प्रदाय में कैसे औरन में तो नहीं है। आपश्री ने समाधान इस प्रकार किया। अपने मन्दिर नहीं श्रीनन्दराय जी को घर माने है। वर्ष भर के समस्त त्योहार श्री नन्दराय जी के घर में मनाये जाये हैं। श्री नन्दराय जी इसी सारस्वतकल्प में हुए हैं। सभी कल्पों में कृष्णावतार हुए हैं।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

इस कल्प में भी उसी दिन नन्दराय लला प्रगटे हैं उनका आज जन्मदिवस है। जन्मोत्सव दिन में मनाया जाता है रात्रि में कृष्णावतार प्रागट्योत्सव मनाते हैं। पंचामृत के संकल्प में शब्द भेद हो जाता है।

यथा –प्रातः भगवतः पुरुषोत्तमस्य नन्दकुमारस्य जन्मोत्सव कर्तुं रात्रिः भगवतः पुरुषोत्तमस्य कृष्णावतार प्रादुर्भावोत्सवं कर्तुं तदंगत्वेन – पंचामृतस्य स्नानं कारिष्ये

प्रसंग—सप्त स्वरूप के उत्सव में छप्पन भोग अरोगने श्री मन्मुकुन्द प्रभु जब श्रीजीद्वारा पधारे तो उस समय के आनंद का वर्णन अवर्णनीय है। श्रीजीद्वारा के सभी कार्य अभूतपूर्व थे। कैसे अद्‌भुत शृंगार, सब स्वरूपों के साथ श्रीजी गोद में विराजकर छप्पन भोग अरोगना, अपने निज मन्दिर में हाथी दाँत के पालना में विराजकर झूलना।

आपश्री ने श्रीजी को पवित्रा धराकर मुझसे आज्ञा करी चलो टिकैतश्री को पवित्रा धरा आवें। सब तैयारी कर आपश्री सेवकन को साथ लेकर मोतीमहल पधारे। आपको देखते ही टिकैतश्री गोविन्द लालजी खड़े हो गये और बोले आइये काकाजी। आपने टिकैतश्री को बाँह को सहारो देकर सोफे पर बैठायो और बोले मैं आपको पवित्रा धरायवे आयो हूँ। टिकैतश्री बोले पहले मैं धरावूंगो। आपश्री ने कही पीठ की मर्यादा यथावत् चलनी चाहिये, आप हमारे टिकैत होयाते आपश्री को प्रथम धरावने की हमारे बड़ेन की आज्ञा है। मोतीमहल में वा समय बालक से वयोवृद्ध तक गोस्वामी बालक सभी प्रदेशों से आये हुए विराज रहे थे जिनमें आपश्री का वर्चस्व विशेष दृष्टिगोचर हुआ। कैसी अद्‌भुत सजावट मोतीमहल की हुई थी देखते ही बनती थी। श्रीजी के सेवकों ने काशी के सेवकों को पूर्ण सम्मान प्रदान किया और सभी प्रकार की सेवा दी। आपश्री की कृपा से ही काशीस्थ जो वैष्णव उस समय श्रीजीद्वरा गये हुए थे और सभी वैष्णवन समुदाय को जो वहाँ उपस्थित थे, दर्शन का सुखद लाभ प्राप्त हुआ हो जो कि अवर्णनीय है। आपश्री के हर कार्य में सुघरता के दर्शन होते थे। तिलकोत्सवों पर श्रीमन्मुकुन्द प्रभु को तिलक धराकर अक्षत लगाते वक्त कटोरी से अक्षत लेकर हथेली पर रखकर बायें से छोटा से छोटा अक्षत बिनते फिर दो लेकर श्रीमस्तक पर बड़े धीरे से धराते। आपका आग्रह था कि घर में अगर सेवा विराजती होय तो उसे पूर्ण (ब्रह्म) समझकर सेवा करो, प्रेम ही प्रधान है। थोड़ी मिश्री है तो उसके अनुरूप पात्र में धरकर भोग धरो। यह नहीं कि जरा सी मिश्री और बड़को कटोरा। पूर्ण को पूर्ण चाहिये। ढीली वस्तु में चम्मच या कटोरी पध रानो चाहिये। फिर विनती करो आज बहुत दिनन पर यह सामग्री आपके ताई सिद्ध कराई है बड़े प्रेम से अरोगो है। मर्यादा मार्ग में जब प्रभुविग्रह की स्थापना की जाती है तो उसे

नाम प्राण-प्रतिष्ठा दिया गया है। आप भी ठाकुर के लिये प्राण दो वो आपको सानुभावता दिखायेंगे। आपके हृदय स्थल में खुद ही भाव उदय होंगे 'यथा देहे तथा देवे' आप सावधानीपूर्वक हृदयगत प्रेम को प्रगट करेंगे तो पुष्टि में क्या विलम्ब है 'पुष्टिस्तु तदनुग्रहः' आप पर अनुग्रह होगा ही। आपने गुरु को मध्यस्थ मान ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा लेकर सर्वस्व प्रभु चरणारविन्द में तुलसी दल द्वारा समर्पित किया है। कोई भी वस्तु आपकी है ही नहीं आत्मा भी नहीं।

प्रसंग—आपश्री बड़े सुलझे विचारों के थे, जो व्यक्ति जैसा रहता उससे उसके अनुरूप बात करते। चुनार की बैठक में गुसाईंजी के उत्सव पर आप प्रतिवर्ष पधारते और ५-७ दिन वहीं निवास करते। अपने चौक में कुर्सी डलवाकर प्रातः की धूप सेवन करते। मैं भी नित्य ज्ञानार्जन हेतु सेवा में हाजिरी देता। एक दिन प्रातः दर्शनार्थ जा रहा था कि एक रामायणी व्यासजी मिल गये जो कि गंगादासजी तोसाखनिया के साथ उत्सव दर्शनार्थ गये थे मेरा भी परिचय था मुझसे बोले इस वक्त कहाँ जा रहे हैं मैंने गुरु दर्शनार्थ जाने की बात कही तो स्वतः भी संग में हो गये। गुरु चरणारविन्द में दण्डवत् की। आपश्री ने तुरंत नवीन व्यक्ति साथ देखकर परिचय चाहा जानकारी हों जाने पर व्यास जी से बोले कि आपका रामायण का अध्ययन तो खूब होगा, व्यासवृत्ति करते हैं। हमें बतलायें भगवान् राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम है और भगवानकृष्ण लीलापुरुषोत्तम परन्तु रामावतार में भी भगवान ने मर्यादा छोड़ पुष्टि लीलाएं की वो कौन-कौन सी है। व्यास महोदय अनुत्तरित, आवाक् खड़े रह गये, घड़ी-घड़ी गुरुदेव को या मुझे निहारते या दृष्टि नीची कर लेते। मुझे बड़ा संकोच हुआ आपश्री से विनती की कि आप ही इस प्रसंग पर प्रकाश डालें। तब आपने कहा कि भगवान् भक्त पर स्वतः कृपा करें यही पुष्टि है। 'पुष्टिस्तु तदनुग्रहः' उदाहरणार्थ- अहिल्यातरण, शेवरी मंगल, विभीषण शरणागति इत्यादि रामायण प्रसंगों का उद्धरण देकर जिज्ञासा शान्त की। व्यास महोदय नत्मस्तक हो गये। सेवा में पूर्व आचार्यों द्वारा निर्देशित नियमों के पूर्णरूपेण पालन करते व चाहते। जरा सी भी शंका पर उच्च और भावपूर्ण समाधान करते श्री मन्मुकुन्द प्रभु के नित्य स्नान में ४ लोटे जल का प्रयोग क्यों है। चारो वेद स्वयं उपस्थित होकर जलाभिषेक करते हैं। प्रभुसेवा में जो भी सेवक थे उनको बहुत सम्मानजनक दृष्टि से देखते व बुलाते। जैसे बड़े मुखियाजी श्रीनन्दरायजी छोटे श्रीयशोदा मैया अन्य श्री नन्दालय के परिवार स्वयं अपने को भी मानते। सेवा में पधारते तो बड़े मुखियाजी से पूछकर सेवा करते। मुखिया बाबा झारी भरें, चरण स्पर्श करें इत्यादि। नन्द महोत्सव पर षष्ठीपूजन पश्चात् श्री यशोदाजी को स्वयं हाथ पकड़कर प्रभु सम्मुख बैठाकर पालने की डोरी पकड़ाकर हाथ जोड़ प्रणाम करते। श्रीनन्दबाबा को पधराकर स्वयं नन्द महोत्सव में सम्मिलित होते। आपश्री अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा तो दे देते परन्तु ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा विचार कर ही प्रदान करते। हमारे बालक के लिये हमने निवेदन किया। हर दफा कहते ठीक है जरूर देंगे वचनामृत देखेंगे परन्तु समय आगे बढ़ता जाता। श्री गुसाईं जी के उत्सव पर आपश्री चुनार पधारे, हमलोग भी गये थे। मुझे बुलाकर बोले, बालक को अष्टमी के दिन व्रत करवा देना, नौमी को उत्सव के दिन दीक्षा देंगे। मुझे पास बुलाकर धीरे से बोले-बालक के हृदय में विरह उत्पन्न हो कि प्रभु मुझे कब अंगीकार करेंगे यासे दीक्षा में इतनो विलम्ब कियो। नौमी के उत्सव पर आप सबेरे काशी पधार जाते और यहाँ श्री मुकुन्दरायजी की सेवा, शृंगार, राजभोग, तिलक, आरती कर, साँझ तक पुनः चुनार पधारे तब वहाँ राजभोग, तिलक, आरती करने सेवा में पधारते। आपश्री की मोटर जैसी ही मन्दिर में दाखिल हुई, बालक वहाँ मोटर के पास आ गया। उसे देखते ही आप विह्वल हो गये क्योंकि बालक व्रत किये दो दिन हो गये थे, सायंकाल के छः बज रहे थे। मोटर से उतरकर आप सीधे जलघड़े में स्नान करने पधार गये और बालक को भी कहते गये जल्दी से नहाकर आओ। सीधे मन्दिर में ले जाकर श्री महाप्रभुजी-गुसाईंजी के

सन्मुख दीक्षा प्रदान की। तिलक-आरती पश्चात् तपेली में प्रसाद लिवाया। आज वही बालक आपश्री की अनुकंपा से श्री मन्मुकुन्द प्रभु की सेवा में बड़े मुखिया के पद पर है।

प्रसंग–आपश्री का छोटे बालकों से बड़ा स्नेह था। पास बुलाकर उनसे बात करते हास्य विनोद करते। एक समय की बात है आपश्री सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। हमारे घर में हमारी बेटी व भानजी मन्दिर से मिलने वाला रोज का नेग व दूध लेने गयी थीं। बालिकाओं ने आपश्री को देखा तो दण्डवत् करने पास चली गयी। बालिकाओं से बोले क्या नाम है तुम लोगों का हमारी बेटी ने कहा मंगला बड़े ही प्रसन्न हुए बोले एक ही नाम है ? तो उसने कहा स्कूल का नाम सन्ध्या है। कहने लगे मंगला आरती-सन्ध्या आरती बहुत सुन्दर नाम धरे हैं। भानजी से पूछा तुम्हारा नाम तो उसने कहा पीपी। आप बड़े जोर से हँसने लगे और मुखारविन्द से सीटी की तरह पीपी-पीपी स्वर निकालने लगे। बालकों से इस प्रकार का विनोद कर उन्हें हँसाते थे बड़े ही हास्यप्रिय थे। आप त्रिकाल सन्ध्योपासना, तर्पण नित्य करते थे। ऊपर से स्नान कर नीचे पधारते ही सीधे मन्दिर में पहुँच जाते। श्रृंगार कर, राजभोग धरकर तब सन्ध्या करने बैठते। राजभोग का समय होते ही पुनः मन्दिर में पधार जाते। माला-बीरी धराकर राजभोग आरती कर पुनः आकर आसन पर जप करने बैठते। एक दफा मेरे शंका करने पर कि आप संकल्प में समय का निर्णय कैसे करते हैं। आपश्री ने समझाया कि देखो दो वस्तु है काल और कर्म **'उत्तमा तारको पेता'** काल लुप्त हो गया तो हम कर्म को भी लुप्त कर दें ? दूसरे सब कार्य 'भगवान् गोपीजन वल्लभः प्रियतां' इससे प्रभु को श्रम न हो पहले सेवा पहुँच फिर अपना नित्य कर्म होता रहेगा और करना ही क्या है। औदीच्य ब्राह्मणों पर श्री महाप्रभुजी के समय से आज तक वल्लभकुल के आचार्यों की बड़ी कृपा रही है और खास कर काशीस्थ श्री गोपाल मन्दिर में। मन्दिर के बड़े से बड़े पद मुखिया से लेकर सागधर, दूधधर, सेवकी तथा आचार्य के तपेली-खवासी तक में इनका एक छत्र अधिकार था। ज्ञाति में कोई भी विवाद पड़ने पर आचार्यश्री का हल सर्वमान्य था। औदीच्य ब्राह्मणों का मूल स्थान सिद्धपुर है जहाँ सरस्वती तट पर उनके आराध्य श्री गोविन्द माधव प्रभु का देवालय है। काशी में भी एक छोटा सा स्थान इनका अपना है। श्री मुरलीधर महाराजश्री के पास मंडल गया श्री विग्रह प्राण-प्रतिष्ठा एवं यज्ञ मंडप में पधारने की आपश्री से प्रार्थना की। आपश्री ने बड़े ही प्रसन्नतापूर्वक दोनों ही अवसरों पर अपने उपस्थित होने की स्वीकृति प्रदान की। यज्ञ मंडप में पधारकर आपश्री ने आचार्य से लेकर सभी ऋत्विजों का सम्मान किया। श्री विग्रह प्राण-प्रतिष्ठा में पधारकर भगवद्दर्शन कर आप बड़े ही प्रसन्न हुए। आज्ञा करी कि औदीच्यों के ठाकुर की पुष्टिमार्ग पद्धति से सेवा होनी चाहिये। वर्षोत्सव, सेवा, श्रृंगार की सब पद्धति बतलायी, आरती कर ठाकुर पुष्ट किये। अपने जन्मोत्सव के दिन भोगराग के लिये रूपये जमा कराये जो बैंक में जमा हैं। जिसके व्याज से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को श्रृंगारभोगराग होता है। आपश्री ने श्रृंगार से भोगराग तक का सब कार्यक्रम कापी में लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिये जो संस्था में विद्यमान हैं। आपश्री के बताये क्रमानुसार वर्ष के सब उत्सव जो सम्प्रदाय में प्रचलित है, अद्यावधि हो रहे हैं। गोपाल मन्दिर में जो भी गोस्वामी बालक पधारते हैं उनका आगमन यहाँ अवश्य होता है। अस्तु

आपश्री को दो बेटी जी हैं। आपश्री ने सदा पुत्रवत् उनका नामकरण, लालन, पालन किया। बड़ी श्रीकृष्णप्रिया जी एवं छोटी श्री शरद्वल्लभा। आप सदा मन्नूराजा, बिन्दाराजा एवं बड़े भइयाजी, छोटे भइयाजी ही उद्बोधन करते। श्री बड़ी बेटीजी महाराज तो लीला पधार गयीं। आपश्री की हार्दिक इच्छा जो आप पूर्ण न कर सके श्री मुकुन्द प्रभु को छप्पनभोग अरोगाने की उसे छोटे भइयाजी ने अरोगा कर पूर्ण किया। इस परिवार

का भी आपने पिताश्री की ही तरह सम्पूर्ण सेवा में सहयोग लेकर पूर्ण सम्मान किया। मन्दिर के जलधरे में यादव बन्धु ही सेवा में है। उनके घर देहात के समस्त परिवार सेवक हैं। गुरुपूर्णिमा के दिन इन सेवकों का समूह देखने को मिलता है। आपश्री को गंगाजी से बड़ा ही स्नेह था एवं काशी भी परमप्रिय थी। मन्दिर से नित्य एक पहरेदार के साथ जलधरिये गंगाजल लेने के लिये अवश्य जाते। सदा मन्दिर में गंगा जल के घड़े भरे रहते। आपश्री कहते गंगाजी तो गौर वर्ण हैं श्री यमुना महराणी श्यामवर्ण हैं।

'श्याम संग श्याम व्है रही श्री यमुने'।

रामनगर किले से देखो तुम्हें दोनों धाराएं स्पष्ट दिखेगी। किले से नीचे श्वेत धारा, काशी की तरफ श्यामधारा। जलयात्रा पर मुखिया – भीतरिया के साथ जल लेने स्वयं भी पधारते। चुनार पधारते तो वैष्णवों से कहकर किले पर से गंगाजल अवश्य मंगवाते एवं झारी भरते। काशी की भी प्रियता आपने अंत समय तक निवाही। रूग्णावस्था में जब वैष्णवगण आपश्री को बंबई, कलकत्ता, दिल्ली चलने की विनती कर रहे थे। आपने स्पष्ट झन्कार कर दिया कि काशी नहीं छोड़ेंगे। विश्वविद्यालय के सबसे बड़े अस्पताल के लिये भी मना कर दिया क्योंकि वह काशी बाहर है। श्री रामकृष्ण सेवाश्रम में भरती हुए जो दक्षिण काशी में स्थित है। आचार्य वल्लभ भी उत्तर काशी छोड़ अंत में दक्षिण काशी में जाकर लीला पधारे। काशीखंड के अनुसार उत्तर काशी में मरणोपरान्त भैरवी यातना है मगर दक्षिण काशी में नहीं। तुलसीदास जी के शब्दों में सोरठा–

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खान अघ हानिकर।
जहँ बस शंभु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥

उपसंहार–वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री की मौखिक व पत्र द्वारा आज्ञा प्राप्त हुई कि श्री गुरुदेव के सान्निध्य–सामिप्य में बिताये अंतरंग क्षणों को पुनः स्मरण करूं व उन्हें लिपिबद्ध करूँ। गुरुदेव का पुत्रवत् स्नेह प्राप्त था। चरण स्पर्श तो सभी को सुलभ थे परन्तु अकिंचन के तो मस्तक पर चरण युगल पधरा दिये थे। उनकी कृपा तो ऐसे सभी पर थी पर अधिकारी समझ जो गूढ़ तत्वों को प्रदान किया वो हृदयगत् व गोपनीय है। स्मरण में जो भाव उपस्थित हो गये उन्हीं को लिपिबद्ध किया, कृपया कोई अन्यथा न लें।

पुनः गुरु चरणारविन्दों का स्मरण करते हुए, लेख का समापन कर लेखनी को विराम देता हूँ। आलोचना, समालोचना, प्रत्यालोचना की कोई सीमा नहीं।

सप्रेम जय श्रीकृष्ण

•

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के सान्निध्य में हुए विशिष्ट मनोरथ एवं अन्य विशिष्ट मनोरथ

श्री मधुसूदनदास सोनावाला

लेखक के परिवार में षष्ठपीठ की छड़ी की सेवा वंशपरम्परागत चली आ रही है। आप वाराणसी के सुप्रसिद्ध सोनावाला परिवार के हैं तथा आपका परिवार मन्दिर में श्री मुकुन्द-गोपाल प्रभूकी सेवा में तन-मन-धन से समर्पित है।

षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी की सप्तस्वरूपोत्सव छप्पन भोग नाथद्वारा में पधरावनी - श्रावण अधिक मास वि० सं० २०२३ सन् १९६६ श्रीनाथद्वारा में छप्पन भोग के मनोरथ में षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु को पधराने के लिए तिलकायित श्रीगोविन्दलालजी महाराज द्वारा भेजे अधिकारी अधिक श्रावण कृष्ण ८ को आये और श्री नाथद्वारा में षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को पधराने के लिए विशेष रूप से विनती व आग्रह षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्रीमुरलीधरलालजी महाराज से किया। उस दिन महाराजश्री ने षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु को नाथद्वारा पधराने में प्रथम असमर्थता प्रकट किया। अधिक श्रावण कृष्ण ३० को बगीचा में शीश महल में षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु का बृहत् छाक का मनोरथ था उसी दिन तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराजश्री की ओर से विनती करने कलकत्ते के सावलिया जी के सेवईत काकु बाबु आये और विनती करी, कि, यदि षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु नाथ द्वारा नहीं पधारे तो श्री गोविन्दलालजी तिलकायित महाराज का मनोरथ अधूरा रह जायेगा। यह सुनते ही आपश्री ने नाथद्वारा षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को पधराना स्वीकार कर लिया, और तत्काल नाथद्वारा पधारने की तैयारी शुरू हो गयी। शुद्ध श्रावण शुक्ल ३ को यहां से प्रस्थान करना निश्चित हुआ। आपश्री ने श्री रामकृष्ण दासजी नागर (हाथीदांत वाले) एवं श्री गोकुलदास टकसाली को बुलवाया और नाथद्वारा पधारने के लिए योजना बनाकर तैयारी की आज्ञा दी।

श्रावण सुदी २ वि० सं० २०३३ को रात्रि सियालदाह एक्सप्रेस से लाइन डोरी में कामदार, जलघरियां, भीतरिया इत्यादि लखनऊ के लिए रवाना किये गये।

श्रावण सुदी ३ को बेग क्रम सेवा में करके चलाये, शृंगार में चूदडी के वस्त्र साज रहे छज्जेदार पाग हीरा की जोड़ी माला तिरंगी, कर्ण फुल दूहरे, एक पर कि चन्दिका रही, शृंगार में कांच के हिन्डोला झूले, सन्ध्या आरती तक कि सेवा पहुंचकर दोपहर ३-३० पर षष्ठनिधि श्री मुकुन्द प्रभु झापी जी में विराजे ५ बजे सायंकाल मन्दिर से शोभा यात्रा निकली। महाराजश्री, मुखिया : श्री गिरिधरजी, श्री द्वारकानाथजी, श्री तुलसी श्यामजी, भीतरिया गणेशजी, विट्ठलजी, बृजमोहनजी, जगदीशजी ने सुखपाल उठाई साथ में मुढांजी एवं श्री गिरिधरजी महाराज की गादीजी जिनको श्री गोवर्धनदासजी बीसा ने पधराया। शोभायात्रा श्री गोपाललालजी के फाटक से बाजे-गाजे से सोराकुंआँ होती हुई गोलघर सायंकाल ६ बजे पहुंची। शोभायात्रा में गुर्जर पाठशाला, गुजरात विद्या मंदिर के विद्यार्थी भी पंक्तिबद्ध थे। सुखपाल दुलहिनजी के चौतरे पर पधरायी गयी। सुखपाल से झापीजी को आपश्री पधराकर बस में विराजे और बस प्रस्थान किया साथ में एक बस वैष्णवों की तथा दो ट्रक सामान ढोने की और वैष्णवों की टैक्सी भी साथ चली।

श्रावण सुदी ४ को लखनऊ ६.३० बजे प्रात: पहुंचे । श्री गोवर्धन नाथजीके मन्दिरके पास सुभाष मार्ग पर वैष्णव श्री राधेश्याम रस्तोगीजी के नव निर्मित मकान पर प्रभु विराजे । तुरन्त ही शंखनाद भये शयन भोग आये शयन आरती होकर डेढ़ घण्टे का अनोसर हुआ २.३० बजे दोपहर को मंगला के दर्शन भये चालू सेवा रही ।

श्रावण सुदी ५ को नागपंचमी को सन्ध्या आरती पीछे हिन्डोला के मनोरथ भये । श्री गोवर्धन नाथजी के अधिकारी द्वारा पहरावीनी व वैष्णवोंको दुप्पटा ओढाया गया बाजा गाजाके साथ सायंकाल ७.१० पर लखनऊ से विजय किये ।

श्रावण सुदी ६ को १०.२० मध्याह्न में मथुरा बंगाली घाट पर बस पहुंची उस समय श्री यमुनाजी इतनी बढ़ी थी कि बस का पहिया जल में डूब गया, ऐसा लग रहा था कि श्री यमुनाजी अपने प्राणप्रिय श्री मुकुन्दरायजी से मिलन को व्याकुल हो रही है तब आपश्री ने श्री झापीजी को यमुनाजी से स्पर्श कराया एवं श्री यमुनाजी का पूजन कर विनती किया । श्री यमुनाजी क्रमश: घटने लगी और रोड खाली हो गयी और प्रभु श्री मदनमोहनजी के मन्दिर में पधारे शाम को श्री मुकुन्दरायजी सामने और श्री मदनमोहनजी बायीं ओर विराजे हिन्डोला झूले ।

श्रावण सुदी ७ सुबह ७ बजे मथुरा से विजय किया । ८०-९० किलोमीटर गाड़ी आगे बढ़ने पर जल व दलदल में प्रभु की गाड़ीका पहिया धस गया, बहुत प्रयास के बाद भी पहिया नहीं निकला । दोपहर १२ बजे तक यही हाल रहा आपश्री को श्री ठाकुरजी को मंगल भोग रखने की बड़ी चिन्ता हो रही थी, तभी आपश्री को याद आया कि हम लोग श्री गिरिराजजी को पीठ देकर आगे आ गए हैं और आपने आज्ञा किया कि श्री गिरिराजजी का दर्शन करके जयपुर चलेंगे । उसी वक्त गाड़ी का पहिया दलदल से निकल गया वहां से सभी वापिस श्री गिरिराज पर आये और मुखारविन्द पर दर्शन करके जयपुर के लिए निकले । जयपुर में शोभायात्रा की बड़ी तैयारी थी लेकिन रात्रि ११ बजे पहुंचने पर आपश्री ने शोभा यात्रा को मना कर दिया । शंखनाद होकर रात्रि १२ बजे मंगला भई । प्रात: ५ बजे शयन आरती होकर अनोसर डेढ़ घण्टा के भये ।

श्रावण सुदी ८ प्रात: ७ बजे शंखनाद होकर मंगला भई । गोपीवल्लभ बाद जयपुर से विजय किया ११.३० बजे, सायंकाल ६.३० बजे नाथद्वारा, लालबाग में गाड़ी पहुंची । षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री ने रामदासजी गोरखपुर वाले की गाड़ीसे झापीजी बाहर पधराया और शीतल भोग अरोगाकर तत्काल झापीजी सुखपाल में पधराया और शोभायात्रा निकालने की आज्ञा दिया और सभी वैष्णवों को भी सुखपाल में हाथ लगाने की आज्ञा दिया । ज्योंहि सुखपाल उठी उसी समय जबलपुर वाले सेठ गोविन्ददासजी सन्मुख आये और साष्टांग दण्डवत् करी, उन्होंने भी सुखपाल में हाथ लगाया । थोड़ा आगे बढ़ने पर श्री नटवरगोपालजी राजनगर (अहमदाबाद) वाले नख से शिख तक शृंगार घराकर सन्मुख में आये और साष्टांग दण्डवत् षष्ठनिधि श्रीमुकुन्द प्रभु को किया । आपश्री ने उनको उठाकर गले लगाकर भेंटे । श्री नटवर गोपालजी ने भी तत्काल श्री सुखपाल में श्री हस्त लगाया और सुखपाल अपने कंधे पर रखा और वहां से षष्ठनिधि श्री मुकुन्द प्रभु की सुखपाल धीरे-धीरे श्रीनाथजी के मन्दिर की ओर बढ़ने लगी । मोती महल की ढ़ाल से आगे आकर तिलकायितश्री और उनके पीछे समस्त विराजमान वहां लाखों की संख्या में वैष्णवों का जनसमूह एकत्रित था और षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु की जय जयकार हो रही थी और पुलिस प्रशासन लगा हुआ था परन्तु तिलकायितश्री ने यह आज्ञा दिया कि ये सब हमारे मेहमान हैं अत: इनसे शक्ति से पेश न आया जाये । सुखपाल सीधे श्री गोकुलनाथजी के मन्दिर में पधारी और वही विधिवत सेवा क्रम चला ।

श्रावण सुदी ९ को षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी गोकर्ण का टिपारा, केशरी वस्त्र धरे। राजभोग २ बजे तक हो गया था। अनोसर नहीं हुआ था। अब छप्पन भोग में पधारने की तैयारी होने लगी। उधर तिलकायित महाराज के मोती महल में श्री गोस्वामी बालकों की बैठक हो रही थी जिसमें सूरत वाले गोस्वामी बालकों ने यह प्रश्न पैदा किया कि सूरत वाले बालकृष्ण प्रभु षष्ठगृह के हैं और वे ही षष्ठनिधि के रूप में विराजेंगे। इस प्रश्न के जवाब में **श्री ब्रजभूषणलालजी काकरौली वालों ने यह कहा, कि आप कब से षष्ठगृह में आ गये आपके बड़ो ने तो यह स्वरूप हमारे यहां श्री द्वारिका नाथजी के गोद से पलना झूलते में बलपूर्वक चोरी से पधरा ले गये थे।** इस पर काफी तर्क हुआ आपस में गर्मा-गर्मी भी हुई। इस विषय में विशेष रूप से तिलकायित महाराज और ब्रजभूषणलालजी काकरोली वालों का एक मत रहा अन्ततः सभी इस निर्णय पर पहुँचे कि श्री बालकृष्ण प्रभु सूरत वाले यदि पधारे तो वे श्री द्वारिकानाथजी के गोद के स्वरूप के रूप में ही पधारेंगे। इधर षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु को छप्पन भोग में पधराने के लिए तिलकायित महाराज के वहां से कई बार विनती आयी। अन्त में वर्तमान तिलकयित महाराज गोस्वामी श्री १०८ दाऊजी (राजीव जी) जब पधराने के लिए पधारे तब षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री ने षष्ठनिधि श्री मुकुन्दप्रभु को गादी सहित श्रीहस्त में पधराकर मिश्री भण्डार की गली से भीतर के रास्ते खुली गादी, बाजा, कीर्तन करते हुए सभी को दर्शन देते हुए श्रीनाथजी की गोद में सन्मुख कर श्रीजी के पास पधराया। श्रीनाथजी के साथ छप्पन भोग अरोगने में श्रीनवनीतप्रियाजी, द्वितीय गृह श्रीविट्ठलनाथजी, तृतीय गृह श्रीद्वारिकाधीशजी, पंचम गृह श्रीगोकुल चन्द्रमाजी, षष्ठगृह श्रीमुकुन्दरायजी सप्तम गृह श्रीमदनमोहनजी एवं श्रीमथुरानाथजी के गोद के श्रीनटवर लालजीं विराजे। रात्रि ९ बजे छप्पन भोग के दर्शन खुले। दर्शनार्थियों का अपार जन समूह था, भीड़ इस प्रकार थी कि एक व्यक्ति को सन्मुख पहुंचने में ३ घण्टा लग रहा था दर्शन की व्यवस्था थोड़े-थोड़े लोगों को कराने की हो रही थी जो गोवर्धन चौक, रतन चौक, कमल चौक में से दर्शन करते हुए मोतीमहल से बाहर निकल रहे थे। सामग्री का दर्शन कमल चौक के जंगले में हो रहे थे। दर्शन लगभग १४ घण्टा खुले रहे इस बीच अन्य गोस्वामी बालक तो आते जाते रहें लेकिन षष्ठ पीठाधीश्वर श्रीमुरलीधरलालजी महाराज निरन्तर वहीं बिराजे रहे। दर्शन बन्द कर षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु को पधराकर साथ में वापस मन्दिर पधारे।

श्रावण सुदी १० को पूर्व दिन की सन्ध्या आरती से शयन तक की सेवा पश्चात् मंगला से शयन तक की तैयारी भई।

श्रावण सुदी ११ पवित्रा एकादशी तिलकायित श्रीगोविन्दलालजी महाराज के हार्दिक अभिलाषा को जानकर काशी वाले षष्ठ पीठाधीश्वर गोस्वामी श्री १०८ मुरलीधरलालजी महाराज ने यह प्रस्ताव रखा कि सभी स्वरूप पवित्रा श्रीजी पास साथ में धरावे अतः यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सब स्वरूप श्रीनाथजी के साथ भेलें विराजे और पवित्रा भेले ही धरे।

श्रावण सुदी १२ मोती महल में टिकैतश्री के साथ सभी वल्लभकुल बालक एक साथ पवित्रा धराने के लिए विराजे सर्वप्रथम काशी वाले षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्रीमुरलीधरलालजी महाराज को टिकैतश्री पवित्रा धराने के लिए खड़े हुए पर आपश्री ने उनको रोक दिया और कहा कि सर्वप्रथम हम आपश्री को पवित्रा धरायेंगे। टिकैतश्री ने कहा कि आप बड़े हो पहले पवित्रा हम आपको ही धरायेंगे पर आपश्री ने कहा कि आप पद में बड़े हो और आपश्री ने टिकैतश्री को प्रथम पवित्रा धराया इसके बाद सभी बालकों ने आपस में एक दूसरे को धराया। इसके पश्चात् वैष्णवों ने पवित्रा सभी गोस्वामी बालकों को धराया।

श्रावण सुदी १३ को षष्ठ निधि श्री मुकुन्दरायजी के मन्दिर में षष्ठ निधि श्री मुकुन्दरायजी के पालने का मनोरथ हुआ। हाथीदांत के पालना पर प्रभु पलना झूले। अपार जन समूह दर्शन को उमड़ पड़ा। काशी के वैष्णवों ने दर्शन कराने के लिए सुन्दर व्यवस्था की थी। षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु के पालने के दर्शन लगभग ६ घण्टा खुले रहे इस बीच कई बार महाराजश्री ने दर्शन बन्द करने की कोशिश की पर अत्यधिक जय-जय की ध्वनि से दर्शन बार-बार खोलना पड़ा। टिकैतश्री की ओर से श्री नवनीतप्रियाजी को हाथीदांत के पालना झुलने के लिए पालना की मांग आई सो आपश्री ने मंजूर कर लिया और रामकिशुनदासजी हाथीदांत वाले पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि आज तुमने हाथीदांत का पालना लाकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ा दी और तुरन्त ही नवनीतलालजी के लिए पालना भेजा गया। श्रीविट्ठलनाथजी के यहां छप्पन भोग अरोगने पधारे। तृतीय निधि श्रीद्वारिकाधीशजी पञ्चम निधि श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, बीच में श्रीजी का रिक्त स्थान श्रीनवनीतलालजी आगे सप्तम निधि श्रीमदनमोहनजी षष्ठ निधि श्रीमुकुन्दरायजी द्वितीय निधि श्रीविट्ठलनाथजी इस प्रकार विराजे सभी स्वरूप को एक गिन्नी, मोती माला भेट हुई।

श्रावण सुदी १४ श्रीनाथजी के श्रृंगारी षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी हुए। चतुरा नागा उत्सव का दिन था। आपश्री श्रृंगार करने पधारे। श्रीनाथजी के मुखिया ने कहा कि आज उत्सव का दिन है आज तो श्रृंगार नहीं मिलेगा आप टिकैतश्री से आज्ञा लेलें। आपश्री टिकैतश्री के पास अपने अधिकार के दस्तावेज लेकर पधारे और टिकैतश्री को दस्तावेज दिखाए। टिकैतश्री ने मुखियाजी को आज्ञा दिया कि काकाजी को सब सेवा करने दी जाए तब आपश्री श्रृंगार करने पधारे। उस समय श्रीनाथजी के कीर्तनियाँ कीर्तन शुरू किये तब आपश्री ने भीतर से आज्ञा दिया कि काशी वाले कीर्तनियाँ कीर्तन शुरू करें तब श्रीनाथजी के कीर्तनियों ने उस कीर्तन को समाप्त करके फिर बनारस के कीर्तनियों को कीर्तन करने को दे दिया। फिर श्रृंगार बाद श्रीषष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी श्रीनाथजी के निज मन्दिर में पधारे और श्रीजी बाबाके गोद में विराजे और वहीं राजभोग अरोगे और वहीं राजभोग आरती व अनोसर भये। सायंकाल को सोने के हिंडोला का मनोरथ हुआ। श्रीनाथजी के सम्मुख सोने के हिंडोले में श्री मदनमोहनजी और षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी भेले विराजे और काशी के कीर्तनियों ने ही कीर्तन किये। बड़ा ही आनन्दमय दर्शन हो रहा था। वैष्णवों की बहुत भीड़ रही। षष्ठ पीठाधीश्वर श्रीमुरलीधरलालजी महाराजश्री ने आरती किया तब श्रीनाथजी से मिलाकर षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी को श्रीजी पास से विदा ली।

श्रावण सुदी १५ श्री नवनीतप्रियाजी का हाथीदांत का पलना का मनोरथ सिंहपौर पर हुआ। बहुत ही आनन्द आया। रात्रि १२½ बजे श्रीतिलकायितश्री के यहां पधारकर विदाई ली। श्रीनाथजी की गाड़ी से काँकरोली के लिए प्रस्थान किया रात्रि २ बजे, ३ बजे तक काँकरोली पहुंचे। श्रम भोग अरोग कर पौढ़े।

भादो वदी १ षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी मंगला से गोपीवल्लभ तक मथुरेशजी के मन्दिर में अरोगे और राजभोग से शयन तक की सेवा श्रीद्वारिकाधीशजी के साथ भई। श्री द्वारिकाधीशजी के साथ षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी पंचम निधि श्रीगोकुलचन्द्रमाजी तथा सप्तम निधि श्रीमदनमोहनजी शयन आरती पीछे विजय किये। इस बीच श्रीनाथजी के तरफ से अधिकारी कांकरोली आए और सभी वैष्णव को एक-एक उपरना और एक-एक दूध घर प्रसाद दिया।

भादो वदी २ मंगला से शयन तक की सेवा हुई सायंकाल ६½ बजे काँकरौली से विजय किया।

काँकरौली नरेश श्रीबृजभूषणलालजी श्रीविट्ठलनाथजी व सब लालजी विदाई करने बस तक पधारे। रात्रि ३ बजे किशनगढ़ पहुंचे।

भादो वदी ३ को किशनगढ़ में श्री बृजरायजी के मन्दिर में मंगला से शयन तक की सेवा हुई। आपश्री, श्रीमहाप्रभुजी के दर्शनार्थ किला में पधारे। श्री कल्याणजी के दर्शन किये। किशनगढ़ के महाराज उस समय किशनगढ़ में विराजमान नहीं थे। किशनगढ़ के दीवान ने षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु का भलीभांति स्वागत् किया। रात्रि ९ बजे किशनगढ़ से विजय किया सो रास्ते में जयपुर के पास बस खराब हो गयी, दूसरी बस करके आगे बढ़े।

भादो वदी ४ को मध्याह्न २ बजे प्रभु जतीपुरा पहुंचे। प्रभु के विराजने की तैयारी प्रथम गिरिराज बाग में हुई थी लेकिन स्थान सुरक्षित व उचित न होने के कारण मोती महल में विराजे। मंगला से शयन तक की सेवा हुई।

भादो वदी ५ को आपश्री, प्रथमं निधि श्रीमथुरेशजी के राजभोग के समय पधारे व आरती किया फिर बैठक में श्रीप्रथमेश श्रीरणछोड़लालजी महाराज से मिलने व प्रथमनिधि श्रीमथुरेशजी की सेवा की आज्ञा मांगने पधारे तब प्रथमेश महाराज ने आपश्री से भेट और सेवा की आज्ञा मांगने पर यह कहा कि आपको सात गोदान करना पड़ेगा ऐसी हमारे यहां की रीत है। तब आपश्री ने कहा कि प्रथम निधि श्रीमथुरेशजी कि सेवा हमें मिलती हो तो ७ क्या २१ गोदान भी मैं करने को तैयार हूं। इस पर प्रथमेश जी अत्यन्त प्रभावित हुए और सेवा की आज्ञा दे दी। फिर आपश्री ने विनती किया कि प्रथम निधि श्रीमथुरेशजी और षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी साथ में कुनवारा श्रीमुखार विन्द पर अरोगे तो अच्छा, क्योंकि श्रीजी द्वार में छप्पन भोग में साथ नहीं विराजे थे तब श्री प्रथमेशजी महाराज ने अपनी मंजूरी दे दी।

भादो वदी ६ को प्रथम निधि श्री मथुरेशजी में झारी चरणस्पर्श से पहुंचकर आपश्री राजभोग पीछे श्री गिरिराजजी को श्रीप्रथमेशजी उनके लालजी बहु-बेटी के साथ दुग्ध स्नान कराया। आज श्री प्रथमेशजी ने अद्भुत तैयारी की थी। ५०० पुलिस बन्दुकधारी तैनात थे। श्री मथुरेशजी के मन्दिर से मुखारबिन्द तक दोनों पट्टी पुलिस की कतार लगी रही उसके आगे की कतार में काशी का वैष्णव समुदाय था, आगे-आगे कीर्तनियाँ चल रहे थे पीछे षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी सुखपाल में मुखार विन्द पर पधारे और साथ में प्रथम निधि श्रीमथुरेशजी चौडोल सुखपाल में पधारे फिर आपश्री ने आज्ञा किया कि सभी वैष्णव षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दप्रभु और प्रथम निधि श्रीमथुरेशजी को दूधघर का भोग धरे। यह उपस्थित वैष्णवों का सौभाग्य था। सभी वैष्णवों ने दूधघर का भोग धरा। रात्रि १० बजे कुनवारा का दर्शन खुला, श्रीगिरिराज श्रीजी का शृंगार श्रीप्रथमेश जी ने किया था। मथुरा से गो० श्रीबृजरमणलालजी, श्रीविठ्ठलनाथजी पधारे थे व कामवन से सप्तम पीठाधीश्वर श्रीघनश्यामलालजी व श्रीरघुनाथलालजी पधारे।

भादो वदी ७ को षष्ठ निधि श्रीमुकुन्दरायजी की जन्माष्टमी श्री गिरिराज पर होने की इच्छा रही अतः दो बसें वैष्णवों की वापस काशी आयी। जतीपुरा में अपनी जमीन देखने पधारे व श्री यदुनाथजी की बैठक सिद्ध करने का निश्चय हुआ।

भादो वदी ८ को प्रातः पंचामृत स्नान षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी का हुआ व रात्रि जयंती उत्सव का पंचामृत हुआ। बड़े उत्साह से जन्माष्टमी मनाई गई।

भादो वदी ९ को नन्द महोत्सव हाथीदांत के पालने में विराजकर हुआ।

भादो वदी १० को मंगला से शयन तक की सेवा हुई। आपश्री ने श्रीगिरिराजजी का शृंगार पीछे आरती किया।

भादो वदी ११ को आपश्री प्रथम निधि श्रीमथुराधीश में गोपीवल्लभ भोग धरा व श्रीनाथजी के मन्दिर में गिरिराजजी ऊपर पधारकर भोग धरा।

भादो वदी १२ को जल्दी शयन तक की सेवा से पहुंचकर षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दराय जी सुखपाल में विराजे और श्री गिरिराजजी के मुखारविन्द से मिलाप करते हुए अपनी जमीन पर पधारे और चबूतरा जो श्रीयदुनाथजी की बैठक में बना था उस पर झापीजी विराजी। दूधघर की पतौकी अरोगे। कीर्तन भये। न्योछावर भई, पैसा लुटाया गया। वहां से झापीजी बस में पधरायी गई सो सन्ध्या ५ बजे जतीपुरा से विजय किया। पधारते समय कीर्तन हुए 'ऐसी प्रीत कहूँ नहीं देखी श्री वल्लभ सुत श्री विट्ठल जैसी' गुलाल कुन्ड होते हुए पधारे।

भादो वदी १३ को सुबह ७.४५ पर बस हरदोई पहुंची। जगनजी के घर प्रभु पधारे। ऊपर के कमरे में प्रभु विराजे छड़ पर डोरी से शयन पाट लटकाकर पालना झूले। सन्ध्या आरती के दर्शन खुले। शयन भोग अरोगकर प्रभु वहीं पौढ़े।

भादो वदी १५ को मंगला के दर्शन भये फिर आपश्री के केशर स्नान हुए। १० बजे दिन में हरदोई से विजय कर लखनऊ १२१/२ बजे पहुंचे। श्री गोवर्धननाथजी के मन्दिर में विराजे। शयन तक की सेवा हुई। शयन पीछे आपश्री के केशर स्नान हुए।

भादो सुदी १ को मंगला से सन्ध्या आरती तक की सेवा लखनऊ में हुई। ३ बजे विजय किये। सो वाराणसी रात्रि ११ बजे मवईया, आशापुर में श्री कन्हैयालालजी सोनावाले के बगीचे में पधारने की तैयारी थी। सोनावाले के बगीचे के पहले विश्वम्भरीवाले के बगीचे से बस धीमी हो गई। सीतारामजी कीर्तनियां वगैरह कीर्तन करते हुए चले। सोनावाले के बगीचे के आगे बस रुकी। आगे ठाकुरदासजी छड़ी लेकर खड़े थे। षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी की झापीजी षष्ठपीठाधीश्वर श्रीमुरलीधरलालजी महाराज के श्रीहस्त में थी, सड़क से बगीचे तक दुपट्टा बिछा था उस पर से होते हुए बरामदे वाले दरवाजे से कमरे के अन्दर पाट चौकी पर झापी जी विराजी। तुरन्त ही सभी मुखिया लोग श्री गिरिधरजी, श्री द्वारिकानाथजी श्री तुलसीश्यामजी स्नान करके श्रम भोग प्रभु को शीरा रखा गया। श्रम भोग बाद सन्ध्या आरती हुई। दर्शन नहीं खुले। शयन भोग अरोगकर प्रभु को आपश्री ने स्नान कर पोढ़ाया फिर आपश्री कुछ अरोग कर पोढ़े।

भादो सुदी २ को सुबह शहर से जीजी-बा को पधराया गया। सुबह १० बजे आपश्री स्नान करके बगीचे के मध्य में कदम्ब के पेड़ के नीचे चौतरा बना था, सामने बावली थी, पीछे हनुमानजी का छोटा मन्दिर था। उसी चौतरा पर विछावट कर बिना चन्दुआ पिछवाई के गद्दी पर विराजकर मंगला हुई। बहुत ही अद्‌भुत दर्शन हुआ। जैसे प्रभु गऊवों को वन में बैठकर बुला रहे हैं। जिसने भी दर्शन किया मुग्ध हो गये, दोपहर ११ बजे हांथीदांत के पालने के दर्शन खुले। बगीचे के भीतर वाले बरामदे के बीच में हुए दर्शन में बहुत ही भीड़ रही। बनारस से हजारों वैष्णवों ने दर्शन कर बैठकर प्रसाद लिया। बहुत ही आनन्द आया। राजभोग के दर्शन ३ बजे बगीचे के बड़े वाले हाल में हुए, केशरी साटन का साज था, केशरिया डोरीया का बागा था बहुत ही तैयारी थी जैसे षष्ठनिधि श्रीमुकुन्दरायजी कोई रियासत में विराजमान थे फिर आपश्री अरोगे। ठाकुरदासजी, रघुनाथदासजी सेवा

की भेंट आपश्री को देने लगे तब आपश्री ने नहीं लिया और आज्ञा किया कि तुम लोगों की विनती पर षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी नहीं पधारे है और हमारी भी इच्छा नहीं थी कि वैष्णवन के यहां श्री ठाकुरजी पधारे, लेकिन ऊपर की कुछ ऐसी सख्ती थी कि हमको पधराना पड़ा सो हम भेंट नहीं लेंगे। और केवल १। रुपया ही भेंट लिया और ठाकुरदासजी को अपने श्रीअंग का दुपट्टा और रघुनाथदासजी को अपने अंग की धोती ओढ़ाया। उसके बाद मन्दिर पधारने की तैयारी होने लगी। बहुत वैष्णवों ने अपने बगीचे में झापीजी पधारने की विनती की लेकिन आपने किसी के बगीचे में नहीं पधराया और झापीजी श्रीनाथजी की गाड़ी पर पधारी जिसमें ठाकुरदासजी छड़ीदार बैठे। आपश्री मथुरादास वकील की गाड़ी पर विराजे। मुकुन्द विलास के आगे फाटक के पास गाड़ी रूकी, गाड़ी का फाटक खोला आपश्री ने आज्ञा किया कि श्री हनुमान्जी दण्डवत् कर रहे हैं। वहां से रवाना होकर गोलघर पधारे। दुलहिनजी चौतरे पर सुखपाल विराजी। वहां से वैष्णव लोग सुखपाल को लेकर भाट की गली चौंखम्भा सोनावाले की दुकान के आगे से होते हुए गोपाललालजी के फाटक से भीतर अपने घर पधारे। वहां प्रसाद उड़ाया गया। ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चार के बाद भीतर मन्दिर में पधारे श्री गोपाललालजी से मिलाप कर शयन भोग अरोग कर पोढ़े।

इस तरह षष्ठ पीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के द्वारा षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी का सप्तस्वरूपोत्सव में श्रीनाथद्वारा पधराकर पुनः सानन्द मानो दिग्गविजय करते हुए षष्ठगृह काशी पधराया गया। आपश्री ने अपने बड़ों की आज्ञा से सोनावाले के बगीचे में षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी को पधराकर सोनावाले के खानदान पर पूर्ण कृपा कर कृत्-कृत्य किया।

अन्य विशिष्ट मनोरथ

गोस्वामी श्रीश्यामा बेटीजी महाराज द्वारा छप्पन भोग का आयोजन

गोस्वामी श्री श्यामा बेटीजी महाराज ने अपने पिताश्री श्री शुद्धाद्वैत मार्तन्ड षष्ठपीठाधीश्वर श्री गिरिधरजी महाराज की हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए मिती चैत्र सुदी १५ वि० सं० १९२९ में छप्पन भोग करने का निश्चय किया, जिसमें पहले षट ऋतु के मनोरथ का निश्चय हुआ। जिस क्रम में सभी ऋतु के मनोरथ हुए। प्रथम वसंतऋतु का उत्सव हुआ, जिसमें गोवर्धन चौक के दालान में बसन्त उत्सव में वही दिन पीछे फूल डोल उत्सव हुआ जिसमें तीन डोल फूलपत्ती के बंधे बीच में श्रीमुकुन्दरायजी विराजे, बायीं ओर श्रीगोपाललालजी एवं दाहिनी ओर श्रीगोपीनाथजी विराजे। बहुत ही सुन्दर दर्शन भये। फूल उड़ाया गया। दर्शन में वैष्णवों की बड़ी भीड़ रही।

मिती चैत वदी ११ वृहस्पतिवार को वैशाख महिना को मनोरथ भयो श्री मुकुन्दरायजी के चौक में। बेला की तीन फूलमेण्डली हुई जिसमें बीच में श्री मुकुन्दरायजी विराजे दाहिनी ओर श्री गोपाललालजी एवं बायीं ओर श्री गोपीनाथजी विराजे, शाम को दर्शन खुले। दर्शन में बहुत ही आनन्द रहा। वैष्णवों की भीड़ काफी थी।

मिती चैत सुदी २ सम्वत् १९२९ को ग्रीष्म ऋतु के मनोरथ में जल विहार में चन्दन का बंगला हुआ। श्री मुकुन्दरायजी के चौक में पूरा जल भरा गया। बीच में चौकी पर चन्दन का बंगला था, उसके आगे बिछावट करके उस पर प्रभु विराजे। दर्शन बहुत सुन्दर रहा।

मिती चैत सुदी ३ को आषाढ के महिना का मनोरथ रथयात्रा का हुआ। तीन रथ डोल तिवारी में सिद्ध हुआ। बीच में श्री मुकुन्दरायजी विराजे, बाँयीं ओर श्रीगोपाललालजी एवं दाहिनी ओर श्रीगोपीनाथजी विराजे।

श्री मुकुन्दरायजी का दोहरा मन्डान भया। चौक में सफेद घटा भई। मोम की रोशनी भई। उस दिन श्रीगुसाईंजी का उत्सव मनाया गया। बीच में श्रीमुकुन्दरायजी चांदी के सिंहासन पर विराजे। शरद् के उत्सव के दिन राजभोग के समय दान का उत्सव भया। दान लीला की पिछवाई बधी बीच में श्री गोपाललालजी एवं दाहिनी ओर गोपीनाथजी बायीं ओर छोटे स्वरूप विराजे, आगे ब्रज भक्त खड़े थे।

व्याहुले का मनोरथ भया जिसमें केले के खम्भे का मन्डप बना, चौक में मन्डप लिखा गया, मध्य में श्रीगोपाललालजी विराजे, अगल बगल श्रीगोपीनाथजी व छोटे स्वरूप विराजे।

श्री मुकुन्दरायजी के चौक में चीर हरण का मनोरथ हुआ। श्री मुकुन्द प्रभु बीच में विराजे, दाहिनी ओर श्री गोपाललालजी एवं बायीं ओर श्री गोपीनाथजी विराजे, आगे जल में कुमारिकायें प्रभु से वस्त्र की याचना करती हुई बहुत सुन्दर दर्शन हुए। वैष्णवों की काफी भीड़ रही।

मिती चैत सुदी १५ मंगलवार संवत् १९२९ को छप्पन भोग का आयोजन था। सुबह से ही व्यवस्था में बड़ी तेजी चल रही थी। प्रभु छप्पन भोग सुखेन अरोगे, तत्पश्चात् भोग सरने के बाद शीशे की आठ मंजिली हटरी के आगे जड़ाऊ सागामाची पर श्रीमुकुन्द प्रभु मध्य में विराजे दाहिनी ओर सोने की सागामाची पर श्री गोपाललालजी विराजे एवं बायीं ओर श्रीगोपीनाथजी भी सोने की सागामाची पर विराजे। शृंगार कुलह चन्द्रिका के हुए। इस अलौकिक अवसर पर वल्लभ कुल के अड़तीस आचार्य बालक विराजमान थे। कीर्तन की सेवा में नौ कीर्तनियां थे। सोने की छड़ी की सेवा वल्लभदासजी सोनावाले कर रहे थे। आगे शीशे की मृदंग एवं झाड़ रखे हुए थे। अन्य सामुहिक रूप से सेवक उपस्थित रहे जैसा कि प्राचीन चित्र से विदित होता है एवं प्राचीन कवि श्री रससिन्धु के कवित्व से भी इसका प्रमाण प्राप्त होता है।

चैत सुदी पूनम को उच्छव अगाध बढ्यो। फैल्यो जस देस देस महाशुभकारी है॥
बाजे अनेक विध झांझ ओ मृदंग जहाँ। गावत बधाई तहाँ भीर अति भारी है॥
कहे रससिन्धु छप्पनभोग को समूह छायो। हरख सो फूले फिरे नर सब नारी है॥
छै रितु मुकुन्दरायजी की बहु भाँत कीनी। स्यामा महाराज धन खरच्यो अपारी है॥

गो० श्री श्यामा बेटीजी ने उपर्युक्त छप्पन भोग से एक वर्ष पूर्व वि. सं. १९२८ के श्रवण मास में एक छोटा (गुप्त) छप्पन भोग भी अरोगाया था जिसका प्रमाण षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर में सुरक्षित प्राचीन चित्रों से प्राप्त होता है। परन्तु चूँकि वह मनोरथ गुप्त था अतः उसका विस्तृत विवरण एवं चित्र इस ग्रन्थ में प्रकट नहीं किये गये हैं। चुनार में छप्पन भोग के लिए गंगाबाई हीगनघाट वाली ने श्री षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराज से विनती किया छप्पन भोग चुनार में करने के लिए सो आपश्री ने मंजूरी दे दी। लेकिन अपरिहार्य कारण वश गंगाबाई उस उत्सव को नहीं कर सकी तब आपश्री ने श्रीमहाप्रभुजी की इच्छा समझ कर अपनी ओर से लगभग सम्वत २०१० फाल्गुन मास में छप्पन भोग का मनोरथ निश्चित किया उस कार्य की व्यवस्था सुग्गीजी, पंडितजी एवं भगवानदासजी को सौंपी गयी। छप्पन भोग के उत्सव के पहले बाहर वाले बड़े तालाब पर नाव का मनोरथ हुआ। बनारस से जमुनादासजी मोढ़ एवं विश्वम्भरी वाले की नाव ट्रक से चुनार ले जायी गयी। कीर्तनियां मन्डली के द्वारा नाव की तैयारी हुई। दोनों नाव को मिलाकर उस पर गुलाबी कपड़े से तैयारी हुई। मन्दिर से श्री महाप्रभुजी को सुखपाल से बड़े वैभव के साथ पीछे तालाब तक पधराया गया। श्रीमहाप्रभुजी को नाव पर पधराया गया। रात में करीब ८ बजे दर्शन खुले। करीब १०००० वैष्णवों की भीड़ रही। उसके दूसरे दिन चुनार

के सिंहपौर पर फूलमन्डली के दर्शन शाम को हुए। उसके बाद दूसरे दिन छप्पन भोग का मनोरथ था। सुबह से ही तैयारी चल रही थी। भीतर चौक में पूरी तोरन बांधी गयी। फूल माला की सजावट हुई भीतर मुखिया वर्ग में श्री द्वारिकानाथजी, बृजमोहनजी, जगदीशजी, दातारामजी, और रायपुर के कुछ मुखिया लोग तैयारी में आये थे। शाम को दर्शन खुले। वैष्णवों की बहुत भीड़ रही। इस तरह छप्पन भोग महोत्सव सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुआ। छप्पन भोग के उत्सव के १ साल बाद गंगाबाई हीगनघाट वाली पुन: छप्पन भोग कराने की विनती की लेकिन आपश्री ने मंजूरी नहीं दी। बहुत विनती करने पर आपश्री ने बड़े मनोरथ की मंजूरी दी सो मनोरथ महाभोग का हुआ।

चीरहरण का मनोरथ अधिक मास में षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराज के सान्निध्य में गोपाल मन्दिर के बगीचे में कमल तलैया के ऊपर बांस बल्ली की सहायता से मंच बनाया गया जिसे पीछे से श्री मुकुन्दरायजी की जाली तक जोड़ा गया। जाली में से पधराने का रास्ता बना। उसके अगल बगल पेड़ खड़े किए गये। पत्ती से कुन्ज बंधा। कीर्तनियां मन्डली के द्वारा पूरी तैयारी हुई। शाम को दर्शन खुले। उसी जगह पनघट और दान के मनोरथ भी हुए।

छप्पन भोग महोत्सव (वि० सं० २०४१)

काशीनगरी में छप्पन भोग महोत्सव सम्वत् १९२९ में श्रीमद् गोस्वामी शुद्धाद्वैत मार्तन्ड श्री गिरिधरजी महाराज की आत्मजा गो० श्री श्यामा बेटीजी महाराज द्वारा सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् भगवदनुग्रह से गोस्वामी श्री १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज की हार्दिक अभिलाषानुसार षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गोपाललालजी के छप्पन भोग तथा विविध मनोरथ का आयोजन गो० श्री प्रेमप्रिया बहूजी महाराज (अम्माजी) द्वारा मिती कार्तिक शुक्ल षष्ठी सोमवार संम्वत् २०४१ दिनांक ८-११-८४ तक उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। इसकी कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा रहा हैं।

छप्पन भोग समिति द्वारा बाहर से मुखिया लोग बुलाये गये। भण्डार का कार्य श्री गोपालदासजी सोनावाले को सौंपा गया जिसमें सर्वश्री माधोदासजी, श्री गोलीबाबू, मंदनजी, बृजमोहनदास सोना वाले इन लोगों का सहयोग था।

बाहर से आये हुए वैष्णवों की प्रसाद लेने की व्यवस्था श्री जमुनादास सोनावले को सौंपी गयी। इसमें बाहर से पधारे हुए वल्लभकुल बालकों की व्यवस्था का भी उत्तरदायित्व उनको सौंपा गया। आपके सहयोग में श्री मोहनदासजी खण्ड वाले, कान्तीलाल विश्वम्भरी, हरिदासजी टकसाली, रामदासजी शृंगारिया, एवं वल्लभ युवक परिषद् के सदस्यों का योगदान था।

कार्तिक सुदी ३ शनिवार तारीख २७-१०-८४ को ८४ ब्राह्मणों द्वारा श्रीमद्भागवत सप्ताह का शुभारम्भ हुआ जिसमें प्रधान वक्ता श्री मदनलालजी शास्त्री एवं प्रमुख यजमान श्रीरघुनाथ दासजी सोनावाले थे।

कार्तिक सुदी ६ तारीख २९-१०-८४ को सुबह ७ बजे से कथा शुरू हुई। १० बजे गो० श्री शरदवल्लभा बेटीजी महाराज एवं गो० श्री चन्द्रलता बेटीजी का प्रवचन हुआ। उसमें वैष्णवों की अपार भीड़ रही। दोपहर तीन बजे तक पारायण होता रहा। २ घन्टे विश्राम् के बाद ५ बजे कथा शुरू हुई। श्रीमद्भागवत के शुभारम्भ से ही सभी वैष्णवों में बड़ी प्रसन्नता थी। गोवर्धन चौक में सिंहपौर पर दान के दर्शन खुलने की व्यवस्था रही, सभी वैष्णवों को सरलता से तथा अच्छी तरह दर्शन का लाभ मिल सके उस व्यवस्था में श्री वल्लभ युवक

परिषद् के नवयुवकों का बहुत ही सुन्दर योगदान रहा। शाम को दान के मनोरथ के दर्शन ७ बजे खुले। बाहर से आये हुए एवं बनारस के लगभग १०००० वैष्णवों को दर्शन का लाभ मिला। दर्शन में बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ, जैसे मालूम पड़ रहा था कि साक्षात् प्रभु पधार कर गोपियों से दान ले रहे हैं। इस तरह प्रथम दिन का कार्य बहुत ही आनन्दपूर्वक हुआ। दर्शन के लिए श्री गोपाललालजी के फाटक से लोग आ रहे थे। श्री मुकुन्दरायजी के फाटक से निकल रहे थे। भीड़ अधिक होने से वैष्णवों की परेशानी को देखते हुए दूसरे दिन के दर्शन का रास्ता बदल दिया गया।

मिती कार्तिक सुदी ७ तारीख ३०-१०-८४ मंगलवार को सुबह श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण जन्म हुआ। सिंहपौर पर पालना के दर्शन दोपहर तीन बजे खुले। बीच में श्री मुकुन्दरायजी जड़ाऊ पालनेपर श्री गोपाललालजी सोने के पालने पर एवं श्री गोपीनाथजी चांदी के नक्काशी वाले पालने पर विराजे। बहुत ही सुन्दर दर्शन प्राप्त हुए। पूजनीया बेटीजी द्वारा प्रसाद लुटाया गया और नन्द महोत्सव हुआ जिसमें लगभग बीस हजार वैष्णवों की भीड़ थी। २$^{1}/_{2}$ घन्टा दर्शन खुले रहे। श्री मुकुन्दरायजी के फाटक से भीड़ आ रही थी। श्री गोपाललालजी के फाटक से भीड़ बाहर निकल रही थी।

मिती कार्तिक सुदी ७ तारीख ३१-१०-८४ बुधवार को शरद् के मनोरथ धौली पटिया पर हुए। सुबह ही सब कार्यकर्त्ताओं द्वारा श्री गिरिराजजी हटाकर चौक की रेलिंग के ऊपर पटरा लगाकर सफेदी की बिछावट की गयी। श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी चौतरे के ऊपर सांगामाची पर विराजे। आज के दर्शन में वैष्णवों को अद्भुत् आनन्द प्राप्त हुआ। महाराजश्री का अद्भुत् दर्शन साक्षात् प्राप्त हो रहा था। श्री गोपाललालजी एवं स्वामिनीजी के शृंगार में अद्भुत विशेषता रही। दर्शन सायंकाल ७ बजे खुले। ३ घन्टा दर्शन खुले रहे। उसके बाद सभी कार्यकर्त्ताओं द्वारा सभी साहित्य व्यवस्थित रखाये गये।

मिती कार्तिक सुदी ८ तारीख १-११-८४ गुरुवार भागवत पारायण दोपहर तीन बजे तक हुए। सिंहपौर से ढाल बनाकर पटरा लगा। उस पर श्री गिरिराजजी विराजे। गोचारण के मनोरथ के दर्शन सायं ६ बजे खुले। ८$^{1}/_{2}$ बजे बन्द हुए।

मिती कार्तिक सुदी ९ शुक्रवार ता० २-११-८४ को भागवत पारायण की पूर्णाहुति ३ बजे दोपहर को हुई। गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी एवं गो० श्री चन्द्रलता बेटीजी एवम् सप्तम पीठाधीश्वर गो० श्री घनश्यामलालजी महाराज का प्रवचन हुआ। गोवर्धन चौक से पटरा हटाकर चौकी लगी। सायंकाल मेवे की सांझी के मनोरथ की तैयारी शुरू हुई। गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी ने सांझी सिद्ध करने की शुरुआत की। सेवा में बहुत वैष्णव लोग लगे थे। दर्शन रात आठ बजे खुले। महिलाओं की ज्यादा भीड़ थी। १० बजे दर्शन बन्द हुए। उसके बाद सभी कार्यकर्त्ताओं ने पूरा मेवा उठाया। चौकी हटी। सभी कार्य बहुत जल्दी खत्म हुआ। सभी वैष्णवों को फलाहारी प्रसाद मिला।

मिती कार्तिक सुदी १० शनिवार ता० ३-११-८४ सुबह भागवत्जी में गीता पाठ के बाद विदाई हुई। श्री रघुनाथदासजी सोनावाले अपने माथे पर श्रीमद्भागवत्जी रखकर भैरोनाथ श्री मनोहरशास्त्री के घर पधराने गये। दूसरी श्रीमद्भागवत्जी वैकुन्ठनाथजी शास्त्री के घर पर पधरायी गयी। मन्दिर में गोवर्धन चौक में टीन के नीचे पाँच हिन्डोला के मनोरथ थे। बीच में जयपुरवाला शीशे का, अगल-बगल चांदी का, उसके दोनों ओर लकड़ी का फूल पत्ती का हिन्डोला, दर्शन ७ बजे खुले। दर्शन में बहुत आनन्द आया। भीड़ बहुत थी। लगभग ३०००० वैष्णवों ने दर्शन किया।

मिती कार्तिक सुदी ११ वार रविवार ता० ४-११-८४ देव प्रबोधिनी एकादशी थी, दर्शन नियमानुसार श्री मुकुन्दरायजी के और श्री गोपाललालजी के चौक में ५ बजे सायंकाल खुले। ऊपर चौक में दर्शन के समय बहुत ही भीड़ रही। इस कारण दर्शन २ बार खुले। फिर चौक में से हिन्डोला हटाकर निकुंज के मनोरथ की तैयारी हुई।

मिती कार्तिक सुदी १२ सोमवार ता० ५-११-८४ सुबह से ही चौक में निकुंज में छाक के मनोरथ की तैयारी हो रही थी। दर्शन सायंकाल ७ बजे खुले। २ घन्टा दर्शन खुले रहे। बहुत ही भीड़ रही।

मिती कार्तिक सुदी १३ मंगलवार ता० ६-११-८४ आज व्यावहुला के मनोरथ थे। सुबह से ही बाहर से मन्डप सजाने वाले आये थे, फूल का मण्डप बना रहे थे। कलकत्ता से फूल रजनीगन्धा आया, उसी से सजावट हो रही थी। बहुत ही आनन्द रहा। मनोरथ बहुत ही सुन्दर हुए। करीब ३०००० वैष्णवों ने दर्शन किया। दर्शन ८१/२ बजे बन्द हुए।

मिती कार्तिक सुदी १४ बुधवार ता० ७-११-८४ को पिछले दिन के मनोरथ की पूरी सजावट हटायी गयी। आज हटरी के दर्शन थे। चांदी की हटरी बड़ी वाली लगी। चौकी पर उसके ऊपर तीन हटरी चांदी की लगी। दर्शन ६१/२ बजे शयन में खुले, ९ बजे रात दर्शन बन्द हुए, उसके बाद सभी वैष्णवों ने मिलकर हटरी वहां से हटाकर पीछे चंदुआ पिछवाई बांधना शुरू किया, छप्पन भोग की तैयारी होने लगी, सिंहपौर पर चांदी की तीन हटरी लगी और चौक में टीन के नीचे दर्शन भोग के होने की तैयारी थी। पूरी पिछवाई बांधी गयी।

मिती कार्तिक सुदी १५ गुरुवार ता० ८-११-८४ सुबह मंगला ४ बजे हुई, पूरा गोवर्धन चौक खासा हुआ। सुबह से ही भोग सजाने की तैयारी मुखिया लोग अन्दर कर रहे थे। पूजनीया गो० श्री अम्माजी महाराज भी मन्दिर पधारी। १ बजे धूपदीप हुई। सायंकाल ३ बजे भीतर आरती होकर श्री ठाकुरजी चांदी की हटरी में विराजे। दर्शन ५ बजे खुले। पूर्व काशीनरेश के राजकुमार भी आये। दर्शन कर एक गिन्नी भेंट किया। उनको दुपट्टा ओढ़ाया गया। आज दर्शन में बहुत ही भीड़ थी, करीब १ लाख लोगों ने दर्शन का लाभ लिया। रात्रि १० बजे सभी नवयुवकों को पूजनीया श्री अम्माजी ने भीतर पुरानी कोठी में बुलाया और कहा कि तुम लोगों ने बहुत ही मेहनत की है, इसी तरह श्री मुकुन्दरायजी की सेवा करते रहना और सभी को दुपट्टा ओढ़ाया। छप्पन भोग की आरती गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी महाराज ने की। इस तरह से छप्पन भोग का कार्यक्रम बहुत ही सुन्दर ढंग से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सप्तम पीठाधीश्वर गो० श्री घनश्यामलालजी महाराजश्री ने प्रारम्भ से लेकर समापन तक सम्पूर्ण उपस्थिति रहकर समग्र सेवा कार्य इत्यादि में दिशा निर्देशन करते रहे। इस प्रकार यह अलौकिक मनोरथ सम्पन्न हुआ।

इन सम्पूर्ण मनोरथों का इतिहास, प्राचीन लेख, चित्र एवं बड़ों से जानकारी प्राप्त करके तथा जो हमने प्रत्यक्ष दर्शन किये, उसके आधार पर सम्पूर्ण प्रमाणित रूप से यहाँ पर प्रस्तुत किया गया है।

●

''श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते''

षष्ठपीठाधीश्वर नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का कीर्तन प्रेम

श्री हरिदास पटनावाला (भट्टजी)

लेखक परम्परागत भगवदीय परिवारके सदस्य हैं। आपके पिता श्री गोपालदासजी कीर्तनकार थे। आप स्वयं कीर्तनकार हैं तथा आपके दो पुत्र श्री कल्याणदासजी व श्री श्रीनाथदासजी भी षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी तथा श्री गोपाललालजी की कीर्तन द्वारा सेवा में संलग्न रहते हैं। आपके कीर्तन गुण-गान की तथा कीर्तन साहित्य में श्रेष्ठता प्रस्तुत लेख से स्वयं झलकती है ॥

''पतित उद्धारणा कलिमल तारणा,
श्री वल्लभ परम उदार''

आचार्य कुलभूषण षष्ठ गृहाधिपति नित्यलीलास्थ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री काशी वाले का जिस प्रकार स्नेह-प्रेम वैष्णवों के प्रति , भगवद् सेवा की रीति- भाँति के प्रति, वल्लभ सम्प्रदायकी प्रणालिका व साहित्य के प्रति था, ठीक वैसा ही स्नेह प्रेम श्री प्रभुन के हेतु अष्ट सखाओं द्वारा गाई हुई लीला (कीर्तन-साहित्य) के प्रति भी रहा।

आपश्री स्वयं एक उच्चकोटिके कीर्तनकार एवं हारमोनियम वादनकलाके भी ज्ञाता थे। जिन दिनों श्री गोपाललालजी अपने निज-मन्दिर में विराजते थे, उन दिनों श्री गोपाललालजी के शयन के दर्शन नित्य-प्रति खुलते थे। शयन आरती पश्चात् आपश्री स्वयं श्री मन्नूजी कीर्तनिया के साथ हारमोनियम बजाकर मान-पोढ़वे के पद गाते थे।

आपश्री को कीर्तनके प्रति इतना लगाव था कि जिन वैष्णव बालकोंको कीर्तन करने में या कीर्तन सेवा करने में शर्म व संकोच होता, उन्हें **''नंगा नाचे ढीठा गावें महापतित मृदंग बजावे''** ऐसे आशिर्वचन द्वारा उन्हे उत्साहित करते और कीर्तन सेवा के प्रति प्रेरित करते थे। प्रातः शंखनाद से लेकर शयन पर्यन्त तक की सेवा, बगैर कीर्तनके नहीं होने देते थे। अपने परिकरों द्वारा हमेशा पूछते रहते थे, कि आज कीर्तनिया ने अमूक दर्शन में कौन सा पद गाया। आपका दृढ़ निश्चय था कि कीर्तन गुण-गान बिना प्रभु कोई सेवा ही अंगीकार नहीं करते। अष्टछापके हर एक पद अपने आप में एक पूर्ण लीला है। आपश्री आज्ञा करते थे कि पुष्टिमार्ग में अष्ट-छाप कीर्तनको गाना और श्रवण करनेका सौभाग्य मिलना ही सच्चा सुख है।

''जो सुख होत गोपालहि गाये'' (मल्हार)

आपश्री तो यहाँ तक आज्ञा करते थे कि सन्मुख में जो पद गाये जा रहे है उसी के अनुसार ही श्री ठाकुरजी लीला के दर्शन देते हैं। अष्टछाप कीर्तन जो है यह अष्ट सखाओं द्वारा साक्षात् श्री ठाकुरजी की लीला के दर्शन करते हुए ही गाये गये हैं :-

प्रमाण-१. देख्यो री मैं हरि नंगम नंगा (नित्य पद)

२. जिन जैसा देख्या तिन तैसा पेख्या (श्री महाप्रभुजी की बधाई)
३. सुनि सूर सबन की यह गति जे हरि चरण भजे (जन्माष्टमी बधाई)

(ब्रज भयो महरि के पूत)

आपश्री इस पद का भावार्थ करते हुये आज्ञा करते थे कि श्री आचार्यचरण श्री महाप्रभुजी ने सूरदास से कहा, कि, सूरदास श्री ठाकुरजी के सन्मुख आज तक बहुत घिघियां चुके हो, अबतो श्री ठाकुरजी की लीला का गुण गान करो। तब सूरदासजी ने प्रथम यह पद गाया **''ब्रज भयो महरि के पूत''** इस पद द्वारा लीला का गुण-गान करते हुए सूरदासजी जब इस तुक पर पहुँचे **''तब घर-घर भेरी मृदंग पटह निशान बजे, वर बाँधी वंदन माल अरू ध्वज कलस सजे''** तब श्री आचार्य चरण ने सूरदास को रोका और आज्ञा करी कि इसके आगे की लीला हर एक भक्तन के अधिकार से परे है और स्वयं आचार्य चरण ने इस पद को इस प्रकार से पूर्ण किया **''तब ता दिन ते वे लोग सुख संपत्ति न तजे, सुनि सूर सबन की यह गति जे हरि चरणभजे''**।

आपश्री को राग रामकली, ललित, टोड़ी, आसावरी, धनांश्री, नूरसारंग, सामंत सारंग, गौड़ सारंग, पूर्वी, केदारो, अड़ानो नाइकी, बिहाग, कल्याण आदि से खास प्रेम था। आपश्री स्वयं इन रागों में से ही अपने जन्म दिन पर आयोजित बधाई में कीर्तनिया से गाने के लिये आज्ञा किया करते थे। साथ ही साथ सायंकाल के रागों वाले पदों को सुबह के रागों में जैसे टोढ़ी, ललित आसावरी, धनाश्री में उसी प्रकार सुबह के रागों वाले पदों को सायंकाल के रागों में जैसे केदारों, कल्यान, नाइकी, बिहाग आदि में गवाते थे। अपने जन्म दिन के कीर्तन समारोह में बाहर से आये हुए गायक या गायिका से चैती व ठुमरी विशेष तौर पर सुनने के लिये तत्पर रहते थे। प्रभु कृपा से आपका जन्म दिन भी चैत्र मास में ही है।

अष्टछाप कीर्तन साहित्य से आपश्री इतने जुड़े हुए थे, कि नित्य प्रति श्री प्रभुन के शृंगार के अनुसार ही स्वतः पद चुनकर गाने लगते थे, या कीर्तनिया को गाने की आज्ञा करते थे। आपश्री कों ऋत्तु अनुसार जिन पदों का खास आग्रह था, उसकी एक झलक:

जन्माष्टमी बधाई में :-

१. नैन भर देखो नंद कुमार
२. महा महोत्सव श्री गोकुल गाम
३. बाल बिनोद मामती लीला
४. प्रथमहि भादों मास अष्टमी
५. तुम जो मनावत सोई दिन आयों
६. आज नंद राय के आनन्द भयों
७. धर्म ही ते पायो यह धन
८. आनंद बधावनों नंद महर जू के धाम

नंद महोत्सव व पलना में :-

१. तुम ब्रजरानी के लाला
२. ललित त्रिभंगी लाड़िलो ललना
३. प्रिय नवनीत पालने झूले
४. पालनों अतिपरम सुन्दर

आशिष में :–

चीरंजीयो गोपाल रानी तेरो

बाल-लीला में :–

१. बाला में जोगी जस गाया
२. जब मेरो मोहन चलेगो घुटरूवन
३. आंगन खेलिये झनक- मनक

ढाढ़ी में :–

ढाढ़िनियाँ मचल रही

दान-लीला में :–

१. गोवर्धन की शिखर ते मोहन दीनी टेर
२. नेक मटुकिया धर जो उतारि
३. आज दधि मीठो मदन गोपाल
४. अहो विधना तोपैं अचरा पसार माँगू
५. कापर ढोटा नैन नचावति

साँझी में :–

१. मुरली वारे साँवरे नेक मारग मोही बतावरे
२. फुलवा बीनन हौ गईरी जमुना कूल कुसुमन की भीर

रास-लीला में :–

१. देखो देखो री नागर नट
२. लाल संग रास रंग
३. पूरी-पूरी पूरण मासी
४. नचवन सिखवत प्रिय-प्यारी

गोवर्धन लीला व इन्द्रमान भंग में :–

१. गोकुल को कुल देवता प्यारो
२. गोवर्धन पूजन चलेरी गोपाल
३. अब न छाड़ों चरण-कमल महिमा मै जानी जू
४. राजे गिरी राज आज गाय गोप जाके तर

गोपाष्टमी में :–

१. प्रथम गौचारण चले री कन्हाई
२. आगे गाय पाछे गाय इत गाय उत गाय
३. लटकत चलत युवती सुख-दानी

ब्याह में :–

१. दिन दुल्हे मेरो कुँवर कन्हैया

२. आवत है गठजोरे युगल-वर

श्री गुसाईंजी की बधाई में :-

१. नवल बधायो है सुनोरी आज
२. हेली रसमय श्री वल्लभ सुत प्रगट भये है आज
३. हों याचक श्री वल्लभ तिहारों याचन तुमको आये हो
४. हो चरणांट पत्र की छैयाँ
५. श्री वल्लभ लाड़िलें हो तिहारे चरण कमल के शरण
६. श्री वल्लभ लाल के गुन गांऊ

शीतकाल में :-

१. हिलगन कठिन है या मन की
२. कृष्ण नाम जबते श्रवण सून्यो री आंली
३. विमल कदंब मूल- अवलम्बित ठाड़े है पिय भानू सुता तट (जब टिपारे धरे)
४. नीकी है पिय सो चालिमा
५. बहुत प्रसन्न भये पिय प्यारी
६. लाल तुम सीखे हो करन दगा
७. ग्वालिन तैं मेरी गेंद चुराई

बसंत व धमार में :-

१. ब्रज युवति सतसंगे हरिरीहर (अष्टपदी)
२. श्री लक्ष्मण कुल गाइयें
३. ललना तुम मेरे मन अति बसो
४. या गोकुल के चौहटे रंग राची ग्वाल
५. श्री गोवर्धन राय लला
६. तुम आवो री तुम आवो मोहन जू को गारी सुनावों (राजभोग में)
७. मन हरन न लला (शयन में एकादशी से पूनम तक)

कुंज के पद में :-

१. बैठे लाल फुलन की चौखंडी
२. देखिये भवन हमारो
३. बैठे हरि राधा संग कुंज भवन अपने रंग
४. चलो सखी कुंज गोपाल जहाँ

महाप्रभुजी की बधाई एवं नित्य के पदों में :-

१. ऐसी बंशी बाजी बन घन में
२. सूर आयो शिश पैं छाया आई पाँयन तर
३. छूटत फुहारें आगे नीके बिराजत दोऊ उसीर महल

४. सुंदर यमुना तीर री मनमोहन ठाड़े

राग माला :–

सारंग नयनीरी काहे को कियो ये तो मान

हिंडोरा में :–

१. रंग मच्यो सिंह द्वार
२. ढ़ोटा तरल भये सो तू राख ले री
३. ये दोऊ झूलत कुंज कुटी
४. ब्रज के आँगन मांच्यो हिंडोरो री ब्रज
५. झूले री झूले री झूले प्यारो लालझूले

हिंडोरा आशिष में :–

तिहारो घर सुवश बसो रानी जू

ग्रहण प्रकरण में खास **''मान मनायो राधा प्यारी''** यह पद बोलवातें। तथा ग्रहण में भैरवी राग का विशेष आग्रह रखते थे। और ग्रहण उग्रह के समय **''छांड़ दे मानिनी श्याम संग रूठवो''** यह पद बोलने की आज्ञा करते थे।

आपश्री का अष्टछाप कीर्तन के प्रति इतना आग्रह था कि मंदिर तो मंदिर, वैष्णवों के घर भी मनोरथ में पधारते तो उक्त वैष्णव से पहले ही आज्ञा करते कि कीर्तन-समाज को जरूर बुला लेना क्योंकि कीर्तन के बिना मनोरथ अपूर्ण रहेगा। मनोरथ में कीर्तनियों को आपश्री मनोरथ के अनुसार पद गाने की आज्ञा करते थे। आप श्री वैष्णवों के यहाँ प्रेम पूर्वक बिराजते एवं स्वयं श्री ठाकुरजी के निज मंदिर में जाकर दर्शन करते एवं सेवा में कोई त्रुटि होने पर प्रेम से समझाते कि ऐसे नहिं ऐसा किया करो। वैष्णवों के यहाँ भगवत मंडली में भी पधारते तो भी प्रेम से घंटो तक बिराजते एवं अष्ट-छाप कीर्तन का रसास्वादन करते थे। भगवत मंडली का एक दो प्रिय कीर्तन इस प्रकार से है:-

१- श्री वल्लभ लाल के गुन गाऊ।
२- श्री वल्लभ लाड़िले हो तिहरे चरण कमल के शरण।

अष्टसखा वाणी के रस को जन-जन के हृदय में भरने हेतु आपश्री प्रतिदिन प्रभु के सन्मुख गायें हुए पदों का भावार्थ भी प्रेम से समझाते थे। पदों के भावार्थ करते हुए आपश्री ठाड़े ही रहते थे। भावार्थ समझाते-समझाते आपश्री उस पद की लीला में इतना अधिक मग्न हो जाया करते थे कि व्यतीत हो रहे समय की (जो कभी-कभी कई घंटे भी हो जाते थे) कोई सुधि ही नहीं रहती थी। **''जनहित जग प्रगटाई'' प्रगट व्है मारग-रीति दिखाई**

जन शिक्षा कृते कृष्ण (सर्वोत्तम- स्तोत्र) को साक्षात् अपने जीवन में साकार करते हुए आपश्री चाहे अपने बैठक में हो, चाहे राजभोग आरती के पश्चात् टेरा पकड़ कर मंदिर की तिवारी में हो, या फिर भोग सरने वाली गली में हो, आपश्री खड़े होकर वैष्णवों को लीला अवगाहन कराने का खास ध्यान देते थे।

ऐसे तो भगवद् कीर्तन के काफी प्रसंग है और आपश्री का कीर्तनके प्रति अगाध प्रेम था। यहाँ तक कि श्री मुकुन्दरायजी के अन्नकूट की परिक्रमा हो, या चरणाट धाम में बैठक जी में अन्नकूट की परिक्रमा हो या

चरणाट धाम में श्री गुसाईंजी के जन्म-उत्सव की प्रभात फेरी हो, आपश्री स्वयं चारो परिक्रमा में पधारते एवं कीर्तन करते तथा वैष्णवों से भी कीर्तन गवाते थे।

अष्टछाप कीर्तन द्वारा प्रभून को कैसे रिझाया जाय, इस बात का उन्हें विशेष ध्यान रहता था। इसी सन्दर्भ में आपश्री आज्ञा करते थे कि-

सूरदास मदन मोहन पिय को गाइये, रिझाइये, सुनाइये, मीठी मधुरी तान (बसंत बहार)

तो ऐसे थे उनके उच्च विचार प्रभून के सुखद के लिये आपश्री नित्य प्रति श्री मुकुन्दरायजी की शृंगार सेवा में पहूँचते और ऋतु अनुसार कीर्तनिया से पद बोलने की आज्ञा करते। सावन के महीनों में शृंगार शुरू होने से जय गोपाल बोलने तक में कीर्तनिया से कजरी गाने की आज्ञा करते। यह भी उनका अपना अलग ही शौक था। घमार के दिनों में आपश्री शयन के पश्चात् कभी-कभी स्वयं हारमोनियम लेकर बैठ जाते। साथ में उनके मऊ से आये उद्धवजी भट्ट व कलकत्ता से आये हुए चतुर्भुजजी तथा जवाहीरलालजी टकसाली और गोवर्धनदासजी रोकड़िया वगैरह सभी लोग इकट्ठे होते थे और कई घंटो तक घमार चलती थी।

वैसे तो हमारे पूज्य पिताश्री गोपालदासजी आपश्री के अन्तरंग सखाओं में से थे। और भगवत सेवा सम्बन्धित भी वार्ता-लाप के लिये सान्निध्य में रहते थे। आपश्री के द्वारा ही कीर्तन का दान भी प्राप्त हुआ। और स्वयं अपने निज गृह में बिराज रहे श्री ठाकुरजी की सेवा में शृंगार एवं कीर्तन सेवा में नित्य तत्पर रहते थे। बाद में हमें भी पूज्यपाद महाराजश्री की प्रेरणा स्वरूप श्री मन्नूजी मृदंगाचार्य जो श्री मुकुन्दरायजी के कीर्तनिया भी थे, उनसे कीर्तन की शिक्षा प्राप्त हुई। और साथ ही साथ प्रभु सन्मुख कीर्तन करने तथा हारमोनियम बजाने की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपश्री के द्वारा ही हम वैष्णवजन को समय-समय पर शृंगारानुसार व ऋतु अनुसार कीर्तन प्रणाली की जानकारी हुई कि कौन सा राग कब गाना चाहिए और कौन सा राग कब नहीं गाना चाहिए।

श्री मन्नूजी कीर्तनिया के बाद श्री सीतारामजी कीर्तनिया के समय में उनके साथ में कीर्तन करने का विशेष सौभाग्य मिला। श्री सीतारामजी कीर्तनिया के वृद्धावस्था के समय जिन दिनों श्री ठाकुरजी के दर्शनों का समय कोई निश्चित नहीं था, देर सबेर में राजभोग व भोग सन्ध्याआरती के दर्शन होते थे। उन दिनों सीतारामजी कीर्तन की सेवा में नहीं पहुँच पाते थे। उस अवसर पर कीर्तन की सेवा करने का हमें व हमारे पुत्र (कल्याणदास व श्रीनाथदास) एवं मुन्नालाल पखावजी को सौभाग्य मिलता था। दर्शनो का समय अनिश्चित होने के बावजूद आपश्री किसी के द्वारा बुलवाते और कीर्तन करने की आज्ञा करते थे। सो ऐसे थे आपश्री-

दीन दयाला परम कृपाला- भक्तन प्राण आधार-

जिस प्रकार गंगाजी के तट पर रहने वाले गंगाजी के महत्व को नहीं समझते हैं उसी प्रकार आपश्री के स्वरूप को उनके जीवन काल में हम वैष्णव जन नहीं समझ सके। आज जब वे हमारे बीच नहीं बिराज रहे है तब उनके स्वरूप का किंचित भान हुआ कि हम सभी लोगों में आपश्री द्वारा ही सेवा, शृंगार, कीर्तन इत्यादिक सभी रसों का संचार किया हुआ है। जिससे कि हम सभी जन्म-जन्मान्तर तक धन्य हुए और आपश्री के ऋणी रहेंगे। आपश्री के प्रति जितना भी लिखा जाये, सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही होगा।

- सूर दास प्रभु तुम्हारे मिले ते पाये सुख जु घनेरे **(आश्रय के पद)**

"श्री मुकुन्द गोपाललालो विजयेते"

षष्ठपीठाधीश्वर नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का वैष्णवोंके प्रति प्रेम व सौहार्द

- श्री नारायणदास विश्वम्भरी

लेखक पुष्टिमार्गीय पद्धतिके सेवा प्रकारके जानकार, सेवापरायण तथा एक कुशल कीर्तनकार हैं। प्रस्तुत लेख में आपने नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजके वैष्णवोंके प्रति उनके सहज करुणा, सौहार्द तथा निश्चल प्रेम को उजागर किया है।

षष्टपीठाधीश्वर नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्रीकी जैसी निष्ठा, सौहार्द और प्रेम श्री गोपाल प्रभु के साथ थी वैसी ही निष्ठा, सौहार्द और प्रेम प्रत्येक वैष्णवोंके प्रति थी। आपश्रीका किसी भी वैष्णवके प्रति भेद-भाव नहीं था। चाहे वह बालक हो, वृद्ध हो, जवान हो, गरीब हो या अमीर हो। सभीके साथ एक समान व्यवहार व प्रेम था। इसी सन्दर्भ में एक प्रसंग याद आता है कि आपश्री ने जवाहिरलालजी टकसालीके बड़े पुत्र मग्गु बाबू की स्त्री के मर जाने पर उनके सबसे छोटे पुत्र सतीश जिसकी अवस्था ३ या ४ वर्ष की थी उसको अपने पास रखते थे और उसको पुत्रवत् स्नेह देकर अपने पास सुलाते, नहलवाते व खिलाते तथा साथ में खेलते थे। एक उसी बालकके प्रति नहीं वरन् सभी छोटे-बड़ो के प्रति उनके हृदय में स्नेह भरा था। जात-पात, छोटा-बड़ा, गरीब-अमीर का भेद न रखते हुए वे जिस किसी बालकको श्री गोवर्धन चौक व बगीचे में देखते उनको ऊपर बुलाते और उसे प्रसाद देते, पतंग देते और बड़े स्नेह से उनसे वार्तालाप करते।

आपश्री मात्र एक ही विषय पर बात करते रहे कि तुम्हारे यहां कौन से स्वरूप विराजते हैं और कौन सेवा करता है, तुम सेवा में क्या सहयोग करते हो, मन्दिर नित्य दर्शन करने आते हो कि नहीं। यदि नहीं आते तो नित्य दर्शन करने आया करो। यमुनाष्टक, सर्वोत्तम स्तोत्र आदि का पाठ करते हो कि नहीं ? यदि नहीं करते हो तो याद करके नित्य किया करो और सेवा किया करो। अपना कुछ समय सेवाके लिये और स्तोत्र पाठ के लिए अवश्य दिया करो।

आपश्री ने बच्चोंके स्तोत्र पाठ की शिक्षा के लिए पुष्टिमार्गीय वैष्णव सभा की स्थापना की और बच्चोंको प्रोत्साहित करने के लिये एक विद्वान पंडित श्री गोकुलेश्वर शास्त्री व बाद में श्री माधवशर्मा शास्त्रीजीको नियुक्त किया जो बालक, बालिकाओं को नियमित रूपसे स्तोत्र पाठ इत्यादिक सिखाते थे। प्रत्येक एकादशी को वे सभी बालक-बालिकाऐं सम्मिलित रूप से उपस्थित होते और गोपाल मन्दिरके प्रांगणमें गोवर्धन चौक में आते थे और आपश्री स्वयं वहाँ पधार कर स्तोत्र पाठ सुनाते थे और बच्चों को आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

आपश्री बगीचे की तरफ अपने कमरेकी खिड़की में या गोवर्धन चौककी तरफ प्राय: खड़े रहते थे और जो भी बालक, वयस्क या वृद्ध उधर से गुजरता था उसे बिना किसी भेद-भाव के बुलाते और उनके माथे पर तिलक नहीं देखते तो पूछते कि आज तुमने तिलक क्यों नहीं किया और अगर यदि तुम नहीं करते तो नित्य

किया करो। चांदी की कंठी यदि वे किसी वैष्णवके गलेमें देखते तो उसे आज्ञा देते कि सूत के डोरे में कंठी पहना करो और आज्ञा देते कि सेवा नित्य प्रति किया करो। आपश्री के पास पुष्टि मार्ग के ज्ञान का अथाह भण्डार था और सेवा विषयक ही चर्चा किया करते थे। आपश्री के पास सिर्फ साम्प्रदायिक चर्चाका ही विषय था और कोई दूसरा विषय था ही नहीं।

आपश्री ने बच्चों के संगीत की शिक्षाके लिये एक पाठशाला खुलवाया जिसमें सैकडों बच्चे अष्ट-छाप संगीत गायकी, मृदंग, हारमोनियम इत्यादिक शिक्षा श्री मन्नूजी महाराज मृदंगाचार्य जो विश्व प्रसिद्ध कलाकार व श्री मुकुन्द प्रभु के कीर्तनीया थे, उनकी तथा गोवर्धनदासजी सोना वालेकी देख-रेख में प्राप्त करते थे। खुले दर्शन में कोई भी बालक या युवा वैष्णव बाहर से दर्शन करते थे तो आप आज्ञा करते कि बाहर क्यों खड़े हो भीतर आकर कीर्तन व परवावज की सेवा क्यों नहीं करते और उस अवस्था में कोई बड़ा, बूढ़ा वहां सेवा कर रहा होता तो आपआज्ञा करते कि बच्चोंसे गवाओ और बजवाओ। और खुली छूट थी कि सेवा के लिये कोई आज्ञा या रोक-टोक की जरूरत नहीं है। आपश्री दिन-भर में दो-चार-बार कीर्तन या मृदंग की सेवा करने वाले बच्चों को आज्ञा करते सो दोहा-

नंगा नाचे ढीटा गावे।
महा पतित जो मृदंग बजावे॥

और यही आज्ञा करते कि डरनेका कोई काम नहीं है जैसा आता हो वैसा ही गाओ और बजाओ और कहते कि इसी प्रकार गाते बजाते रहोगे और कोशिश करोगे तो एक दिन सब कुछ सीख जाओगे। आपश्री के स्नेह प्यार और शिक्षा की ही देन है कि उस समय के इतने बालक, वयस्क अष्ट-छाप के कीर्तन मृदंग इत्यादिक की सेवा करने वाले वैष्णव आज भी काशी में दिखाई पड़ रहे हैं।

आपश्री ने बच्चोंके स्नेह को बढ़ाने के लिये वैशाख कृष्ण ११ को श्री महाप्रभुजीके उत्सवके प्रसंग में चार दिवसीय कार्यक्रम में नाटक करने की योजना बनाई। उसके अन्तर्गत बच्चों को सिखानेके लिए श्री मन्नूजी महाराज ने शुरू किया फिर आपश्रीकी प्रेरणा से श्री बद्रीनाथ गोस्वामी जो निम्बार्क सम्प्रदायके गद्दीनशीन आचार्य थे नाटक सिखानेके लिये सहर्ष तैयार हुए और कई वर्षो तक कितने नाटकोंको सिखाया और मन्दिर के स्टेज पर बच्चों द्वारा प्रदर्शन करवाया। जिसमें भक्त प्रह्लाद, श्री कृष्ण आदि प्रमुख हैं। इस कार्यक्रममें सैकड़ो बच्चे व बच्चियां भाग लिया करते थे। आपश्रीने आचार्यजीके उत्सव पर संवत् १९९९ से २००० के आस-पास एक शोभा यात्राको प्रारम्भ किया जो श्री गोपाल मन्दिर से निकलकर श्री महाप्रभुजीकी बैठक जतनवर सेठ पुरुषोत्तमदासजी के घर जाकर वापस मन्दिर में आती थी जिसमें ये सभी बच्चे व बच्चियां भाग लेते थे। इस शोभा यात्राका मुख्य गीत था:-

''भक्तिका डंका भारत में बजवाया श्री महाप्रभुजी ने''

आपश्री वैष्णवके यहाँ मंडली या मनोरथ में पधारते तो वैष्णवोके यहां जो त्रुटि होती उसे बताते समझाते। घन्टों वहां विराजते और हर प्रकार से वैष्णवको समझाते और स्नेह देते।

आप जब वैष्णव के यहां मंडली में पधारते तो आज्ञा करते और कीर्तन खोज-खोज कर बुलवाते। आप वैष्णव को आज्ञा करते कि शृंगार में झुनझुना बजाकर एक कीर्तन पालना के अवश्य बोलना चाहिये। अगर आप किसी वैष्णवके यहां मनोरथ में पधारते तो वहां कीर्तन करने वाला कोई न हो तो आप आरती के समय

बालाप्रसादजी (समाधानी जी) को आज्ञा करते कि कीर्तन बोलो सो पंक्ति ''परम कृपाल श्री बल्लभ नन्दन करत कृपा निज हाथ दे माथे''।

एक दूसरा प्रसंग–

आपश्री प्रतिदिन राजभोगकी सेवा में पधारते और जो वैष्णव सन्मुख में रहते उनसे पूछते कि ठाकुरजी क्या धरे हैं ? क्या वागा है ? क्या साज है ? इत्यादि । यदि कोई वैष्णव कहता कि टिपारा धरे हैं तो आप पूछते थे कि इसकी क्या पहचान है । यदि वह नहीं बता पाता तो आप कहते कि पाट पर जो खेल में बाघ बकरी मढ़ा है वही इसकी पहचान है । राजभोग आरती के पश्चात् १५ से २० मिनट तक टेरा पकड़ कर खड़े होकर पूछते । उपस्थित प्रत्येक वैष्णव से सेवा विषयक, शृंगार इत्यादिक की जानकारी देते और पूछ-ताछ भी किया करते थे । राजभोग के दर्शन लगभग ४५ मिनट तक खुले रहते थे ताकि सभी वैष्णव दर्शन कर सके । खुले दर्शनमें ही झारी भरना कुज्जा वगैरह भरकर पधराना आरसी दिखाना आदि इस प्रकारकी सभी सेवा सन्मुख में ही किया करते थे । आपका हमेशा यही आग्रह रहता था, कि कोई वैष्णव दर्शन से वंचित न रह जाये। यही क्रम भोग संध्या आरतीके दर्शनके पीछे भी रहता था और दर्शन बन्द होनेके बाद आप भोगघर के प्रसादी भण्डार की गली में पधार कर वैष्णवों को घण्टों वचनामृत दिया करते थे । आपश्रीका नित्य प्रति यही क्रम था । ग्रीष्मकालमें शीतल भोग जो अनोसर में भी श्री प्रभु अरोगते थे सो आप सभी वैष्णव को प्रसादी भण्डार की गली में पधार कर स्वयं अपने श्री हस्तसे बुला-बुलाकर देते थे ।

आपका यह क्रम था कि जब भी आपश्री सेवा में पधारते चाहे राजभोग में चाहे शृंगार में, चाहे मंगला में, जब कभी भी पधारते तो जब तक ठाकुरजी पोढ़ नहीं जाते तब तक आप गोपाललालजीके चौकमें जप कोठा (जाली) में विराज कर जप पाठ संध्या वन्दन इत्यादिक किया करते । वे सेवा के समय संध्या वन्दन या जप करते भी होते तो छोड़ कर पहले प्रभु सेवा कार्य करने पधार जाते । इस प्रसंगमें आप स्वयं यह आज्ञा करते कि एक बार राजनगर वाले श्री रणछोड़लालजी आपश्रीके साथ जप कोठेमें विराज रहे थे तो श्री मुकुन्द प्रभु के मुखीयाजी ने आकर खबर किया कि राजभोग के ''बीड़ी आचमन'' करानेकी खबर तो आपश्री ने पहुँचो कि आज्ञा दी तब श्री रणछोड़लालजी संध्या वन्दन छोड़कर आपश्रीसे पूछा की आज्ञा हो तो हम आचमन बीड़ी करा दे । तब महाराजश्री ने कहा कि भले करावे तब श्री रणछोड़लालजी तुरन्त बीड़ी आचमन कराने पधारे और राजभोग आरती करके दोनों स्वरूप जप कोठेमें विराजे । तब महाराजश्री ने श्री रणछोड़लालजी से पूछा कि आप संध्या अधूरी छोड़कर सेवामें कैसे पधारे । तब श्री रणछोड़लालजी ने कहा कि संध्या वन्दन हम क्यों करते हैं; और किसके लिए करते हैं, और कहा कि संध्या तो हम फिर आकर कर लेंगे परन्तु सेवाका समय छूट जायेगा तो वह सेवा वापिस नहीं मिल सकती । यह सुनकर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए । आप यह प्रसंग अक्सर वैष्णवों को सुनाते थे और यह कहते कि रणछोड़लालजी हमारे साढ़ू भी थे और भाई भी थे ।

प्रसंग – ३

वैष्णवके प्रति विशेष स्नेहका एक और प्रसंग याद आता है । जब कभी भी श्यामदासजी, जवाहिर-लालजी या अन्य बड़े बूढ़े वैष्णव कोठीमें बैठकर जहाँ श्री महाराजश्री बैठकर दीपावली की पूजा किया करते थे कोई टीका-टिप्पणी कुछ करते तो आप कोठी के पीछे जाली लकड़ी की अभी भी है वहां खड़े होकर सुनते और मुस्कुराते और यदि कोई वैष्णव आपसे शिकायत करता तो आप कहते कि हमारे में कुछ कमी है तभी तो वह लोग हमारे बारे में टीका-टिप्पणी करते हैं । यों कह कर आप बड़े प्रसन्न होते और आज्ञा करते कि मंगला

प्रातः ६ बजे होना चाहिए तो वो ११ बजे होती है तो हमारी ही न गलती है, वह वैष्णव ठीक ही तो कहते हैं।

यों इस सन्दर्भ में एक प्रसंग और भी याद आता है कि गोवर्धन चौक में रासलीला हो रही थी और खचा-खच चौक भरा था। एक वैष्णव व्यवस्थापक से आपश्री की कुछ कहासुनी हो गयी। वह वैष्णव तो उस दिन चला गया और नियमित रूपसे नित्य प्रति सेवा दर्शनमें व मन्दिर आता-जाता था आपके दर्शन भी नित्य करता था। परन्तु आपसे उसकी बोल-चाल बन्द रही। कुछ दिनों बाद उस वैष्णवकेयहांसे आपश्री की पधरामनी की विनती हुई आपश्री ने आज्ञा दिया कि जब तक वह माफी नहीं मांगेगा तब तक हम वहां नहीं पधारेंगे। उस वैष्णव ने कहा कि हम आपके सेवक है हम तो सदा आपके नीचे है वाद-विवाद तो प्रसंगो पॉग हो गया है परन्तु उससे क्या यदि आप माफी मंगवाना चाहते हैं तो मैं किसी भी सादे कागज में दस्तखत् करता हूँ आप जो चाहे उस पर लिख ले। इस पर आपने कहा कि नहीं जैसा हम लिख कर देते हैं वैसा ही यह लिख कर हमको माफीनामा दो। आपश्रीने अधिकारी से लिखवा कर उस वैष्णव के घरभेजवाया और उसने भी वही लिखकर दस्तखत् करके आपश्री के पास दे दिया। तब आप उसके घर पधारे वह वैष्णव आपसे नहीं बोला तब आपश्री ही कृपा करके खुद बोले कि क्या हाल-चाल है मजे में तो हो इस प्रकार आपका स्नेह वैष्णवों के प्रति था कुछ काल पश्चात् उस वैष्णव के परिवार में आपसी विवाद होगया और मुकदमेबाजी भी हुआ जो घर के ठाकुर जी से सम्बन्धित था जिसमें श्री ठाकुर गिरिराजजी पुष्टस्वरूप है या नहीं यह मुख्य मुद्दा था उस वैष्णव का मत यह था कि ठाकुर श्री गिरिराजजी पुष्टस्वरूप ठाकुर है इसको सिद्ध करने के लिये महाराजश्रीसे वैष्णवने विनती किया तो आपने यह कहा कि हम यह सिद्ध कर देंगे कि ठाकुर श्री गिरिराजजी पुष्टस्वरूप हैं। आपश्री ठाकुर गिरिराज जी के पुष्टि के विवाद को लेकर अत्यन्त दुःखी हुए। आपश्रीने इस मुद्देको लेकर के गोस्वामी परिषदकी बैठक चरणाट धाम स्थित दिक्षितजीके निवास में जहां कई गोस्वामी बालक विराजमान थे आपश्री स्वयं महाप्रभुजी बैठक से चलकर आश्रम पधारे और ठाकुर श्री गिरिराजजी के पुष्टस्वरूप का मामला श्री दीक्षितजी महाराजके सामने रखा और अत्यन्त दुःखी हुए। श्री दीक्षितजी महाराज यह सुनकर स्तब्ध रह गये और आपश्री से निवेदन किया की आप चिन्ता न करें मैं इस अवस्थामें होते हुए भी अदालत में जाकर सिद्ध करूंगा। ऐसी कृपा आप वैष्णव पर श्री ठाकुरजी के लिये करते। इसके अलावा वह वैष्णव अत्यन्त बिमार हुआ और आपरेशन के लिये अस्पताल में भरती हुआ तो आपने उस वैष्णव के बालकको बुलाकर के यह आश्वासन दिया कि तुम चिन्ता मत करो और उस बालक को प्रसादी श्री मुकुन्दरायजी का बीडा दिया और कहा कि आपरेशन के समय यह बीडा मस्तकके पास रख देना और आशीर्वाद दिया जाओ वह बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। आपरेशन इतना भयानक होते हुए भी वह वैष्णव आपकी कृपा से बिल्कुल स्वस्थ व इस अवस्था में भी भगवत सेवा में रत् हैं।

उस वैष्णव के घरेलू आपसी झगड़े व मुकदमेसे आपश्री अत्यन्त दुःखी व अप्रसन्न थे। साल में कम से कम एक बार आप उनके घर अवश्य पधारते थे पर इस आपसी झगड़े को लेकर आपने यह आज्ञा किया कि जब तक तुम अपना आपसी झगड़ा नहीं सुलझा लेते तब तक हम तुम्हारे यहां नहीं पधारेंगे। विवश होकर सभी भाईयोंने उनके सन्मुख आकर विनती किया कि हम सब मिलकर झगड़ा निबटा लेंगे तब आप उस वैष्णवके घर कृपा करके वहां पधारे और ऐसा ही प्रगाढ़ स्नेह वे सभी के साथ रखते थे।

प्रसंग – ४

बहुत दिनोंकी बात है जब श्री मुकुन्दरायजी के दर्शन मणि कोठे में अत्यन्त पास से होते थे। हरी घटा का

दिन था शयन के दर्शन खुले थे पिछवाई, दिवाल गिरी सरासरी विछाईत वगैरह सभी हरे थे जहां भी दर्शन करो वहां हरा ही हरा था। आपश्री ने आरती किया और आरती के बाद एक वैष्णवने झुक करके दण्डवत् किया तो उसकी पगड़ी मन्दिरके अन्दर विछाईत पर चली गई। काफी खलबली मच गई वह बूढ़ा वैष्णव थर-थर कांपने लगा। आपने सबको शान्त किया और उस वैष्णवको आश्वासन दिया और कहा कि क्यों घबड़ा रहे हो क्या हो गया और कहा कि यहां तो सब कोरी अपरस है और झारीजी भी नहीं विराज रहीहै। तुरन्त परचारग को आज्ञा किया कि पगड़ी तुम बाहर रख दो और नहा कर आओ दर्शनार्थी सभी वैष्णव आपकी कृपा पर द्रवित रह गये। ऐसी कृपा व स्नेह आप वैष्णवों के प्रति रखते रहे।

प्रसंग – ५

एक बार एक परदेशी वैष्णव जो देखनेमें औघड़ की तरह था एक हाथ में गेंदे का फूल और दूसरे हाथ में बोतल गंगा जल भरा हुआ लेकर राजभोग दर्शन में आया। तब दर्शन जालीके पास से होते थे उस औघड़ ने पास आकर फूल अन्दर फेंका और बोतल अन्दर फेकने जा ही रहा था कि दर्शनार्थी वैष्णवों ने हल्ला मचाया तब कीर्तनिया ने बोतल को पकड़ लिया और वह बोतल फेंक नहीं सका। आपने तुरन्त वैष्णवों को शान्त किया और उस औघड़ को अत्यन्त स्नेह से अपने पास बुलाया और समझाकर कहा कि ऐसी रिति यहां की नहीं है और तुम कहां से आये हो यह सब उससे पूछा और अधिकारी को आज्ञा दिया कि इनको प्रसाद दो। ऐसा स्नेह प्रेम सौहार्द सभी वैष्णव व कोई भी आगन्तुक हो सभी के साथ एक सा था।

प्रसंग – ६

एक वैष्णव से आपका सम्बन्ध पहले अच्छा था लेकिन बाद में कुछ अन्तर आ गया। उस वैष्णव के दो लड़कोंकी शादी थी। वह वैष्णव स्वयं मंडली में आपको पधारने के लये विनती करने आए। पुरानी बातें कुछ उभड़ी और आपस में कुछ गर्मा-गर्मी हो गयी। वह वैष्णव जाने लगे तब आपश्री ने कहा कि यह मत समझना कि हम मण्डली में नहीं पधारेंगे हम मण्डली में अवश्य पधारेंगे। बात-चीत में विषय को लेकर मतभेद होना दूसरी चीज है और वैष्णवोंसे अपना सम्बन्ध निभाना दूसरी चीज है और आपश्री मण्डली में बहुत आनन्द से पधारें। जो वैष्णव आपके प्रति मनोमालीन्य रखते थे उनसे भी आप स्नेह रखते थे।

प्रसंग – ७

गोपाल मन्दिर के गौशाले से सटा हुआ श्री बल्लभ दासजी गुटिया बालेका मकान है। वे आपश्रीके यहां आए और विनती किया कि हमारे ठाकुरजीके मन्दिर में बड़ा अन्धेरा है यदि आप एक खिड़की खोलने की आज्ञा दे दें तो हमारे ठाकुरजी को बड़ी सुविधा हो जायेगी। आपश्री ने वैष्णव जानकर और श्री ठाकुरजी के सुख के लिये तुरन्त बिना सोचे समझे खिड़की खोलनेकी आज्ञा दे दी। ऐसा स्नेह आपश्री वैष्णवके प्रति रखते थे।

प्रसंग – ८

श्री सखीचन्दजी अग्रवाल के पूर्वज आपश्री के कृपा पात्र वैष्णव गोपाल लालजीके फाटकसे सटे हुए उनकी दुकान थी। श्री जगदीशनारायणजी (जगनजी) मन्दिर के किरायेदारी वगैरह आदि की देख-रेख करते थे। श्री सखीचन्द जी ने कुछ कारण से किराया देना बन्द कर दिया उनको नोटिस दे दी गयी पर वे सुनवाहा नहीं हुए। तब उनके खिलाफ मन्दिरने दावा दाखिल किया। कोर्टकी नोटिस रजिस्ट्री उनको पर्सनली सर्व हुयी पर

वे मुकदमे में हाजीर नहीं हुए। मुकदमा एक तरफा डिगरी हो गया और पुलिस द्वारा खाली कराने का आदेश हो गया। तब श्री सखीचन्दजी ने एक वैष्णवसे कहा कि ऐसा हो गया है क्या किया जाए। तब श्री सखीचन्दजी से उक वैष्णव ने कहा कि तुमने किराया क्यों नहीं दिया और मुकदमें में क्यों नहीं हाजीर हुए। तब श्री सखीचन्दजी ने उस वैष्णव से कहा कि तुम मूर्ख हो मालिक से कहीं मुकदमा लड़ा जाता है तब उस वैष्णवने कहा जाकर मालिकसे बात करो तब श्री सखीचन्दजी ने उस वैष्णवसे कहा कि तुम भी मेरे साथ चलो। तब वह दोनों वैष्णव मालिकसे (आपश्री से) बात-चीत करने गये तब आपश्री सखीचन्दजीको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी आओ भगत करके कहा कि ये तो हमारे खासमखास हैं, इनके दादाजी तो हमारे खवास रहे वो हमें दूध पिलाते थे इत्यादिक बात करने के बाद आपने पूछा कि क्या बात है तब उस साथके वैष्णवने मुकदमे की सब बात आप से कहा। तब तक जगनजी भी आपके पीछे आकर खड़े हो गये और भन-भन, भन-भन करने लगे तब आपश्री ने जगनजी से कहा क्या बात है क्यों इनको परेशान करते हो। तब जगनजी ने कहा कि हम अब किराया २००/-रु. महिना लेंगे मुकदमे का फैसला हो गया है अन्यथा इनको दुकान खाली करना पड़ेगा। तब आपश्री ने जगनजी से पूछा पहले किराया कितना था तब उन्होंने कहा कि १२/-रु. महिना तब आपश्री ने कहा कि १२/-रु. महिना का १३ रुपया, १३-५० रु. कर दो १२ फुट की जगह का २००/-रु. कर दिया डकैती पड़ी है क्या या किसी को लूटना है तब जगनजी हाथ-पैर पटकते रह गये। स्वतः सखीचन्दजी ने अपने मन से ४५/-रु. किराया कर दिया। ऐसा स्नेह वैष्णव के प्रति रखते थे।

प्रसंग – ९

एक वैष्णव जो कीर्तन की सेवा भी करते रहे। कीर्तनिया से कुछ मतभेद हो जाने के कारण उन्होंने कीर्तन की सेवा करना बन्द कर दिया। जब आपश्रीको यह ज्ञात हुआ तब आपश्रीने उस वैष्णवको समझाया कि आपसमें जहाँ चार लोग रहते हैं वहां कुछ न कुछ तो हुआ करता है इसका मतलब यह नहीं कि तुम अपनी कीर्तन की सेवा बन्द कर दो। लेकिन वह वैष्णव राजी नहीं हुए। एक बार एक अन्य वैष्णवके यहाँ मण्डलीमें आपश्री पधारे तब वह वैष्णव से कीर्तन करनेके लिए कहा पर उस वैष्णवने आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग किया। आपश्री मन में दुःखी तो अवश्य हुए पर उस समय चुप रह गये। एक बार जड़ाऊ पालनाके मनोरथ के दर्शन खुलने वाले थे। कीर्तनिया मण्डल कीर्तन करने के लिये तैयार थे। आपश्री टेरा खोलने वाले थे कि टेरा से झांक कर देखा तो उक्त वैष्णवने हारमोनियम अन्य वैष्णव जो बजा रहाथा उससे ले लिया और हारमोनियम लेकर बैठ गये। यह देखकर आपश्री बहुत अप्रसन्न हुए और जो वैष्णव हारमोनियम बजा रहा था उससे कहा कि क्या तुमको बजाना नहीं आता है और डांटा और उक्त वैष्णव से कहा कि तुम हारमोनियम छोड़ दो और बाहर चले जाओ। दर्शन के बाद कृपा करके आपश्री ने उक्त वैष्णव को समझाया कि इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए और अपनी सेवा छोड़ना नहीं चाहिए और उक्त वैष्णव सेवा करने लगा ऐसी कृपा आपश्री वैष्णव के ऊपर रखते थे और अपना समझकर समझाते थे।

प्रसंग – १०

बाबू वृन्दावनदासजी मुनीमवाले (मोट्टा भाई) आपश्री के अन्तरंग सखा थे। वृन्दावनदासजी श्री गोकुलनाथजीके घरके सेवक थे परन्तु श्री मुकुन्द रायजीके प्रति उनका अत्यन्त स्नेह था। वे बात-बात में इन शब्दों का प्रयोग करते कि ''हमारे मुकुन्दरायजी'' यह सुनकर आपश्री अत्यन्त प्रसन्न होते थे। वे कलकत्ते रहते थे। परन्तु जब कभी काशी आते थे तो नित्य प्रति श्री मुकुन्दरायजीके कीर्तन की सेवा व पखावज की सेवा करते

थे। सैकड़ों कीर्तन उनको कंठस्थ थे। सम्प्रदाय की बहुत अच्छी जानकारी थी। संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत के सम्प्रदायिक ग्रन्थ की बहुत अच्छी जानकारी थी। एक बार आप घरमें सेवामें गिर जाने के कारण अत्यन्त बीमार पड़े और मरणासन्न अवस्था में हो गये और चौक में उतार दिये गये। तब आपश्री उनके घर पधारे और उनके मस्तक पर अपने चरणारविन्दको रखा और आज्ञा दिया उठो वृन्दावनदासजी अभी तुमको बहुत दिन सेवा करना है और वृन्दावनदासजी धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये और इसके बाद २० साल तक़ जीवित रहे। ऐसा स्नेह आप वैष्णव पर रखते थे।

प्रसंग – ११

चरणाट में सैकड़ों वर्षो से बनारसके गुजराती वीसा वैष्णव का बगीची के कमरोंमें बोलबाला था। उनके प्राधानता के आगे कोई दूसरा वैष्णव बगीची में प्रवेश नहीं कर सकता था। यह परिपाटी सैकड़ो वर्षो से चली आ रही थी एक बार का प्रसंग है कि गोवर्धनदासजी सोनावाले सैकड़ो बच्चों को लेकर जो कीर्तन सिखाते थे चुनार गये। और (संकठा मिश्र) अधिकारी श्री गोपालमन्दिर जो गोपालमन्दिर से चरणाट व्यवस्था देखने के लिए गये थे उनसे गोवर्धनदासजी ने कहा कि हमे बगीची में कमरा मिलना चाहिए क्योंकि हमारे साथ बहुत से बच्चे है तो अधिकारीजी ने कहा कि बगीचीमें कमरा वीसावालों को छोड़कर और किसी को हम नहीं दे सकते, इसके लिए आप महाराजश्री से आज्ञा लीजिए। गोवर्धनदासजी महाराजश्री के पास गये और विनती किया उस वक्त महाराजश्री वहीं विराज रहे थे। आपश्री यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और आज्ञा दिया कि इन बच्चों की आप तुरन्त व्यवस्था बगीचे के कमरे में करें : यदि वीसा वाले आवेंगे तो कोई दूसरा कमरा दिया जायेगा। इसके बाद अधिकारीजी ने बगीची का कमरा बच्चों के लिए दे दिया। बच्चे अपना विस्तर बिछा ही रहे थे कि वीसा वाले सभी आ गये और अपने लिये कमरा माँगने लगे। गोवर्धनदासजी ने कहा कि हमको महाराज श्री ने आज्ञा दिया है। अत: आप उनसे जाकर आज्ञा लीजिए। बीसा के वैष्णव महाराजश्री के पास गये और विनती किया परन्तु आपश्रीने आज्ञा किया कि पहले बच्चों को कमरा दिया जायेगा। आप लोग कोई दूसरा कमरा ले लीजिए ऐसा स्नेह आप बच्चों पर रखते थे।

प्रसंग – १२

श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का वैष्णव के प्रति प्रेम व सौहार्द्र का सबसे बड़ा उदाहरण तो यह है कि समस्त वैष्णव समाज के विवाह के उपरान्त उनके ब्याह के विदाई की बारात किसी भी समय चाहे रात के १२ बजे हो या दो बजे हो मुख्य फाटक बन्द हो जाने के बाद भी पहरेदार को यह हिदायत थी कि मुख्य फाटक खोलकर बारात को और बाराती को अन्दर ले लें। वर घोड़े पर बैठे हुए ही गोवर्धन चौक के सामने कोठी के चौतरे पर घोड़ा लग जाता था और साथ में वधु की पालकी सिंहपौरकी सिढ़ी के नीचे लग जाती थी। वर-वधु उतरकर मन्दिर में श्री गिरिधरजीमहाराज की गादीजी के सन्मुख जाकर विधिवत् दण्डवत भेंट करते थे। श्री मुकुन्दरायजी व श्री गोपाललालजी के कमल चौक के मुख्य द्वार पर जाकर दण्डवत व भेंट करते थे और उनकी इच्छा हो तो वे ऊपर में जाकर महाराजश्री को भेंट व दण्डवत करते थे तब आपश्री भी उनको आशीर्वाद देने के लिए जाग जाते थे और उनपर प्रसन्न होते थे। इसकी भेंट निर्धारित थी जो सात रूपये १० आना से अधिक नहीं थी और आपश्री स्वयं अपने श्रीहस्त से प्रसाद स्वरूप उपरणा व बीड़ा वर-वधु को देते थे।

प्रसंग – १३

प्रत्येक वैष्णवके प्रति उनका ऐसा समभाव था कि कोई भी वैष्णव नियमित रूप से आपश्री के चरण स्पर्श

को जाता और वह अगर १० पैसा से अधिक भेंट करता तो आपश्री उसके ऊपर अप्रसन्न होते और आज्ञा करते कि तुमको रोज चरण स्पर्श करना है तुम इससे ज्यादा भेंट मत करा करो यहएक दिन का काम नहीं है इतना रोज करोगे तो काम कैसे चलेगा ? यह तो रोज का काम है इस प्रकार उनकी दिन-भर की भेंट दो-तीन रूपये से अधिक नहीं होती थी और उन भेट को वह बहुत सम्भाल करके रखते थे और उस भेट से ही अपने साग-सब्जी इत्यादिक खर्च की व्यवस्था करते थे वह अपने खर्च के लिए कोठी से द्रब्य नहीं लेते थे।

अगर कोई नियमित चरण स्पर्श करने वाला वैष्णव कोई कारण से न आ सके तो उसे बुलवाते थे और पूछते थे कि आज तुम क्यों नहीं आये। अधिक सेवा देने वाला कोई वैष्णव द्रव्य के रूप में सेवा आपश्री के श्रीहस्त में पधराता तब वह वैष्णव को कहते कि इसे तो भण्डार में सीधे भरवा देते तो ठाकुरजी नित्य प्रति अंगीकार करते।

प्रसंग – १४

दानएकादशी व पवित्राद्वादशीके दिन आपश्री दान लेने व पवित्रा धरवानेके लिए आप विराजते। कोई वैष्णव दान देने के लिए नोट व पैसा देते तो आप उससे कहते क्या नोट अरोगेंगे ? हमें देना है तो माखन, मिश्री व मेवा दो हम उसे अरोगेंगे।

उपर्युक्त प्रसंगो से यह बात स्पष्ट होती है कि नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्रीका वैष्णव जनों के प्रति प्रेम अपने आप में अद्वितीय- अनुपम तथा चिरस्मरणीय रहा है।

आपश्री का स्नेह वैष्णवों के प्रति अगाध था जिसको यदि लिपिबद्ध किया जाये तो वह एक बड़ा ग्रन्थ हो जायेगा। ताते आपकी वैष्णव के प्रति स्नेह की वार्ता कहां ताई कहीये।

●

लौकिके सन्मुखे कृष्णजनवैमुख्य संयुते।
कृष्णलीलादोषदृष्टौ तथा कर्मजडेऽपि च॥
आचार्यविमुखे नित्यमसद्वादविभूषिते।
एतादृशे तु हृदये हरिर्नाविशते क्वचित्॥
दीने शुद्धे निष्प्रपञ्चे लीलाचिन्तनतत्परे।
स्वाचार्यशरणे नित्यं सर्वकामविवर्जिते॥
व्रजस्त्रीचरणाम्भोजरेणुप्राप्त्यभिलाषुके।
गुणगानपरे कृष्णनामार्थपरिभावुके॥
अनन्येऽनन्यसेवैकनिष्ठातत्परता गते।
भगवद्धर्मनिरते विरक्ते गुणसङ्गिनि॥
कृष्णार्त्तिभावसंयुक्ते सरसेऽन्यरसातिगे।
अचञ्चले कृष्णलीलाचञ्चले दर्शनाकुले॥
मनोरथशताक्रान्ते सवौदासीन्यसंयुते।
एतादृशे तु हृदये हरिराविशते क्षणात्॥

(गो० श्री हरिरायजी विरचित बृहत् शिक्षापत्र-३२)

"श्री मुकुन्द गोपाललालो विजयेते"

षष्ठपीठाधीश्वर नि० ली० गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का वात्सल्य भाव

श्री वल्लभदास मुनीमवाला

लेखक बनारस स्टेट बैंक में अधिकारी है तथा इनका सम्पूर्ण परिवार वंशपरम्परा से श्री गोपाल मंदिर के कार्यों में सेवाभाव से तन-मन-धन से लगा रहता है। आपके घर में भी सेवा विराजती है तथा उत्सवों व मनोरथों पर वैष्णवों को भी दर्शन व प्रसाद का लाभ मिलता रहता है।

प्रातः स्मरणीय षष्ठगृहाधिपति नि० ली० श्री १०८ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के चरणारबिन्द में आपके दर्शन पाने हेतु जब भी हम सन्मुख हुए, विभिन्न स्वरूपात्मक भाव में आपका वात्सल्य भाव का भी दर्शन प्रास हुआ और इन्हीं अनेकानेक स्वरूपात्मक भावों में आपका वात्सल्य भाव का भी दर्शन प्राप्त हुआ। आपश्री को सम्प्रदाय के भविष्य के बारे में हमेशा चिन्ता रहा करती थी और आज्ञा किया करते कि आज जो भी मिल रहा है ले लो, आगे वही सब काम देगा।

हम युवा वैष्णवजन जब भी आपके सन्मुख होते, आप हमेशा सम्प्रदाय के संस्कार ही हमलोगों के हृदय में डालने का अथक प्रयास करते। यह संस्कार आपश्री वैष्णव के घर भर में डालने का प्रयास करते। जो भी वैष्णव आपके सन्मुख हुआ करते, उसके जीवन के क्रियाकलाप की इस ढंग से जानकारी प्राप्त करते कि वैष्णव उस ओर ध्यान भी नहीं दे पाता और बाद में विचार कर सोचता कि आपश्री ने किस चतुरायी से उसके बारे में जानकारी ली।

ऐसी घटना मेरे साथ भी घटी। एक बार मैं छोटा था, आपके दर्शन के लिए गुलाबी कमरे के आगे उपस्थित था। आपसे चरण स्पर्श की आज्ञा लिया और आपने आज्ञा दी, हमने तनिक भी देर न कर तुरंत चरण स्पर्श किया। चरण स्पर्श कर जब खड़ा हुआ तो आपने हमसे पूछा **"क्या तुमने कभी सिंहजी के समोसे खाये है ? सूना है उसका स्वाद बहुत ही सुन्दर होता है"**, हमने तुरंत कहा **"नहीं"** आपने तुरंत हमसे पूछा **"क्या तुम बाजार का कुछ भी नहीं खाते ?"** हमने कहा प्रयास तो हमारा रहता है कि हम बाजार का कुछ भी न खाया करें। क्योंकि हमारे घर वालों का स्पष्ट संकेत था कि जो भी खाना हो,घर में तैयार है। घर में सेवा विराजमान है और समस्त सामग्री ठाकुरजी में भोग आती है फिर बाजार में खाने की इच्छा कभी भी हमने नहीं की जो आज तक चली आ रही है।

इस प्रकार से बहुत ही स्नेह भाव से आप बालकों के प्रति काफी स्नेह रखते और बात करते-करते सभी बात ठाकुरजी की लीला पर ले जाकर घटाते। बालकों के हृदय में एक संस्कार के रूप में छाप छोड़ देते।

आपश्री का प्रत्येक आने वाले वैष्णव के घर में सम्प्रदाय के प्रति लगाव, जानकारी व स्नेह रहे, इस बात की बड़ी प्रबल इच्छा रहती, और हर समय इस बात का आग्रह करते। वैष्णव के घर से आने वाले बालकों को प्रभु का आग्रह बहुत ही रसिक ढंग से प्रतिपादित करते। और आपश्री जिनके घर प्रभु सेवा विराजमान हो उसको सेवा में पहुँचने की आज्ञा करते और जिनके घर सेवा न विराजती उनको मंदिर में कोई न कोई सेवा करने

की आज्ञा करते। आपश्री प्रत्येक वैष्णव में क्या गुण है और उसका सम्प्रदाय में क्या उपयोग हो सकता है, उसको ध्यान में रखते, उस सेवा से उन वैष्णव की सेवा को अंगीकार करते। जैसे श्रावण मास में हिंडोला आदि की सजावट व फूल-पत्ती वगैरह बांधने की सेवा। इसी तरह वर्ष भर के विविध उत्सव, मनोरथों में भी सेवा प्रदान करते। जो संगीत में विशेष स्नेह रखता होता उसे कीर्तन करने की आज्ञा प्रदान करते। जो संगीत में विशेष-स्नेह रखता उसे कीर्तन करने की आज्ञा प्रदान करते। महिला वर्ग में भी वैष्णव हो उसे सम्प्रदाय की मर्यादा के अनुसार मंडप मांडना, माला की सेवा में पहुँचना एवं मोती की आरती भरना वगैरह की आज्ञा देते। वैष्णव से स्नेह तो इस प्रकार का रखते कि समाधानी के द्वारा उपर्युक्त सेवा में पहुँचने की खबर करवाते। जब भी वैष्णव सेवा करते रहते, आप कहीं न कहीं से पहले छिपकर देखते फिर यथास्थान पर पधार कर उसका अवलोकन करते फिर जो भी कमती-बढ़ती या सेवा में त्रुटि होती तो बड़े ही वात्सल्य भाव से सेवा के स्वरूपात्मक भाव के साथ समझाते और त्रुटि सुधार कराते। जबभी वैष्णव कमल चौक में या जहाँ भी सेवा करते होते, आप विराजमान होकर कुछ न कुछ हास्य-व्यंग्य के द्वारा भी उनको प्रसन्न करते। यही नहीं जब वैष्णव सेवा में रहते तो बडों की मर्यादा व स्नेह का अच्छा उदाहरण देते। समाधानी या खवास से कहकर कुछ प्रसाद श्री मुकुन्दरायजी का बटवाते और जब वैष्णव संकोच करते हों, आप आज्ञा करते **''भूखे भजन न होय गोपाला''**। समाधानी से भी यही कहते, वैष्णवों को सेवा में लगाते हो और उनका ध्यान नहीं रखते कि वैष्णव को प्यास लगी होगी ? सेवा में वैष्णव को देख आप इतना प्रसन्न होते कि आप खड़े-खड़े घंटो बिता देते क्योंकि जैसी आपकी प्रकृति थी कोई न कोई लीला की वार्ता जरूर करते और कोई न कोई सेवा विषय की जानकारी आप वैष्णव को प्रदान करते।

आपश्री वैष्णवन को उनके बालकों को कैसे हास्य-व्यंग्य से टटोलते, इसका अवसर एक बार हमारे साथ आया। मैं आपके दर्शन व चरण स्पर्श के लिये जहाँ आप विराजते, सुबह मंगला का समय था ऊपर गया। दण्डवत् कर चरण स्पर्श की आज्ञा ली। चरण स्पर्श कर उठा तो चर्चा हो रही थी तब बीच में आपने हमसे पूछा **''क्या तुमने कभी किसी से स्नेह किया है ?''** मैं घबड़ा गया, सोचने लगा ये क्या पूछ रहे हैं, मैं बालक बुद्धि का था उनका इतना बड़ा प्रश्न नहीं समझा और कहा ''नहीं जै'' आपने हमसे पूछा, **''सत्य बोल रहे हो।''** मैंने हाँ में उत्तर दिया। तब आपश्री ने कहा **''क्या किसी से भी स्नेह नहीं किया है ? तुम्हारे घर पर ठाकुरजी की सेवा जो विराजमान है उसे भी स्नेह नहीं किया ?''** मैं बहुत ही अवाक् रह गया और ऐसी बात सुनकर कहा, प्रभु से स्नेह नहीं करेंगे तो कहाँ जायेंगे। इस प्रकार की घटनाओं से हमारे हृदय में आपकी छवि हमेशा विराजमान रहती है। यह सोचता हूँ कि आपश्री का जो स्वरूप था, कैसा अलौकिक रहा। ऐसे वात्सल्य व करुणामय स्वरूप आज भी हमारे क्या काशी के वैष्णवजन जो भी आपके संपर्क में आये, उनके हृदय में विराजमान हैं।

वर्ष में जब भी आप चुनार या अड़ैल पधारते, अन्नकूट के अवसर पर या गोसाईंजी के उत्सव पंर, तब वैष्णवजन से श्रीमहाप्रभुजी श्री गोसाईंजी के सन्मुख होने के लिए जरूर आज्ञा करते। चुनार में गोसाईंजी के उत्सव के स्वरूपात्मक भाव की चर्चा करते। आपश्री के वार्ता में हमेशा स्वरूपात्मक भाव की झलक हुआ करती और बहुत ही सरल ढंग से वैष्णवजन को हर स्थान, हर वस्तु, हर साहित्य का स्वरूप आप वात्सल्य भाव से समझाते।

आपश्री चरणाट में पधारते, लगभग एक सप्ताह वहाँ विराजते और उत्सव का आनन्द सभी वैष्णव को

लिवाते। गोसाईं जी के प्राक्ट्योत्सव (पौष कृष्ण९) पर आप वहाँ रहने वाले वैष्णवों को सम्प्रदाय का मार्गदर्शन वैष्णवों के मध्य विराजकर प्रदान करते। गोसाईं जी के उत्सव के दूसरे दिन दशमी को प्रभातफेरी की आज्ञा आप श्री की रहती और उस प्रभात फेरी में कीर्तन का जो उनका शौक था, आनन्द से स्वयं कीर्तन करते और वैष्णवन उसे झेलते।

आपश्री कीर्तन के कितने मर्मज्ञ थे, यह लक्षित होता है। प्रभातफेरी पूर्ण होने के पश्चात् धूप में विराजते और बच्चे, महिला, पुरुष वर्ग के सभी वैष्णवों के मध्य विराजकर ढोल, भजन, दोहा एवं कीर्तन का लाभ लेते और केशर स्नान का व चरण स्पर्श का लाभ भी सभी वैष्णव को प्रदान करते। छोटे-छोटे बच्चों से भी वार्ता करते, उन्हें भी जिनको चरण स्पर्श करना न आवे उन्हें बतलाते और ऐसे वक्त पर सभी वैष्णव को चरण स्पर्श का स्वरूपात्मक भाव भी समझाते।

सम्प्रदाय का भविष्य और आचार्य चरण श्री महाप्रभुजी की मेड़ मर्यादा का पल-पल पर आप ध्यान रखते और पालन करते क्योंकि श्री महाप्रभुजी व श्री गोसाईंजी की जो वेदमूलक वाणी है वही सम्प्रदाय का सिद्ध प्रमाण है और इसीलिए आज भी वैष्णवजन श्री आचार्य चरण का गोस्वामी बालकों में स्वरुपात्मक भाव से ही दर्शन करते हैं। इन्हीं सिद्धांतों का दर्शन आपश्री के आज्ञा में होता था। बराबर आपकी आज्ञा वैष्णवों को रहती कि **''अपनी आमदनी में से एक अंश ठाकुरजी में अंगीकार कराना चाहिये।''**

आपका वैष्णवों के प्रति वात्सल्य भाव ही था कि वैष्णवजन के हृदय में श्री ठाकुरजी की सेवा करने का आग्रह उत्पन्न होता जिससे मानसी सेवा सिद्धि के लिये वैष्णव तनुजा, वित्तजा सेवा करते। आपका प्रयास ही है कि आज काशी में श्री प्रभु सेवा की प्रधानता घर-घर में दीखती है।

महाराजश्री का वात्सल्य भाव ही है कि काशी में देखा जाय तो यहाँ पर सम्प्रदाय के विभिन्न घरों के सेवक है और सबकी सेवा अपने अपने घर की परम्परा से होती है। आप हर घर के वैष्णवों को उनके घर की सेवा विधि प्रकार समझाते और जिन वैष्णवों को कहीं कोई भी भावना प्रकट करनी हो तो आपश्री से ही उसकी पुष्टि कराते।

जब भी वैष्णव सेवा सम्बन्धी वार्ता करते, आपश्री का अन्तःकरण बहुत ही प्रफुल्लित होता। तब उस वैष्णव का मन भी बहुत ही आनन्दमय हो जाता।

आपकी आज्ञा रहती कि काशी की यह षष्ठपीठ मंदिर श्री मकुन्दरायजी, श्री गोपाललालजी जो श्री ठाकुर-जी का नन्दालय है, यहाँ प्रत्येक वैष्णव कोअपने घर की प्रथम सेवा पहुँच कर जरूर आना चाहिए। चाहे वह जिस घर का वैष्णव हो क्योंकि काशी के सभी वैष्णव के भाग्य की बात है कि आज शुद्धाद्वैत मार्तण्ड षष्ठपीठाधीश्वर श्री गो० गिरिधरजी महाराज ने षष्ठनिधि श्री मकुन्दरायजी को पधराकर षष्ठपीठ की स्थापना की और इस प्रकार पूरे पूर्वांचल में श्री ठाकुरजी का नन्दालय सभी वैष्णवों को प्राप्त हुआ।

इसका एक प्रत्यक्ष अवसर मुझे प्राप्त हुआ। एक बार मैं जन्माष्टमी के अवसर पर रात्रि मेंजन्म के दर्शन करने के लिए श्री गोपाल मंदिर आया। आपश्री के सन्मुख हुआ। आपश्री हमारे घर से भली-भाँति परिचित थे, मुझसे पूछा **''क्या तुम्हारे घर पर जन्म के दर्शन हो गये ?**, मैंने कहा **''नहीं''** आपने तुरंत आज्ञा किया कि, **''पहले अपने घर की सेवा करना, फिर नन्दालय आना। तुम्हारे घर की सेवा को तुमने क्या खिलौना समझ रखा है।''** हम तुरंत घर चले आए। उस दिन यह बहुत बड़ी चीज की जानकारी आपश्री ने हमें दी।

आज देखा जायतो लोग बाल्यकाल एवं युवा काल में साम्प्रदायिक सेवा कार्यों में आना कम पसंद करते हैं परन्तु जो सत्य है कि संस्कार कोमल हृदय से ही प्रवेश करता है । जैसे कच्चे मिट्टी के बर्तन का जो घाट दे दिया जाय वही पकने पर स्थायी हो जाता है । उसी तरह बचपन में जो संस्कार प्राप्त हो जाते हैं वह आजीवन स्थिर बने रहते हैं ।

काशी में आपश्री का वैष्णवों के बालकों के हृदय में ही संस्कार डालने का प्रयास रहता । छोटे-छोटे बच्चों से कभी भी नाराज नहीं होते, उनको अपने निकट जब भी देखते अपना वात्सल्य प्रेम उसमें कृपा रूप में भर देते जो आज भी काशी में प्रत्येक उत्सव, महोत्सव व मनोरथों के अवसर पर वैष्णवों , बालकों एवं नवयुवकों को सेवा में बड़े लगन के साथ तत्पर देखा जा सकता है । यही नहीं आज के भी जो छोटे-छोटे वैष्णव बालक-बालिकाएँ है जिन्होंने इनके साक्षात् दर्शन नहीं किये है वे भी आज उनके कृपापूर्ण वात्सल्य भाव को अपने बड़ों से श्रवण कर उसी प्रकार प्रभावित होते है और अपने हृदय में उनका घर बनाकर विराजमान पाते है जैसे जिन वैष्णवों ने साक्षात् दर्शन कर आपश्री का अपने हृदय में एक मंदिर बनाकर विराजमान किए हुए हैं और दर्शन करते हैं ।

यह है आपका वात्सल्य भाव, आपका वात्सल्य स्वरूप कि बड़े-बड़े उत्सव-महोत्सव में हजारों की संख्या में संस्कारित नवयुवक आज काशी में सेवा में तत्पर है और कोई न कोई रूप में ठाकुर की सेवा प्रतिदिन करते हैं और सेवा-शृंगार की थोड़ी बहुत जानकारी अवश्य रखते है । आज काशी में शायद कोई ऐसा वैष्णव होगा जो आपश्री की एकछवि अपने निवास स्थान पर न रखा हो । यही नहीं आपके द्वारा डाला गया संस्कार ही है कि काशी में, मंदिर में दर्शन करने वालों में अधिकांश संख्या युवा वर्ग की आज भी रहती है ।

हम काशी के समस्त वैष्णव, जो नहीं है वे, और जो आज वर्तमान में विराजमान हैं, और जो आगे श्री ठाकुर की सेवा में सन्मुख होंगे, सभी हमेशा षष्ठनिधिमंदिर श्री मकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी का अनुग्रह और श्री महाराजश्री का नाम रूपात्मक सान्निध्य प्राप्त कर बहुत-बहुत धन्य हुए हैं एवं होंगे । आपश्री के बारे में कितना भी भाव प्रकट किया जाय, वह कम ही है । आपका भाव प्रकट करने में हृदय में एक ताप प्रकट होता है । आपश्री के स्मरण मात्र से अनेक जन्म के पाप दूर होते हैं, आज भी आप मंदिर में विराजमान हैं, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है ।

जैश्री कृष्ण

●

तरहटी श्री गोवर्धन की रहिये ।

नित्य प्रति मदनगोपाल लाल के चरण कमल चित लहिये ।

तन पुलकित व्रजरज में लोटत गोविन्द कुण्ड नहइये ।

रसिक प्रितम हित चित की बातें गिरधारी जी सुं कहिये ।

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाल लालौ विजयेते॥

कृपासागर षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ श्री १०८ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज

श्री मोहनदास एडवोकेट

पावन गंगा के तट पर स्थित विश्व-विख्यात प्राचीन धार्मिक नगरी काशी में आकर अनेक संत-महात्मा एवं आचार्यों ने यहाँ से ज्ञान की ज्योति सारे विश्व में फैलायी। इसी परम्परा में वैष्णव धर्म के प्रमुख आचार्य, जगद्गुरू श्रीमदवल्लभाचार्यजी ने काशी आकर वेद-पुराण-भागवत-गीता-उपनिषद आदि का गहन अध्ययन किया तथा मानव कल्याण के लिये कृष्ण भक्ति की गंगा प्रवाहित की।

काशी महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी की कर्मभूमि रही है। यहाँ पर आपश्री ने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद की स्थापना की। आपके द्वितीय बालक श्रीमत्प्रभुचरण गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी का प्राकट्य काशी के समीप चरणाद्रि (चुनार) में विक्रम संवत् १५७२ के मिति पौष कृष्ण ९ को हुआ।

श्री विठ्ठलनाथजी श्री गुसाईंजी के षष्ठलालजी गोस्वामी श्री यदुनाथजी महाराज के वंश में षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज का प्रार्दुभाव काशी स्थित विख्यात श्री गोपाल मन्दिर में हुआ। आपश्री ने वेद-पुराण-गीता आदि का अध्ययन काशी में ही किया। आपश्री की शुरू से ही सेवा-श्रृंगार एवं अष्टछाप कीर्तन में विशेष रूचि रही। प्रभुसेवा के प्रति समर्पण की भावना तथा सम्प्रदाय की मेड़ (नियम) के प्रति आपश्री की अटूट आस्था थी।

गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने सम्प्रदाय के प्रचार-प्रसार के लिये जीवन पर्यन्त कार्य किया। सम्प्रदाय में सेवा की विभिन्न प्रकार की रीति-रिवाज से वैष्णवजन को सदैव अवगत कराते रहे तथा वैष्णवजन में प्रभु के प्रति सेवा की भावना को दृढ़ता के साथ समझाने का कार्य किया। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित युवा वैष्णवजन प्रभु की सेवा किस प्रकार और कैसे करें, इस बात के लिये आपश्री सतत प्रयत्नशील रहे। आपश्री के सान्निध्य तथा सम्पर्क में जो वैष्णव एक बार भी आ जाता था, वह आपश्री से कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करके ही जाता था।

आपश्री के सान्निध्य में आने का मुझे सौभाग्य परमभगवदीय वैष्णव तथा मंदिर के ट्रस्टी एवं वकील गोलोकवासी श्री विठ्ठलदासजी गोठी एडवोकेट के कारण प्राप्त हुआ। आपश्री की हमारे ऊपर विशेष कृपा रही, जिसके कारण हम आपश्री के सान्निध्य में आते गये तथा आपश्री की कृपा से सेवा का अवसर हमें मिला।

पूज्यपाद महाराजश्री की कृपा से हमने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्वी निकाय के समाजसेवा मंत्री के चुनाव सन् १९७४ ई० में सफलता प्राप्त की, तत्पश्चात् समाज-सेवा करना हमारी एक रुचि बन गयी। उसी समय समाज के चतुर्दिक उत्थान एवं परस्पर प्रेम द्वारा नवयुवकों को संघटित करने का विचार मन में उत्पन्न हुआ तथा एक सामाजिक संस्था के निर्माण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई।

श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु की असीम कृपा से श्री गोपाल मन्दिर में षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज के जन्मोत्सव सन् १९७४ ई० में एक संस्था की स्थापना का संकल्प लिया तथा महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी की जयन्ती पर पूज्यपाद महाराजश्री की आज्ञा से "श्री वल्लभ युवक परिषद" की

स्थापना सन् १९७४ ई० में हुई। परिषद के माध्यम से नवयुवकों का सम्पर्क पूज्यपाद महाराजश्री से दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया तथा आपश्री की कृपा नवयुवकों पर होने लगी। जिसके फलस्वरूप नवयुवकों में प्रभु की सेवा के प्रति आस्था, दृढ़ता तथा सेवा-समर्पण की भावना बढ़ती गई।

गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज का चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभु जी की बैठक से विशेष लगाव रहा। आपश्री प्रतिवर्ष गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी का उत्सव मनाने चरणाटधाम पधारते थे। वहाँ पर आपश्री के वचनामृत से नवयुवकों को एक नयी प्रकार की प्रेरणा सेवा कार्य करने के लिये मिलती थी। जिसके कारण ही काशी के वैष्णव समाज का चरणाटधाम से एक प्रकार से आत्मीय सम्बन्ध बन गया है। पूज्यपाद महाराजश्री की कृपा से आज भी अनेक ऐसे वैष्णव है जो विगत २०-२५ वर्षो से लगातार श्री गुसाईं जी के उत्सव पर चरणाटधाम पधारते हैं। मुझे भी प्रतिवर्ष उत्सव में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज प्रभु की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। चाहे सम्प्रदाय के कोई मन्दिर या बैठक जी में पधारना हो या किसी वैष्णव के घर मन्दिर में पधारना हो। आपश्री से जो भी वैष्णव घर पधारने का आग्रह करता था आपश्री उसकी भावना का ख्याल रखकर सहजता से उस वैष्णव के घर पधारते थे तथा वहाँ की सेवा-प्रकार की जानकारी प्राप्त करते थे और श्री ठाकुरजी की सेवा की विभिन्न जानकारी उस वैष्णव को समझाते थे।

आपश्री को मालूम पड़ा कि हमारे घर पर प्राचीन सेवा विराजमान है तथा किन्हीं कारणों से कुछ वर्ष से अन्नकूट का उत्सव नहीं हुआ है। तब आपश्री ने हमको आज्ञा प्रदान की कि तुम सूक्ष्म में ही सही अन्नकूट किया करो। प्रभु की कृपा से तथा आपश्री की प्रेरणा से हमारे घर पर प्रतिवर्ष श्री ठाकुरजी का अन्नकूट होता चला आ रहा है। ऐसी आपश्री की कृपा हुई।

आपश्री से एक बार सन् १९८१ ई० में पुरूषोत्तम मास में घर पर पधारने की विनती की गईं तब आपश्री ने आज्ञा की कि समयाभाव के कारण तुम पुरूषोत्तम मास के एक-दो दिन बाद मनोरथ करो तब हम शांति से कुछ देर तुम्हारे घर पर रुकेंगे। आपश्री ने दो दिन पश्चात् घर में फूल-पत्ती का हिंडोला झुलाया तब आपश्री ने बतलाया कि श्री ठाकुरजी को नेत्र इस प्रकार से धराया जाता है तथा इसका भाव यह है।

एक बार हमारे घर पर सन् १९८२ ई० में श्री ठाकुरजी के जल-विहार का मनोरथ था, उस समय का मौसम भी बहुत विचित्र था, बरसात हो रही थी, बिजली गायब थी, आकाश में बिजली चमक रही थी। मगर आपश्री ने विषम परिस्थिति में भी हमारे ऊपर विशेष कृपा करके हमारे घर पधारकर ठाकुरजी की आरती की थी।

इसी प्रकार आपश्री सामाजिक संस्थाओं के कार्यक्रम में भी पधारते थे। श्री वल्लभ युवक परिषद द्वारा आयोजित नवरात्र महोत्सव में प्रतिवर्ष अष्टमी के दिन गोलघर स्थित श्री बड़े महाराजजी के मन्दिर में पधारते थे। श्री वल्लभ युवक परिषद द्वारा आयोजित श्री वल्लभ लीला में भी पधारकर महाप्रभुजी की आरती की थी। श्री चित्रकूट रामलीला समिति द्वारा आयोजित लीला में भी आप प्रतिवर्ष पधारते थे। श्रीमद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान द्वारा आयोजित कार्यक्रम में भी आपश्री पधारते थे। उक्त संस्थान के आपश्री जीवनपर्यन्त धार्मिक प्रधान रहे। आपश्री सामाजिक संस्थाओ के कार्यक्रमों में बराबर पधारते थे।

आपश्री की वैष्णवजन पर असीम कृपा थी, इसी कारण से आपश्री कृपासागर की साक्षात प्रतिमूर्ति थे।

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के श्री चरणों में सादर समर्पित

सेवा का डंका काशी में बजवाया 'श्री मुरलीधरजी' ने।
सेवा को जन जन के घर तक पहुँचाया 'श्री मुरलीधरजी' ने ॥ १॥
प्रभु सेवा जिनका जीवन था प्रभु सेवा के वो रसिया थे।
कीर्तन के अच्छे जानकार वैष्णव के मनके बसिया थे ॥ २ ॥
'श्री मुकुन्दप्रभु' 'श्री गोपालप्रभु' क्या-क्या लीला दिखलाते थे।
वो 'श्री मुरलीधरजी' ऐसे थे सेवा से उन्हें रिझाते थे ॥ ३ ॥
कब सुबह हुई, कब शाम हुई इसका भी कभी न भान रहा।
कैसे रीझे ठाकुर मेरा बस प्रभु सेवा में ध्यान रहा ॥ ४ ॥
क्या वक्त की बात करे कोई यहाँ वक्त की हरदम मात हुई।
प्रभु जब जागे तब सुबह हुई प्रभु शयन किए तब रात हुई ॥ ५ ॥
'श्रीमुरलीधरजी' ने काशी को 'दो रत्न' यहाँ अनमोल दिया।
'वृन्दाराजा' हैं 'श्रीशरद्वल्लभा', 'मनुराजा' थी 'कृष्णप्रिया' ॥ ६ ॥
'श्री कृष्णप्रियाजी' ने भारत में हरिनाम की धूम मचाई थी।
जो पढ़ भी नहीं सकता उसको पूरी गीता सिखलाई थी ॥ ७ ॥
काशी के वैष्णव का भाग्य बड़ा पुष्टि सेवा का सार मिला।
'श्री गिरिधरजी' की कृपा हुई 'श्रीमुकुन्दप्रभु' आधार मिला ॥ ८ ॥
प्रभु की लीला प्रभु ही जाने प्रभु की ये कैसी माया है।
'श्री मुरलीधरजी' की भावना थी 'श्रीश्याममनोहरजी' को पाया है ॥ ९ ॥
काशी में 'श्रीश्याममनोहरजी' का हम सब अभिनन्दन करते हैं।
'श्रीमुरलीधरजी' के प्रतिरूप चरणों में वन्दन करते हैं ॥ १० ॥
हमसब सेवक 'श्री वल्लभ' के हम 'श्री वल्लभ' के गुण गाते हैं।
श्रद्धा से 'श्रीचरणों' में हम यह मस्तक आज नवाते हैं ॥ ११ ॥
'श्री वल्लभ' ने जब कृपा करी यह भाव यहाँ प्रगटाया है।
'पापा' ने मन के भावों को श्री चरणों में पधराया है ॥ १२॥

दासानुदास
वृजरमणदास एडवोकेट 'पापाभाई'

बहुमुखी प्रतिभा के धनी 'पापाभाई' एक कर्मठ, कुशल कार्यकर्ता एवं स्पष्टवक्ता, सम्प्रदाय के साहित्य से परिचित तथा एक अच्छे कवि भी हैं।

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण

खण्ड
[ख]

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

॥ श्यामः सदा दीव्यतु मानसे मे ॥

श्री वल्लभ दर्शन के मूल तत्व

षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्रीश्याममनोहरजी महाराज

प्राकृतधर्मानाश्रयमप्राकृतनिखिलधर्मरूपमिति ।
निगमप्रतिपाद्यंयत्तत्वछुद्धं साकृतिस्तौमि ॥

मायामतोन्मत्तमतङ्गमूर्धप्रपाटनैकोऽपि हरिः पटीयान् ।
नवादि गोप्याश्रित कृष्णसारः श्रीवल्लभाख्यः शरणं ममास्तु ॥

रासादिलीलारसपूरिताङ्गं निजान्तरङ्गानुजराजहंसम् ।
मायीन्द्रकुम्भीन्द्रहरीन्द्रमीशं, श्रीविठ्ठलेशं प्रणमामि नित्यम् ॥

भारतवर्ष की विख्यात वैष्णव सम्प्रदाय चतुष्टयी में श्रीवल्लभसम्प्रदाय तुरीय स्थान पर आता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं संस्थापक जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण हुए। परन्तु वल्लभ सम्प्रदाय के उन्नयन, प्रचार-प्रसार में श्रीवल्लभाचार्यजी के द्वितीय कुमार श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीगुसाईंजी का भी अभूतपूर्व अनन्त योगदान रहा। दार्शनिक जगत् में श्रीवल्लभाचार्यचरण का मत **''शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद''** के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्त में आचार्य शंकर के **''अद्वैत विवर्तवाद''** सिद्धान्त से विलक्षण भिन्नता है। **''केवलाद्वैत''** मत में जहां माया शबलित ब्रह्म को जगत् का कारण माना गया है एवं सम्पूर्ण जगत् को मायिक मिथ्या कहा गया है, वहीं शुद्धाद्वैत मत में माया सम्बन्धरहित नितान्त शुद्ध ब्रह्म को जगत् का कारण माना जाता है।

माया सम्बन्ध रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः ।
कार्यकारणरूपं ही शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥

(शु० मा०)

आचार्य शंकर अपने सिद्धान्त के अनरूप अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु श्रीवल्लभाचार्यचरण भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास के मतानुसार **''शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद''** का प्रतिपादन करते हैं। जैसाकि स्पष्ट होता है-

नस्तौमि तं व्यासमशेषमर्थं, समग्र सूत्रैरपि यो बबन्ध ।
विनाऽपि तैः संग्रथिताऽखिलार्थं, तं शंकरं (शंकराचार्यं) नौमि सुरेश्वरंच ॥

श्रीमधुसूदन सरस्वती विरचित उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट होता है कि उन्होंने भगवान् व्यास की स्तुति करना आवश्यक नहीं समझा, कारण यह कि - भगवान् व्यास के बिना भी आचार्य शंकर ने अपने समग्र अर्थ को अपने हिसाब से संग्रथित किया है अतः मैं उन्हीं को तथा सुरेश्वराचार्य को नमन करता हूँ। उक्त श्लोक से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शंकर ने व्यास मतानुसार ही अपने सिद्धान्त को संग्रथित नहीं किया है बल्कि अपने तरीके से अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जबकि श्रीवल्लभाचार्यचरण **''व्यासोऽस्माकं गुरुः''** तथा **''वेदव्यासमतानुवर्त्ति''** इस तरह अपना व्यासमतानुयायी होना उद्घोषित करते हैं। इसी उद्घोष को निम्नलिखित श्लोक में स्पष्ट किया गया है-

संस्तौमि तं व्यासमशेषमर्थं यस्तत्वसूत्रैर्निबबन्ध दिव्यम् ।
तैरेव सम्यग्ग्रथिताऽखिलार्थं, श्रीवल्लभाचार्यमहं नमामि ॥

(गो० श्रीहरिराय महाकवि)

कहने का तात्पर्य यही कि आचार्य शंकर अपने विचारों के अनुरूप निराकार ब्रह्म को स्वीकार करते हैं, वहीं श्रीवल्लभाचार्यचरण भगवान् वेदव्यासमतानुसार अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए साकार ब्रह्म को स्वीकार करते हैं । **''साकार ब्रह्मवादैक स्थापकः''** स्पष्ट है ।

प्रस्तुत निबन्ध का प्रकृत विषय है **''श्रीवल्लभदर्शन के मूल तत्व''** । इस पर विवेचन करने से पूर्व श्रीवल्लभदर्शन के आधार के सम्बन्ध में अभिज्ञान कर लेना अत्यावश्यक है । आज आदिकाल से हमारे शास्त्रों की, शास्त्रकारों की, आचार्यों की, ऋषि मुनियों की, विद्वानों की यह सनातन परम्परा रही है कि कोई भी आस्तिक दर्शन वैदिक आधार के बिना स्थिर वा मान्य कदापि नहीं हुआ है, न है, न होगा । अतः उसी सनातन परम्परा का अभितः निर्वहन करते हुए जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण ने सम्पूर्ण श्रौत वैय्यासिक ऐसे दिव्य औपनिषद् सिद्धान्तों की नींव पर ही अपने **''शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद निर्गुण पुष्टिभक्तिमार्ग''** के सुदृढ़, भव्य, रमणीय एवं अलौकिक भवन का निर्माण किया है । कुछ लोग जो ऐसा समझते हैं कि वल्लभ सम्प्रदाय में वेद, श्रीमद्भगवद्गीता आदि को कम महत्व दिया गया है, यह सर्वथा असत्य एवं कपोल कल्पना मात्र है । वस्तुस्थिति तो इससे सर्वथा विपरीत है । श्रीवल्लभ सम्प्रदाय में तो वेदों का समग्रतः अविकल प्रामाण्य एवं प्राथम्य स्वीकार किया गया है ।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥
एतद्विरूद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथंचन ।

(त० दी० नि० शा० प्र०)

अर्थात् अर्थवाद सहित चारों वेद, सम्पूर्ण वेदार्थानुवादक श्रीमद्भगवद्गीता श्रीकृष्णवाक्य, व्याससूत्र – तत्वसूत्र, अविरूद्ध जैमिनी सूत्र एवं भक्तियोगज समाधिप्राप्त निगम कल्पतरू फलरूप श्रीमद्भागवत महापुराण, ये चारों प्रस्थान ब्रह्म निरूपण में प्रमाण हैं । इससे विरूद्ध जो भी कुछ है, वह शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद में प्रमाण नहीं है । इसीलिये श्रीवल्लभाचार्यजी स्पष्ट आज्ञा करते हैं **''शब्द एवं प्रमाणम्'' ''तत्राप्यलौकिकज्ञापकमेव, तत् स्वतः सिद्धप्रमाणभावं प्रमाणम्''** । प्रत्याक्षादि प्रमाणों में भ्रान्तत्व का भी दर्शन होने से उनका प्रामाण्य एकान्तिक नहीं हो सकता, अतः उन सबों को न कहकर केवल **''शब्द प्रमाण''** को ही स्वीकार किया गया है एवं उसमें भी अलौकिक ज्ञापक शब्द का ही स्वीकार है अर्थात् ब्रह्म प्रतिपादन में उक्त प्रस्थान चतुष्टय प्रयुक्त शब्द ही प्रमाण है, अन्य आप्तवाक्यीभूत लौकिक शब्द भी नहीं ।

''वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुमः''

(भा० स्क० ६)

''तस्मान्निरपेक्षा एव भगवन्निश्वास भूता वेदाः प्रमाणम्''

(अणु० भा० १/१/४)

अतः स्वतः सिद्ध प्रमाण रूप, भगवन्निश्वासात्मक, अलौकिक, सर्वाश्रयीभूत भगवान् वेद (उभय काण्डात्मक), साक्षात् भगवद्वाक् श्रीमद्भगवद्गीता श्रीकृष्ण वाक्य, भगवद् ज्ञानावतार श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास रचित व्याससूत्र (ब्रह्मसूत्र) एवं भक्तियोगज समाधिदृष्ट साक्षाद्भगवत्स्वरूपात्मक श्रीमद्भागवत समाधिभाषा ही, सर्व तंत्र स्वतन्त्र, कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं समर्थ, परात्पर सर्वकारण कारण, अप्राकृत निखिल धर्मवान्, निर्गुण साकार, परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम के निर्णय प्रतिपादन में समर्थ हो सकते हैं। इसीलिये श्रीवल्लभाचार्यचरण वेदों का प्राथम्य एवं अविकल प्रामाण्य स्वीकार करते हैं–

वेदोक्तादणुमात्रेऽपि विपरीतं तु यद्भवेत्।
तादृशं वा स्वतन्त्रञ्चेदुभयं मूलतो मृषा॥
अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते।
तपसा वेदयुक्त्या तु प्रसादात् परमात्मनः॥
वेदस्य अक्षरमात्र अन्यथा कल्पनेऽपि दोषः स्यात्।
(अणु० भा०)

इसी तरह श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में भी आपश्री आज्ञा करते हैं–

लक्षणां नैव वक्ष्यामि न न्यूनादन्यपूरणम्।
आर्थिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्ष कथनादृते॥

अतः कहने का तात्पर्य यही है कि श्रीवल्लभ दर्शन आधुनिक न होकर सम्पूर्ण प्राचीन एवं श्रोत सिद्धान्त (दर्शन) ही है और इसीलिये इसके मूलभूत तत्व भी भगवान् अपोरुषेय वेद (उभय काण्डात्मक) श्रीमद्भगवद्गीता, व्याससूत्र एवं व्याससमाधि भाषा (श्रीमद्भागवत) में ही निहित थे जिनको दैवीजीवोद्धारक श्रीवल्लभाचार्यचरण ने अनुग्रह-पूर्वक प्रकट करके ऐसे एक सर्वोद्धारक मार्ग का प्रवर्तन किया जिसका गन्तव्य एकमात्र ब्रजाधिप, सर्वोद्धारक अखिल ब्रह्माण्डनायक, सच्चिदानन्द स्वरूप, निर्दोषपूर्ण गुणविग्रह, आत्मतन्त्र, सर्वविरूद्धधर्माश्रय, शरणागत-वत्सल, लीला पुरुषोत्तम, यशोदोत्संगलालित, भगवान् गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं जो केवल भक्तों के दैन्य युक्त स्नेह से ही प्रसन्न होकर उन्हें परमानन्द का दान करते हैं–

''भक्तानां दैन्यमेवैकं भगवत्तोष कारणम्''
''स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः''
''हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका''

श्रीवल्लभ दर्शन के इस पूर्व परिचय केबाद इसके कुछ मूलभूत तत्वों सिद्धान्तों पर अनति विस्तार से प्रकाश डालेंगे–

सर्वप्रथम दर्शन शब्द की परिभाषा समझ लेना आवश्यक है **''किन्नाम दर्शनमिति प्रश्ने तत्वज्ञान-साधनं शास्त्रम्, अपरोक्षज्ञानम् साक्षात्कारोवेति।''** तत्वज्ञान कराने में साधन रूप शास्त्र को दर्शन कहते हैं या अपरोक्ष ज्ञान को दर्शन कहते हैं या फिर चाक्षुष प्रत्यक्ष को दर्शन कहते हैं। हमारे विषयानुरूप दर्शन का अर्थ यहां पर स्पष्टतः तत्वज्ञान से वा अपरोक्ष ज्ञान से है। दर्शन भी दो प्रकार के होते हैं–

प्रथम–आस्तिक दर्शन और **द्वितीय**–नास्तिक दर्शन। यहां पर नास्तिक दर्शन हमारा विवेच्य नहीं है, अतः उसे छोड़कर हम आस्तिक दर्शन की ही चर्चा करेंगे।

आस्तिक दर्शन मुख्यत: षड्विध होते हैं ।

ते च – ''सांख्यापातंजलपूर्वमीमांसोत्तरमीमांसातर्कन्यायभेदेनेति'' (न्या० को०)

१. **सांख्यदर्शनशास्त्र** – श्रीकपिलमुनि प्रणीत ।

२. **पातंजलयोग दर्शनशास्त्र** – श्रीमहर्षि पतंजलि प्रणीत ।

३. **पूर्व मीमांसा दर्शनशास्त्र** – श्रीमहर्षि जैमिनि प्रणीत ।

४. **उत्तर मीमांसा दर्शनशास्त्र** – भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन वेदव्यास प्रणीत ।

५. **तर्कवैशेषिक दर्शनशास्त्र** – श्रीकणादमुनि प्रणीत ।

६. **न्यायदर्शन शास्त्र** – श्रीमहर्षि गौतम प्रणीत ।

इस प्रकार उपर्युक्त छ: आस्तिक दर्शन हमारी सनातन आदि परम्परा से हमको विरासत में प्राप्त हुए हैं । यहां पर हमारा विवक्षित विषय उत्तर मीमांसा दर्शन अर्थात् वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत आता है । ये वेदान्त दर्शन मुख्यत: पाँच प्रकार के हैं–

''केवलाद्वैत-विशिष्टाद्वैत-द्वैताद्वैत-शुद्धाद्वैत-भेदात्-पंचविधाः ।''

१. **केवलाद्वैत वेदान्त दर्शन** – श्रीसुरेश्वराचार्याभिमत भगवान् शंकरावतार आचार्य शंकर प्रणीत ।

२. **विशिष्टाद्वैत वेदान्त दर्शन** – भगवान् शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य प्रणीत ।

३. **द्वैत वेदान्त दर्शन** – भगवान् वाय्वावतार श्रीमध्वाचार्य प्रणीत ।

४. **द्वैताद्वैत वेदान्त दर्शन** – भगवान् हंसावतार श्रीनिम्बार्काचार्य प्रणीत ।

५. **शुद्धाद्वैत वेदान्त दर्शन** – श्रीवेदव्यास मतानुवर्त्ति श्रीभगवन्मुखावतार श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रणीत ।

उपर्युक्त वेदान्त दर्शनों में प्रथम दर्शन केवलाद्वैत वेदान्त को छोड़कर अन्य चार वैष्णव वेदान्त (दर्शन) हैं । श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रकटित शुद्धाद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्म में शरीर शरीरि विभाग जीववत् नहीं माना गया है । किन्तु क्षराक्षरातीत, प्राकृतेतर सकल धर्मवान्, रसस्वरूप, मधुराधिपति, रासरसेश्वर, भगवान् श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण अङ्ग एवं लीला भी अङ्गी के समान ही मधुरिमा से विलसित है । अर्थात् पूर्ण है । कहा भी है– **''मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्''** । केवलाद्वैत में जहां द्वैत को सर्वथा मायिक मानते हुए जगत् को मिथ्या माना गया है तथा जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब माना गया है, अर्थात् जीव ही ब्रह्म है । **''ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैवनापरः''** ऐसा स्पष्ट निर्देश है । वहीं शुद्धाद्वैत में **''ब्रह्मसत्यं जगत्सत्यं अंशोजीवोहि नापरः''** ऐसा कहा गया है । अत: द्वैत मिथ्या नहीं है, अपितु भगवत्कृत परन्तु लीलार्थ गृहीत है । जगत्सत्य है और जीव को भगवद् अंश माना गया है । जैसा कि श्रुति स्मृति सूत्र भागवत में कहा गया है– **''स एकाकी न रमते द्वितीयमैच्छत्'' ''तदात्मानं स्वयमकुरुत'' ''एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय'' ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रत्ययन्ति अभिसंविशन्ति'' ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' ''सई क्षांचक्रे'' ''जन्माद्यस्ययतः शास्त्रयोनित्वाद्'' ''तत्तु समन्वयात्'' ''अंशोनानाव्यपदेशात्'' ''ममैवांशोजीवलोके'' ''अहं सर्वस्यजगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'' ''अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते'' ''मयिसर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव'' ''बीजं मां सर्व-भूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्''** इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट है कि यह समग्र चराचर भगवान् ब्रह्म

से ही उत्पन्न हुआ है और स्वयं ब्रह्म इसी चराचर में स्वेच्छा से रमण करता है। परन्तु अज्ञानी लोग उसे इस अलौकिक स्वरूप में देख नहीं सकते।

''उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुन्जानं वा गुणान्वितम्
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः''

अतः बिना भगवत्कृपा के भगवत्स्वरूप लीला का ज्ञान नहीं होता। अतः पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों का ज्ञान भी भगवत्कृपा से ही सम्भव हो सकता है। अतः तर्क बुद्धि को छोड़कर श्रुत्युक्त अर्थ का प्रतिपादन जगज्जीवादि का विवेचन हम आगे करेंगे।

जगत्स्वरूप

शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद में जगत् को भी ब्रह्म का ही सदंश माना गया है। **''प्रपंचो भगवत्कार्यः''** जो प्रपंच है, वह भी भगवत्कार्य है। जगत् और संसार दोनों भिन्न हैं। श्रुतिस्मृत्यादि शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि यह दृश्यमान प्रापंचिक जगद् परमात्मा है। यह ब्रह्म ही भूत, वर्तमान, भविष्य और जगत् है। यह जगत् आदि, मध्य और अन्त में ब्रह्म में ही रहता है। **''सहैतावानास''** वह ब्रह्म ऐसा ही है। **''नैषा तर्केण मतिरापनेया'' ''तर्काप्रतिष्ठानात्''** इस विषय में तर्क नहीं करना चाहिये, परन्तु जैसा श्रुति कहे उसे उसी रूप में स्वीकार करना चाहिये और श्रुति स्पष्ट यही कहती है। **''इदं सर्वं यदयमात्मा पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्'' ''त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्वन्त आसीदिदमात्मतंत्रे, त्वमादिरन्तोजगतोस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात्''** (श्रीभाग०)।

वेदों में स्पष्ट उल्लेख है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्म के सिवा कुछ भी नहीं था। **''सदेव सौम्येदमग्र-आसीत्''** अतः स्वतः यही सिद्ध होता है कि जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही है। जो कार्य के पूर्व हो और कार्योत्पत्ति में जिसकी अपेक्षा हो वही कारण होता है। **''कार्यनियत पूर्ववृत्ति कारणम्''** अतः ब्रह्मवाद में जगत् भगवत्कार्य है, सत्य है और नित्य है। इसीलिए निबन्ध प्रकाश में श्रीवल्लभाचार्यचरण स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि **''अयं प्रपंचो न प्राकृतः नापि परमाणु जन्यः। नापि विवर्तात्मा। नाप्यदृष्टादिद्वारा-जातः। नाप्यसतः सत्तारूपः। किन्तु भगवत्कार्यः परमकाष्ठापन्न वस्तु कृतिसाध्यः।''** यहां पर प्रश्न होता है कि श्रीभागवत एकादश स्कन्ध में जो कहा है कि **''एष संसारतरुः यहां से प्रारम्भ करके मायामयवेदेति''** यहां तक में स्पष्टतः इस सबको मायिक बताया है। यहां पर श्री पुरुषोत्तमचरण आज्ञा करते हैं कि **''ईदृशवाक्येषु शिलष्टप्रयोगेण तयोर्भेदाज्ञानात् संसारमिथ्यात्वं श्रुत्वा प्रपंचमपि मिथ्या जानन्ति''** शास्त्रों में उक्त ऐसे वाक्यों में शिलष्ट प्रयोग होने से तथा संसार और जगत् के भेद का अज्ञान होने से संसार के मिथ्यात्व को सुनकर व्यक्ति प्रपञ्च (जगत्) को भी मिथ्या समझने लगता है। वस्तुतः इस भागवत वाक्य के द्वारा जगत् और संसार का भेद बताया गया है। जगत् भगवत्कार्य है और संसार मायिक है। कहने का तात्पर्य यह कि ब्रह्मवाद में ब्रह्म ही ब्रह्म है। यहां तक कि जो माया है, वह भी भगवान् की ही परिचारिका भगवच्छक्ति है। जगत् की उत्पत्ति विनाश हम केवल अनुभव करते हैं, वह है नहीं। वस्तुतः वह उत्पत्ति नाश न होकर आविर्भाव-तिरोभाव है। जैसा कि कहा भी है-

तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्।
आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्॥

(श्री विष्णुपुराण)

अर्थात् समग्र जगत् माया सम्बन्ध से रहित ब्रह्म ही है – **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** – ब्रह्म ही अपनी इच्छा से जगत्कार्य रूप में अविकृत परिणाम को प्राप्त होता है एवं पुनः अपनी ही इच्छा से इस सबको अपने में लय कर लेता है। यही उत्पत्ति – विनाश है अर्थात् आविर्भाव तिरोभाव है। कारण कि जो है उसका अभाव नहीं होता और जो नहीं है, उसका भाव नहीं होता।

''नासतो विद्यते भावो नाभावोविद्यते सतः।''

(श्रीमद्भगवद्गीता)

आविर्भाव तिरोभाव भगवान् की दो शक्तियां हैं। **''अनुभव विषयत्व योग्यता आविर्भावः तदविषयत्व योग्यता तिरोभावः ते च वस्तुसत्वेनैवावच्छिद्येते, न ह्यलीके ते सम्भवतः तयोर्धर्मत्वेन निराश्रयत्वासम्भवात्''** तथाच – **''आविर्भाव तिरोभावौ शक्तिर्वेमुरवैरिणः''** (श्री वल्लभाचार्यः) ये दोनों शक्तियां ब्रह्म से अभिन्न हैं और ब्रह्म के अधीन भी हैं। **''आत्मत आविर्भाव तिरोभावावात्मोऽभिन्नम्रित्यादि''** छान्दोग्य श्रुतिः। इस तरह जगत् तो भगवत्कार्य सत्य हैं, यह निर्विवाद सिद्ध होता है। अब जहां तक संसार का प्रश्न है, उसके लिए शास्त्रों में स्पष्ट है–

ऋतेऽर्थंयत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥

(भा० स्क० २, अ० ९)

इस श्लोक का अर्थ भगवान् श्रीवल्लभाचार्य सुबोधिनी में करते हैं–

''यद्वस्तुस्वरूपे अन्यथा प्रतिभासते तदात्मनो जीवानां व्यामोहिकामाया पूर्वं निरूपिता तस्याः कार्यं सा हि जीवं व्यामोहयित्वा तत्सम्बन्धिनमन्तःकरणबुद्ध्यादिकमपि व्यामोहयति तया व्यामोहिता बुद्धिः पदार्थानन्यथा मन्यते नतु पदार्थां अन्यथा भवन्ति।''

तात्पर्य यही कि जगत् पदार्थ असत्य नहीं है परन्तु भगवच्छक्ति माया दो प्रकार की होती है– व्यामोहिका एवं आच्छादिका। व्यामोहिका जीव का व्यामोहन करती है और आच्छादिका सद्वस्तु पदार्थ का आच्छादन करती है, अतः हमको सत् पदार्थ भी असत् मालूम होते हैं। शुद्धाद्वैत ब्रह्मवांद में विषय स्वयं भगवान् हैं और विषयता मायाजन्य भ्रान्त ज्ञान है। विषय जन्य पदार्थ सत्य हैं और विषयता जन्य भासित पदार्थ असत्य हैं अर्थात् जगत् सत्य है और संसार असत्य है।

जीवस्वरूप

केवलाद्वैतवादियों में जीव के सम्बन्ध में विविध मत प्रचलित हैं। अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही जीव है। माया में प्रतिबिम्ब जीव है। अध्यास मात्र जीव है। वस्तुतः इनके मत से जीव बुद्ध्युपाधि परिकल्पित स्वरूप के सिवा और कुछ भी नहीं है अर्थात् ब्रह्म ही अविद्यावच्छिन्न होने से जीव कहा जाता है। जीव कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि पदार्थ तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त ब्रह्म ही है। **''परमार्थतस्तु न जीवो नाम। बुद्ध्युपाधिसंबंधपरिकल्पितस्वरूपव्यतिरेकेणास्ति। नहि नित्यमुक्तस्वरूपात्सर्वज्ञादीश्वरादन्यश्चेतनो धातुर्द्वितीयो वेदान्तार्थ निरूपणायामुपलभ्यते।''** (शा०भा० २/३/ ३१)

केवलाद्वैतवाद में वैसे देखा जाय तो ईश्वर भी जीवकोटि में ही आता है।

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥"

कारणोपाध्यवछिन्न जगत्कारण ईश्वर है और कार्योपाध्यवच्छिन्न जीव है। ऐसा व्यवहार होता है। वस्तुतः कुछ भी नहीं है। परन्तु मायावादियों का यह कथन केवल बुद्धिवाद मात्र है। जबकि वेदान्त वेदप्रमाण से चलता है। बुद्धि परिकल्पित तर्क पर नहीं। "नैषातर्केणमतिरापनेया" "तर्काप्रतिष्ठानात्" वेदान्त में सर्वथा तर्क को निषिद्ध किया गया है और जहां युक्ति की आवश्यकता होती है, वहाँ शास्त्र स्वयं युक्ति दे देते हैं। अतः वैदिकीयुक्ति ही यहां पर प्रमाण होती है बौद्धिक युक्ति नहीं। ब्रह्म को जैसा शास्त्रों ने कहा है, उसे वैसा ही मानना है। उसकी अन्यथा परिकल्पना करना जघन्य अपराध है।

योन्यथासन्तमात्मानमन्यथाप्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥

यद्यपि जीव में कहा गया संसार मिथ्या अवश्य है, परन्तु उसी की आड़ लेकर जीव को ही कल्पित बता देना युक्ति कौशल मात्र नहीं तो और क्या है। अब यहां पर प्रश्न यह होता है कि जीव आभास, प्रतिबिम्ब, औपाधिक आदि कुछ भी नहीं है तो फिर ब्रह्मवाद में जीव का स्वरूप क्या है ? यहां पर श्रीवल्लभाचार्य चरण आज्ञा करते हैं कि जीव है वह ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म के साथ जीव का अंशाशी भाव सम्बन्ध है। "यथाग्ने क्षुद्राविस्फुलिंगा व्युच्चरन्ति" "अंशो नाना व्यपदेशात्" "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" और अंश होने से जीव अणु परिमाण है। "एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो, यस्मिन्प्राणः पंचधा संविवेश" "बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च भागोजीवः स विज्ञेय" और इन्हीं प्रमाणों के आधार पर आचार्य चरण भी निबन्ध में स्पष्ट आज्ञा करते हैं कि-

जीवस्त्वाराग्रमात्रो हि गन्धवद्व्यतिरेकवान्
व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्वेन युज्यते ।

इसी कारिका के प्रकाश में आप और भी स्पष्ट करते हैं कि "भगवदावेशे भगवद्धर्मा व्यापकत्वादयः श्रूयन्ते। न तु जीवो व्यापकः।" अग्रे - "तथा जीवस्याप्यानन्दाशंश्चेदभिव्यक्तस्तदातस्मिन् ब्रह्माण्ड कोटयो भवन्ति।" तथाचाग्रे - "अलौकिकेषु धर्मेषु प्रमाणमेवानुसर्तव्यं न तु लौकिकी युक्तिः। अतो व्यापकत्वेऽपि नाराग्रमात्रत्वं दोषाय।"

अतः जीव भगवदंश एवं अणुपरिमाण ही है। भगवान् सर्वज्ञ हैं, जीव अल्पज्ञ है। परन्तु जब भगवान् निजानुग्रहपूर्वक इस तिरोहितानन्द जीव को आनन्द प्रदान करते हैं तब प्रज्वलित काष्ठवत् जीव भी अनलात्मा हो जाता है, ब्रह्मात्मक हो जाता है। परब्रह्म भगवान् तो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनके सदंश से जगत् की रचना है। चिदंश से चित् जीव की रचना है और जब इन दोनों अंशों में प्रभुकृपापूर्वक आनन्दांश का आविर्भाव करते हैं तो दोनों में ब्रह्मधर्मों का दर्शन होने लगता है। इस तरह जीव ब्रह्म का एक छोटा सा अंश है जैसे अग्नि में से चिनगारी निकलती है, वह अग्नि का अंश होते हुए भी स्वयं अखण्ड अग्नि नहीं है, अग्नि स्वयं तो अखण्ड एवं पूर्ण ही रहती है। उसी तरह जीव ब्रह्म का अंश होते हुए भी ब्रह्म स्वयं तो अखण्ड एवं पूर्ण ही है। इस जीव के उत्पत्ति और नाश में ऐसी ही विलक्षणता है। जैसे चिनगारी निकलती है कुछ देर उसी रूप में रहती है, फिर पुनः अपने अंशी अग्नितत्व में लय को प्राप्त हो जाती है। परन्तु व्यवहार में हम यह कहते हैं कि चिनगारी बुझ

गई। यहां पर ध्यान रहे कोई भी तत्व (एनर्जी) कभी नष्ट (वेस्ट) नहीं होती। केवल उसका अनुभव (दर्शन) अविर्भाव है और अननुभव (अदर्शन) तिरोभाव है। इसी प्रकार जीव भी ब्रह्म का एक अंश है, जो चिनगारी की तरह ब्रह्म से ही आविर्भूत होता है और पुन: अपने अंशी ब्रह्म में ही तिरोभूत (लय) हो जाता है। अब विचारिये कि इस वेदादि शास्त्रोक्त प्रक्रिया में कहां पर आरोपित तथा मायिक (मिथ्या) द्वैत आता है। आग से निकली हुई चिनगारी भी अग्नि ही है, यदि वस्त्र पर पड़ेगी तो जलायेगी, चाहे वह छोटी ही क्यों न हो, है तो अग्नि ही। इसी प्रकार सत् चित् भी ब्रह्म के कार्य एवं अंश हैं। अत: इस श्रोतप्रक्रिया के आधार पर ही भगवान् वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत ब्रह्मबाद निर्गुणपुष्टिभक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया।

साकारं ब्रह्म शुद्धं हि मायातच्छक्तिरुत्तमा।
तया सर्वत्र सम्मोहः साक्षाद्भक्तिश्च मोचिका॥

(श्रीवल्लभाचार्य)

अविकृत परिणाम

परिणाम दो प्रकार के होते हैं। प्रथम तो यह होता है जो परिणाम की दशा में अपने मूलस्वरूप से हट जाता है एवं पुन: अपने मूलस्वरूप को प्राप्त भी नहीं कर सकता। जैसे दुग्ध का परिणाम दही होता है। दुग्ध जब एक बार दही हो जाता है तो पुन: दुग्ध नहीं हो सकता एवं उस दुग्ध के माधुर्यादि गुण दही में प्रकट नहीं होते। यह तो हुआ विकृत परिणाम। दूसरा वह होता है जो परिणाम की दशा में भी अपने मूलस्वरूप गुण को नहीं छोड़ता। केवल रूप नाम से ही परिणमित होता है, मूलस्वरूप से नहीं। जैसे स्वर्ण में से कटक कुण्डलादि का निर्माण होना। इस प्रक्रिया में कारण भूत स्वर्ण के मूलस्वरूप में कोई विकार नहीं आता किन्तु उसे केवल नामरूप अलग मिल जाते हैं। परन्तु जब भी उन कटक कुण्डलादि को अग्नि संयोग से गला दिया जाता है तो वे पुन: अपने मूलस्वरूप में आ जाते हैं। इसे कहते हैं– अविकृत परिणाम। इसी तरह ब्रह्म का जगत् परिणाम तो अवश्य है, परन्तु "**अविकृत**" कटक कुण्डलादिवत् है। ब्रह्म तो सदा सर्वदा निर्विकारी है।

विरुद्धधर्माश्रयत्व

एक की अनेकता और अनेक की एकता, यद्वा परस्पर प्रतियोगि धर्मों की एक कालावच्छेद से एकत्र स्थिति होना। ये एक ही वस्तु के द्रो विरुद्ध पहलू हैं। जिसे दार्शनिक भाषा में विरुद्धधर्माश्रयत्व या उभय-धर्मत्व भी कहते हैं। यथा – "**अणोरणीयान्महतो महीयान्**" "**तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तदन्तिके**" "**उभय व्यपदेशादहि कुण्डलवत्**"। इस प्रकार श्रुतिसूत्रादि को एक ही वस्तु में एक ही साथ दो विरुद्ध धर्म कहते हुए जब सुनते–देखते हैं तो स्वत: ही तर्काधिष्ठान –बुद्धि में तर्क उत्पन्न होता है कि एक ही वस्तु एक ही काल में एक कालावच्छेद से एक ही साथ दो विरुद्ध धर्मों से युक्त कैसे हो सकती है ? कदापि नहीं हो सकती। अत: इन विरूद्ध धर्मप्रतिपादन करने वाली श्रुतिस्मृत्यादि का विरोध परिहार करने के लिए कुछ वेदार्थानभिज्ञ दार्शनिक अपनी बौद्धिक युक्ति लगाकर श्रुतियों के दो भेद करते हैं। प्रबल श्रुति एवं निर्बल श्रुति। ब्रह्म को निर्धर्मक कूटस्थ अकर्ता अभोक्ता निराकार प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को प्रबल श्रुति कहते हैं और विरुद्ध धर्मयुक्त, साकार, कर्ता, भोक्ता प्रतिपादित करने वाली श्रुति को निर्बल कहते हैं। इस तरह प्रबल श्रुतियों द्वारा निर्बल श्रुतियों का निराकरण करते हैं। निर्बल श्रुतियां साधनावस्था की हैं। प्रबल श्रुतियों द्वारा प्रतिपादित उस अनिर्वचनीय ब्रह्म का ज्ञान करने के लिए इन निर्बल श्रुतियों का सहारा साधक को लेना पड़ता है –अरुन्धति

न्यायवत् । इस प्रकार स्वबुद्धिपरिकल्पित निराकार कूटस्थ ऐसे ब्रह्म के प्रतिपादन में उन प्रबल श्रुतियों का प्रमाण देकर निर्बल श्रुतियों का निराकरण करके ब्रह्म को निराकार कूटस्थ निष्कल निष्क्रिय सिद्ध करते हैं । श्रुतियों को ही परस्पर लड़ाकर स्वयं अपना परिकल्पत मत सिद्ध करते हैं जो सर्वथा वेदविरूद्ध है ॥ श्रीवल्लभाचार्य चरण ऐसा कदापि स्वीकार नहीं करते । आप तो स्पष्ट उद्घोष करते हैं कि भगवान् श्रुति ब्रह्म को जैसा भी कहे उसे वैसा ही अविकल स्वीकार करना है । भगवान वेद भगवन्निश्वास हैं और उनमें जो जैसा भी कहा गया है, वह सब समान रूप से प्रमाण है । जब हम किसी को प्रमाण स्वीकार कर लेते हैं तो फिर उसमें प्रबल निर्बल क्या होता है ? प्रमाण का स्वभाव ही अखण्ड होता है । यदि हम वेद में प्रबल निर्बल का कुचक्र चलायेंगे तो हमारा प्रमाण ही खण्डित हो जावेगा । **''प्रमाकरणं प्रमाणम्'' ''यथार्थानुभव प्रमा''** जिसको हमने प्रमाण स्वीकार किया तो उससे प्राप्त होनेवाला जो भी अर्थ है वह यथार्थानुभव ही है । उसमें कुछ यथार्थ और कुछ अयथार्थ नहीं होता और यदि ऐसा मानेंगे तो उसका प्रमात्व ही समाप्त हो जावेगा । अर्थात कुछ श्रुतियो को यदि हम अयथार्थ प्रतिपादन करनेवाली कहेंगे तो यथार्थ कहनेवाली श्रुति का भी प्रमात्व निषिद्ध हो जावेगा । अतः श्री आचार्यचरण ने सम्पूर्ण वेद का अवकिल प्रामाण्य ही स्वीकार किया है जिसका विवेचन हम निबन्ध के प्रारम्भ में कर चुके हैं । अतः भगवान् वेद यदि ब्रह्म को विरुद्ध धर्मवाला बताते हैं तो मानव को अपनी तुच्छ बुद्धि से उसमें दोष नहीं देखना चाहिये, अपितु श्रुति ब्रह्म को जैसा भी कहें उसे अक्षरशः वैसा ही स्वीकार करना चाहिये । कारण कि ब्रह्म अस्मदादिवत् नहीं है । वह तो सर्वसमर्थ है, उसमें सर्वभवन सामर्थ्य है । ब्रह्म में बताये गये विरुद्ध धर्म उसके दूषण रूप नहीं है बल्कि भूषण रूप है । **''ब्रह्मणः विरुद्ध धर्मत्वं भूषणाय भवति न तु दूषणाय ।''** (श्रीवल्लभाचार्याः)

जैसे कि उदाहरणार्थ – भगवान् शंकर ने समुद्र मन्थन से उद्भूत विष का जब पान किया तो वह नीलकण्ठ हुए । यदि यही विष कोई सामान्य मानव पीता तो उसकी मृत्यु हो जाती । तात्पर्य यही कि जो वस्तु सामान्य मानव के लिए दूषण रूप (मृत्युकारक) है, वही वस्तु भगवान् शंकर के लिए भूषण हो गई । विष भगवान् शंकर के श्रीकंठ का आभूषण होकर शोभित हुआ, जबकि अन्य का मृत्युरूप होकर महान् दूषण हो जाता । कहने का आशय यही कि श्रुत्युक्त असाधारण विरुद्ध धर्म जिसमें परिदृश्य मान हों, वही परब्रह्म है, ऐसा हमको समझना चाहिये । यही धर्म ब्रह्मत्व के द्योतक हैं । हमारे प्राचीन ऋषिमुनियों ने इन्हीं धर्मों से ब्रह्म का ज्ञान किया है । जैसाकि भागवत् में स्पष्ट है–

तोकेन जीवहरणंयदलूकिकायाः त्रैमासिकस्य च पदाशकटोपवृत्तः ।
यद्रिङ्गिगतान्तरगतेन दिविश्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्नभाव्यम् ॥

अर्थात् साधारण प्राकृत बालक विषयुक्त पूतना के स्तन्य का पान करके पूतना के प्राणहरण नहीं कर सकता । तीन मास की आयु वाला प्राकृत बालक अपने पादप्रहार से इतने बड़े शकट का नाश नहीं कर सकता । छोटा सा बालक रिंगण करता हुआ बड़े-बड़े अर्जुन के वृक्षों का उन्मूलन नहीं कर सकता । ये सब कार्य तो परब्रह्म भगवान् ही कर सकते हैं । तात्पर्य यही कि सामान्यतः छोटे बालक के स्वरूपानुकूल ही उसके सुकोमल हस्तपादादि भी होते हैं और उसमें बल भी उतना सा ही होता है और वे तद्बलानुसार ही कार्य प्रयोग भी करते हैं । परन्तु यहां तो उसी सुकोमल छोटे से सीमित बल वाले चरण से ही भारी भरकम शकट का भगवान् ने एक ही लात मे नाश कर दिया । इसी तरह पूतना एवं अर्जुन वृक्षों का उदाहरण समझना चाहिए । स्पश्ट है ऐसे असाधारण विरुद्ध धर्म परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के सिवा अन्य किसी में कदापि नहीं हो सकते ।

इसीलिए श्री वल्लभाचार्य चरण ने ब्रह्म स्वरूप का निरूपण इस तरह किया है –

निर्दोषपूर्णगुणविग्रहआत्मतन्त्रः निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः।
आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥

सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

सर्ववादानवसरं नाना वादानुरोधि तत्।
अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म कूटस्थं चलमेव च
विरूद्धसर्वधर्माणामाश्रयं युक्त्यगोचरम् ॥

अनन्तमूर्तितद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तिमत्।
बहूस्यां प्रजायेयेति वीक्षातस्य ह्यभूत् सती ॥

यज्ञरूपोहरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे।
अवतारी हरिः कृष्णः श्रीभागवत ईर्यते ॥

सूर्यादिरूपधृगब्रह्मकाण्डे ज्ञानांगमीर्यते।
पुरोणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपोहरिस्तथा ॥

भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्ध्यै तथापितु।
आदिमूर्तिः कृष्ण एव सेव्यः सायुज्यकाम्यया ॥

वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिंगं भागवते तथा।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानितिशब्द्यते ॥
त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयाऽत्रहि ॥

(शा० प्र० नि०)

प्राकृतधर्मानाश्रयमप्राकृतनिखिलधर्मरूपमिति।
निगमप्रतिपाद्यं यत्तच्छुद्धं साकृतिस्तौमि ॥

(श्रीविट्ठलेशचरणः)

अतः शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में ब्रह्म का स्वरूप अक्षरशः श्रुत्युक्त ही है। प्राकृत धर्महरित, सकल अप्राकृत धर्मयुक्त, आनन्दमय, आनन्दस्वरूप, निर्दोष-पूर्णगुणविग्रह, आत्मतन्त्र, आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिवान्, व्यापक, सर्वविरुद्धधर्माश्रय, नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभाव, सर्वकर्ता भोक्ता, सर्वकारणकारण, सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वात्मा, परब्रह्मपूर्णपुरुषोत्तम, नित्यलीलायुत, यशोदोत्संगलालित श्रीगोपीजनवल्लभ नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ऐसे ही हैं। ''**सहेतावानास**'' इति श्रुति।

माहात्म्यज्ञान

श्रुतिस्मृति सूत्र एवं पुराणादि शास्त्रों से प्रतिपादित शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के अनुसार सत् चित् और आनन्द के वास्तव स्वरूप को समझना ही माहात्म्यज्ञान है। यदि किसी एक के स्वरूप को समझने में कुछ भी कमी रहती है तो अवज्ञादि दोष उत्पन्न होते हैं। ''**अवज्ञानादि दोषाभावाय माहात्म्यम्**'' इत्याचार्याः। श्रुत्युक्त ब्रह्मवाद की सहज स्वीकृति ही माहात्म्यज्ञान है। ''**यथैकेन मृत्पिण्डेन सर्व मृण्मयं विज्ञातं भवति।**'' इस श्रुत्युनुसार

चराचर जगत् के साथ ब्रह्म के वास्तविक तादात्म्य की स्वीकृति ही माहात्म्यज्ञान है। परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम के दिव्य रूप, नाम, गुण एवं विविध लीलाओं को मायिक या उपासनार्थ परिकल्पित न मानकर भगवदिच्छित तथा भगवद्रचित मानना ही महात्म्यज्ञान है। भगवान् हमारे स्वामी अंशी हैं और हम सब उन्हीं के सेवक अंश हैं। इस भावना से हृदय को आलोकित करना ही माहात्म्यज्ञान है। **''सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः''** इस भावना से सर्वत्र भगवद्भाव की भावना करना ही माहात्म्यज्ञान है। **''पुरुषएवेदं सर्वंयद्भूतं यच्च भाव्यम्''** इन वेद वाक्यों में निष्ठा रखना ही माहात्म्यज्ञान है। **''हन्तते कथयिष्यामीत्यत आरभ्य एकांशेंन स्थितोजगदित्यन्तम्''** के अनुसार सर्वत्र भगवद्विभूतिरूपत्व का स्फुरण ही भगवन्माहात्म्य है। सार यही है कि सर्वत्र विरुद्धांश परित्यागपूर्वक सर्वत्र भगवत्स्वरूप का दर्शन करना ही माहात्म्यज्ञान है।

पुष्टिमार्गीयजीव

पुष्टि जीव गुणज्ञही होता है, दोषज्ञ सर्वथा नहीं। वस्तुतः पुष्टि जीव वही है जिसमें से दोषज्ञता ही समाप्त हो गई हो। कारण यह है कि ज्ञानमार्गीय जीव स्वयं को नित्य शुद्ध बुद्ध स्वभाव मानता हुआ इतर इदमा कारान्तर्गत समग्र जगत् को मायिक मिथ्या मानता है एवं प्रत्येक द्वितीय वस्तु में दोष देखता है। जबकि पुष्टि भक्तिमार्गीय जीव स्वयं को तुच्छ सेवक अल्पज्ञ, मूढ़, दोषनिधि, असमर्थ, मानकर **''मो सम कौन कुटिल खल कामी''** इसं प्रकार की दैन्यभावना करता हुआ अपने स्वामी भगवान् को सर्वसमर्थ एवं अपना सब कुछ मानकर सर्वभाव से **''सर्वंखल्विदं ब्रह्म''** के श्रुत्युक्त महाभाव से भावित होकर **''स एवाधस्तात्स एवोपरिष्टात्स पुरुस्तात्सपश्चात्''** इस श्रुति की उच्च भावना से सर्वत्र ब्रह्मभावपूर्वक समन्वय के महान् पथ पर अग्रसर होता है। पुष्टि भक्तिमार्ग में जिन जीवों की दृष्टि उत्तम नहीं है, उनका कोई भी स्थान नहीं है। श्रीभागवत में भी स्पष्ट कहा है **''जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्''** इस श्लोक की श्रीसुबोधिनीजी में स्पष्ट आज्ञा है। **''यासां पुनर्दृष्टि र्नोत्तमा, तास्तु नाकारिता एव''** अर्थात् जिन भक्तों (जीवों) की दृष्टि उत्तम नहीं थी, उनको भगवान् श्रीकृष्ण ने रासस्थल में नहीं बुलाया। कारण कि पुष्टिमार्ग में उत्तमदृष्टि होना अनिवार्य है। यहां पर दोषदृष्टि का सर्वथा अभाव होना नितान्त आवश्यक है।

अनुभूति

केवल ज्ञानी की अनुभूति में प्रपंच की निवृत्ति होती है। परन्तु पुष्टिभक्तिमार्गीय भक्त की अनुभूति में प्रपंच विस्मृतिपूर्वक भगवद् आसक्ति भी होती है। उक्त तारतम्य इस श्रुति से स्पष्ट होता है **''यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छुणोति''** इत्यादि से ज्ञानी केवल न पश्यति नान्यत् श्रृणोति तक जाकर ही रूक जाता है जबकि भक्त आगे बढ़कर आत्मादेश तक जाता है। **''आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मापुरस्तादित्यादि''** द्वारा सर्वात्मभाव को प्राप्त होकर **''आत्मानन्दः स स्वराड् भवति'' ''तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यतः एवं मन्वान'' ''आत्मतः प्राण आत्मतः आशा''** ततश्च **''तमसस्पारं दर्शयति''** इत्यादि क्रम से वह भक्त भगवत्स्वरूपात्मक हो जाता है। उसके अन्दर आनन्दांश का आविर्भाव प्रभु स्वयं करते हैं। इस प्रकार वह साक्षात् भगवद्दर्शन एवं भगवान् के साथ रमण करने के योग्य होता है। इस विषय को यहां पर हमने केवल दिङ्मात्र वर्णित किया है।

नैश्चिन्त्य एवं अभय

शुद्धाद्वैत के अनुसार परमात्मा परब्रह्म ही सर्व-समर्थ, कर्ता, भोक्ता हौने से एवं जीव का असामर्थ्ययुक्त

होने से स्वतः ही नैश्चिन्त्य प्राप्त हो जाता है । सेव्य, सेवक वा स्वामी सेवक भाव की स्वीकृति पुष्टिमार्ग में होने से सेवक का तो इतना ही कर्तव्य होता है कि जो भी प्रभु स्वामी आज्ञा करे उसका पूर्ण निष्ठा एवं लगन-पूर्वक पालन करना । **''आज्ञैवकार्या सततं, सेवकस्य तु धर्मोऽयम्''** । उस आज्ञा के औचित्यानौचित्य एवं उसके भावी परिणाम का विचार दास धर्म नहीं है । इस प्रणाली से चलने पर स्वतः ही नैश्चिन्त्य प्राप्त हो जाता है, जैसा कि स्पष्ट है–

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति ।
भगवानपि पुष्टिस्थः न करिष्यति लौकिकीं च गतिम् ॥

प्रभु कभी भी जीव का अकल्याण नहीं करते, कारण वो तो स्वयं मंगलस्वरूप हैं । **''मंगलरूप निधान सांवरो''** यह भाव जब हृदय में स्थित हो जाता है, नैश्चिन्त्य स्वतः प्राप्त हो जाता है ।

यदुक्तं तातचरणै श्रीकृष्णः शरणं मम ।
तत एवास्ति नैश्चिन्त्यमैहिके पारलौकिके ॥

अतः अष्टाक्षर महामन्त्र से ही नैश्चिन्त्य की प्राप्ति हो जाती है । अब अभय का जहां तक प्रश्न है तो वस्तुतः भगवद् अतिरिक्त यदि कुछ है ही नहीं तो भय का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । भय तो द्वितीय से होता है । परन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त **''द्वितीयाद्वैभयं भवति''** इतना सा अधूरा वचन सुनकर **''केवल ज्ञानी''** की तरह अकस्मात् भयभीत नहीं हो जाता है अपितु **''सवै नैवरेमें'' ''स एकाकी न रमते'' ''सद्वितीयमैच्छत् सोकामयत द्वितीयो में आत्माजायेत'' ''सआत्मानं स्वयमकुरुत'' ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** इत्यादि श्रुतिवाक्यों को धैर्यपूर्वक सप्रकरण श्रीभगवत्कृपाबल से सुन समझकर माहात्म्य ज्ञानपूर्वक अपने सहज स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण में विशुद्ध स्नेह स्थापित करता हुआ उन्हीं के चरणों में स्थित होता है और भगवच्चरणारविन्द में भय का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता–

तावद् भयं द्रविणगेहसुदृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुक्षश्च क्षोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्त्तिमूर्क्षं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत क्षोमः ॥

कहने का तात्पर्य यही कि सर्वत्र भगवद्भाव होने पर भय का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता । कोई वस्तु जब विपरीत स्वभाव की द्वितीय उपस्थित होती है तो भय होता है, परन्तु यहां पर तो सर्वत्र भगवत्कार्य, अंश वा स्वरूपात्मक होने से भय की सत्ता ही नहीं है ।

तथ्य यही है कि शुद्धपुष्टि प्रपत्ति में कर्मज्ञान की अपेक्षा नहीं होती है । यहां तो भक्त की मानसिक दशा वह होती है जिसमें वह सर्वत्र भगवद्भावपूर्वक भगवान् को छोड़कर किसी भी अन्य को अपना आश्रय नहीं मानता । वह अनन्याश्रयी होता है । **''अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनापर्युपासते''** और भगवच्चरणारविन्द में अपना सर्वात्मना समर्पण के अतिरिक्त न तो कुछ जानता है, न कुछ चाहता है । **''सर्वं समर्पित भक्त्या कृतार्थोसि ।'' ''पुष्टिमार्गे''** अर्थात् पुष्टिमार्ग में **भगवत्स्वरूपातिरिक्त फलाभाव-वत्वम्** भगवत्स्वरूप से अतिरिक्त फल का सर्वथा अभाव ही है ।

न नाक पृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥

(श्रीमद्भागवत)

भगवान् के सिवा किसी भी वस्तु की कामना पुष्टिभक्त नहीं करता। स्वर्ग से लेकर मोक्ष तक को भी वह नहीं चाहता। अरे मोक्ष तो उसके लिए फल्गु है। **"श्रीमुकुन्दसेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः"**। **तदप्राप्तोवृथा मोक्षः तदासौतद्‌गतार्थता**। श्रीविट्ठलेशप्रभुचरण भी सर्वोत्तम में यही स्पष्ट आज्ञा करते हैं।

कुल मिलाकर हम तो यही कहेंगे कि ज्ञानी का जो अन्तिम सोपान होता है, वहीं से भक्त का प्रथम सोपान प्रारम्भ होता है। जब प्रभु कृपा करते हैं, तभी उनकी शरणागति प्राप्त होती है। उनके स्वरूप का भान होता है और भगवत्प्राप्ति होती है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः नमेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवेष वृणुते तेन लभ्यः तस्येष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥

(कठो०)

श्रीमधुसूदनसरस्वती जैसे अद्वैत के प्रकाण्ड विद्वान् भी अन्तिम समय में भक्ति में आ गये। वो तो स्पष्ट कहते हैं–

अद्वैत वीथी पथिकैरूपास्या: स्वानन्दसिंहासनलब्धदीक्षा।
हठेन केनापि वयं शठेन दासीकृता गोपवधूविटेन ॥

अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" के अद्वैत पथ का पथिक, जो कि अपने को ही ब्रह्म मानता हुआ आनन्द के सिंहासन पर विराजमान मैं किसी गोपियों के रसिक शठ-छलिया के द्वारा हठात् बल पूर्वक दासभाव को प्राप्त करा दिया गया। श्रीमधुसूदन सरस्वती भी जब अपने अन्तिम समय में वृन्दावन गये तो वहां पर जाकर उनके अन्दर **"सहजभाव, गोपीभाव"** प्रस्फुटित हो गया और वे भी श्रीकृष्ण के प्रेम में विह्वल हो उठे....... एवं उनके हृदय से सहज ही विस्फुरित हो गया वह श्लोक–

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदैव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं कालिन्दी पुलिनोदरे किमपि यन्नीलमहोधावति ॥

ध्यान का अभ्यास करते हुए अपने वशीकृत मन से यदि योगियों को वह निर्गुण, निष्क्रिय पर ज्योति यदि कोई दिखती है, तो वे देखें, परन्तु हमारे नेत्रों को तो यमुना के तट पर विहार करने वाले वे श्यामसुन्दर (श्रीकृष्ण) बहुत काल तक आनन्द कराते रहें।

इसलिए शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद निर्गुण पुष्टि भक्तिमार्ग का ध्येय, ज्ञेय, प्रेय, सेव्य, श्रेय जो कुछ भी कहें सब कुछ बस वही एकमात्र भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम पर ब्रह्म सर्वाप्राकृतधर्मवान् विरुद्धधर्माश्रय, सर्वकारण कारण, कर्ताभोक्ता, सर्वसमर्थ नित्यशुद्ध शरणागतवत्सल, श्रीगोपीजनवल्लभ, रासरसेश्वर आनन्दकन्द सच्चिदानन्द स्वरूप, रसस्वरूप, साकार, यशोदोत्संगलालित भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। **"मम सर्व ही भगवानहं भगवतः पुनः"** बस यही सर्वोत्तम भाव पुष्टिभाव है।

जानीत परमं तत्वं यशोदोत्संगलालितम्
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरास्तानऽहो बुधाः ॥

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ जयतः ॥

श्रीमदाचार्यचरित्र

(श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की जयन्ति के उपलक्ष्य में श्रीगोपालमन्दिर में गोस्वामी श्री १०८ गिरिधरलालजी महाराज के सभापतित्त्व में शास्त्री माधवजी खीमजी (भूतपूर्व सम्पादक भारतमार्तण्ड) ने दिया हुआ व्याख्यान)

विक्रम संवत् १९६८

। श्रीवल्लभो विजयते ।

श्रीमद्वल्लभदेववर्य्यचरणाः पाखण्डदीर्घाटवींषण्डोद्दीप्तसुचण्डदावदहनावादीभपञ्चाननाः ।
मायावादविचारगाढतमसश्चण्डाशवः स्वीयहृत्तापध्वंसविधौ कलानिधिवरा दीव्यन्ति सर्वोपरि ॥

चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः ।
स्वीयानां तान्निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ॥

श्रीमान् पूज्यपाद सभापतिजी महाराज एवं उपस्थित वैष्णववृन्द! आज अत्यन्त हर्ष, सन्तोष और आनन्द की बात है कि आप हम समस्त श्रीमदाचार्यवर्य्य की जयंती के उपलक्ष्य में उनके यश, चरित्र एवं सिद्धान्तों का स्मरण करने के निमित्त इस पुनीतस्थान में एकत्रित हुए हैं । इस संसार के नश्वर प्रपञ्चों में हमलोग सदैव फँसे रहते हैं । इन व्यावहारिक कार्यों को छोड़कर अपने परमार्थ के निमित्त यदि हम स्वल्प भी समय व्यतीत करें तो वही समय वस्तुतः हमारे लिये सुखकर, हितकर एवं कल्याणकारी है । यद्यपि हम संसारी लोग संसार के कार्यों में सदैव लगे रहते हैं, किन्तु शुभ समय उत्सवव्रतादि के उपलक्ष्य में उन प्रापञ्चिक कार्यों से निवृत्ति प्राप्त कर पारलौकिक साधन में प्रवृत्त होते हैं तो यह भी हमारे लिये बहुत ही हित की बात है । अपने लोगों में जो जयंती का त्यौहार मनाया जाता है वह वास्तव में बहुत ही उत्तम है । जयंती का प्रधान उद्देश्य यही है कि उस दिन उस जयंती के नायक के गुणों का स्मरण कर अपनी इन्द्रियों को पवित्र बनावें, इतना ही नहीं, किन्तु उनके चरित्रों में से जो चरित्र हमारे लिये आदर्श रूप हों उनका स्वयं भी आचरण करें । भगवान् एवं महात्माओं के जन्म प्रायः इसीलिये होते हैं कि साधारण जीव उनके चरित्रों का गानकर अपनी इन्द्रियों को पवित्र बनावें तथा उनके सदाचरणो का अनुकरण कर स्वयं सदाचरणी बनें । भाग्यवान् वैष्णवों! श्रीमत्पुरुषोत्तमास्य, श्रीमदग्रिकुमार के यावत् चरित्र हमारे लिये आदर्शरूप हैं । आपके आविर्भाव से तिरोभाव पर्यन्त के चरित्रों की गवेषणा करने से यही स्पष्ट होता है कि आप उत्कृष्टोत्कृष्ट गुणों की प्रतिमा स्वरूप थे । आपके समस्त चरित्र मनुष्य के लिये आदर्श ही नहीं, किन्तु माननीय, श्लाघनीय एवं पूजनीय हैं । आज आपकी ही जयंती के उपलक्ष्य में हम लोगों का समागम हुआ है इसलिये आपके चरित्रों का तथा आपके विचारों का स्मरण कर हम लोग अपने कर्ण, जिह्वा, मन, बुद्धि एवं आत्मा तथा आसपास के समस्त परमाणुओं को पवित्र बनावें, आपके पवित्र नामस्मरण द्वारा आज राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ मोहादि विकट शत्रुओं को दूर हटाकर सांसारिक प्रपञ्च एवं 'अहं' ममत्त्व को भूलकर आपके पवित्र नाम मन्त्र से परमानन्द प्राप्त करें और सब मिलकर बड़े प्रेम के साथ बोलो श्रीगोवर्द्धननाथ की जय! बोलो श्रीवल्लभाधीश की जय!!

प्रियवैष्णववृन्द! प्राय: वेदान्तशास्त्र के प्रवर्त्तक समस्त आचार्य दक्षिण देश में ही प्रकट हुए हैं! श्रीमद्-वल्लभाचार्य्यजी भी दक्षिण देश में ही प्रकट हुए हैं। आपका मूल गांव "कुंभकोण" था। विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य श्री गोविन्दाचार्यनुगृहीत श्री वल्लभदीक्षित आचार्य हुए, वे सोमयाजी थे, उनके पुत्र यज्ञनारायणदीक्षित के सोमयज्ञ से प्रसन्न हो पूर्ण-पुरुषोत्तम ने स्वयं प्रकट होकर स्वेच्छा से वर प्रदान किया कि "हम तुम्हारे शुद्ध कुल में प्रकट हो शुद्ध वैदिकमार्ग प्रकट करेंगे" तदनुसार आप उस वंश में एकशत सोमयज्ञ पूर्ण होने से लक्ष्मण भट्टजी द्वारा वि० सं० १५३५ में वैशाखकृष्ण ११ को प्रकट हुए! आपने बाल्यावस्था में ही अनेक ग्रन्थों का अवलोकन कर लिया। वाक्पति के लिए बाल्यावस्था में ग्रन्थावलोकन कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब साधारण बालक मास्टर मदन, आज ५ वर्ष की अवस्था में ऊँचे दर्जे के गायकों में गिना जाता है तो आपका बाल्यावस्था में स्वीय विद्या का अवलोकन कर लेना क्या आश्चर्यजनक है?

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के पिता लक्ष्मणभट्टजी इसी काशीपुरी के हनुमानघाट पर रहते थे। आपने अपनी एकादश वर्ष की अवस्था में ही वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन एवं अन्यान्य उपयोगी ग्रन्थों का अध्ययन-अवलोकन कर लिया। आपने समस्त ग्रन्थों को देखकर वेद, व्याससूत्र, गीता एवं भागवत इन चार ग्रन्थों को प्रधानतया प्रमाणरूप से स्वीकार किया। आपने उक्त प्रमाणों द्वारा निश्चित किये शुद्धाद्वैत सिद्धान्त-ब्रह्मवाद और निर्गुणभक्ति का उपदेश करना शुरू कर दिया। आप बाल्यावस्था से ही काशी की सभाओं में लक्ष्मणभट्टजी के साथ जाया करते थे और उनकी अनुपस्थिति में आप अकेले भी पधारते थे। और वहां पर यथावसर अपने सिद्धान्तों का समर्थन कर जयसम्पादन भी करते थे। वयोवृद्ध विद्वानों को परास्त करने के कारण लक्ष्मणभट्टजी के पास शिकायतें भी आतीं थीं, श्रीमदाचार्य्यचरण आजीविका प्रतिष्ठा इत्यादि के लिये शास्त्रार्थ नहीं करते थे किन्तु वैदिकसिद्धान्त जो कि आधुनिक वादों के कारण लुप्तप्राय हो गया था उसी की पुन: स्थापना के लिये शास्त्रार्थ करते थे। पिता के दाब के कारण भी आपने अपने आशय को प्रकट करना कभी भी छोड़ा नहीं, तथापि इस विषय में अधिक आन्दोलन करने नहीं पाते थे। लक्ष्मणभट्टजी के वैकुण्ठगमन के पश्चात् आपने इस विषय में अधिक आन्दोलन शुरू कर दिया। आप सदैव इसी शुभानुष्ठान में लगे रहते थे। जिस समय देखो उस समय आपके पास अनेक अन्यमतवादी विद्वान् शास्त्रार्थ करने को उपस्थित ही रहते थे। जब आपको नित्यकर्म, सेवा आदि में भी बाधायें आने लगीं तब आपने अपने सिद्धान्तों को एक पत्र में लिखकर विश्वनाथजी के द्वार पर चिपका दिया और उसके निचे लिख दिया कि-

"स्थापितो ब्रह्मवादो हि सर्ववेदान्तगोचरः।
कस्यचित्त्वथ सन्देहः स मां पृच्छतु सर्वथा॥
न भयं तेन कर्तव्यं ब्राह्मणानामियं गतिः
डिण्डिस्तुवादितो द्वारि विश्वेशस्य मयोत्र हि।
विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षकाः॥"

आपने महाभारत में पढ़ा होगा कि महारथी-सत्यव्रती-पितामह भिष्म जिनका अपार सामर्थ्य था उनका और अर्जुन का घोर युद्ध हो रहा था। उस समय अर्जुन के अमोघ बाण भीष्मपिता को लगते थे तथापि वह डोकरा गिरता नहीं था, परन्तु जब सबके सब अङ्ग बाण से विंघ गये, उस समय उसी बाण की शैय्या करके गिर गये। यह हुई लोहे के बाण की बात, अब सुनिये वाग्बाण के बलकी बात; जब कि, श्रीमदाचार्यजी विद्वानों के एक-एक विषय की शङ्का का खण्डन करते थे जिससे वे अपने मत का पूर्णतया खण्डन हुआ नहीं मानते थे और

अपने वाद का भूमिपत्तन नहीं समझते थे, परन्तु जब समस्त शङ्काओं का समाधान एक पत्र में लिखकर विश्वनाथ के द्वार पर चिपका दिया गया उस समय उन्होंने ''मौनं सर्वार्थसाधनम्'' समझकर तदनुष्ठान किया। इसीको आप अन्यवाद रूप भीष्मपिता का भूमिपत्तन और ब्रह्मवाद-शुद्धाद्वैतवाद का विजय समझ लीजिये। इसीसे तो श्रीगुसाईंजी के परम कृपापात्र परम भगवद्भक्त वैष्णव गोपालदासजी वल्लभाख्यान में कहते हैं कि-

''पत्रावलम्बे पण्डित जीत्या मायिक मदमातङ्ग
श्रीकृष्ण पूरण ब्रह्म स्थाप्या जेना रूप कोटिअनङ्ग''

श्री मद्वल्लभाचार्य्यजी की काशी में विजय हुया उसी से आपने सन्तोष नहीं माना, आप काशी छोड़कर व्यङ्कटगिरि गये। वहां लक्ष्मणबालाजी के दर्शन कर कुछ काल तक वहां ही विराजे। वहां के पुस्तकालय का अवलोकन किया और खासकर भक्तिशास्त्रों का सूक्ष्मता के साथ अभ्यास किया। इतने में आपने सुना कि विद्यानगर के कृष्णदेवराजा ने धर्मसभा एकत्र की है जिसमें समस्तधर्मवालों को निमन्त्रित किया है और जिसकी शास्त्रार्थ द्वारा जय होगी उसीका स्वयं अनुयायी भी होना चाहते हैं। आप वहां पधारे और शास्त्रार्थ में जय सम्पादन किया। आपने वेदादि शास्त्रों के प्रमाण द्वारा ब्रह्मवाद-शुद्धा-द्वैतवाद का प्रतिपादनकिया। वहां पर उपस्थित समस्त सम्प्रदाय के आचार्यों ने आपकी विजय स्वीकार की और कृष्णदेव राजा समेत सभी पण्डितों ने आपको निम्न आचार्य की पदवी प्रदान की।

''श्रीवेदव्यासविष्णुस्वामिसम्प्रदायसमुद्धारसंभृतश्रीपुरुषोत्तमवदनावतारसर्वाम्नायसञ्चारवैष्णवाम्नाय-प्राचुर्यप्रकारश्रीबिल्वमङ्गलार्पितसम्राजासनाखण्ड-भूण्डलाचार्य वर्य्यजगद्गुरुमहाप्रभु श्रीमदाचार्यः''

और राजा कृष्णदेव शरणागत हुआ। राजाने कनकाभिषेक किया और बहुत भेंट धरी, किन्तु निरपेक्ष आचार्यचरण ने केवल श्रीठाकुरजी के लिये ७ मुद्रायें स्वीकार कर अन्य द्रव्य को बंटवा दिया। ध्यान दीजिये कि इससे अधिक निरपेक्षत्व क्या हो सकता है? इस समय आपकी अवस्था १४ वर्ष की थी। उस समय राजाने अपने धर्मों को जानने की इच्छा से विनन्ति की कि कृपानाथ! मुझे क्या करना चाहिये? उस समय आप आज्ञा करते हैं कि-

''दैवत्वेन गुरोरनुग्रहवशात् जाता प्रपत्तिर्यदा।
स्त्रक्पुण्ड्रादि विधारयेत् परजयन्त्येकादशीनां व्रतम्॥
धर्म भागवतं चरेत् हरिकथामाचार्यभक्तार्चनम्।
पापं तद्विमुखाननर्पितभुजिं चान्याश्रयं वर्जयेत्॥
आश्रित्याश्रमधर्ममत्रभवता स्थेयं प्रजारक्षता।
सेव्यः श्रीरमणः सदा हरिजनैः कार्याधिका सङ्गतिः॥
आजीव्यं विदुषां विधाय जगतां योज्याश्च ते शिक्षणे।
दीनानां दयया नयेन विनयैः कीर्तिर्विधेयाऽचला॥''

यद्यपि यह उपदेश राजाको किया गया है तथापि इस का प्रायः विशेषांश सब किसी के उपयोगी है।

तदनन्तर श्रीमदाचार्यचरण पृथ्वी परिक्रमा करने को पधारे। आपने कन्याकुमारी से हिमालय पर्यन्त तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण कर समस्त मतवादियों के साथ शास्त्रार्थ कर जय सम्पादन किया। उनमें से अनेक लोगों ने

आपके साथ बहुत ही सभ्य व्यवहार किया। श्रीमदाचार्यवर्य्यकी दिग्विजय किसी अन्य कारणों से नहीं थी, किन्तु यथार्थ वैदिक सिद्धान्त का प्रचार और भक्तिमार्ग के उपदेश के लिये ही थी। आपने यात्रा में अनेक दैवी जीवों को सनाथ किया, अनेक लोगों की आशङ्काओं का समाधान किया। अपने दुःखियों को दुःख से और पापियों को पापों से मुक्त किया। श्रीमदाचार्यचरण ने पांव से चलकर तीन बार भारतवर्ष की परिक्रमा की है। इस कार्य में आपको १८ वर्ष लगे थे। आपने २८ वर्ष की अवस्था में विवाह किया। आपने प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम का पालनकर अपने वंशजों और अनुयायीयों को उपदेश दिया कि, पूर्ण ब्रह्मचर्य के सिवाय गृहस्थाश्रम करना उचित नहीं है। आपने विवाह करने के पश्चात् भी अपने प्राकट्य के हेतु रूप कार्यों को छोड़ा नहीं। विवाह के पश्चात् भी सदैव धर्मोन्नति के कार्य में लगे रहते थे। आप सदैव शास्त्र चर्चा और भगवत्सेवा में मग्न रहते थे। आप प्रायः एकान्त स्थानों में रहकर ग्रन्थ प्रणयन किया करते थे। विशेषतः **अडेल और चरणाट** में रहना अधिक पसंद करते थे, इसके अतिरिक्त व्रज में भी विराजते थे। आपके चित्र कें दर्शन से आपकी सादगी का परिचय मिलता है। चरित्र ग्रन्थों में देखा जाता है कि श्रृंगार में धोती उपरणा के अतिरिक्त और कुछ भी धारण नहीं करते थे। आप ने भगवदाज्ञानुसार ब्रह्मसम्बन्ध द्वारा अनेक जीवों का उद्धार किया। अपने भावी सन्तान एवं शिष्यों के ऊपर कृपा करके अनेक शास्त्रीय गूढ़तत्त्वों को स्पष्ट समझाने के हेतु अनेक ग्रन्थ रचे। इस समय कुछ लोगों का आक्षेप है कि पुष्टिमार्ग में ज्ञान साहित्य नहीं है। किन्तु यह आक्षेप निर्मूल है। आचार्यचरण ने स्वयं अनेक ग्रन्थ रचे हैं। यदुनाथदिग्विजय में लिखा है कि–

''चतुरशीतिस्तद्ग्रन्थाश्चातुरशीति रासिकाः
चतुरशीतिस्तद्भक्ता आहुरार्यास्तु तत्कथाः''

''आपने चौरासी ग्रन्थ रचे हैं, आपकी चौरासी बैठके हैं, आपके चौरासी भक्त हैं। इतना ही नहीं किन्तु गद्यमंत्र के वर्णभी चौरासी ही हैं। सज्जनों! श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने चौरासी संख्या को इतना क्यों पसंद किया है? इसका विशेष कारण तो कोई भगवद्भक्त रसिक जन ही जान सकता है किन्तु मुझे तो इसका कारण यही मालूम होता है कि चौरासी लक्षयोनि के आवागमन से अपने आश्रितों को मुक्त करने की इच्छा से आपने इन चौरासीओं को प्रकट किया है। आचार्य श्रीमहाप्रभुजी के चौरासी वैष्णवों में से आप किसी वैष्णव के चरित्र को, उनकी वार्ता को पढ़िये तो उसमें से उपदेश मिल सकता है। आज समयाभाव से उस सम्बन्ध में कुछ कह नहीं सकता हूँ। आपके चौरासी ग्रन्थ भी वेदादि शास्त्रों के तत्वरूप एवं कल्याणकर उपदेशपूर्ण हैं।''

वैष्णवों! आपके हितार्थ आचार्यचरणने दो दो बार प्रभु आज्ञा का भङ्ग किया है। आप अन्तःकरण प्रबोध में लिखते हैं कि–

''आज्ञा पूर्वं तु या जाता गङ्गासागरसङ्गमे।
याऽपि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया॥
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः।
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा॥''

आपने आज्ञाभङ्ग करके भी हमलोगों पर उपकार किया है किन्तु यदि हम लोग आपके परिश्रमरूप ग्रन्थों का अवलोकन न करें तो हमलोगों का दुर्भाग्य है। आचार्यचरण ने अपने अवतार के हेतु रूप कार्यों को पूर्णकर स्वधाम पधारने की तैयारी की परन्तु आपको विचार हुआ कि जो वैदिक आश्रममर्यादा है उसका भी तो

अङ्गीकार करना चाहिये। इस विचार से आपने क्रमशः वानप्रस्थ एवं सन्यास के धर्मों को स्वीकार कर उन धर्मों को भी कृतार्थ किया। आचार्यश्री अडेल से काशी पधारे और हनुमानघाट पर निवास किया। हनुमानघाट पर सात दिन परमहंसाश्रम में रहने के पश्चात् कौपीन आच्छादन मात्र धारणकर जलमें प्रवेश करने को तैयार हुए। उस समय गोपीनाथजी प्रभृति ने आकर प्रार्थना की कि हम लोग क्या करें, तब आपका मौन व्रत था इसलिये खडीसे शिला पर लिख दिया। जिसको हम व्युईल किम्वा वसीयतनामा कहे। यदि इसी वसीयतनामे का हम हर समय ख्याल रखेगें तो हमको और कुछ कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रहेगा।

श्रीआचार्यवंशज एवं वैष्णववृन्द! यह वसीयतनामा यही है जिसको अपने लोग शिक्षाश्लोक कहते हैं–

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन।
तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोप्युत ॥ १ ॥

सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान्निति मतिर्मम।
न लौकिकः प्रभुः कृष्णो मनुते नैव लौकिकम् ॥ २ ॥

भावस्तत्राप्यस्मदीयः सर्वस्वं चैहिकश्च सः।
परलोकश्च तेनायं सर्वभावेन सर्वथा ॥ ३ ॥
सेव्यः सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि नः ॥ ३ ॥

आचार्य के इन श्लोकों के लिखने के पश्चात् श्री ठाकुरजी स्वयं प्रकट हुए और आपने भी स्पष्ट आज्ञा किया कि–

मयि चेदस्ति विश्वासः श्रीगोपीजनवल्लभे ॥ ४ ॥
तदा कृतार्था यूयं हि शोचनीयो न कर्हिचित्।
मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥

इस आज्ञा को श्रीगोपीनाथजी, श्रीविट्ठलनाथजी एवं वैष्णवों ने धारण कर लिया। और आचार्य महाप्रभुजी ने गङ्गाजी में प्रवेश किया और नाभिमात्र जल में नेत्र मूंद कर परमानन्दविग्रह पुरुषोत्तम का अपने से अभिन्न चिन्तन कर सम्वत् १५८७ के आषाढ शुक्ल ३ के दीन मध्याह्न के समय में ज्वालापुञ्ज मार्ग से व्यापिवैकुण्ठ में आचार्यश्री पधारे। उस समय आकाश में वाजिन्त्र बजने लगे और पुष्प बृष्टि हुई।

सज्जनो! आचार्य की इस आसुरव्यामोहलीला का स्मरण कर मोहको प्राप्त नहीं होना चाहिये। आपके व्यूइल जो शिक्षाश्लोक है उसका और आपके अन्य चार जो स्वरूप भूतलपर विराजमान है उसमें शाक्षात् आचार्यचरण ही की भावना कर उन स्वरूपों की सेवा एवं उनके यथार्थ उपयोग करने में तत्पर रहना चाहिये, वे चार स्वरूप निधि, पादुका, वंश, एवं ग्रन्थ है।

भक्तगण! आचार्यचरण ने जिस सिद्धान्त की स्थापना की है उसके **ब्रह्मवाद**, **आत्मनिवेदन** और **सेवा** ये तीन प्रधान अङ्ग है। इन तीनों अङ्गों के विषय में किसी अन्य समय में विस्तार पूर्वक निवेदन करूंगा। इस समय उसका सारांशमात्र कह कर अपने वक्तव्यको समाप्त करूंगा।

ब्रह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त के समझने से ब्रह्मके साथ अपना अशांशी सम्बन्ध है वह समझने में आता है । ब्रह्म पितारूप हैं और सब उनके अपने पुत्र, पुत्री रूप हैं, पृथ्वी में अन्यान्य प्राणी भी ब्रह्म के अंशरूप

हैं इससे वे अपने भ्रातृभगिनीरूप हैं। ऐसी भावना कर उन सबके ऊपर प्रीति रखने की है। प्राणी-मात्रतो क्या; पदार्थमात्र के उपर ब्रह्मभाव रखना ब्रह्मद्रष्टि रखनी यही शुद्धाद्वैतसिद्धान्त का परम मर्म है। जहां तक संसार के समस्त व्यवहारों का बंधारण इस शुद्धाद्वैत सिद्धान्तों के ऊपर रखा नहीं जायगा वहां तक एकता की आशा रखना व्यर्थ है। ''मनुष्य को आत्मा है और गौ को आत्मा नहीं है'' यह पाश्चत्यों का मत अशुद्ध है - असत्य है, वैसे ही जगत् मिथ्या है भ्रान्तिरूप है यह मत भी दोषग्रस्त है।

सम्पूर्ण जगत् सत्य हैं, ब्रह्म का कार्य है, ब्रह्मरूप है, यह वैदिक श्रौत सिद्धान्त है। इसी प्रकार के ज्ञान द्वारा मनुष्य प्राणी के साथ प्रेम कर सकते हैं। और प्राणिमात्र को ब्रह्म का अंश समझकर उनसे प्रेम करने पर वे भी अपने पर प्रेम स्थापन करेंगे, और आपस का रागद्वेष नष्ट हो जायगा। ब्रह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैतवाद का वारम्वार मनन करने से इस प्रकार का शुभ परिणाम होने की सम्भावना है। शुद्धाद्वैतवाद से ब्रह्ममहात्म्य का बोध होगा और सर्वतो निर्दोष पूर्णगुण प्रभु हैं; यह निश्चय होने के पश्चात् अंश को ब्रह्म का भजन करना आवश्यकीय है यह ज्ञान होते ही आत्म निवेदन - समपर्ण करने की उत्कट अभिलाषा प्राप्त होगी।

आत्मनिवेदन यही हमारा ब्रह्मसम्बन्धरूप महायज्ञ है। जीव यह भगवान का दास हैं। सहस्रों वर्षों से जो उनका वियोग हुआ है, उस विरहजन्यताप से तप्त प्राणी अपने तन, मन, धन, सहित सर्व समर्पण कर उनकी सेवा में लीन हो जाय। सेवा की भावना और सेवा का रहस्य मुख से कहने की बात नहीं है, वह स्वयं समझने की बात है। सेवाभावना के ग्रन्थों के अवलोकन करने से ही सेवा का तत्त्व और तज्जन्य आनन्द का यथार्थ अनुभव हो सकता है। पहिले के समय में हम वैष्णवों को सेवा में कैसी रुचि थी। आज वैसी क्वचित् ही देखने में आती हैं। इसका कारण केवल साम्प्रदायिक ग्रन्थों के अवलोकनका अभाव ही है। मेरा इस विषय में आक्षेप नहीं है; किन्तु अनेक घरों में आप देखिये, केवल स्त्रियां ही सेवा करती हैं। बाबूसाहेबों को सेवा में नहाने की फुरसत नहीं मिलती किम्वा आजकल के युवकों को तो शरम भी आती है। बहुत दुःखकी बात है कि, हम लोग कर्त्तव्यज्ञानशून्य होते जाते हैं। इनमें प्रधानकारण साम्प्रादायिक ग्रन्थों का अपरिज्ञान ही समझना चाहिये। आप अन्यान्य लोगों के ग्रन्थ और अखबारों को देखिये आपके ब्रह्मसम्बन्धमन्त्र पर कैसे कैसे आक्षेप हो रहे हैं। ब्रह्मसम्बन्ध का मन्त्र अवैदिक है, उस मन्त्र में दारादि गुसाईं जी को अर्पण करने को कहा गया है इत्यादि ?? शोक शोक महा शोक ?? क्या जिस मन्त्र को साक्षात् भगवान ने श्रीमहाप्रभुजी को प्रदान किया उस पर यह आक्षेप ? गद्यमन्त्र के सम्बन्ध में अधिक न समझ सको तो कोई हरज नहीं किन्तु अक्षरार्थ तो विचारो। विचार कौन करे अपने वैष्णवों में से सैकड़ों वैष्णव ऐसे मिलेंगे जिनको गद्य मन्त्र स्मरण भी नहीं हैं। केवल गद्यमन्त्र के लेने से ही सर्वदोषों की निवृत्ति होती है किन्तु भविष्यत् में दोष न होय इसके लिये ''**निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा ताद्रशैः जनैः**'' इस आज्ञा का भी तो विचार कीजिये। मैं आप वैष्णवबन्धुओं से विनन्ति करता हूं कि आप कम में कम श्रीगद्यमन्त्र और उनकी भावना को तथा अर्थको आचार्य किम्वा आचार्यों की आज्ञा से विद्वान् वैष्णवों के द्वारा समझनें का यत्न करें और अपने सन्तानों को उसकी शिक्षा दें।

सज्जनों! श्रीगद्यमन्त्रस्थ ''**भगवते**'' और ''**गोपीजनवल्लभाय**'' इन पदों से स्पष्ट होता है कि सर्वस्व जो समर्पण करने का उपदेश है वह सदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवत् ही के लिये है। गुरु अग्नि होने से अर्पण कराने वाले हैं। अर्पण का ग्रहण करने वाले तो केवल श्रीकृष्ण ही हैं। यह सृष्टि भगवान की रची हुई है। वह भगवान् की ही है। भय से उस क्रीडाभाजन जगत्का त्याग नहीं करके उसके भीतर रहकर प्राणी अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पण करे उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है, किन्तु सब प्रकार के दोषों की निवृति होने का सबसे सुगम साधन ब्रह्मसम्बन्ध है इससे वह परम गुणरूप है।

संसार में उत्पन्न होने वाले दु:खों की निवृत्ति एवं परमात्मा की प्राप्ति के निमित्त हर एक मनुष्य को सेवा करनी चाहिये। सेवा के सम्बन्ध में आचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि–

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसार दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम्॥
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परामता।

सेवा के सम्बन्ध में श्रीमदाचार्यचरण निबन्ध में और भी आज्ञा करते हैं कि–

यथा सुन्दरतां याति वस्त्रैराभरणैरपि।
अलं कुर्वीत सप्रेम तथा स्थानपुरःसरम्॥

सर्वापेक्षां परित्यज्य द्रढं कृत्वा मनः स्थिरम्।
द्रढविश्वासतो युक्त्या यथा सिद्ध्येत्तथा चरेत्॥

वृथालापक्रियाध्यानं सर्वथैव परित्यजेत्।
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः।
येन स्यान्निवृतिश्चित्ते तत्कृष्णे साधयेद्ध्रुवम्॥
स्वयं परिचरेद्भक्त्या वस्त्रप्रक्षालनादिभिः॥

''अरंदासो'' इत्यादि वेदमन्त्रों में तथा गीता के अनेक स्थानों में श्री कृष्ण की सेवा का निरूपण किया गया है। पुष्टिमार्गीय सेवा के सम्बन्ध में अन्यमार्गी आक्षेप करते हैं कि पुष्टिमार्गी की सेवा में आवाहन, विसर्जन इत्यादि मन्त्र नहीं पढ़े जाते हैं इसलिये उनकी सेवा अवैदिक है। सज्जनों! इस आक्षेप का उत्तर यही है कि आवाहनविसर्जन यह सब कर्मकाण्ड में है भक्ति में उसकी आवश्यकता नहीं है। कर्मकाण्डिओं की पूजा सकाम है। वे उस पूजा के पश्चात् कुछ अन्य फल चाहते हैं; किन्तु भक्तिमार्ग में तो ''सेवा'' यही फल है। सेवा को हम साधन नहीं मानते हैं। हमारे यहां दैन्य साधन है और सेवा ही फल है। वैष्णवो! भक्तिमार्ग में भगवान सदा स्थित है ऐसा माना जाता है ''काम हो तब बुलावे और काम निकल गया तो छुट्टी देदी'' यह हमको अभीष्ट नहीं है। भगवान की हाजरी में हमको रहना चाहिये। भक्त बुलावे तब आवे और भक्त कहें तब चले जाय ऐसी सभ्यता हमारे मार्ग में अपेक्षित नहीं है। हम पूजा नहीं करते हैं हम सेवा करते हैं। हम नैवेद्य नहीं लगाते भोग धरते हैं। भोग और सेवा पुष्टिमार्ग में ही होती है। इन शब्दों में बहुत कुच्छ अर्थगांभिर्य्य एवं विशेषता है जिसको समझने के लिये शास्त्रावलोकन एवं भगवदिओं के समागमकी विशेष आवश्यकता है।

आचार्यचरण ने प्रभु की साक्षात् आज्ञा और वेदाज्ञानुसार शुद्धाद्वैतवाद, समर्पण एवं सेवा का प्रचार किया है। इनमें से इस समय ''सेवा'' की परिपाटि तो प्रचलित है, ''समर्पण'' भी होता ही है, किन्तु शुद्धाद्वैतवाद का परिज्ञान नष्टप्राय हो रहा है। इसलिये हम वैष्णवों को उचित है कि आचार्य की उन तीनों विभूतिओं का यथार्थ परिज्ञान सम्पादन करने के लिये आचार्य प्रणीत ग्रन्थों का अवलोकन करें और अष्टाक्षरका सदैव जप करते रहें।

प्रियवैष्णववृन्द! ''श्री कृष्णःशरणं मम'' इस महामन्त्र का सदैव जप करते रहना चाहिये। जिस क्षण इस महामन्त्र का उच्चारण नहीं किया जाय उसी क्षण आसुरावेश हो जाता है। और आसुरावेश होते ही प्रभु एवं अप्रतर्क्य निर्दोष भक्तिरूप लीला में प्राकृत बुद्धि से मन में कुतर्क होने लगता है। आशुरावेश से रक्षण करने वाला यह महामन्त्र हैं। श्रीमदग्निकुमार गुसाईंजी श्रीविठ्ठलनाथजी अष्टाक्षरनिरूपण नामकग्रन्थ की उपक्रमणिका

में आज्ञा करते हैं कि–

श्रीकृष्णः कृष्ण कृष्णेति, कृष्ण नाम सदा जपेत् ।
आनन्दः परमानन्दे, वैकुण्ठं तस्य निश्चितम् ॥

जो प्राणी सर्वदा श्रीकृष्ण भगवान का नाम स्मरण करता है उसको इस लोक में अत्यन्त आनन्द तथा सुख प्राप्त हो परलोक में वैकुण्ठ प्राप्त होता है । अष्टाक्षरमन्त्र में ''श्री'' वर्ण है उसके उच्चारण करने से सर्व सौभाग्य एवं लौकिक अलौकिक धनादि का लाभ प्राप्त होता है । द्वितीय ''कृ'' वर्ण है इसके उच्चारण से पापमात्र का शोषण होता है ।''ष्ण'' वर्ण के उच्चारण से समस्त तापसन्ताप का क्षय होता है । चतुर्थ वर्ण ''श'' कार है इस के उच्चारण से पुनर्जन्म नहीं होता और पञ्चवर्ण ''र'' कार से अलौकिक श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप का तथा श्रीप्रभु की लीला का ज्ञान होता है । और ''ण'' कार से सदा श्रीकृष्ण में दृढ़ भक्ति होती है ''म'' कार से गुरु एवं व्रजभक्तों में प्रीति होय और दूसरे ''म'' कार से श्रीहरिका सायुज्य होय अर्थात् सदा भगवान के समीप रहे इस प्रकार आठों अक्षर स्वरूपात्मक हैं । इसमें कुच्छ भी सन्देह नहीं है ।

प्रिय वैष्णववृन्द ! आज मैंने अपने व्याख्यान में श्रीमदाचार्यचरित्र, एवं आपके सिद्धान्त के तीन प्रधान अङ्ग जोकि **ब्रह्मवाद, सेवा** और **निवेदन** है, उसके सम्बन्ध में तथा महामन्त्र श्री अष्टाक्षर के सम्बन्ध में संक्षिप्त निवेदन किया है । अब अन्त में आज की सभा के सभापति आचार्य वंशज श्रीमान् गोस्वामी श्रीगिरिधरलालजी महाराज, उपस्थित सभ्य एवं ''गुर्ज्जरवैश्यपाठशाला'' को धन्यवाद देने के अनन्तर विशेष धन्यवाद उस आनन्दकन्द, बालमुकुन्द श्रीगोकुलचन्द को देता हूँ, जिनकी एकमात्र कृपा से मुझे आज के शुभ समय में, श्रेष्ठस्थान में, आपसे सुयोग्य भगद्भक्तों के समक्ष में, स्वाभिप्रिय उत्कृष्टोत्कृष्ट विषय पर स्वल्पाल्पभी निवेदन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अस्तु अब पुनः एकबार प्रेम के साथ बोलो श्री वल्लभाधीश की जय!! श्री गोवर्द्धननाथ की जय!!!

●

प्रकटे पुष्टिमहारस देन ।
श्री वल्लभ हरि भाव अति मुख, रूप समर्पित लेन ॥
नित्य संबंध कराय भावदे, विरह अलौकिक बेन ।
यह प्राकट्य रहत हृदय में, तीन लोक भेदन को जेन ॥
रहिये ध्यान सदा इनके पद, पातक कोउ ना लगेन ।
रसिक यह निरधार निगम गति, साधन और नहेन ॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

गोस्वामी तुलसीदास और विनय पत्रिका

पं० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ शास्त्री दातार

लेखक सुप्रसिद्ध प्रवचनकार, राजशास्त्रवेत्ता, नैय्यायिक, शास्त्रमर्मज्ञ, महामहोपाध्याय उपाधि प्राप्त एक मूर्धन्य विद्वान् हैं। अविचल हरि-भक्ति के लिये जीवन में कुछ पथ्यापथ्य का विवेक तथा पालन नितान्त आवश्यक है। इस रीति से सर्वथा सजग और सावधान भक्त के विनय प्रार्थना एवं, समर्पण को प्रभु स्वीकार कर उसे अपने शरण में सदा स्थान दिये रहते हैं। इस सन्दर्भ में विनय पत्रिका के दो पद्य ''कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो'' (१७२ वाँ) तथा अंतिम पद ''........ मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथकी, परी रघुनाथ हाथ सही है,'' की विद्वत्तापूर्ण तथा भावपूर्ण व्याख्या विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत लेख में की है।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रःसर्वत्र वन्द्यते॥

इस पद्य से गोस्वामी श्री तुलसीदासजी बोधात्मा गुरु को प्रणाम कर प्राप्तव्य तत्व की ओर पहुँचने हेतु उपाय की गवेषणा करते हुए पूर्ण हो गए, ऐसा श्रीरामचरितमानस की सोपान परंपरा से स्पष्ट प्रतीत होता है। इस सफलता की कुंजी विनय पत्रिका है जो गोस्वामीजी (वर्तमान में श्रीमद्गोपाल मन्दिर परिसर के उपवन के निवासी)* द्वारा रचित है। यह उक्त पत्रिका के अन्त में लिखित पद्य से निर्विवाद है। जैसा कि-

बिनति राम कह्यो सत्य है सुधि में हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।

विद्वान् जब उद्देश्य को प्राप्त कर पूर्णता का अनुभव करते हैं तो वे अतीत के इतिहास को सिंहावलोकनन्यायेन यादकर अतीत की ओर उद्देश्य के मध्य में रहे अन्वयव्यतिरेक को शास्त्रचक्षुष् से देखकर उस रहस्य को अपने ग्रन्थों के माध्यम से पूर्णतया प्रगट कर भावी पीढ़ी को आलोक के समान अन्धकार से प्रकाश में लाने का सरल मार्ग दिखाते हैं वही प्रकाश विनयपत्रिका में निहित है।

विनय पत्रिका संज्ञा भी उनकी अपनी सूझ है इस संज्ञा में विनय शब्द, देखने में तीन अक्षरात्मक अतिस्वल्प है, पर अर्थ महान् है। पत्रिका, अर्थात् भगवान के समीप पहुँचाया पत्र है वह ऐसा पत्र है जो श्री राम समेत उनके परिवार के द्वारा उपेक्षा होना संभव नहीं क्योंकि प्रभु परिवार का प्रत्येक सदस्य विनीतों के धर्म व विनय का बुभुक्षु ही नहीं वरन् उनके प्रति दिदृक्षु व सन्निनायिषु भी है। विनय के शोध में रहे श्रीराम व उनका परिवार जहाँ कहीं भी विनय पाते हैं वहाँ वे अनुष्ठानतः मुदितमनस्क हो अनुग्रह करते हैं तथा उनको स्वपरिवार का सदस्य मानते हैं यह तथ्य सत्य है, यतः इसको विनयपत्रिका के अन्त में सही कहने से उपपन्न है।

विनय पत्रिका परिगृहीत जो भी तथ्य हैं वे सभी गोस्वामीजी के अपने न होकर शास्त्रों से परिगृहीत हैं। विशेषतया विनय, शास्त्र का प्राण है, विद्या का भूषण है, नीति का मूलाधार है, भक्ति का सर्वस्व है, संपूर्ण वैदिक धर्म की सफलता विनय में ही निहित है। यह ग्रन्थ गोसाईंजी का अपना ही ग्रन्थ नहीं बल्कि भारतीयता का प्रतीक प्रतिबिंब है।

---

* इस सन्दर्भ में पृ०सं० ३०३, ३०४ का अवलोकन करें।

यद्यपि भाषा में विनय शब्द प्रार्थनापरक है तथापि विनय शब्द प्रार्थना पर्याप्त न होकर विद्याभूषणात्मक विनयभाव में होना गोस्वामीजी का भाव है। विनय-पत्रिका के संकेत में की हुई उक्त कल्पना स्वकपोल-कप्लित न होकर सामवेद से परिलक्षित इच्छा पर आधारित है जो सामवेद के ही वचनों से ध्वनित है-

'सेतू न स्तर' दुस्तरान् दानेनादानं अक्रोधेन क्रोधं
श्रद्धयाऽश्रद्धां सत्येनानृतम्

(रुद्र सेतु साम)

इस मन्त्र में 'दुस्तरान्' कहकर सांसारिक स्थिति के लिए आवश्यक एवं बन्धनात्मक आवरण को बताकर दुस्तर को पार करने का उपाय सामवेद ने समझाया जो कि अति संक्षिप्त है। उसी की भाष्य रूप में व्याख्या करते हुए गोस्वामीजी ने कवितारूप में अनेकों ग्रन्थरत्नों का प्रादुर्भाव किया उसके अन्तर्गत विनयपत्रिका भी एक रत्न के स्वरूप में उपस्थित है। इस पत्रिका में बद्ध गीतराग से परिचित होने के अनन्तर ही कहना होगा कि विनयपत्रिका की पदावली का साक्षात्कार होते समय गोस्वामी जी ने आत्मश्रृंगार में डुबकी लगाकर प्राप्त हुए पूर्ण सुखानुभव में आनन्दपूर्वक, भिन्न-भिन्न रागों में पदगान किया है यही विनयपत्रिका की अनूठी विशेषता है।

उक्त 'सेतुसाम' से यह निर्विवाद है कि विनय से इन्द्रियों को सांकुश न रखा जाय तो सांसारिक सेतु से पार पाना प्राणियों के लिए अति विषम है उसी को सेतुसाम में 'दुस्तरान्' से व्यक्त किया गया है वे हैं- १. अदान, २. क्रोध, ३. अश्रद्धा, ४. अनृत। यदि क्रोधादि दोष आरंभ में ही दमित न होंगे तो प्राणियों को चारों ओर से दलित होना अपरिहार्य है फलत: प्राणिमात्र क्रोधादि चार तथ्यों में फँसकर सफलता से वंचित होते हैं। इन दोषों को निरस्त करने के लिए सामवेदोक्त क्षमा आदि को विनय पत्रिका के ब्याज से प्रभुशरण में रहना समझाया है जो दीनदयालु, पतितपावन, अभयदानव्रत में कृतसंकल्प है।

ज्ञातव्य है कि भगवच्छरणागति के पूर्व या भगवच्छरणागति इन दोनों अवस्थाओं में दीनों को भ्रान्ति न हो या विपरीत धारणा न हो इस विचार से सेतुसाम ने एक दिशा दृष्टिगोचर कराई है वह दान, अक्रोध, श्रद्धा व सत्य है। ये क्षमादि चारों तत्व शरीर में घुलते हैं तो धर्म की पूर्णता, नीति की सफलता तथा भक्ति की पराकाष्ठा भी निर्विवाद है। परिणाम में धार्मिक, नीतिमान और भक्त ये तीनों संत श्री रघुनाथजी की सही प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। उदाहरण के रूप में ऋषिमण्डल राजन्यमण्डल व गोस्वामीजी की श्रेणी में रहा सर्वविध उच्चनीच भक्तमण्डल आदि सभी को प्रभु की सही का अधिकारी कहा जाय तो उसमें अत्युक्ति नहीं होगी। अतएव-

सेतुसामोक्त सत्यादि गुणतत्व के याचक श्री गोस्वामीजी की प्रार्थना भी अधोलिखित पद्य में अतिरमणीय रूप से मननीय है (विनय पत्रिका १७२)-

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत सुभाव गहौंगो॥ १॥

जथालाभ संतोष सदा काहूसों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥ २॥

परुष बचन अति दुसह श्रवण सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम सीतल मन पर गुन नहि दोष, कहौंगो॥ ३॥

परिहरि देह जनित चिंता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरिभगति लहौंगो ॥ ४ ॥

इस गान में गोस्वामीजी महाराज विनय प्राप्ति हेतु अपथ्यत्याग व पथ्यसेवन बता रहे हैं । प्रसंगत: यह भी ध्यातव्य है कि उक्त पद्यगान के आरंभ में '**सन्त सुभाव**' कहकर समझाया कि जो भी जैसा भी हो वह सन्त तभी कहा जा सकता है जब सत्स्वभावों से भूषित हो । स्वभाव शब्द से सहज धर्म समझने हैं उन्हीं सन्त स्वभावों का विवेचन उक्त ४ पद्यों में प्राप्त है । यह अनुभूति उन्ही हरिजनों को प्राप्त होती है जो छलरहित हो श्री रामकृपापात्र होने के अधिकारी हैं ।

द्वितीय पद्य के प्रथम चरण में '**जथालाभ संतोष**' यह सन्तों का स्वभाव कहा है उसका शास्त्रत: निष्कर्ष यह कि सन्तोषात्मक धृतिरूपसत्व पथ्य के रूप में है यही व्याख्या द्वितीय चरण में गाये '**कछु न चहौंगो**' से व्यक्त है । इसी को श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तानुसार शुकदेवजी ने अमृतवृत्ति व मृतवृत्ति नाम से परिचय कराया है इसके अन्तर्गत 'संतोष' शब्द अमृतवृत्ति का परिचायक है । द्वितीयार्थ में 'न चहौंगो' में उक्त प्रतिज्ञा त्याज्य मृतवृत्ति का परिचायक है जो संतों के लिए कुपथ्य है ।

इस पद्य के द्वितीय चरण में गाये परहित निरत से सन्तों के जन्म की सार्थकता बताई है जैसा कि "**परोपकाराय सतां विभूतय:**" से स्पष्ट है । यह तृतीय चरण सेतुसा-मोक्त '**दानेनादानं**' से भी समन्वित है इस चरण से नीतिदृष्ट्या लोकसंग्राहक गुण के अन्तर्गत कही दया दर्शायी है जो आत्मज्ञानसम्पन्न या अनन्य निश्छल सेवकों के लिए ही संभव है इसी तथ्य को प्राप्त करने हेतु 'सन्तोष' व 'न चहौंगो' कहना सार्थक है । इस पद्य के चतुर्थचरण में तुलसीदासजी ने '**मनक्रमबचन नेम**' कहकर सन्तों में '**मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं**' का स्मरण कराया इस अवसर पर उन्होंने कहे '**नेम**' तथ्य पर भी ध्यान देना अपेक्षित है । श्रीमद्भागवत में गाये हुए नियम कोई भी शरीर परिवृत्ति के कारण समान रूप से आजीवन अनुष्ठित नहीं हो सकते । अत: '**नेम**' शब्द का तात्पर्य पथ्यरूप में संग्रहित यमपालन में है जो ब्रह्मचर्य, अहिंसादि ८ पथ्य, कृष्ण-उद्धवसंवाद में श्री कृष्णजी ने उद्धवजी को समझाये हैं । इस चतुर्थचरण में राजनीति-सिद्धान्तानुसार सन्तों को कामज व्यसन से मुक्त होने का सन्देश भी प्राप्त होता है ।

लोकसंग्रह के अन्तर्गत दयादि प्रधानगुण जो भी कहे गये हैं, उनके अर्जन में प्रतिबन्धकतत्त्व पर परुषवचन माना गया है उनको सुनकर परिणाम में होने वाली दुर्घटना से बचने हेतु गोस्वामी जी '**तेहि पावक न दहौंगो**' की प्रतिज्ञा प्रभु को सुना रहे हैं । आशय यह कि परुषवचन सुनकर संत भी यदि क्षमा से विचलित होते हैं तो उनका शरीर क्रोधाग्नि से दग्ध होकर रहेगा । यह रोष न हो इस वास्ते गोस्वामी ने '**पावक न दहौंगो**' कहकर क्षमा में रहने की प्रतिज्ञा प्रभु को सुनाई है । श्री गोस्वामी जी के ये उद्‌गार सन्तों के लिए अमृतमय हैं, फलत: परिणाम में सन्तों को विश्वसनीय व सत्पात्र मानकर कीर्ति उनको वृत कर अपने में सुखानुभव प्राप्त करती है ।

राजनीति दृष्टि से कहना यह होगा कि '**न दहौंगो**' कहकर गोस्वामी जी ने स्वयं को क्रोधाभिमानियों से दूर रखकर क्रोधज व्यसन से मुक्ति की कामना की है ।

तृतीय पद्य के तृतीयचरण में गोस्वामीजी ने '**विगत मान**' कहकर संतों को मानातीत में रहने की प्रेरणा दी है तथापि हनुमान्‌जी जैसे संत '**दासोऽहं**' कहकर स्व में मान को स्वायत्त करने की चेष्टा करते हुए देखे जाते

हैं इन दोनों चरित्रों के विरोध का परिहार यह है कि शास्त्रविधि से परिज्ञात प्रवर्तना व शास्त्रीय निषेध से बोधित निवर्तना यथावत् समझकर वैधकर्मों के प्रति होने वाली प्रीतिपूर्वकप्रवृत्ति व उक्त निवर्तना को समझकर निषेध्य की ओर से जुगुप्सा भावपूर्वक निवृत्ति करने में तत्पर रहते हैं परिणाम में सन्तगण उक्त प्रवृत्ति, निवृत्ति का कर्तव्य अपने में स्वीकार नहीं करते सर्वज्ञ परमेश्वर को प्रवर्तक व निवर्तक मानकर उनके याजमान्य में अपने को पिरोये रखते हैं ऐसी स्थिति में हनुमान् जी जैसे संत कर्मफल को न देखकर आज्ञापालनात्मक दासता के अभिमान में रहते हैं यही सन्तों की विगत मानता है जिसे गोस्वामी जी ने '**बिगतमान**' कहकर गाया है।

इसी तृतीय चरण में '**सम सीतलमन**' कहकर गोस्वामीजी ने संतों के चरमसुखात्मक, रागद्वेषविहीन स्वभाव विशेष को दर्शाया है। संत रागद्वेष के अभिनिवेश से ज्यों-ज्यों दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों उन्हें दुःख के स्थान पर सुखानुभूति होती जाती है जैसा कि श्रीमद्भागवत के निम्न वचन से स्पष्ट है-

हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीह लभ्यं (१०/७०/२८)

इस अवसर पर यह भी स्मरण रखना होगा कि शरीरतादात्म्याभिमान में आकर देह पर तदभिनिवेशी व्यक्ति में राग जैसे-जैसे उत्तरोत्तर बढ़ता है वैसे-वैसे मानी व्यक्ति के मनस की समशीतलता क्षीण होती जाती है उसी का फल होता है कि मानी सदा बेचैन रहते हैं उन्हें कभी स्थायी सुखानुभूति नहीं होती यह बेचैनी सन्तों में नहीं पायी जाती। उसका कारण सन्तों के मनोवृत्ति की शीलता है। समशीलता में रहे सन्तों की एक विशेषता यह भी है कि जब वे राग-द्वेषविहीन होकर कर्तव्य समझने हेतु निर्णायक के रूप में शास्त्रों के आदेश पर जब ध्यान देते हैं तब वे संपूर्ण शास्त्रों का समन्वय करने की दृष्टि से राजशास्त्र, भक्तिशास्त्र आदि संपूर्ण शस्त्रों का चिन्तन करने लगते हैं फलतः उनके अनुगमन में भक्ति, नीति व धर्म आदि की एकवाक्यता, एकरूपता, असंदिग्धता संतों को सुलभ होती जाती है। शास्त्रों के वचनों में प्रगट हुआ पारस्परिक कलह भी समाप्त हो जाता है ऐसा ही समन्वय गोस्वामीजी द्वारा रचित विनयपत्रिका आदि सभी ग्रन्थों में उपलब्ध है। यही विगतमान व शीतलमन की विशेषता स्मरणीय है। तृतीय पद्य के चतुर्थ चरण में गोस्वामी जी ने '**परगुन नहि दोष कहौंगो**' कहना विस्मयजनक नहीं है इसका निर्देशन श्रीरामचरितमानस के बालकांड में '**बन्दउ संत असज्जन चरना**' से स्पष्ट है।

'**नहि दोष कहौंगो**' उक्ति से ध्यातव्य है कि सन्तों की दृष्टि इन्द्रियों के द्वारा अभिमुख की ओर जाते हुए भी नीर-क्षीर विवेकन्यायेन विषयगत गुण, दोष देखकर संग्रह व परित्याग करते हुए देखे जाते हैं फिर भी यहाँ सर्वसाधारणतया निन्दा-स्तुति के प्रति मौन रहना ही गोस्वामीजी इष्ट मानते हैं। ऐसा समझा जाय तो विनयपत्रिका के आरंभ में किसी की स्तुति न करते, न तो श्रीरामचरितमानस में स्तुति ब्याजेन निन्दा ही करते वे, अतः '**नहि दोष कहौंगो**' का आशय असूया, मात्सर्य (गर्व) आदि के जनक निन्दा व प्रशंसा को निरस्त करने में है।

चतुर्थ पद्य के प्रथम चरण में '**परिहरि देह जनित चिंता**' कहकर गोस्वामीजी ने संतों के जीवन की समस्या का समाधान किया है। संतगण जब अपने को ऋत्विज् बनकर यजमान-स्थानापन्न ईश्वर के कार्य में तत्पर होते हैं तब यजमान रूप में रहे ईश्वर भी ऋत्विग् रूप में रहे आज्ञापालक सन्तों को पारिश्रमिक रूप में वृत्ति का दान ही नहीं वरन् उनका पालन, संवर्धन तथा सत्पात्र प्रतिपत्ति भी कराते रहते हैं यह तथ्य '**योग क्षेमम् वहाम्यहम्**' में निहित है। यहाँ एक तथ्य यह भी समझना होगा कि यजमान व ऋत्विग् रूप में क्रमशः स्थित ईश्वर व आज्ञाधारक सन्तों के मध्य में कल्पित वृत्ति या श्रम ईश्वर व सेवकों को स्मृत नहीं होते। यदि यह भाव ईश्वर व सन्तों के मध्य में उदित होगा तो सामान्य जनों के मध्य में व्यवहार करने वाले श्रेष्ठी व सेवक की तुलना

तथा ईश्वर व सन्तों की तुलना बराबर होगी वह स्थिति ईश्वर व आज्ञापालन में स्थिर संतों में वांछित नहीं है। इसका फल यह कि पारिश्रमिक या श्रमफल ईश्वर की ओर से मिले या न मिले दोनों अवस्थाओं में संत व ईश्वर के प्रति रहा ऐकात्म्य विचलित नहीं होता, अन्यथा–

अकल्पं नृपतिं प्रजाः निस्वंत्यजन्ति गणिकाः।
अर्थेष्वर्थ कृतामैत्री यावद् अर्थविडंबनम्॥

वचनार्थ की प्रसक्ति ईश्वर व सन्तों में भी होती।

चतुर्थ पद्य की द्वितीय चरण में **'दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो'** कहा है उसके संबंध में कहना यह है कि उक्त पथ्यापथ्य समझकर गोस्वामीजी ने संकेतित ग्राह्याग्राह्यता को विविक्त करते **'दुख सुख समबुद्धि सहौंगो'** से सन्तों के लिए प्रास्तव्य अन्तिम बिन्दु का संकेत समझ में आता है जो श्रीमद्भागवत में कहे 'विनाच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः' वचन से मिलता-जुलता है। उपास्य के सेव्य ईश्वर ही दरिद्रता विपदा के एवं लक्ष्मी संपदा के रूप में अवतीर्ण है ऐसा समझकर सन्त विपदा व संपदा के प्रति जुगुप्सा या राग रखना इष्ट नहीं मानते अतः उनकी बुद्धि रागद्वेष में आकर विपदा व संपदा के प्रति पक्षपात नहीं करती अपितु जो जो कर्तव्य, शास्त्रों के समन्वय की एकवाक्यता में निर्दिष्ट है उसका ही अवगाहन करती है यही सुख दुःख में समबुद्धि है जो राम का परिचायक है।

चतुर्थ पद्य के तृतीय चरण में **'यही पथ रही'** कहकर उक्त वर्णन की सप्रयोजनता समझाई है जिसमें भक्ति की चिरस्थायिता समुदित है यह सब गोस्वामी जी का अनुभव सकलशास्त्रसमन्वयात्मक नवनीत है इस कथन से निश्किंचनों को महान धैर्य व उत्साहोपलब्धि के साथ सन्तों की स्थायी मनोवृत्ति का संकेत सुलभ हो रहा है। उसका निष्कर्ष भक्ति के लिए अपेक्षित इतिकर्तव्यता में बोध्य है इस क्रम में चतुर्थ पद्योक्त चतुर्थचरण में कही **'अविचल हरि भगति लहौंगो'** प्रतिज्ञा पर विचार अवशिष्ट है यह **'पथरहि'** के सान्निध्य में गाई उक्त प्रतिज्ञा से गोस्वामीजी चिरस्थायितया भक्ति को उद्देश्य मानकर भक्ति को ही साधनरूप में स्वीकार करते हुए मालूम पड़ते हैं।

उपर्युक्त पथ्यापथ्य का विचार करते हुए भक्ति में अपेक्षित इतिकर्तव्यता को अपनाकर भक्ति में रहने का संकल्प लेने वाला संत समाज दृष्टव्य है तो सेव्य श्री रघुनाथजी व उनका संपूर्ण परिवार स्मृतिपथ में आरूढ़ होता है ऐसा सोचकर ही गोस्वामीजी ने अपनी संपूर्ण प्रतिज्ञाओं को पूर्ण कराने की प्रार्थना, आरम्भ में **'श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपातें'** से करना उपपन्न है।

इस प्रकार भक्ति के प्रति पथ्यापथ्य बताकर **'कबहुँ कहौ यहि रहनि रहौंगो'** की एकवाक्यता में उपसंहार विधया **'यहि पथ रहि अविचल हरिभगति लहौंगो'** कहना उपपन्न है। इस माध्यम के अतिरिक्त अभ्यास (रहनि, पथ रहि) व अपूर्व (भक्ति का साध्य साधन भाव) की कल्पना देकर गोस्वामीजी ने भक्तिमार्ग विषय पूर्ण किया है। इसी रीति से विनय पत्रिका में विभिन्न रागों में गायी संपूर्ण प्रतिज्ञायें भी मननीय हैं। इन उन (प्रतिज्ञाओं) का निर्वहण गोस्वामी जी के चरित्र में हुआ है या नहीं, ऐसा पूछा जाय तो उसका उत्तर निम्नलिखित पद्यों से ज्ञातव्य है–

मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहु नाथ। नाम सों परतीति प्रीति
एक किंकर की निबही है॥ १॥

सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब को
साहब बाँह गही है ॥ २ ॥

बिहसी राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है'।
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की,
परी रघुनाथ हाथ सही है ॥ ३ ॥

इन पद्यों में चिन्तनीय विषय यह है कि श्री रघुनाथजी व उनका परिवार का प्रादुर्भाव व तिरोभाव का काल अति अतीत हो चुका है। तुलसीदासजी १६ वीं शताब्दी के हैं उस समय '**मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है**'।

पद्य के कहने की उपपत्ति में हनुमान्जी स्मर्तव्य हैं क्योंकि वे चिरंजीवी कथारसिक होने से जहाँ भी वक्ता के भक्तिपथ की पूर्णानुगामिता देखते हैं वहाँ पहुँचकर कथा सुनते हैं उसी का परिणाम है कि हनुमान्जी ने तुलसीदासजी के बारे में अपनी ओर से परमभक्त शिरोमणि गोस्वामीजी की प्रार्थना विनय पत्रिका के माध्यम से भरतजी से की होगी उसको सुनकर 'हाँ' कहते हुए श्रीरघुनाथजी ने सही कहना निर्विवाद है।

दूसरी उपपत्ति प्रसंगत: यह भी स्मर्तव्य है कि जिस स्थल पर भक्ति से ओतप्रोत भये संत निवास करते हैं उस स्थल की शुचिता अतितीव्र होने से वहाँ प्रभु सदैव निवास करते हैं उसे परखने वाले कतिपय ही होते हैं जैसे निषादजी की शुचिता को भरतजी ने परखना प्रसिद्ध है वैसी ही परखने की योग्यता उनमें थी। वैसे परीक्षक ने गोस्वामीजी व उनके सम्पर्क में रहे स्थल की शुचिता देखकर उसी के सान्निध्य में कृष्णवास सदा बना रहेगा सोचकर मन्दिर की स्थापना की जहाँ पर अभी तक अक्षुण्णरूप से श्रीकृष्णजी की उपासना चली आ रही है तथा गोस्वामीजी के पवित्र निवासस्थल की पूज्यता भी अक्षुण्ण है। इस क्रम से विचार करते हुए आरम्भ में कहा गवेषणावाक्य अन्वर्थक हो रहा है। उसी आनन्द में '**वन्दे बोधमयं**' कहना भी मंगलमय है। ●

कवहुँक हौ यह रहनि रहौंगो

श्याम चरण के कृपा कटाक्ष ते उनको स्मरण करौंगो।
श्री राधा के कर पल्लव ते आर्शीवाद गहौंगो।
जेहि स्थल उनके चरण पड़े हैं मस्तक नित्य धरौंगो।
ब्रज की धूलि फांककर उनमें लोटत खूब फिरौंगो।
उनके दरस परस करि मन में उनके ध्यान धरौंगो।
नेत्रन ते उनको दरसन करि जन्म सफल करि लौंगो।
जिन अंखियन ते उनको दरसे उनते जग न लखौंगो।
जिन श्रवणन ते उन महिमा सुनि अब जग की न सुनौंगो।
मुख ते उनकी लीला की महिमा गुणगान करौंगो।
एहि रसना ते उनकी लीला को गुणगान करौंगो।
कर ते उनकी सेवा करि सार्थक यह जन्म करौंगो।
एहि पायन तें लीला स्थल की यात्रा नित्य करौंगो।
उनके दास के दास की चरण धूलि मस्तक पर लऊँगो।
छांड़ि मोहमाया या जग की "राधेकृष्ण" भजौंगो।
पिय प्यारी के चरण कमल गहि चिर विश्राम करौंगो।

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

श्रीवल्लभाचार्यजी के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन

श्रीगुरुः शरणम्

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे ।
तापत्रय विनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ॥

पं० श्री गणेश्वरशास्त्री द्राविड

पण्डितप्रवर श्री गणेश्वरशास्त्रीजी द्राविड न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्रादि के उच्चकोटि के विद्वान् तथा वेद–वेदाङ्गपारङ्गत हैं । आपका वैदुष्य पितामह कैलासवासी पं० प्र० श्री लक्ष्मणशास्त्रीजी द्राविड तथा पिता कैलासवासी पण्डितराज श्री राजेश्वरशास्त्रीजी द्राविड के अनुरूप ही है । वर्तमान में आप श्रीवल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय, काशी में न्याय, मीमांसा आदि शास्त्रों का अध्यापन कराते हुए श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा के माध्यम से धर्मशास्त्रादि का योग्य निर्णय प्रदान कर धर्मरक्षण का कार्य भी कर रहे हैं ।

भारतवर्ष में वैदिक धर्म की रक्षा हेतु तत्तत्समय अनेक आचार्य प्रकट हुए । उनमें महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है । वल्लभाचार्यजी ने शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना कर भक्तिमार्ग की विशेष रूप से प्रतिष्ठापना की । प्रस्तुत निबन्ध में श्री वल्लभाचार्यजी के सिद्धान्तों पर किंचित् दिग्दर्शन कराया जा रहा है ।

''नाम, ब्रह्म से भिन्न है'' ''रूप, ब्रह्म से भिन्न है'' ''जीव, ब्रह्म से भिन्न है'' ''कार्य, ब्रह्म से भिन्न है'' इस प्रकार होने वाले भेदज्ञान को द्वैत कहा जाता है । विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक उक्त भेदज्ञानाभाव ''अद्वैत'' है । ''सब कुछ ब्रह्मात्मक है'' अर्थात् जगत् कार्य स्वरूप ब्रह्म है, उसका कारण ब्रह्म है । कार्य और कारण दोनों ब्रह्म ही है । ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं । **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** इस छान्दोग्योपनिषद् से उक्त सिद्धान्त की पुष्टि होती है । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय ब्रह्म के द्वारा होते हैं । क्योंकि शास्त्रोक्त कारणता ब्रह्म में आती है । यह बात भगवान् वेदव्यासजी ने ब्रह्मसूत्र के जन्माद्यधिकरण में निरूपित की है ।

साकार, सर्वशक्तिमान्, एक, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म है । उससे यह जगत् प्रकट होता है ।

''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः'' इस वेद वाक्य में किया गया निरूपण ब्रह्म के लौकिक हाथ, पैर आदि के न होने के अभिप्राय से है । अलौकिक आनन्दरूप हाथ, पैर, आँख कान आदि ब्रह्म में है हीं । अतएव कहा है–

''विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरूत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पत्त्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः ॥''
''सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्''
''आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः''

ब्रह्म विरूद्ध धर्म का आश्रय (अधिकरण) होने से सभी वाक्यों की संगति लगती है ।

जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से जीव निकलते हैं । जीव अणु रूप हैं ।

जिस प्रकार सूर्य की प्रभा प्रसरणशील होती है उसी प्रकार जीव का चैतन्य प्रसरणशील होता है। अतः जीव के अणु होने पर भी सम्पूर्ण शरीर में चैतन्य की उपलब्धि होती है। जीव ब्रह्म का अंश है।

ब्रह्म से ही जड़ भी निकलते हैं। जड़ में चित् और आनन्द अंश भगवदिच्छा से तिरोहित होते हैं। चेतन में आनन्दांश भगवादिच्छा से तिरोहित होता है। "**एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय**" इस श्रुतिवाक्यनुसार ब्रह्म स्वेच्छा से जीव एवं जड़ के रूप में प्रकट होता है। जीव में आनन्दांश का तथा जड़ में चित्त और आनन्दांश का आदिर्भाव होने पर सब ब्रह्म ही हो जाता है। उस समय जड़, जीव एवं अन्तर्यामी का भेद नहीं रहता।

जिस प्रकार अपनी इच्छा से सर्प कुण्डलाकार होता है उसी प्रकार रमण (क्रीडा) के लिए अपनी इच्छा से ब्रह्म ही जगत् रूप धारण करता है।

जिस प्रकार सुवर्ण (सोना) विभिन्न आभूषण एवं पात्रों के स्वरूप को धारण करने पर भी अविकृत ही रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी जगद्रूप को धारण करने पर अविकृत ही रहता है।

पदार्थों का आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है। पदार्थों का जब आविर्भाव होता है तब पदार्थ कार्य रूप में रहते हैं। पदार्थों का तिरोभाव होने पर पदार्थ कारण के रूप में स्थित होते हैं। अतः सब पदार्थ नित्य ही हैं। पदार्थों की नित्यता होने से जगत की भी नित्यता सिद्ध होती है। जगत् के नित्य होने से जगद्रूप में ब्रह्म अनित्य नहीं होता। पदार्थ की अनुभवयोग्यता को "आविर्भाव" कहा जाता है। पदार्थ में अनुभव-योग्यता का न होना "तिरोभाव" कहा जाता है।

कार्य के प्रागभाव, ध्वंस, अत्यन्ताभाव एवं अन्योन्याभाव को मानने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि भगवदिच्छानुसार आविर्भाव एवं तिरोभाव को मानकर सर्व व्यवस्था हो जाती है। प्रागभाव, ध्वंस, अत्यंताभाव एवं अन्योन्याभाव के निरस्त हो जाने से ब्रह्म को कार्य रूप में स्वीकारने पर भी उसमें अनित्यता का दोष नहीं आता।

"यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्याथा यदा।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः॥"

इस भागवतपद्य से विदित होता है कि काल, देश आदि सभी ब्रह्म ही है। ब्रह्म, जगत् का उपादान कारण एवं निमित्तकारण है। ब्रह्म में विरूद्ध धर्माश्रयत्व के होने से ये सभी बातें उपपन्न होती हैं। जिस प्रकार सुवर्ण से बने कंकण मुद्रिका, शृंखला, आदि को सुवर्ण के रूप में जाना जाता है उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी जगत् को भी ब्रह्मरूप में ही जानते हैं।

"**यथा सौम्य एकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति**" इत्यादि श्रुतिवाक्य में "**वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्**" कहकर मिट्टी के घड़े आदि का स्वतन्त्र अस्तित्व न मानकर मिट्टी को ही सत्य माना है। उसी प्रकार "**तत्त्वमसि**" इस उपनिषद् वाक्य में अंशरूप जीव एवं अंशी ब्रह्म का अभेद बतलाया गया है।

कार्य एवं कारण के रूप में ब्रह्म ही है। माया का सम्बन्ध उसमें नहीं है। सर्वदा मायासम्बन्धरहित ब्रह्म है इस बात को स्पष्ट बतलाने हेतु शुद्धाद्वैत शब्द में अद्वैत शब्द के साथ शुद्ध पद जोड़ा गया है। माया-सम्बन्धरहित को शुद्ध कहा जाता है।

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥"

इत्यादि वाक्यों में समागत माया शब्द का अर्थ भगवच्छक्ति रूपा माया है। वह भगवद्रूप होने से अन्य मत के जैसे वल्लभमत में माया सम्बन्ध नहीं आता। आविर्भाव शक्ति एवं तिरोभाव शक्ति भगवान् की है। इन्हें रखकर "माया" शब्द घटित समस्त वाक्यों की संगति वल्लभमत में हो जाती है।

ब्रह्म ने स्वयं अपनी इच्छा से ही रमण (क्रीडा) के लिए जगत् में उच्चनीचभाव को स्वीकारा है। अतः विषमता एवं निर्घृणता (निर्दयता) का दोष ब्रह्म में नहीं आता।

वल्लभाचार्यजी के मत में साध्य अवस्था में वेद, भगवद्गीता, व्याससूत्र एवं व्यास की समाधिभाषा (भागवत्) को ही प्रमाण माना गया है। सिद्ध अवस्था में "**विरूद्धांशपरित्यागात् प्रमाणं सर्वमेव हि**" कहकर विरूद्ध अंश को छोड़ शेष वाङ्मय (अन्य ग्रन्थों) को भी प्रमाण माना गया है। इस प्रकार वेदादि चार ग्रन्थों से अविरूद्ध अन्य वाङ्मय भी प्रमाण माने गये हैं।

सर्वत्र भगवद्दृष्टि को रखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा कर्त्तव्य है। भगवान् की ओर चित्त का प्रवण होना सेवा है। मानसी सेवा फलरूपा है। उसकी सिद्धि के लिए अपने शरीर एवं अपने धन से भगवान् की सेवा करनी चाहिए। इंससे अहन्ता ममता रूप संसार के दुःख का नाश होता है।

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते"

इस वाक्य से एकमात्र भगवच्छरणागति को उद्धारक माना गया है। शुद्धाद्वैतमार्तण्डानुसार महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य चरणों की कृपा से ही भक्तों को भगवल्लीला का आस्वाद प्राप्त होता है।

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुस्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो॥

नाम सङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

●

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगत्सत्यं अंशी जीवो हि नापरः॥

(श्री अनिरुद्धाचार्याः)

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

भारतीय शुद्धाद्वैत दर्शन के आदि प्रवर्तक जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य और उनकी कर्मभूमि, काशी

श्री गोपालदास नागर

लेखक पिछले पचास वर्षों से हिन्दी साहित्य जगत् से जुड़े हुए हैं। आपकी दो दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा लगभग इतनी ही प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। आपकी लगभग दो हजार रचनाएं हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं - धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवनीत, ज्ञानोदय, समाज कल्याण, राष्ट्रभारती, आजकल, उत्तर प्रदेश, नंदन, पराग, बालमेला, मेला, बालहंस, बालवाणी, साहित्य अमृत, साहित्य भारती, आज, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, अमर उजाला, स्वतंत्र भारत, नवभारत टाइम्स आदि पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। आप दो बार उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान तथा दो बार चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं। कानपुर, बलिया तथा वाराणसी की कई संस्थाओं द्वारा भी सम्मानित तथा पुरस्कृत हो चुके हैं। आकाशवंाणी से नियमित रचनाओं का प्रसारण होता रहा है। इस ग्रंथ में आपकी भूमिका तथा प्रस्तुत लेख प्रकाशित हुआ है।

आदिकाल से पतित-पावनी काशी विश्व की प्राचीनतम नगरी रही है। पुण्य-सलिला भागीरथी की पुण्योज्ज्वल धारा यहां द्वितीया के वक्रचन्द्र का निमार्ण करती हुई अग्रसर होती है। इस धवलधारा के तट पर बसी हुई काशी संसार में अपनी समता नहीं रखती। काशी की यह विशेषता रही है कि भारतीय संस्कृति के मूलाधार गुणों का यहाँ सदैव प्राधान्य रहा है। यहाँ से ऐसी अनेक धाराओं को प्रश्रय मिला, जो धार्मिक सहिष्णुता, समता तथा ऐक्य पर आधारित थीं।

गोस्वामी तुलसीदास को राम भक्ति के प्रचार के लिए काशी को अपना स्थान चुनना पड़ा था। महात्मा बुद्ध ने अपना धर्मप्रचार यहीं से शुरू किया था। आद्य श्रीशंकराचार्य ने हिन्दू धर्म की यहीं से पुनः प्रतिष्ठा की थी। भक्तिमार्ग के प्रवर्तक स्वामी रामानन्द ने काशी में ही शिक्षा प्राप्त की थी। उनके शिष्य कबीर ने भी यहीं उनकी ज्योति को और अधिक तेज किया था। कबीर के बाद रैदास, गुरुनानक आदि के द्वारा काशी की उसी सहिष्णु विचारधारा को बल मिला।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक भक्तिमार्ग की यह धारा समस्त भारत में प्रवाहित हो गयी। चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में भक्ति की सुरसरि प्रवाहित कर सम्पूर्ण बंगाल को उसमें परिप्लावित कर दिया, लेकिन उनकी भी दृष्टि काशी की ओर लगी रही और उन्होंने यहां आकर अपना मठ स्थापित किया।

वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने भी काशी को ही अपना क्षेत्र चुना था और यहीं शिक्षा प्राप्त की, विवाह किया और संन्यास लेने के उपरान्त अपनी दैहिक लीला भी यहीं पूरी की।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के जन्म के विषय में वल्लभ-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में मिलते उल्लेख के अनुसार उनके पिताश्री लक्ष्मण भट्ट ''काकरवाड़'' नामक ग्राम के निवासी थे, जो तैलंग देश में, गोदावरी के किनारे है। वे धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि उन्हें स्वप्न में भगवान् ने वचन दिया था कि तुम्हारे परिवार में सौ सोमयज्ञ पूरे हो चुकने पर मैं अवतार लूँगा और सौ सोमयज्ञ पूरे हो जाने के कुछ समय बाद श्री लक्ष्मणभट्ट

अपनी पत्नी इल्लम्माजी के साथ उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा करने के लिए निकले और काशी पहुँचे। काशी में एकाएक लोदी के आक्रमण करने की सम्भावना का समाचार पाकर वे अन्य कई व्यक्तियों के साथ वापस दक्षिण की ओर चल पड़े। उन दिनों उनकी पत्नी इल्लम्माजी गर्भवती थीं।

ये लोग जब रायपुर (मध्यप्रदेश) जिले के चम्पारण्य नामक जंगल से होकर जा रहे थे, उपद्रव की आशंका तथा मार्ग के कष्टों के कारण गर्भवती इल्लम्माजी के उदर में पीड़ा होने लगी। सायंकाल हो जाने के कारण आगे चलकर "चौड़ा" नामक नगर में रात्रि को विश्राम करने का विचार किया गया था, पर परिश्रम के कारण निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचना भी कठिन हो गया। श्री लक्ष्मणभट्टजी अपनी पत्नी की प्रसव-पीड़ा के कारण रुक गये। यहीं श्रीवल्लभ का जन्म हुआ। बालक की शारीरिक चेष्टा और सामुद्रिक चिह्न देखकर उन्हें अपने स्वप्न की याद आ गयी और निश्चय हो गया कि यह साधारण बालक नहीं, अवतारी महापुरुष है।

वि० सं० १५३५ के वैशाख मास के कृष्णपक्ष की एकादशी, रविवार को इनका जन्म हुआ। यह बालक ईश्वरीय गुण, आदर्श आचरण, अप्रतिम पाण्डित्य तथा लोकहित चिन्तना से विभूषित होने के कारण महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के नाम से विश्वविख्यात हुआ।

भारतीय "शुद्धाद्वैत दर्शन" के नित्य प्रकाशमान मार्तण्ड महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का अधिकांश जीवन काशी में ही बीता। आपश्री हनुमान घाट पर रहते थे। इसलिए बालक वल्लभ की शिक्षा-दीक्षा भी काशी में हुई थी। आपके गुरुकुल पुरोहित थे असाधारण विद्वान् श्री विष्णुचित्त जी। अध्ययन काल में ही ग्यारह वर्ष की अल्पायु में उन्होंने वेद-वेदान्त, शास्त्रों और पुराणों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपकी विलक्षण तथा असाधारण प्रतिभा देखकर गुरुवर आपको "बाल सरस्वती" तथा "वाक्पति" कहकर सम्बोधित करने लगे। अध्ययन काल में ही आपने ब्रह्मवाद का सिद्धान्त स्थिर किया जो बाद में शुद्धाद्वैत-दर्शन के नाम से विख्यात हुआ। विद्वानों की सभा में श्रीवल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन कर लोगों को विस्मित और चकित कर दिया।

जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपना एक अलग सम्प्रदाय स्थापित किया, जिसे वल्लभ सम्प्रदाय या शुद्धाद्वैत पुष्टि सम्प्रदाय कहते हैं। इस सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त अद्वैत है। परन्तु वे इसे माया सम्बन्ध से रहित होने के कारण शुद्धाद्वैत का रूप देते हैं। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य का सिद्धान्त भी अद्वैत है, किन्तु वे इस जगत् को असत्य मानते हैं और उनका वाद मायावाद कहलाता है। आचार्य श्रीवल्लभ इस जगत् को सत्य मानते हैं और उनका वाद ब्रह्मवाद कहा जाता है। श्रीवल्लभाचार्यजी ने वेदान्त सूत्रों पर अपना स्वतंत्र भाष्य रचकर शुद्धाद्वैत के दो पक्षों की विशिष्टता हटाकर अद्वैतवाद मानों फिर से शुद्ध किया। इनके मत में सत्-चित् और आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपनी इच्छानुसार इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव और तिरोभाव करता रहता है। जड़ जगत् भी ब्रह्म ही है, पर अपने चित् और आनन्द स्वरूप का पूर्ण तिरोभाव किए हुए तथा सत् स्वरूपों का अंशतः आविर्भाव किए हुए है। चेतन जगत् भी ब्रह्म ही है, जिसमें सत् चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का कुछ आविर्भाव और कुछ तिरोभाव रहता है। माया ब्रह्म की शक्ति है, जो उसी की इच्छा से विभिन्न रूप में विभक्त होती है, अतः मायात्मक जगत् मिथ्या नहीं है। जीव अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूप को तभी पा सकता है, जब आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते है। यह बात केवल ईश्वर के अनुग्रह से ही, जिसे "पुष्टि" कहते हैं, हो सकती है। इसलिए "वल्लभ-सम्प्रदाय" का भगवत् प्राप्ति का मार्ग "पुष्टिमार्ग कहलाता है।

आचार्य वल्लभ विवाह न कर ब्रह्मचर्य आश्रम द्वारा ही अपने जीवन का कर्तव्य पूरा करना चाहते थे, पर ऐसा न कर सके। कहा जाता है कि उन्हें पंढरपुर में भगवान् विट्ठलनाथजी ने विवाह करने की आज्ञा प्रदान करते हुए कहा था – "आपके अनन्तर भक्ति-मार्ग के प्रचारार्थ किसी योग्य उत्तराधिकारी की आवश्यकता है।"– इस भगवदाज्ञा के कारण वल्लभाचार्य को इच्छा न होते हुए भी काशी आकर विवाह करना पड़ा।

काशी के पंचगंगा घाट पर एक तैलंग विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। नाम था उनका – मधुमंगल। उनकी पत्नी का नाम था – अत्रिम्मा। उनके एक सुशील तथा सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था महालक्ष्मी। विक्रम् संवत् १५६० की आषाढ़ कृष्ण ५ को इन्हीं मधुमंगल नामक सजातीय ब्राह्मण की महालक्ष्मी नामक कन्या के साथ वल्लभाचार्यजी का विवाह हुआ। वह स्थान जहां आपका विवाह हुआ था, अब उनकी बैठक के रूप में आज भी विद्यमान है और "विवाह बैठक" के नाम से जाना जाता है। आज भी देशभर के पुष्टिमार्गीय वैष्णव दर्शन एवं झारी-चरणस्पर्श के निमित्त यहां आते हैं। यह बैठक चौरासी बैठकों के अतिरिक्त है।

काशी के निकट त्रिवेणी क्षेत्र के सामने यमुना के दक्षिणीय तट पर अड़ैल एक प्रसिद्ध स्थान है। यह बहुत पुरानी जगह मालूम होती है। खेद है कि इस स्थान का इतिहास कहीं नहीं प्राप्त होता। कहा जाता है कि इसका पुराना नाम अलकपुरी था। दूसरी दन्तकथा यह है कि यह स्थान इला के नाम पर बसाया गया था, जिसके वंश में प्रतिष्ठानपुर (झूसी) के चन्द्रवंशी नरेश हुए।

विवाह हो जाने के अनंतर वल्लभाचार्यजी ने अपनी तीनों यात्राएं समाप्त कर विधिवत्, गृस्थाश्रम का पालन करने के लिए जब एक स्थान में निवास करना आवश्यक समझा, तब उन्होंने प्रयाग के समीप इसी अड़ैल नामक ग्राम में अपना निवास बनवाया और कई सजातीय लोगों को भी वहां बुलाकर रखा। कहा जाता है कि उस समय इस तैलंग जातीय समुदाय का निवास-स्थल "देवर्षि" नामक ग्राम कहा जाता था। कुछ समय बाद उन्होंने अपना दूसरा स्थायी निवास काशी के ही निकटवर्ती चरणाट नामक ग्राम में बनवाया था।

आचार्यश्री के दो पुत्र हुए। बड़े पुत्र श्री गोपीनाथजी का जन्म संवत् १५६८ की आश्विन कृष्ण १२ को अड़ैल में हुआ था तथा छोटे पुत्र श्री विट्ठलनाथजी का जन्म संवत् १५७२ की पौष कृष्ण ९ को काशी के निकट चरणाट ग्राम में हुआ था। दोनों पुत्र अपने पिता के समान विद्वान् और धर्मनिष्ठ थे। कुछ समय बाद अड़ैल छोड़कर आपश्री काशी के पास "चरणाट" नामक ग्राम में आकर रहने लगे। यहीं श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ तथा नंद महोत्सव का उत्सव हुआ। प्रसिद्ध है कि मंदिर परिसर में स्थित कूप से साक्षात् श्री नंद यशोदा तथा गोपियों ने प्रकट होकर नंदोत्सव में भाग लिया। तभी से इस कूप का महत्व काफी माना जाने लगा है। इस कूप का जल स्वास्थ्य के लिए भी औषधि रूप माना जाता है तथा काफी वैष्णवों ने इसका जल पीकर स्वास्थ्य लाभ का अनुभव किया है। (चरणाट की भौगोलिक स्थिति आदि के बारे में पुस्तक में अलग से एक आलेख है, उससे जानकारी ली जा सकती है।)

आचार्यश्री जब चरणाट में विराजते थे, तब प्रतिदिन काशी से शास्त्रार्थ के लिए विद्वान् यहां भी पहुंचने लगे। उनकी सुविधा के लिए अपने कुछ शिष्यों के सहित आपश्री काशी आ गये।

काशी पधारने पर यहां भी विद्वान उनके पास विवाद करने आने लगे। उनमें जो प्रखर विद्वान् होते, उनसे वह स्वयं शास्त्रार्थ करते और साधारण पण्डितों से शिष्य समुदाय का शास्त्रार्थ चलता। अन्त में शास्त्रार्थ की एक नवीन प्रणाली निकाली गई। वैदिक सिद्धान्त का एक पत्र लिखकर प्रतिदिन श्री विश्वेश्वर के दरवाजे पर लगाया

जाने लगा, जो आगे चलकर ''पत्रावलम्बन'' नामक ग्रन्थरूप में प्रख्यात हो गया। इससे काशी क्षेत्र में हलचल मच गई और फलस्वरू विद्वानों के साथ कितने ही दिनों तक इस विषय में शास्त्रार्थ चलता रहा। अन्त में आचार्यश्री की विजय हुई।

काशी में जतनबर मुहल्ले में सेठ श्री पुरुषोत्तमदास खत्री के मकान पर, जो आज महाप्रभुजी की बैठक के रूप में विख्यात है, आपने अनेक भागवत-पारायण किए, कृष्णलीला के अनेक मनोरथ किए और शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रवर्तन किया। कहते हैं कि इस स्थान की रक्षा के लिए काशी विश्वनाथ ने भगवान् कालभैरव को नियुक्त किया था, जिसका प्रतीक चित्र आज भी उस स्थान पर अंकित है।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता में सेठ पुरुषोत्तमदास खत्री की वार्ता से महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के जतनबर बैठक में होने वाले कार्यों का प्रामाणिक विवरण प्राप्त होता है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि इसी स्थान पर सर्वप्रथम श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीकृष्ण जन्मोत्सव एवं नन्द महोत्सव का आयोजन किया था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इस अवसर पर चरणाट की तरह यहां भी बैठक जी के कूप से नन्द-यशोदा तथा गोप-गोपियां प्रकट हुई थीं और महोत्सव में भाग लिया था। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीकृष्ण-भक्ति के मूलग्रन्थ भागवत के अनेक पारायण कर यहां श्रीकृष्ण-लीला के अनेक आयोजन किए थे।

आचार्य वल्लभाचार्य को अपने जीवन का कार्य समाप्त कर शीघ्र ही स्वधाम में आने के लिए प्रभु की आज्ञा हुई, पर अपना अवशिष्ट कार्य समाप्त न हो सकने के कारण उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया। यह आज्ञा गंगासागर संगम पर हुई थी और दूसरी आज्ञा मधुवन में हुई। लेकिन जब अन्तिम बार तीसरी आज्ञा हुई, तो वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सके। यही कारण है कि आपका ''सुबोधिनी ग्रन्थ'' चतुर्थ स्कंध से नवम स्कन्ध पर्यन्त पूर्ण न हो पाया।

ऐहिक जीवन के कार्य की समाप्ति समझकर उन्होंने शास्त्रानुसार संन्यास लेने का विचार किया और अपनी पत्नी से स्वीकृत मांगी, पर वह स्नेहवश न मिल सकी, जिससे कुछ समय के लिए, उनको अपना विचार स्थगित कर देना पड़ा।

एक दिन जब आचार्यश्री अड़ैल में अपने निवास-स्थान में बैठे थे, घर के चारों ओर अग्नि का प्रकोप हो गया। इस प्रकोप को देखकर इनकी पत्नी ने घर छोड़कर बाहर निकल जाने की प्रार्थना की। उन्होंने इस बात को ही संन्यास के लिए पत्नी की स्वीकृति मान ली। संवत् १५८७ ज्येष्ट कृष्ण १० के दिन अड़ैल से वे प्रयाग आए और यहां नारायणेन्द्र तीर्थ स्वामी से सविधि संन्यास लेकर कुछ दिनों बाद काशी पधारे।

काशी में हनुमान घाट पर निवास करने लगे। वहां एक मास से अधिक समय तक योग का आचरण किया। नित्यलीला में पधारने का समय निकट आया जानकर दोनों पुत्र तथा कई शिष्य दर्शनार्थ काशी आए और उन्होंने अपने कर्तव्य के विषय में उनसे आज्ञा मांगी।

उस समय आचार्यश्री ने वाक्-संन्यास धारण कर लिया था, अतः उन्होंने दोनों पुत्रों को लिखकर कुछ श्लोक दिये, जो आगे चलकर ''शिक्षा-श्लोक'' (या पंचश्लोकी) के नाम से प्रख्यात हुए। कहा जाता है कि उस समय भगवान् ने स्वयं प्रकट होकर उनके दोनों पुत्रों को विश्वास दिलाया था – ''यदि मेरे विषय में तुम्हारा अटल विश्वास है, तो अपनी कृतार्थता में तुम्हें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।''

आचार्यश्री मध्याह्न के समय भगवच्चरण-विनिःसृता भागीरथी की धारा में पधारे और वहां खड़े होकर

भगवान् श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन हो गए। कुछ समय के अनंतर उन्होंने जलसमाधि ली और लोकदृष्टि से अंतर्हित हो गए। उसी क्षण गंगाजी की धारा में एक प्रज्वलित अग्नि का पुंज उद्गत हुआ, जो ऊपर अंतरिक्ष में कुछ समय तक जाते-जाते विलीन हो गया। जिस दिन उन्होंने इस मर्त्यलोक का परित्याग कर भगवान् की नित्यलीला में प्रवेश किया, वह संवत् १५८७ के आषाढ़ शुक्ल द्वितीया तदुपरांत तृतीया का दिन था। इस तिरोधान को सम्प्रदाय में "आसुर व्यामोहलीला" कहा जाता है।

विक्रम की पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का जो आन्दोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक रहा, उसके श्रीवल्लभाचार्यजी प्रधान प्रवर्तकों में से थे। संवत् १५४५ में अपने पिता के साथ वल्लभाचार्यजी जगन्नाथपुरी गए। वहां मायावादियों का बोलबाला था। मायावादियों से शास्त्रार्थ करने के लिए एक सभा का आयोजन किया गया। जगदीश के मन्दिर में वैदिक सिद्धान्त पर मायावादियों एवं श्रीवल्लभाचार्य में शास्त्रार्थ हुआ और श्रीवल्लभाचार्यजी की विजय हुई। मायावादियों को जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब उन्होंने कहा, "इस संसार में ईश्वर सगुण रूप में हैं, यदि स्वयं जगदीश इस बात को स्वीकार कर लें तो आपकी विजय हो सकती है।"

पुरोहित ने जगदीश के मन्दिर में एक कोरा कागज, कमल और स्याही रखकर सावधानी से पट बन्द कर दिया। कुछ समय बाद जब द्वार खोलकर देखा गया तो कागज पर निम्नलिखित श्लोक लिखा था –

"एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतं एको देवो देवकीपुत्र एव
मन्त्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।"

अर्थात् एक ही शास्त्र भगवद्गीता है, एक ही देव भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उन भगवान् श्रीकृष्ण के जो नाम हैं, वे ही मंत्र हैं और एक कर्म भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है।

मायावादियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने दुबारा कागज रखने का आग्रह किया और बड़ी सावधानी से पहरा देते रहे। इस बार पुनः श्लोक लिखा हुआ पाया गया और तब मायावादियों ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। पुरी के राजा ने उन्हें विजयमाला पहनाकर बड़े भक्तिभाव से उनका पूजन किया।

विषम परिस्थिति में भी किस प्रकार अपने नियम की रक्षा करनी चाहिए – यह बात श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपने विवेक द्वारा कैसे सुन्दर ढंग से समझाई है। उदाहरण के लिए आपश्री जगदीशपुरी में एकादशी के दिन दर्शन करने गए। यद्यपि यहां उपवास न करने का रिवाज है। उस दिन जब वल्लभाचार्य जगन्नाथ की स्तुति करते हुए दर्शन कर रहे थे, किसी ने उस बात की परीक्षा के लिए इनके हाथ में महाप्रसाद रख दिया। महाप्रसाद रखने वाले व्यक्ति का हार्दिक अभिप्राय यह था कि या तो वे व्रत भंग करेंगे अथवा महाप्रसाद को न लेकर उसका अनादर करेंगे। धार्मिक दृष्टि से ये दोनों बातें अपेक्षित न थी। आचार्यश्री इस बात को समझ गए और उन्होंने उभयविधि धर्म की रक्षा के लिए एक उपाय किया। जगन्नाथजी के दर्शन तथा स्तुति कर उन्होंने महाप्रसाद की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। आपश्री एकादशी की समाप्ति तथा द्वादशी के पारण समय पर खड़े-खड़े महाप्रसाद की स्तुति ही करते रहे। अंत में प्रातःकाल उन्होंने जगदीश के दर्शनकर महाप्रसाद ग्रहण किया। उनके इस निर्विरोध धर्माचरण को देखकर लोग गद्‌गद् हो गए और वह व्यक्ति पश्चाताप करने लगा।

इसी तरह उज्जैन से आगे सिद्धवट और सांदीपनी ऋषि के आश्रम जाते ही वहां ब्राह्मणों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। उस समय किसी विद्वान ब्राह्मण ने शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने पर वल्लभाचार्यजी से कहा कि

इस समय यहां ''घट सरस्वती'' नहीं हैं, अन्यथा आपको उनकी विद्वत्ता का सामना करना मुश्किल हो जाता। और एक दिन ओड़छा नगरी में घट सरस्वती से राजसभा में शास्त्रार्थ हो ही गया। आचार्यचरण की विद्वत्ता के सम्मुख घट सरस्वती न ठहर सके। उन्होंने अपने पक्ष की प्रामाणिकता के लिए जब घट-स्थापित सरस्वती से पूछा, तब उसने उस समय कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अपनी परायज होती देख घट सरस्वती ने जब एकांत में ले जाकर आवाहित सरस्वती से पूछा तो उसने कहा कि ''मैं अपने पति के सम्मुख किस प्रकार बोल सकती हूँ ? वाक्पति होने के कारण श्रीवल्लभाचार्य मेरे पति हैं, अत: उनके सामने तुम्हारा पक्ष नहीं लिया जा सकता।'' तब राजसभा के बीच घट सरस्वती को अपनी परायज माननी पड़ी।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने तीन बार भारत की पैदल यात्रा की, जो इस प्रकार है –

पहली यात्रा अपने पिताश्री के गोलोकवास के प्राय: एक वर्ष बाद संवत् १५४६-४७ में शुरू की। उस समय आपकी आयु ११-१२ वर्ष की थी। वे सर्वप्रथम काशी से उज्जैन गए। वहां पर उन्होंने अपने मत का प्रचार किया और संवत् १५४७ की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नरोत्तम शर्मा नामक एक ब्राह्मण को वृत्तिपत्रक लिखा। उसके बाद वे दक्षिण गए। वहां उन्होंने विभिन्न वैष्णवाचार्यों के वेदान्द विषयक सिद्धान्तों का विशेष रूप से अध्ययन किया और विद्यानगर के शास्त्रार्थ में उन्होंने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का प्रतिपादन करते हुए मायावाद का खण्डन किया। संवत् १५५० में वे व्रज में गए और समस्त व्रज की यात्रा की। संवत् १५५० की श्रावण शुक्ल एकादशी को उन्होंने गोकुल के ठकुरानी घाट पर श्रीमद्भागवत का सप्ताह परायण किया।

दूसरी यात्रा संवत् १५५४ की ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया रविवार को शुरू की। इस यात्रा में उन्होंने प्रेम-लक्षणा भक्ति का व्यापक प्रचार किया। इसी यात्रा में वे गोवर्धन भी गए। वहीं पर संवत् १५५६ में श्रीनाथजी के स्वरूप का प्राकट्य कर उनकी सेवा के लिए व्रजवासियों को आवश्यक आदेश दिए। इसी यात्रा में पंढरपुर के विट्ठल भगवान् का दर्शन करते हुए उन्हें विवाह करने की प्रभु प्रेरणा प्राप्त हुई। अत: वे दक्षिण से अपनी माता के साथ यात्रा की समाप्ति कर काशी लौट आए।

तीसरी यात्रा पौष सं० १५५८ में शुरू की। इस यात्रा में वे गोवर्धन गए। वहां पर उनकी प्रेरणा से अम्बाला के एक धनाढ्य सेठ पूरनमल खत्री ने श्रीनाथजी का विशाल मन्दिर बनवाने की योजना बनाई। मन्दिर का निमार्णकार्य संवत् १५५९ की वैखाख कृ० ३ को शुरू हुआ। वहां से अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए और अपने मत का प्रचार करते हुए वे संवत् १५६३ में काशी आए। काशी में ही ''पत्रावलम्बन'' की रचना की तथा मायावादियों को पराजित किया। काशी से वापस व्रज गए जहां संवत् १५६४ में गोवर्धन स्थित पूरणमल खत्री द्वारा बनवाए गए नवीन मन्दिर में श्रीनाथजी के स्वरूप को विराजमान किया। उसके बाद वे दक्षिण गए। वहां संवत् १५६५ में उन्होंने विद्यानगर के सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ में भाग लिया और विजय प्राप्त की तथा राजा कृष्णदेवराय द्वारा उनका कनकाभिषेक हुआ। यह यात्रा १५६६ में पूरी हुई।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थों की रचना की थी। उनके अधिकांश ग्रन्थ उनकी तीनों यात्राओं में रचे गए थे। उस समय माधवभट्ट आपश्री के ग्रन्थों का लेखन कार्य करते थे। वल्लभाचार्यजी द्वारा रचे गए ग्रन्थों की संख्या ८४ (वल्लभ दिग्विजय) ३५ (सम्प्रदाय कल्पद्रुम) मानी जाती है, लेकिन उनके ३० छोटे-बड़े ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं – १. अणुभाष्य, २. सुबोधिनी, ३. पूर्व मीमांस भाष्य, ४. तत्वदीप निबन्ध, ५. पुरुषोत्तम सहस्रनाम, ६. दशमस्कंध (अनुक्रमणिका), ७. यमुनाष्टक, ८.

सिद्धान्त रहस्य, ९. नवरत्न, १०. पुष्टि प्रवाह मर्यादा, ११. अंतःकरण प्रबोध, १२. भक्तिवर्द्धिनी, १३. निरोधलक्षण, १४. संन्यास निर्णय, १५. कृष्णाश्रय, १६. सेवाफल, १७. चतुःश्लोकी, १८. सिद्धान्त मुक्तावली, १९. बालबोध, २०. विवेक धैर्याश्रय, २१. जलभेद, २२. पंचपद्य, २३. पत्रावलम्बन, २४. त्रिविध नामावली, २५. प्रेमावृत, २६. शिक्षाश्लोक, २७. न्यायादेश, २८. सेवाफल विवरण, २९. मधुराष्टक, ३०. परिवृढाष्टक।

ऐसा प्रसिद्ध है कि उनका रचित बहुत-सा ग्रंथ-समुदाय आगे चलकर दक्षिण देश में चला गया। यह प्रसंग उस समय का है जब इनके ज्येष्ट पुत्र गोपीनाथजी का नित्यलीला में प्रवेश हो गया और कनिष्ट पुत्र विट्ठलनाथजी का आधिपत्य हुआ।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के नित्य सेवित प्रभु श्रीमुकुन्दरायजी यहीं काशी के भारत प्रसिद्ध श्री गोपाल मन्दिर में विराजते हैं। षष्ठ पीठाधीश्वर गोस्वामी श्री गिरिधरजी महाराज ने श्रीनाथद्वारा के तिलकायित श्री दाऊजी महाराज को गोपालमंत्र देकर दक्षिणा में श्री मुकुन्दरायजी को प्राप्त किया था। आपके ही वंशज षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी अपने जीवन पर्यन्त मुकुन्दप्रभु की सेवा करते रहे।

आचार्य वल्लभाचार्यजी ने हिन्दू-जाति पर जो उपकार किया है, वह अप्रतिम है और वास्तव में निष्पक्ष होकर कहा जाय, तो उनके उपकारों से हम पुष्टिमार्गीय वैष्णव कभी उऋण नहीं हो सकते।

●

भक्ति का डंका भारत में, बजवाया श्री महाप्रभुजी ने।
पुष्टि का झंडा सृष्टि में, फहराया श्री महाप्रभुजी ने॥
भूतल पे कलियुग आय बसा, अरुघोर तिमिर घन छाय रहा।
कर नष्ट तिमिर भक्ति रोशन, प्रकटाया श्री महाप्रभुजी ने॥
छोटी वय में संकट सहकर, भारत में परिभ्रमण किया।
विश्व को अपना उग्र तेज, दिखलाया श्री महाप्रभुजी ने॥
ग्यारह वर्ष में शास्त्र और वेदादि विद्याभ्यास किया।
भारत के सब पण्डित जन को अपनाया श्री महाप्रभुजी ने॥
विद्यानगरी में देश देश के विप्र विपुधर आय रहे।
सब अपने मत बताने में, मिथ्या शोर मचाय रहे॥
जाकर वहाँ मायावाद तिमिर को, ब्रह्मवाद से नष्ट किया।
कर विश्व विजय साकार ब्रह्म, दिखलाया श्री महाप्रभुजी ने॥
दीक्षा देकर दैवीजन को, शरणागति का उपदेश दिया।
शुद्धाद्वैत सिद्धांत सरस, समझाया श्री महाप्रभुजी ने॥
वेद भागवत गीता प्रेम की, दिव्यज्योति प्रकटाय दिया।
विजयध्वज धर्म सनातन का, फहराया श्री महाप्रभुजी ने॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

निर्गुण साकार परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण

पं० श्री मनोहरलाल शास्त्री चतुर्वेदः (मनहरजी)

लेखक सुप्रसिद्ध पुष्टिमार्गीय भागवत कथाकार तथा नव्य व्याकरण व वल्लभ वेदान्त के आचार्य हैं। आपके कई शिष्य प्रामाणिक कथाकारों के रूप में भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रसिद्ध हैं। आपके द्वारा रचित 'पुष्टि सिद्धान्त दर्पण' विद्वत् तथा वैष्णव समाज में बहुत ही लोकप्रिय हुई है। प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने भगवान् श्रीकृष्ण के निर्गुण सधर्मक साकार परब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुये उन्हीं को सेवा-स्मरण द्वारा प्रसन्न रखना जीवमात्र का कर्तव्य बतलाया है।

श्री मद्वल्लभाचार्य श्रीमहाप्रभुजी के सिद्धान्तानुसार उनके सेव्य स्वरूप निर्गुण साकार ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण ही है। इस प्रमाणित सिद्धान्त में ही समस्त श्रुतियों का समन्वय किया है। प्रायः श्रुतियों में कुछ श्रुतियाँ निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन कर रही हैं, और कुछ श्रुतियाँ साकार ब्रह्म का प्रतिपादन कर रही हैं। अन्य सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने मत के अनुसार प्रमाणिक श्रुतियों को प्रधानता प्रदान की है और उसके मत से विरुद्ध श्रुतियों को गौण बताया है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी की यह महती विशेषता है कि उन्होंने समस्त श्रुतियों को प्रधान बताते हुए अणु भाष्य में यह कहा कि – **''वेदः अक्षरमात्रप्यन्यथा न वदति''** अर्थात् वेद एक अक्षर मात्र भी मिथ्या नहीं बोलता, ऐसी दशा में कुछ श्रुतियों को प्रधान बताना और कुछ श्रुतियों को गौण बताना श्रुति विरूद्ध है, जैसे कुछ श्रुतियाँ ब्रह्म को साकार बता रही हैं तो कुछ श्रुतियाँ ब्रह्म को निराकार बता रही हैं, ऐसी परिस्थिति में निराकार ब्रह्मवादी आचार्यों ने निराकार वाद प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को प्रधान बताया और साकारवाद प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों को गौण बताकर अपने मत को परिपुष्ट किया है।

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने तो इस मत का खण्डन करते हुए समस्त श्रुतियों को प्रधान ही बताया जिससे समस्त श्रुतियों का समन्वय वेद भर में होता है। निराकार ब्रह्मवादी आचार्यों को यह भय है कि यदि ब्रह्म को साकार बताया जाय तो जगत् में सभी आकार अनित्य होते हैं और कालान्तर में नष्ट हो जाते हैं अतः ब्रह्म भी अनित्य हो जायेगा, इसीलिये ब्रह्म में न तो आकार है न तो कोई धर्म है उनके मत में निराकार निर्धर्मक ही ब्रह्म है। इस मान्यता को निराधार बताते हुए श्रीवल्लभाचार्यजी ने प्राकृत आकार ही अनित्य होता है और कालान्तर में नष्ट होता है, कहा। ब्रह्म में प्राकृत आकार नहीं है किन्तु अप्राकृत अलौकि दिव्य आकार है। उनका कालान्तर में भी विनाश नहीं होता ऐसा जानने पर समस्त साकार ब्रह्मवादिनी श्रुतियों की सहज में ही संगति हो जाती है। शेष जो निराकार ब्रह्मवादिनी श्रुति हैं तो सभी श्रुति ब्रह्म के आकार का विरोध नहीं करतीं किन्तु ब्रह्म में प्राकृत आकार का ही निषेध कर रही हैं। अतः निराकार का अर्थ है प्राकृत आकार रहित और साकार का अर्थ है अप्राकृत आकार सहित इसीलिये आपने ब्रह्म को निर्गुण बताया जिससे प्रकृति के समस्त गुण एवं सभी आकार एवं सभी धर्म ब्रह्म का स्पर्श भी नहीं कर सकते। इसी प्रकार ब्रह्म को निर्धर्मक बताने वाले आचार्यों का यह मत है कि यदि ब्रह्म में धर्म होंगे तो एक ब्रह्म और दूसरे धर्म होने से द्वैत सिद्धान्त का समर्थन हो जायेगा और अद्वैत भंग हो जायेगा इस शंका का समाधान करने हेतु निर्गुण भक्ति के प्रतिपादक श्रीवल्लभाचार्यजी ने बताया कि ब्रह्म के सभी धर्म ब्रह्म से पृथक नहीं हैं किन्तु ब्रह्म स्वरूपात्मक ही है। जैसे – सूर्य और सूर्य की प्रभा ये दो वस्तु नहीं है किन्तु ये एक ही हैं ब्रह्मसूत्र में भी ''प्रकाशाश्रयवद् वा'' इस सूत्र से शुद्ध अद्वैत का ही समर्थन किया जाता है। अतएव ब्रह्म के सभी धर्म अप्राकृत होते हुए ब्रह्म स्वरूपात्मक है। इसीलिये श्रीवल्लभदर्शन में उनका

ब्रह्म सधर्मक है। वेदान्त में ब्रह्म शब्द से श्रीकृष्ण ही समझना चाहिये। आपने षोडश ग्रन्थ में बताया – **''अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णेबुद्धिर्विधीयताम्''** इसीलिये वैष्णवों को शरण में लेते समय निवेदन गद्यमन्त्र को ब्रह्मसम्बन्ध ही बताया है न कि कृष्ण सम्बन्ध। इससे कुछ मनीषी लोग कृष्ण और ब्रह्म को अलग-अलग मानते हैं उनकी भ्रान्ति को भी मिटा दिया है। आपके मत में तीन ही पदार्थ हैं – (१) जड़, (२) जीव, (३) अन्तर्यामी। क्योंकि ब्रह्म में भी स्वरूपात्मक तीन ही धर्म हैं – सत्, चित्, और आनन्द। सत् से जड़, चित् से जीव और आनन्द से अन्तर्यामी का आविर्भाव होता है। आप लिखते हैं कि – ''आनन्द एवं आकार समर्पक:'' अर्थात् आनन्द शब्द ही यह बतला रहा है कि ब्रह्मस्वरूप श्री कृष्ण में दिव्य आकार है। जिसके दर्शन से दर्शक को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। आपके मन में जगत् के आविर्भाव के प्रति ब्रह्म अभिन्न निमित्तो पादानक ही माना गया है। जगत् का उपादान कारण और निमित्त कारण ब्रह्म ही तो है कारण की सत्यता से ही कार्य की सत्यता प्रमाणित होती है। अत: आपके मत में ब्रह्म सत्यम् जगत्सत्यम् यह उद्घोष है। विष्णु पुराण में लिखा है –

तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्।
आविर्भाव तिरोभाव जन्मनाश विकल्पवत्॥

जन्म का अर्थ आविर्भाव और विनाश का अर्थ तिरोभाव होता है तभी तो आपने कहा **''आविर्भावतिरोभावौ शक्तिर्वै मुरवैरिण: आविर्भाव तिरोभाव जन्म नाश विकल्पवत्''** जगत् का ब्रह्म से ही आविर्भाव और ब्रह्म में ही जगत का तिरोभाव होता है। अतएव ''हरिरेव जगत् जगदेव हरि:'' इन वाक्यों की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। आपके मत में ब्रह्म में अविकृत परिणामवाद माना गया है। ब्रह्म जगत् रूप में परिणित होता हुआ भी स्वयं अविकारी ही रहता है। जैसे – चिन्तामणि, कल्पवृक्ष एवं कामधेनु से विविध पदार्थ उत्पन्न होते हैं परन्तु उत्पादक में कोई विकार नहीं होता ये तीनों अप्राकृत दृष्टान्त हैं। प्राकृत दृष्टान्त में ''ऊर्णनाभि'' मकरी को समझना चाहिये। जैसे मकरी अपने मुख की लार से जाल बनाकर उसमें रमण कर अन्त में उसे स्वयं निगल जाती है ठीक उसी प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्ण भी अपनी रसात्माक क्रीड़ा के लिये अपने स्वरूप से जगत् का आविर्भाव कर उसमें कुछ समय तक क्रीड़ा करके अन्त में महाप्रलय में अपने आपमें ही जगत् को छिपा लेते हैं। इसी शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को **''जन्माद्यस्य यत: शास्त्रयोनित्वात्'' ''तत्तुसमन्वयात्''** इन ब्रह्म सूत्रों से एवं **''जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरत:''** इस भागवत के आदि श्लोक से बताया गया है। ऐसे दया के सागर निर्गुण सधर्मक साकार परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करना ही समस्त जीवों का परम कर्तव्य है।

यह प्रसन्नता श्रीकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्तिरूप सेवा से ही संभव है। तभी तो हरिराय जी शिक्षा पत्र में आज्ञा करते हैं कि –

''दुराराध्यस्य सेवैव वशीकरण साधनम्''

अर्थात् दुराराध्य श्रीकृष्ण को वश करने के लिये उनकी सेवा ही एक मात्र साधन है। अनवसर में विविध प्रकार से स्मरण करना चाहिये। इसी सिद्धान्त का समर्थन स्वयं श्रीवल्लभाचार्यजी ने चतु:श्लोकी में बताया है –

अत: सर्वात्मनाशश्वद्गोकुलेश्वर पादयो:।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मति:॥

अर्थात् नि:साधन दीन दैवी जीवों के समुद्धारक गोकुल के स्वामी के युगलचरणों का सर्वात्मभाव से सेवन और स्मरण करना ही समस्त वैष्णवजनों का परम कर्तव्य है। यह मेरी मति है।

किमधिकं विज्ञेषु

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

पुष्टिमार्गः

पं० श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री ''तदीय''

लेखक मूर्धन्य विद्वान् तथा प्रसिद्धिप्राप्त भागवत कथाकार हैं । अभी तक चार दशक के ऊपर आपको अगणित श्रीमद्भागवत ज्ञानयज्ञ सप्ताह का सफलतापूर्वक आयोजन करते हुए व्यतीत हो गये हैं । उदासीन संस्कृत स्नातकोत्तर महाविद्यालय से साहित्यविभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् वर्तमान में षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज की आज्ञा से साङ्गवेद विद्यालय, वाराणसी में वल्लभ वेदान्त का आचार्यत्व पद सुशोभित कर रहे हैं ।

सनातमधर्मे बहवो मार्गाः वेदप्रतिपादिताः सन्ति । **''वेद प्रणिहितो धर्मः''** इति श्रीमद्भागवते अस्ति । **''तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते''** इति भगवद्वाक्यनुसारेण सर्वत्र शास्त्रीयं प्रमाणं आवश्यकमस्ति । मनुष्यजीवनस्य साफल्यं ब्रह्मानुभवेन भवति । अतएव श्रीशुकदेवेन उक्तम् – **''तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं....... मुदमापदेवः ॥''** ब्रह्मणः सृष्टौ आदिकाले प्राणिषु ब्रह्मदर्शनक्षमस्य मनुष्यस्य सृष्टिर्जाता तदा ब्रह्मा मुदमाप अर्थात् सृष्टौ यः श्रमः सः सफलोऽभूत् । भगवदंशभूताः जीवाः भगवद्विरहेण क्लेशमनुभवन्ति, यदा भगवद्प्राप्तिमार्गं प्राप्नुवन्ति तदा सुखिनो भवन्ति । केचित यज्ञं, केचन तपः, केचन योगं, केचन ज्ञानं, केचन कर्ममार्ग मुख्यमिति प्रतिपादयन्ति, केचन निर्गुणोपासनां, केचन सगुणोपासनां, मुख्यत्वेनोद्घोषयन्ति, केचन पशुपतिमतं, केचन वैष्णवमतं, केचन शक्त्युपासनां इत्यादिकं सप्रमाणं भिन्नं-भिन्नं प्रतिपादयन्ति । शास्त्रीय प्रमाणानुसारेण सर्वे मार्गाः मोक्षदायकाः सन्ति । परं कः सरलो मार्गः यस्मिन् मार्गे स्खलनस्य भयं न भवति साध्यं प्राप्यते एवं इति विचारावसरे भक्तिमार्गो मुख्यत्वेन सन्मुखमायाति । भक्तिः = भजसेवायामित्यस्मात् धातोः प्रेमार्थः क्तिन् प्रत्येये कृते सति भक्ति इति रूपं सिद्धयति । सेवा शब्दस्य तात्पर्यं जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्येण **''चेतस्तत्प्रणवं सेवा''** इति प्रतिपादितमस्ति । इदृशी सेवा यदा प्रेम्णा सह भवति तदा सा भक्तिरित्युच्यते । **''माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः । स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः''** इति जगद्गुरुणा श्रीवल्लभाचार्येण कथितमस्ति । तथा च – **''भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः''** इत्यपि उद्घोषितम् ।

एतादृशः पुष्टिमार्गः अनुग्रहैक साध्योस्ति । न तु जीवपुरुषार्थ साध्यः । यथा श्रुतौ कठोपनिषदि उक्तं वर्तते –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।

अस्यां श्रुतौ ''यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'' इत्यंशो मुख्योस्ति । अस्य तात्पर्यम् आचार्यैः स्व-स्व मतानुसारेण पृथक्-पृथक् प्रतिपादितमस्ति । अस्याः श्रुतेः पुष्टिमार्गीयोऽर्थोऽयं प्रतिभाति एषः परमात्मा यमेव जीवं वृणुते तेन जीवेन अयं परमात्मा लभ्योस्ति । अर्जुनं प्रति शरणमार्गमुपदिशता भगवता श्रीकृष्णेन भगवद्गीतायां इदमुद्घोषितम् –

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्यएवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥

भक्तिदर्शने ''सा परानुरक्तिरीश्वरे'' इति सूत्रमिदं प्रतिपादयति ''ईश्वरे सर्वैश्वर्यवति भगवति परा सर्वातिशायिनि सर्वेभ्यो लौकिकालौकिकविषयेभ्य: उत्कृष्टाऽनुरक्ति: प्रेमलक्षणा सा भक्तिरूच्यते'', ''यदा तु भगवति प्रेमलक्षणां रतिं कुरुते तदा विमुच्यते'' अतएवं भगवतापि उक्तम् –

भक्त्यामामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्वत:।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

भक्तिरहितेन ज्ञानेन शत्रवोऽपि मुक्तिं प्राप्नुवन्ति, किन्तु ते मुक्ते: प्राक् आनन्दं नानुभवन्ति। अन्यत्र ''रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'' अस्यां श्रुतौ हि एव शब्दाभ्यां द्वेषस्य निवृत्तिर्गम्यते। रस शब्दात् राग: प्रतिपादित: अतएव रागो भक्ति:। सा रागात्मिका भक्ति: भगवत्कृपयैव लभ्यते न साधनै:। अतएव व्रजवल्लवीनां ज्ञानविज्ञाना-द्याभादपि रागादेव भगवत्प्राप्ति: जाता। प्रकृते सर्वसाधनराहित्यमेव साध्नत्वेन फलति अतएव पुष्टिमार्गे भगवदनुग्रहैकसाध्ये मार्गे जीवा: सर्वसाधन रहिता: सहिताश्च भगवति रागात्मिकां प्रेमलक्षणां भक्तिं लब्ध्वा सालोक्यादि मुक्तिमपि नेच्छन्ति। श्रीमद्भागवते भगवता दुर्वाससम् ऋषिं प्रति उक्तम् –

मत्सेवया प्रीततं च सालोक्यादि चतुष्टयम्।
नेच्छन्तिं सेवया पूर्णा: कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम्॥

श्रीमद्भागवतस्य षष्ठस्कन्धे भक्तरूपेण प्रसिद्धो वृत्रासुरोऽपि इत्थं कामयते –

ननाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
नयोगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस त्वा विरहय्यकाङ्क्षे॥

पुष्टिमार्गीया: भक्ता: अपवर्गमपि नो एवाद्रियन्ते। पुष्टिमार्गे आत्मानिवेदनमेव मुख्यं साधनमस्ति। य: पुरुष: एकवारमपि ''तवास्मि'' इति कथयित्वा सर्वात्मभावेन स्वकीयं कर्तृत्वभावं परित्यज्य शरण्यं मुकुन्दं शरणं गच्छति तदा भक्तवत्सल: भगवान् स्वकीयया अहैतुक्यया भक्त्या तं स्वींयत्वेन स्वीकरोति। भगवत: प्रतिज्ञावर्तते, यं अङ्गीकरोमि तं कदापि न परित्यजमि। जनानां भगवदनुग्रहेणैव सत्कर्मणि प्रवृत्तिर्भवति। सृष्टेरादिकाले ब्रह्मणा दिव्यदशसहस्रवर्षपर्यन्तं तपस्तप्तं ततो भगवत: दर्शनं प्राप्य स्तुति कृत्वा अनुग्रहप्राप्त्यर्थं याचना कृता, तदा भगवता उक्तम् –

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम्।
यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रह:॥ (भा० ३/९/३८)

अनेन इदं ज्ञायते यत् सर्वत्र सत्कर्मणि भक्तिमार्गे विशेषतया पुष्टिमार्गे भगवदनुग्रह एव मुख्यं कारणं वर्तते।

''पुष्टिमार्गोऽनुग्रहैक साध्य:''। ''कृष्णानुग्रहरूपाहि पुष्टि:'' एतादृश: सर्वमार्गविलक्षण: पुष्टिमार्ग: भक्तानां-चेतसि भगवद्भावरूपेण परिणमति। तस्यदिव्यातिदिव्यभगवदभावस्य भगवतप्रेमानन्दरूपस्य मुख्यरूपेण चतुर्धा-विभाग: कर्तुं शक्यते। वात्सल्यभाव:, सख्यभाव:, दास्यभाव: माधुर्यभावश्च। एकेनापि भावेन भगवत: चिन्तनं, स्मरणं पुष्टिभक्तिरूपेण स्वीक्रीयते आचार्यै:।

पुराणतिलकस्य श्रीमद्भागवतस्य दशमस्कन्धे श्रीशुकदेवेन यद् वर्णितमस्ति तस्मात् किंचिदुल्लिख्यते आदौ महाभागाया: यशोदाया: भगवति वात्सल्यम् –

''हेरामागच्छ ताताशु सानुज: कुलनन्दन।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति॥''
''प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्षमाणो व्रजाधिप:।
एह्यावयो: प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालका:॥''

अत्र यशोदायाः चेतसि वातसल्यभावः परिपूर्णः दृश्यते तथैव–

"एकदार्भकमादाय स्वङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेह परिप्लुता ॥"
"जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥"
"धूलि धूसरिताङ्गस्त्वं पुत्रमज्जन मावह ॥"
"तमङ्कमारुढमपाययत् स्तनं ।
स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥"

इत्यादि स्थलेषु भगवति वात्सल्यभावस्य दर्शनं भवति ।

विद्वद्भिः आचार्यैः बहवो भावाः प्रदर्शिताः सन्ति । मृद्भक्षणलीलायां सुतस्य हितं चिन्तयन्ती यशोदा कृष्णं तर्जयति–

"सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।
यशोदा भय सम्भ्रान्त प्रेक्षणाक्षमभाषत ॥"
"कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान भक्षितवान रहः ।
वन्दति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥"

भगवन्तं स्वसुतं मत्वा शासनं करोति । तथैव दामोदर लीलायामपि

"न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥"
"तं मत्वाऽऽत्मजमंव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ।
गोपिकोलूखलेदाम्ना बबन्धप्राकृतं यथा ॥"

श्रीकृष्णोऽपि कृपया स्वबन्धनं स्वीचकार ततो कृष्णः अनुग्रहं कृत्वा–

"स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्त्रस्तकबरस्त्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने ॥"

अस्मिन् प्रसङ्गे श्रीशुकः ज्ञानापेक्षया भक्तेः प्राधान्यं वर्णयति ।

"नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथाभक्तिमतामिह ॥"

एतादृशे वात्सल्यभावे निमग्नान्तःकरणाः बहवो भक्ता अद्यापि भुवि विराजन्ते ।

अनया रीत्या सख्य, दास्य, माधुर्यादि भावानां वर्णनं भागवते बहु वर्तते परं लेखस्य विस्तारभिया किंचिदेव प्रदर्श्यते ।

दास्यभक्तिः –

श्रीकृष्णः वयस्यैः व्रजबालकैः सह यदा वने विश्रामं करोति तस्मिन् समये –

"पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः ।
अपरे हत पाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ।"

इमे भगवतः श्रीकृष्णस्य सखायः किडायां तस्य पृष्ठे आरोहणमपि कुर्वन्ति–

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः। तथा च–
मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानराच्च चिक्षिपुः।
तत्रत्याश्च पुनर्दुराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः॥
यदि दूरं गतः कृष्णो वन शोभेक्षणयतम्।
अहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे॥

भगवतः श्रीकृष्णस्य बाललीलां वर्णयन् श्रीशुकः व्रजोकसां भाग्यस्य महत्वं प्रतिपादयति–

यत्पापपांसु बर्हुजन्मकृच्छ्रतो घृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजोकसाम्॥

तथैव ब्रह्माऽपि वदति–

अहोभाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजोकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

अस्य भगवतः चरणाम्बुजप्रसादेनैव दास्यादि भक्तिं कर्तुं शक्यते भक्तैः। तथैव अतीव दुर्लभा माधुर्यभक्तिः गोपीभावं विना नैवप्राप्तुं शक्यते, अतएव बहवः ऋषयः व्रजे गोपीभावं गृहीत्वा स्वजीवनस्य कृतार्थताम् अनुभवन्तिस्म।

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्॥

केनापि भक्तेन इदमुक्तमस्ति–

मुक्तमुनीनां मृग्यं किमपिफलं देवकी फलति।
तत्पालयति यशोदा प्रकाममुपभुंजते गोप्यः॥

अस्य पुष्टिमार्गस्य भक्तेः वर्णनं वैष्णववार्तायां बहु वर्तते।

जगद्गुरू श्रीवल्लभाचार्य वंशजाः बहवः आचार्याः कृष्णभारवसभावितान्तःकरणाः अद्यापि भुवि विराजन्ते। तेषु अस्माकं गुरुचरणाः षष्ठपीठाधीश्वराः नि० ली० श्री १०८ मुरलीधरलाल महराजाः अन्यतमाः आसन्। ते भगवत्सेवायाः प्रकारं महत्वं रहस्यं च भक्तेभ्यः बोधयन्ति स्म। काश्यां बहवो वैष्णवाः तेषाम् उपदेशेन भगवत्सेवापरायणाः संजाता। नित्यलीलास्थ श्रीगुरुचरणाः स्वशिष्याणां चेतसि अद्यापि प्रेम्णा विराजन्ते।

भगवतः माहात्म्यज्ञानं जीवैः स्वयंकर्तुं न शक्यते। तत्र गुरोः कृपा मुख्या वर्तते, श्रीमद्भागवतस्य दशम स्कन्धे ब्रह्मस्तुतौ–

"अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एवहि।
जानाति तत्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरंविचिन्वन्॥"

गुरोः कृपयैव भगवत्पादाम्बुजप्रसादः प्राप्तुं शक्यते नान्याथा। एतादृशे विलक्षणे पुष्टिमार्गे भगवदनुग्रहेणैव प्रवेष्टुमर्हन्ति जनाः। पर्यन्ते–

"तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री।
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात्॥"

इति निवेद्य श्रीमन्मुकुन्दप्रभोः सेवापरायणानां षष्ठपीठाधीश्वराणां गो० श्री श्याममनोहर आचार्यचरणानां आज्ञया लिखितोऽयं लेखः नि० लि० गो० श्री मुरलीधरलाल गुरुचरणकमलेषु सप्रश्रयं समर्प्यते अनेन वराकेण।

॥श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते॥

नन्ददास और 'भ्रमरगीत'

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

लेखक उदयप्रताप पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, वाराणसी के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष हैं। आप हिन्दी साहित्य जगत में एक सुप्रसिद्ध कवि, समीक्षक तथा निबन्धकार हैं। आपके तीन काव्य संग्रह, चार निबन्ध संग्रह और लगभग एक दर्जन समीक्षा ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादिम्बिनी, रविवार, आज तथा साहित्य सम्मेलन पत्रिका आदि में आपके सैकड़ों निबन्ध व अन्य रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने अष्टछाप कवियों की सौन्दर्यानुभूति पर शोध कार्य किया है। प्रस्तुत लेख साहित्य क्षेत्र में आपकी विद्वत्ता का परिचायक है।

नन्ददास का जीवन

नन्ददास के जीवन की विविध घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी देने वाले दो मुख्य सूत्र हैं– एक तो पुष्टिमार्गीय सामग्री और दूसरी सोरो सामग्री। नन्ददास के सम्बन्ध में 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में जितना कहा गया है, उससे कम सोरो सामग्री में नहीं कहा गया है। पुष्टिमार्गीय सामग्री में काशी के षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर से जुड़ी परम्परा भी है। इसके अनुसार नन्ददास ने यहीं रह कर 'भ्रमरगीत' या 'भँवर गीत' की रचना की थी। यहाँ के विश्वास के अनुसार नन्ददास जी तुलसीदास के भाई थे।

सोरो से प्राप्त सामग्री में भी कहा गया है कि नन्ददास जी तुलसीदास के चचेरे भाई थे। नन्ददास जी का जन्म वि० स० १५७० में हुआ था। इनके पिता का नाम जीवाराम था। जीवाराम के अग्रज का नाम आत्माराम था और तुलसीदास इन्हीं आत्माराम के पुत्र थे। बाल्यावस्था में तुलसीदास और नन्ददास ने रामानन्द सम्प्रदाय के एक विद्वान नृसिंह से सोरो में शिक्षा पायी थी। सोरो सामग्री में यह भी कहा गया है कि नन्ददास को कृष्णदास नाम का एक पुत्र भी था। कृष्णदास ने 'सूकर क्षेत्र महात्म्य' नाम के एक ग्रंथ की रचना की थी। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और 'अष्ट सखान की वार्ता' में भी नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का चचेरा भाई कहा गया है। यह तथ्य षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर, वाराणसी की मान्यता, 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और 'अष्टसखान की वार्ता' से पुष्ट होता है। लेकिन तुलसीदास के सन्दर्भ में जो लोग सोरो सामग्री को अप्रामाणिक मानते हैं, वे 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' और 'अष्टसखान की वार्ता' पर सन्देह करने लगते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय की काशी की शाखा के अनुसार नन्ददास जी तुलसीदास के भाई थे और उन्होने काशी के श्री गोपाल मन्दिर में रह कर ठीक उसी तरह से 'भ्रमर गीत' की रचना की थी जैसे तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' की रचना की थी।

'अष्टसखान की वार्ता' में नन्ददास को सनाढ्य ब्राम्हण कहा गया है (अष्टछाप–कांकरोली, पृ २२५)। इसके अनुसार, नन्ददास ब्रज तथा मथुरा से पूर्व की ओर स्थित रामपुर नामक गाँव के थे। 'भक्तमाल' में नाभादासजी ने भी इन्हें रामपुर गाँव का कहा है। नाभादासजी द्वारा दिया हुआ नन्ददास का परिचय इस प्रकार है –

नन्ददास आनन्द-निधि, रसिक सुप्रभु- हित रंगमगे ।
लीलापद-रस-नीति, ग्रंथ रचना में नागर ॥

सरस उक्ति-युत जुक्ति-भुक्ति रस-गान उजागर ।
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर ग्राम' निवासी ॥

सकल सुकुल-संवलित भक्ति पद रेनु उपासी ।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम-पथ में पगे ॥
नन्ददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित रंगमगे ॥

उपर्युक्त छन्द में आई तीन बातें विचारणीय हैं- 'सकुल सुकुल संवलित', 'रामपुर ग्राम निवासी' तथा 'चन्द्रहास अग्रज'। नाभादास ने नन्ददास को रामपुर गाँव का बताया है, किन्तु रामपुर गाँव की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। 'सकुल सुकुल संवलित' का कुछ विद्वानों ने अर्थ किया है 'शुक्ल आस्पद' और कुछ दूसरे विद्वानों ने इसका अर्थ किया है- 'उच्च कुल'। जो लोग इसका अर्थ उच्च कुल करते हैं उनके अनुसार यदि इसका अर्थ- 'शुक्ल आस्पद' किया जाय तो 'सकल' शब्द निरर्थक हो जायेगा। ऐसे विद्वानों के अनुसार इसका अर्थ हुआ कि नन्ददास उच्च कुल के सभी लक्षणों से सम्पन्न थे।

'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' का भी विद्वानों ने कई प्रकार से अर्थ किया है। कुछ के अनुसार 'अग्रज' शब्द चन्द्रहास के लिए आया है। यानी चन्द्रहास अग्रज थे। 'सुहृद' शब्द एकदम स्वतंत्र है। यह नन्ददास का विशेषण है। यदि 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' के सभी शब्दों को परस्पर सम्बद्ध मान लिया जाय तो इसके तीन अर्थ होंगे-१. चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र। २. चन्द्रहास के प्रिय बड़े भाई। ३. चन्द्रहास जिनके प्रिय बड़े भाई थे। इन तीनों अर्थो में नन्ददास की अपेक्षा चन्द्रहास को प्रधानता दी गयी है। इससे प्रतीत होता है कि नाभादास के समय तक चन्द्रहास अपने किसी अच्छे कार्य के लिए सुप्रसिद्ध थे।

'अष्टसखान की वार्ता' में कहा गया है कि नन्ददास अपने आरम्भिक जीवन में लौकिकता की ओर झुके हुए थे। ये तुलसीदास के अनुज थे। तुलसीदास इनकी विषयासक्ति से दुखी रहा करते थे। इस ग्रंथ में एक प्रसंग का उल्लेख करके इनकी विषयासक्ति को कहा गया है। एक बार एक 'संघ' रणछोड़जी के दर्शन के लिये जा रहा था। नन्ददास इस संघ के साथ जाना चाहते थे। तुलसीदास की इच्छा नहीं थी कि ये जायें। इन के हठ पर उन्होंने आज्ञा दे दी। नन्ददास इन यात्रियों के साथ मथुरा आये। यहाँ नन्ददास के सहयात्री दस दिनों तक रूकना चाहते थे। लेकिन नन्ददास द्वारिका जाना चाहते थे। एक रात नन्ददास अकेले ही निकल पड़े। रास्ता भूल गये तो एक गाँव में रूक गये। वहाँ एक क्षत्राणी के रूप पर मुग्ध हो गये। प्रण कर लिया कि जब तक उसे फिर से देखूंगा नहीं, तब तक अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगा। अपनी सेविका के समझाने पर वह क्षत्राणी नन्ददास के सामने आयी। अब नन्ददास की यही दिन-चर्या बन गयी। उस क्षत्राणी के परिवार वाले ऊब कर एक दिन मथुरा चल पड़े। नन्ददास ने यहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। यहाँ उनकी भेंट गोस्वामी विट्ठलनाथ से हुई। उनके दर्शन से इनकी बुद्धि विमल हो गई (अष्टछाप कांकरोली, पृ० ५५४)।

श्रीकृष्ण की शरण में चले जाने के बाद नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास का एक पत्र मिला। उन्होंने नन्ददास को राम की भक्ति के लिए प्रेरित किया। तुलसीदास ब्रज भी आये। किन्तु उनका प्रयास निष्फल ही रहा (अष्टछाप- कांकरोली, नन्ददास की पंचम वार्ता)। वार्ताकार ने लिखा है कि नन्ददास सम्पूर्ण 'श्री

मद्भागवत्' का अनुवाद करना चाहते थे। उन्होने इसी उद्देश्य से दशमस्कन्ध का ब्रज भाषा में अनुवाद करना चाहते थे। उन्होने इसी उद्देश्य से दशमस्कन्ध का ब्रज भाषा में काव्यानुवाद भी किया। लेकिन ब्रज और मथुरा के पण्डों ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से निवेदन किया कि नन्ददास ऐसा न करें। इससे उन लोगों की रोटी-रोजी मारी जायेगी। नन्ददास ने गोस्वामी विट्ठलनाथ की आज्ञा से दशम स्कन्ध को छोड़कर शेष स्कन्धों को यमुना में प्रवाहित कर दिया (अष्टछाप- कांकरोली, नन्ददास की चतुर्थ वार्ता)।

वार्ताकार ने एक ऐसी वार्ता भी दी है जिसके अनुसार नन्ददास का प्रेम अकबर की एक सेविका से था। कहते हैं कि एक बार नन्ददास ने अकबर को एक पद गाकर सुनाया- 'नन्ददास तहाँ गावें निपट निकट।' अकबर ने इस पंक्ति का रहस्य पूछा। इस पर नन्ददास ने कहा कि इसका अर्थ अपनी अनूप दासी से पूछ लो। जब अकबर ने अपनी दासी से इसका अर्थ पूछा तो उसने प्राण त्याग दिया। अपनी प्रेमिका के निधन से दुखी नन्ददास ने भी शरीर छोड़ दिया (अष्टछाप- कांकरोली, नन्ददास की षष्ठ वार्ता)।

नन्ददास के गोलोकवास के सम्बन्ध में यहाँ जिस घटना का उल्लेख किया गया है उससे 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' और 'अष्टसखान की वार्ता' के अनुसार मानने वाले विद्वान सहमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि नन्ददास ने अपने एक रसिक मित्र के कहने पर कतिपय ग्रंथों की रचना की थी। इसका नाम रूप मंजरी बताया जाता है। दूसरे विद्वानों के अनुसार रूप मंजरी ऐतिहासिक पात्र नहीं थी।

नन्ददास के जीवन में सौन्दर्य और प्रेम का प्रसार था। जीवन के आरम्भ में उन्हे विषयासक्ति थी। सुन्दर स्त्री को देख कर रीझ गये। इस आसक्ति को उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति मोड़ दिया। निम्नगामिनी प्रवृत्ति को ऊर्ध्वगामिनी बना दिया। श्रीकृष्ण-राधा तथा गोपियों के रूप का बड़ी तल्लीनता से चित्रण नन्ददास ने 'रास पंचाध्यायी' में किया है। श्री कृष्ण सौन्दर्य की निधि हैं। श्री कृष्ण स्वयं रसिक हैं और दूसरों में भी इस रस का प्रस्फुरण करते हैं। नन्ददास श्रीकृष्ण, राधा तथा गोपियों के सौन्दर्य और प्रेम में डूबे हुये थे। अष्टछाप के कवियों में सूरदास के पश्चात नन्ददास का सौन्दर्य और प्रेम के चित्रण में महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी सौन्दर्यानुभूति का फलक बहुत विस्तृत है। श्रीकृष्ण से लिपटी हुई ब्रज की नवेलियाँ उन्हें श्रृंगार विटप से लिपटी हुई लतायें प्रतीत होती है (रास पंचध्यायी)। वे श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रेम सुधानिधि के जितने कुशल चित्रकार और रस के भोक्ता है, उतनी ही तल्लीनता से प्रकृति के सौन्दर्य में भी वे रसते हैं। काव्य के पद-विन्यास, वाक्य-संगठन, अलंकार योजना, बिम्ब संयोजन और प्रबन्ध योजना में भी उनकी सौन्दर्यानुभूति झलकती है।

नन्ददास की रचनायें –

नन्ददास ने प्रबन्ध तथा प्रबन्ध मुक्तक दोनों प्रकार की रचनायें लिखी हैं। इनके चौदह प्रामाणिक ग्रंथ कहे जाते हैं। रूपमंजरी, बिरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, नाममाला, अनेकार्थ मंजरी, रास पंचाध्यायी, स्याम सगाई, भँवरगीत, रूक्मिणी मंगल, सिद्धान्त पंचाध्यायी, दशम स्कन्ध, गोवर्धन लीला, सुदामा चरित्र तथा पदावली आपकी प्रामाणिक रचनायें हैं। गर्दा दतासी ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' में 'प्रबोध चन्द्रोदय', जार्ज ग्रियसेन ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में 'दानलीला' तथा 'मानलीला', मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में 'हितोपदेश', 'ज्ञानमंजरी', 'नाम चिन्तामणि' तथा 'नासिकेतपुराण', उमाशंकर शुक्ल ने 'जोग लीला', 'फूल मंजरी', 'कृष्णमंगल', 'रासलीला', 'बांसुरी लीला' तथा 'चन्द्रोदय', डा दीनदयाल गुप्त ने 'विज्ञान प्रकाशिका', 'राजनीति हितोपदेश', 'पनिहारिन लीला' तथा महावीर सिंह गहलौत ने 'प्रेम बारह खड़ी'

और 'रागमाला' का नन्ददास की रचनाओं के रूपमें उल्लेख किया है। वैसे इन ग्रंथो को अन्य विद्वान प्रामाणिक नहीं मानते हैं।

'रूपमंजरी' में शृंगारिकता तथा आध्यात्मिकता का समन्वय है। श्री कृष्ण की निकटता प्राप्त करने के निए नन्ददास ने नाद और रूप के दो अलग-अलग मार्गो का उल्लेख किया है। उनके अनुसार रूप के मार्ग में अमृत और विष दोनों हैं। यदि रूप की आसक्ति एकदम लौकिक ही रह जाती है तो वह विष है। श्री कृष्ण की रूपासक्ति अमृत है। 'बिरह मंजरी' में इन्होंने पुष्टिमार्ग के अनुसार बिरह का विवेचन किया है। उन्होंने विरह के चार स्वरूप माने हैं- प्रत्यक्ष विरह, पलकान्तर विरह, वनान्तर विरह तथा देशान्तर विरह। प्रत्यक्ष विरह में राधिका श्रीकृष्ण के अंक में विराजते हुए भी अपने को वियुक्त मान लेती हैं। पलकों के गिरने में जिस वियोग की अनुभूति होती है, वह पलकान्तर वियोग है। श्री कृष्ण गोचारण के लिए जाते हैं। इस समय राधा को जिस वियोग का अनुभव होता है वह वनान्तर वियोग है। जब श्री कृष्ण ब्रज से मथुरा और द्वारिका चले जाते हैं तो यह देशान्तर वियोग कहा जाता है। वियोग की इन अवस्थाओं में क्रमशः तीव्रता अधिक से अधिक होती चली गयी है। सभी वियोगों में देशान्तर विरह के अन्तर्गत स्थायित्व अधिक होता है। इसलिए उसमें तीव्रता सबसे अधिक होती है।

नन्ददास ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' के नाम के एक रीति ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ एक मित्र के आग्रह पर लिखा गया था। इसमें नन्ददास ने नायिका-भेद का विस्तार से वर्णन किया है। हाव-भाव और हेला का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है। उन्होंने नायिकाओं को पहले स्वकीया परकीया और सामान्या में विभक्त किया है। इसके बाद वय के अनुसार मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा में बाँटा है। उन्होंने मुग्धा के भी मुग्धा, नवोढ़ा, विश्रलब्धा नवोढ़ा, ज्ञात यौवना तथा अज्ञात यौवना नामक भेद किये हैं। फिर मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं के धीरा, अधीरा, धीराधीरा नामक भेद किये हैं। नन्ददास ने अवस्था के अनुसार नायिकाओं के नौ भेद किये हैं- प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहान्तरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन बल्लभा तथा प्रीतमगमनी। इनको भी नन्ददास ने मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया नामक चार भेदों में विभक्त किया है। उनके अनुसार नायक चार प्रकार के होते हैं- धृष्ट, शट, दक्षिण और अनुकूल। नन्ददास ने नायिकाओं के समान नायकों के भेदोप भेद नहीं किये हैं। उन्होंने प्रेम की प्रथम अवस्था को भाव, आँख और वाणी से प्रगट होने वाले व्यापारों को हाव तथा आश्रय की विविध शारीरिक चेष्टाओं को हेला कहा है। नन्ददास ने रति के अर्न्तगत आठ सात्विक अनुभावों का उल्लेख किया है- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, अश्रु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, कम्प, पुलक तथा चेतना शून्यता।

'मानमंजरी' पर्यायवाची शब्दों का कोश है। इसका नाम 'नाममाला' भी है। इसमें २०५ शब्दों के पर्यायवाची दिये गये हैं। यह ग्रंथ नन्ददास के पांडित्व को प्रदर्शित करता है। 'अनेकार्थ मंजरी' में एक शब्द के अनेक अर्थों को बताते हुए कवि ने श्री कृष्ण के चरित्र का भी स्मरण किया है। 'स्याम सगाई' एक छोटी सी रचना है जिसमें २८ छन्द हैं। इसमें भाव की सबलता परिलक्षित होती है।

'रास पंचाध्यायी' शृंगार रस की श्रेष्ठ रचना है। गोपियों की प्रेमानुभूति की सघनता, श्रीकृष्ण और गोपियों के सौन्दर्य का प्रभावशाली चित्रण, अलंकारो की छटा तथा कोमलकान्त पदावली का अनुपम सौन्दर्य इस काव्य कृति में दिखाई पड़ता है। श्रीकृष्ण परब्रह्म और गोपियाँ आत्मायें हैं। 'रासलीला' में परब्रह्म का आत्माओं से मिलन होता है। रूप गोस्वामी ने दाम्पत्य विषयक रति को उज्वल रस कहा है। नन्ददास 'संयोग

शृंगार' को उज्वल रस कहते हैं। उनके अनुसार गोपियों की श्री कृष्ण विषयक रति उज्वल रस है। इतना कहते हुये भी नन्ददास आलम्बन में लौकिक चेष्टाओं तथा आश्रय में लौकिक अनुभावों का प्रदर्शन करते हुए शृंगार को लौकिक भूमि पर ही प्रतिष्ठित करते हैं–

मन्द परस्पर हँसी लसीं तिरछी अँखियाँ अस।
रूप उदधि उतराति रंगीली मीन पाँति जस॥

(नंददास ग्रंथावली– रास पंचाध्यायी १/७४)

'रास पंचाध्यायी' में पाँच अध्याय है। एक परिशिष्ट भी है। प्रथम अध्याय में श्री कृष्ण की स्तुति, वृन्दावन की शोभा, शरद रजनी, ब्रज बालाओं की विरह दशा, परीक्षित का प्रश्न और समाधान, कृष्ण गोपी मिलन, वन बिहार, मदन मद हरण तथा गोपी गर्व का वर्णन है। दूसरे अध्याय में बिरह की दशा, तीसरे अध्याय में कृष्ण के प्रति अनन्यता का भाव, चौथे अध्याय में बिरह दशा का प्रसार और कृष्ण मिलन का वर्णन है। पाँचवे अध्याय में नन्ददास ने रामलीला का मनोहारी चित्रण किया है। परिशिष्ट में भी इसी लीला का वर्णन है। इस तरह से 'रास पंचाध्यायी' में संयोग और वियोग शृंगार दोनों हैं।

नन्ददास ने वृन्दावन के जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है वह लौकिक शृंगार का उद्दीपन न होकर भक्ति का चेतन आधार है। वह परम सौन्दर्य से युक्त 'चिद् धन' है। श्री कृष्ण की लीला के लिए वृन्दावन ने अपना जड़ स्वरूप धारण किया है। वृन्दावन श्री कृष्ण की लीला का आधार है। श्री कृष्ण अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त होने वाले ब्रह्म हैं। उनका सौन्दर्य अद्भुत और मोहक है। वे सब के अन्तर्यामी हैं (रास पंचाध्यायी १–/३४–३५)। वंशी श्री कृष्ण की योगमाया है। वह अघटित को घटित करने वाली है। इसकी ध्वनि से सभी अगमनिगम और चतुर लोग पैदा हुए हैं (रासपंचा० १/४६–४७)। इस तरह से वंशी की सत्ता पारलौकिक है। वंशी का नाद अमृत का पंथ है। यह ऐसा रंगीला और सूक्ष्म पंथ है जिसपर 'गोपियाँ' चल पड़ी थी (रा० पं० १/५०)। नन्ददास ने परीक्षित के प्रश्न का उत्तर शुकदेव जी से दिलवाते हुए कहा है कि सभी भावों में रमने वाले श्रीकृष्ण उनके अन्तर में हैं। श्री कृष्ण के प्रेम में विभोर होने के कारण गोपियाँ अन्य युवतियों से भिन्न हैं। ये श्री कृष्ण को प्राणों से अधिक प्यारी हैं (रा० पं० १/६३–६५)। नन्ददास ने श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रेम को महाभाव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसी महाभाव की प्राप्ति के लिए जीवन के रूप में गोपियाँ परब्रह्म श्रीकृष्ण के साथ रास करती हैं। वैसे नन्ददास ने लौकिकता के साथ पारलौकिकता का समान रूप से निर्वाह किया है। श्रीकृष्ण नवीन मरकत मणि हैं और ब्रजबालायें सोने की मणियाँ हैं। वृन्दावन को यह माला रीझ कर पहनाई गई है–

नव मरकत–मनि स्याम कनक–मनिगन ब्रजबाला।
वृन्दावन को रीझि मनहु पहिराई माला॥

(रास पंचा० ५/५)

इस रचना में संयोग शृंगार जितना प्रभावशाली है, उतना वियोग शृंगार नहीं है। श्रीकृष्ण से गोपियों का मिलन संयोग शृंगार है। मान के अनन्तर उनका मिलन भी संयोग शृंगार ही है। इसलिए 'रास पंचाध्यायी' संयोग शृंगार की ही रचना है।

भ्रमरगीत –

नन्ददास की काव्यकृतियों में 'रासपंचाध्यायी' को पश्चात् 'भ्रमरगीत' सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भ्रमरगीत काव्य की परम्परा में भी इसका स्थान सूरदास के 'भ्रमरगीत' के पश्चात् ही है। प्रबन्ध की सफल योजना, अनुभूति की सघनता, तर्क-वितर्क, उत्तर-प्रति उत्तर तथा भाषा के प्रवाह की दृष्टि से यह काव्य 'भ्रमरगीत' परम्परा में श्रेष्ठ बन गया है। इसकी रचना, सम्प्रदाय की मान्यताओं के अनुसार काशी के षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर में की गयी थी। यहीं रहते हुए तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' और नन्ददास ने 'भ्रमरगीत' लिखा था।

आरम्भ के दो घन्टों में उद्धव के द्वारा श्रीकृष्ण का सन्देश कहलाया गया है। इसके बाद एक छन्द में ब्रजबालाओं की दशा है। फिर २४ छन्दों में ब्रजबालाओं और उद्धव का उत्तर-प्रत्युत्तर है। एक छन्द में गोपियाँ अपनी बात कहती हैं और एक छन्द में उद्धव अपनी बात कहते हैं। १२ छन्दों में क्रमशः उद्धव निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपना तर्क रखते हैं और १२ छन्दों में गोपियाँ उनके तर्कों का खण्डन करती हैं। उत्तर-प्रत्युत्तर से गोपियाँ बहुत दुखी हो जाती हैं। वे चिड़चिड़ाहट में उद्धव के लिए कटु शब्दों का प्रयोग करती हैं। वैसे उद्धव एक बहाना हैं। गोपियों का क्षोभ तो श्री कृष्ण के प्रति है। गोपियों को दुख है कि श्रीकृष्ण ने सन्निध्य में रहकर गोपियों की दशा नहीं जाना है। उद्धव को भेज कर उन्होंने गोपियों के साथ छल किया है। ऐसे में गोपियों का उपालम्भ श्रीकृष्ण के प्रति फूट पड़ता है। १६ छन्दों में श्रीकृष्ण के प्रति उपालम्भ है। सत्रहवें छन्द में एक भौंरा आ जाता है और गोपियाँ अपने मन की सारी पीड़ा को फिर उपालम्भ के रूप में १६ छन्दों में प्रगट करती हैं। फिर बासठवें छन्द से लेकर अड़सठवें छन्द तक उद्धव की प्रेम दशा का चित्रण है। इसके बाद उद्धव के मथुरा लौटने का वर्णन दो छन्दों में है। तीन छन्दों में गोकुल का वृत्तान्त है। अन्त के दो छन्दों में नन्ददास ने उद्धव को उपदेश दिलाया है। इस तरह से नन्ददास का 'भ्रमरगीत' आदि से अन्त तक प्रबन्ध के एक स्वरूप में बंधा हुआ है।

सूरदास के 'भ्रमरगीत' में भाव की प्रधानता है और नन्ददास के 'भ्रमर गीत' में तर्क-वितर्क की प्रधानता है। सूरदास के 'भ्रमरगीत' में सगुण का समर्थन और निर्गुण का खण्डन है। किन्तु गोपियों की अनुभूति के आगे सगुण-निर्गुण का विवाद दब सा गया है। इसके विपरीत नन्ददास के यहाँ सगुण-निर्गुण का प्रश्न प्रधान हो गया है। सगुण-निर्गुण के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करने के कारण नन्ददास की गोपियाँ वाचाल सी हैं। परमानन्ददास के 'भ्रमरगीत' प्रसंग में भी गोपियाँ अपनी विरह दशा के बीच-बीच में उद्धव, निर्गुण ब्रह्म और श्रीकृष्ण के प्रति कटूक्तियाँ भी कहती हैं। सूरदास और परमानंद-दास के यहाँ गोपियाँ मुखर हैं और उद्धव मौन हैं। किन्तु नन्ददास के यहाँ उद्धव निर्गुण के पक्ष में तर्क करते हैं और गोपियाँ उसका खण्डन करती हैं। नन्ददास के 'भ्रमरगीत' के प्रबन्ध-संगठन अन्यों की अपेक्षा अधिक चुस्त है। आरम्भ में निर्गुण के सम्बन्ध में उद्धव का उपदेश है। उद्धवजी ब्रज वनिताओं के रूप, शील और लावण्य की प्रशंसा करते हुए कहते है कि तुम श्रीकृष्ण के साथ नव कुंजों में विलास करने वाली हो। इसलिए मैं उनके सन्देश को लेकर आया हुआ हूँ। वे कहते हैं कि अपनी बातों को कहने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं पाया, अब उपयुक्त स्थान और अवसर पाकर कह रहा हूँ। यह उद्धव का वाक् चातुर्य है। गोपियों को अप्रिय लगने वाले सन्देश को कहने के पूर्व वे एक भूमिका बनाते हैं–

ऊधौ कौ उपदेस सुनौ ब्रज-नागरी ।
रूप, सील, लावन्य सबै गुन आगरी ॥
प्रेम धुजा, रस रूपिनी, उपजावति सुख पुंज ।
सुन्दर स्याम-विलासिनी, नव वृन्दावन कुंज ॥
सुनौ ब्रज नागरी ॥

कहन स्याम सन्देस एक मैं तुम पै आयौ ।
कहन स्याम संकेत कहूँ अवसर नहिं पायौ ॥
सोचत ही मनु में रह्यौ कब पाऊँ एक ठाऊँ ।
कह सन्देस नन्दलाल कौ, बहुरि मधुपुरी जाऊँ ॥
सुनौ ब्रज नागरी ॥

(भ्रमरगीत छंद १,२)

तर्क-वितर्क –

उद्धव के मुख से सन्देश को सुनकर श्रीकृष्ण का नाम आते ही गोपियाँ भावोच्छवसित हो जाती हैं । उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता है । कण्ठ अवरूद्ध हो जाता है । (पुलक रोम सब अंग भये भरि आये जल नैन/कंठ घुटे गदगद गिरा बोल्यो जात न बैन/ बिबस्था प्रेम की । भ्रमरगीत छं०३) । यह विप्रलम्भ शृंगार की पृष्ठभूमि है । इसके बाद गोपियाँ उद्धव को बैठाकर उनकी परिक्रमा करती हैं । उनसे श्रीकृष्ण का समाचार पूछती हैं । उद्धव कहते हैं कि थोड़े ही दिनों में श्रीकृष्ण से भेंट होंगी । इसे सुनते ही गोपियाँ फिर से पुलकित होकर आवेश में आ जाती हैं । वे मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं । उद्धव जल के छींटे मार कर उन्हें चेतना में लाने का प्रयास करने लगते हैं । (छं० सं० ४,५,६) । यहाँ नन्ददास ने गोपियों की भाव-विह्वलता का समर्थन करते हैं । एक ओर गोपियों की ऐसी आसक्ति है कि श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही मूर्छित हो जाती हैं और दूसरी ओर उद्धव की ऐसी नासमझी है कि किसी वियोगिनी की मूर्छा का शमन करने के बाद उसे कोई आश्वासन न देकर निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने लगते हैं । यह उद्धव की मजबूरी भी है । वे ज्ञानी हैं और ज्ञानी पुरूष राग की दशा को नहीं समझ सकता है । नन्ददास ने उद्धव की मनोदशा और उनके अहंकार को यहाँ प्रगट किया है । गोपियाँ अपने जिस प्रिय को शरीर से प्रास करना चाहती हैं, उद्धव उसी को ज्ञान की आँखों से देखने के लिए कहते हैं । वे कहती हैं कि सम्पूर्ण विश्व श्रीकृष्ण के रूप में व्याप्त है । लोहा, लकड़ी, पत्थर सब में वह है । ब्रह्मज्योति का प्रकाश जड़ और चेतन सब में विद्यमान है । जो श्रीकृष्ण को प्रेम से प्राप्त करना चाहता है, उसी को उद्धव ज्ञान की आँखों से देखने के लिए कहते हैं–

वे तुमते नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ ।
अखिल विश्व भरि पूरि रूप सब उनहिं बिसेखौ ॥
लोह दारू पाषान में जल थल मही अकास ।
सचर अचर बरतत सबै ज्योति ब्रह्म परकास ॥
सुनौ ब्रज नागरी ॥

(भ्र० गी० ७)

गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम में विह्वल हैं। वे ब्रहम और उसकी ज्योति से अपरिचित हैं। श्रीकृष्ण के प्रेम का मार्ग सहज है। वह इन्द्रिय ग्राह्य है। निर्गुण का ध्यान करना कठिन है। इसलिए गोपियाँ कंहती हैं कि ब्रह्म की ज्योति क्या है? आप यह बात किससे कह रहे हैं ? गोपियाँ तो मुरली के जादू से ठगी हुई हैं। वे अपनी इन्द्रियों से श्रीकृष्ण के रूप का साक्षात् दर्शन करना चाहती है (भ्र० गा० छं० ८) गोपियों की इस भाव-विह्वलता को उद्धव नहीं समझ पाते हैं। वे निर्गुण के निराकार स्वरूप, गुणातीत स्वभाव तथा सम्पूर्ण विश्व में उसकी व्याप्ति का बखान करते हैं। वे प्रेम का तिरस्कार करके तर्क करते हैं। गोपियाँ तर्क का उत्तर तर्क से न देकर दृष्टान्त से देती हैं। यदि गोपियाँ तर्क का उत्तर तर्क से देतीं तो वह हृदय को न छू पाता। अपनी बातों को वे जीवन से जोड़ कर कहती हैं-

जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माखन खायौ।
पायन बिन गो संग कहौ को बन बन धायौ॥

आँखिन में अंजन दियौ, गोबरधन लियौ हाथ।
नन्द जसोदा पूत है कुँवर कान्ह ब्रजनाथ॥
सखासुनि स्याम के॥
(भ्र० गी० १०)

उद्धव नये सिरे से फिर तर्क करने लगते हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण को माता-पिता नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन्हीं में व्याप्त है। केवल लीला का अवतार धारण करने के कारण वे श्रीकृष्ण कहे जाते हैं। उद्धव कहते हैं कि परब्रह्म का पद ज्ञान-गम्य है। उन्होंने अक्षर ब्रह्म को अस्वीकार करके विश्व व्यापी ब्रह्म तथा अवतारी ब्रह्म की चर्चा आरम्भ कर दी। गोपियाँ अपने प्रिय का तिरस्कार नहीं सह पाती हैं। वे कर्कश होकर कहती हैं-

ताहि बताओ जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ।
प्रेम सहित हम पास, नन्दनन्दन गुन गावौ॥

नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि।
प्रेम पियूषै छाँड़ि कै कौन समेटै धूरि॥
सखा सुनि स्याम के।
(भ्र० गी० १२)

इस छन्द के बाद उद्धव का मुख्य कथन बिखरने लगता है। निर्गुण के तात्विक स्वरूप की प्रशंसा छोड़कर वे गोपियों की एक बात को पकड़कर आगे बढ़ते हैं। गोपियों ने कहा था कि प्रेम रूप भक्ति में प्रेम का पीयूष है। अब धूलि को कौन समेटे ? उद्धव 'धूलि समेटने' को पकड़ कर कहने लगे-

धूरि बुरी जौ होइ इसे क्यों सीस चढ़ावै।
धूरि छेत्र में आइ कर्म करि हरि पद पावै॥

धूरिहिं तैं वह तन भयौ धूरिहिं सों ब्रह्मण्ड।
लोक चतुर्दस धूरि के सप्त दीप नव खंड॥
सुनौ ब्रज नागरी।
(भ्र० गी० १३)

गोपियाँ धूलि के माध्यम से कर्म की बातें करती हैं। गोपियों के सामने उद्धव का तर्क बहुत कमजोर

लगता है। उद्धव कर्मवाद की ओर मुड़ जाते हैं। (भ्र० गी० १५)। वे मानते हैं कि कर्म ही सब कुछ है। कर्म के कारण ही उत्पत्ति होती है और इसी के कारण नाश होता है। वे मीमांसा का सहारा लेते हैं। वे कर्म को ही मुक्ति का साधन मानते हैं। उद्धव ने पहले ज्ञान का निरूपण किया था और अब कर्मवाद कों सामने रखते हैं। किन्तु गोपियाँ परम प्रेम रूपा भक्ति पर अडिग हैं। गोपियां मानती हैं कि प्रेम के अभाव में व्यक्ति विषय-वासनाओं के वशीभूत होकर नष्ट हो जाता है-

कर्म, पाप अरू पुन्य, लोह सोने की बेरी।
पाप न बन्धन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी॥
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म तें भोग।
प्रेम बिना सब पचि मुये विषय वासना रोग॥
सखा सुनि स्याम के॥
(भ्र० गी० १६)

परम प्रेम रूपा भक्ति में भक्त के अन्दर रूपासक्ति होती है। प्रेम का अमृत प्रगट होता है तो श्यामसुन्दर अपने आप हृदय में आ जाते हैं। योगी लोग उस निराकार ब्रह्म की ज्योति का ध्यान करते हैं, किन्तु भक्त अपने प्रभु के स्वरूप के ध्यान में ही लीन रहता है -

जोगी जोतिहिं भजै भक्त निज रूपहि जानै।
प्रेम पियूषै प्रगटि स्यामसुन्दर उर आनै॥
निर्गुन गुन जो पाइयै लोग कहैं यह नाहिं।
घर आये नाग न पूर्जे, बांबी पूजन जाहिं॥
सखा सुनि स्याम के॥
(भ्र० गी० १८)

उद्धव ने ब्रह्म के सम्बन्ध में वेदान्त को ही साक्षी माना है। वेदान्त उसे 'नेति नेति' कहता है। वह ब्रह्म अलक्षित है। वह गुणातीत है (भ्र० गी० १९)। उद्धव की इन स्थापनाओं का गोपियाँ विरोध करती है। यदि वह प्रभु गुणातीत है तो अन्य गुण कहाँ से आये ? प्रत्येक कार्य के पीछे कोई कारण होता है। बीज के अभाव में वृक्ष नहीं उत्पन्न हो सकता है। उस प्रभु के गुणों के कारण ही इस जगत के गुण घटित होते हैं-

जो उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तें।
बीज बिना तरू जमें, मोहिं तुम कहौ कहाँ ते॥
वा गुन की परछाँहरी, माया दरपन बीच।
गुन ते गुन न्यारे नहीं, अमल वारि मिलि कीच॥
सखा सुनि स्याम के॥
(भ्र०गी० २०)

उद्धव ने माया से प्रतिभासित होने वाले गुणों और उस अक्षर ब्रह्म से व्याप्त होने वाले गुणों का भेद बताते हुए कहा कि माया के प्रपंचों से प्रतिभासित होने वाले गुणों को समझना चाहिए। उस परम ब्रह्म के रूप और गुण का भेद लोग नहीं समझ पाते। (भ्र० गी० २१)। उद्धव के इस वेदान्त ज्ञान का गोपियाँ फिर विरोध करती

हैं। गोपियों का यह विरोध प्रेम रूपा भक्ति पर आधारित है। वेदान्त का ज्ञान कर्म पर आधारित है, लेकिन परम प्रेम मूला भक्ति में क्रम के बन्धनों से भक्त स्वयमेव मुक्त हो जाता है। जब तक कर्म के बन्धन छूटते नहीं, तब तक प्रेमा-भक्ति का अनुभव नहीं हो सकता है। जिनकी आसक्ति कर्म में है, वे परम प्रेम रूपा भक्ति को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। (भ्र० गी० २२)। उद्धव प्रेम का विरोध करते हुए ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं। प्रेम के लिए आलम्बन का होना आवश्यक है। इसके अभाव में प्रेमी अनुरक्त नहीं हो सकता है। उद्धव इस रूपासक्ति या वस्तु बोध का विरोध करते हैं। (भ्र० गी० २३)। दूसरी ओर गोपियाँ उस प्रभु को दिव्य दृष्टि गम्य मानती हैं। परम प्रेमा भक्ति में विश्वास या आस्था प्रमुख है। कर्म की व्यवस्था में पड़े हुए लोग प्रेमा भक्ति को नहीं पहचान सकते हैं

तरनि अकास प्रकास जाहिं में रहयो दुराई।
दिव्य दृष्टि बिनु कहौ, कौन पे देख्यो जाई॥
जिनके वे आँखें नहीं, देखें क्यों वह रूप।
क्यों उपजे विस्वास जे परै कर्म के कूप॥
सखा सुनि स्याम के॥
(भ्र०गी० २४)

गोपियों के समझाने के बाद भी उद्धव ज्ञान को पकड़ कर अटके रहते हैं। उनकी समझ में परम प्रेमा भक्ति नहीं आती है। वे सारी वस्तुओं की नश्वरता का प्रतिपादन करते हैं। गोपियाँ कृष्ण के स्वरूप को इन्द्रिय गम्य मानती हैं और उद्धव ब्रह्म को इन्द्रियातीत बताते हैं। उस ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति केवल अन्तरात्मा में ही हो सकती है। वह ब्रह्म इन्द्रिय विकारों से परे है। (भ्र० गी० २७)। उद्धव के इन तर्कों को सुनने के बाद गोपियाँ रुष्ट हो जाती हैं। उद्धव से तर्क-वितर्क करती हुई गोपियाँ अनुभूति की बातें करने लगी। उद्धव ज्ञान मार्गी हैं। इसलिए अनुभूति का विरोध करते हैं। उद्धव गोपियों के अनन्य प्रेम को नहीं समझ पाते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप के प्रति अपनी आसक्ति को पुनः प्रगट करती हैं। वे कहती हैं कि इसके अतिरिक्त मेरे जीवन का लक्ष्य और कुछ भी नहीं है-

नास्तिक हैं जे लोग कहा जानै निज रूपै।
प्रगट भानु कौ छांडि गहन पराई धूपै॥
हमरै तौ यह रूप बिन और न कछु सुहाय।
जौ करतल आमलक के कौटिक ब्रह्म दिखाय॥
सखा सुनि स्याम के॥
(भ्र० गी० २८)

कृष्ण के प्रति उपालम्भ –

नन्ददास के 'भ्रमरगीत' के पूर्वार्द्ध में तर्क-वितर्क अधिक है। यहाँ ज्ञान से प्रेमा भक्ति का संवाद है। इसके आगे गोपियों की प्रेम विह्वलता है। कृष्ण के रूप की बातें सामने आती हैं तो गोपियों को श्रीकृष्ण का स्मरण हो आता है। विह्वलता के कारण इनकी आँखों में आंसू आ गये। (– प्रेमअमृत मुख तें स्रवन अंबुज नैन चुचात भ्र०गी० २९)। गोपियाँ विह्वल होकर रूदन करने लगती हैं-

अहो नाथ रमानाथ और जदुनाथ गुसांई।

नन्दनन्दन बिउरात फिरत तुम बिनु बन गाई ॥
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ ग्वालिनि सुख लेहु ।
दुख-जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलम्बन देहु ॥
निठुर ह्वे कहा रहै ॥
(भ्र० गी० ३०)

गोपियों का यह प्रेम पहले वैयक्तिक स्तर पर प्रगट होता है । इसके बाद समवेत रूप से गोपियाँ अपने प्रेम को प्रगट करने लगती हैं । वे उन्माद ग्रस्त होकर श्रीकृष्ण के दर्शन और उनकी वंशी के नाद को सुनने के लिए आतुर हो जाती हैं । कोई गोपी कहती है कि दर्शन दो । कोई कहती है कि वंशी की नाद सुनाओ । हमारे लिए तो तुम अकेले हो और हमारे समान तुम्हें करोड़ो हैं । तुम बहुतों के हो । कहीं हमारे प्रेम को न तोड़ डालो–

कोउ कहै पियदरस देहु तौ बेनु सुनावौ ।
दुरि दुरि बन की ओट कहा हिय लौन लगावौ ॥
हमको तुम पियू एक ही तुम को हम सी कोरि ।
बहुताइत के रावरे, प्रीति न डारौ तोरि ॥
एक ही बार यौं ॥
(भ्र० गी० ३२)

प्रेम की इस विह्वलता में गोपियों के मुख से उपालम्भ फूट पड़ता है । हर गोपी अलग-अलग उपालम्भ देती है । अन्य कवियों ने समस्त गोपियों की प्रेमानुभूति को सामूहिक रूप से प्रगट किया है किन्तु नन्ददास ने प्रत्येक गोपी के प्रेम और उपालम्भ को अलग-अलग व्यक्त किया है । 'कोउ कहै', 'कोउ कहै' जैसी आवृत्ति तेरह छन्दों में की गई है । प्रेम की तीव्रता धीरे-धीरे बढ़ती चली गयी है । एक के बाद दूसरी गोपी का प्रेम अधिक सघन होकर प्रगट होता है । सबसे पहले श्रीकृष्ण के राजत्व पर व्यंग है । मथुरा का राज पाने के बाद उन्हें अबलाओं का भी ध्यान नहीं रहा । कृष्ण की प्रभुता को सुनकर अबलाओं की बुद्धि डर जाती है–

कोउ कहै अहो स्याम कह इतराय गये हौ ।
मथुरा कौ अधिकार पाय महराज भये हौ ॥
ऐसे कछु प्रभुता अहौ जानत कोऊ नाहिं ।
अबला बुधि सुनि डरि गई बली डरै जग माहिं ॥
पराक्रम जानि कै ॥
(भ्र० गी० ३३)

गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रेम में अनुरक्त हैं । उद्धव के निर्गुण ब्रह्म से वे रूष्ट हैं । उद्धव बार-बार ज्ञान का उपदेश देते हैं तो गोपियाँ ब्रह्म पर आक्षेप करती है । (भ्र०गी० ५३) । वे कृष्ण को भी उपालम्भ देती हैं । कृष्ण ने छल-प्रपंच करके रूक्मिणी का हरण किया था । (भ्र०गी० ३१) । कृष्ण की ही प्रेरणा से प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकश्युप से शत्रुता बढ़ा ली थी । श्रीकृष्ण ने सदैव छल-प्रपंच किया है । रामावतार (भ्र०गी० ३७) । वामनावतार (भ्र०गी० ३८)तथा परशुरामावतार में (भ्र०गी०३९) भी उन्होंने छल किया था । वैसे ये सारी बातें व्याज से कहीं गई हैं । निन्दा करते हुए भी गोपियाँ उनकी स्तुति करती हैं । कृष्ण निष्ठुर हैं किन्तु उनके ऊपर

पाप व्याप्त नहीं होता है–

कोउ कहै ये निठुर इन्है पातक नहिं व्यापै।
पाप पुन्य के करनहार ये हीं हैं आपै ॥
इनके निरदै रूप मैं नाहिन कोऊ चित्र।
पय प्यावत प्रानन हरै पुतना बाल चरित्र ॥
मित्र ये कौन कै ॥
(भ्र० गी० ३५)

भ्रमर को लक्ष्य करके गोपियाँ उद्धव पर व्यंग करती हैं। गोपियों की प्रेमासक्ति को देख कर उद्धव का भी ज्ञान भाग जाता है। इस प्रेम के आगे उद्धव अपने को पराजित अनुभूत करते हैं। (भ्र० गी० ३५) उनका ज्ञान गर्व दूर होता है तो वे प्रेम के रस को पाने के लिए विह्वल हो जाते हैं। प्रेमा भक्ति में उद्धव की अभिलाषा यह होती है कि उनका मन शुद्ध हो जाय। वे श्यामसुन्दर की प्रेमाभक्ति प्राप्त करना चाहते हैं–

कबहूँ कहै गुन गाय स्याम इन्है रिझाऊँ।
प्रेम भक्ति तौ भले स्याम सुन्दर की पाऊँ ॥
जिहि किहि विधि ये रीझहिं सो हौं करौं उपाय।
जाते मो मन सुद्ध होइ दुविधा ग्यान मिटाय ॥
पाय रस प्रेम कौ ॥
(भ्र० गी० ४४)

नन्ददास प्रबन्ध योजना में बहुत कुशल हैं। जब वे एक भाव को परिवर्तित करके दूसरे भाव को ले आते हैं तो उसकी एक प्रभावशालिनी पीठिका बनाते हैं। यहाँ भी उद्धव की प्रेम दशा को दिखाने के बाद वे पुनः दृश्य परिवर्तन करते हैं। सूरदास ने 'भ्रमरगीत' के आरम्भ में ही भ्रमर का प्रसंग रखकर उनके प्रति गोपियों के उपालम्भ को नियोजित किया है। लेकिन नन्ददास ने उपालम्भ के लिए समुचित पीठिका बनाई है। इसलिए नन्ददास का 'भ्रमरगीत' मनोवैज्ञानिक रूप से शिष्टाचार की पीठिका पर प्रतिष्ठित दिखाई पड़ता है। उद्धव के तर्क–वितर्क, उनके ज्ञान गर्व और प्रेमानुभूति के बाद एक भ्रमर उड़ता हुआ ब्रज बनिताओं के बीच में आ जाता है। वह गोपियों के चरण–कमल पर बैठना चाहता है–

ताही छिन एक भँवर कहूँ ते उडि तहँ आयौ।
ब्रज बनिता के पुंज माँझ गुंजत छवि छायौ ॥
बैठ्यौ चाहै पाय पर अरुन कमल–दल जानि।
सो मन ऊधौ कौ मनौ प्रथमहि प्रगट्यौ आनि ॥
मधुप कौ भेष धरि ॥
(भ्र० गी० ४५)

भ्रमर जैसे ही गोपियों के चरण का स्पर्श करना चाहता है, गोपियाँ कहती हैं कि मेरे पाँव का स्पर्श मत करो। तुम आनन्द रस के चोर हो और तुम्हारे ही समान नन्दकिशोर भी हैं। तुम दोनों कपटी हो (भ्र० गी० ४६)। भँवरा श्रीकृष्ण के समान कपटी है तो उद्धव के समान प्रेमा भक्ति में डूबी हुई गोपिकाओं का

चरण स्पर्श करना चाहता है। वह गोपियों की चरण धूलि के लिए लालायित है। यहाँ संकेत है कि उद्धव पहले ज्ञान के गर्व में थे और अब एकदम पराभूत हैं।

नन्ददास ने 'कोउ कहै', 'कोउ कहै' से आरम्भ करके तेरह छन्दों में गोपियों के उपालम्भ को व्यक्त किया है। इन छन्दों में गोपियों का अमर्ष, उग्रता, व्यंग्य, चिड़चिड़ापन, कटुता, सपत्नीक भाव प्रगट हुए है। गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके उनके स्वामी श्रीकृष्ण पर भी व्यंग्य करती हैं। श्रीकृष्ण पहले गोपीनाथ थे। अब दासी का जूठन खाकर यदुकुल को पावन करने वाले हो गये हैं। यह गोपियों का सपत्नीक भाव या सौतिया डाह है–

कोउ कहै रे मधुय तुमैं लाजौ नहिं आवत।
स्वामी तुम्हरौ स्याम कूबरी दास कहावत॥
इहाँ ऊचि पदवी हुती गोपीनाथ कहाय।
अब जदुकुल पावन भयौ दासी जूठन खाय॥
मरत कहा बोल कौ॥
(भ्र० गी० ४७)

उपालम्भ के इन छन्दों में क्रमशः तीव्रता आती गयी है। पहले गोपियाँ अपना आक्रोश कुब्जा के प्रति प्रगट करती हैं। इसके बाद 'भ्रमर' अर्थात श्रीकृष्ण के ऊपर प्रहार करने लगती हैं। भ्रमर की लम्पटता पर उनका एक तीव्र प्रहार इस छन्द में है–

कोउ कहै अहौ मधुप कौन कहै तुम्है मधुकारी।
लिये फिरत विष जोग गाँठि प्रेमी बधकारी॥
रूचिर पान कियौ बहुत के अधर अरुन रंगरात।
अब ब्रज में आये कहा करन कौन कौ घात॥
जात किन पातकी॥
(भ्र० गी० ४८)

इस प्रसंग में कहीं भ्रमर का कपट और गोपियों की सरलता है (भ्र०गी० ५०), कहीं भ्रमर की रसलोलुपता है (भ्र० गी० ५१) और कहीं निर्गुण पर व्यंग है (भ्र० गी० ५३)। अन्त में लगभग ६ छन्दों में (भ्र० गी० ५३-५९) निर्गुण का ही प्रसंग है। उद्धव ने निर्गुण का बखान किया था। इसलिए गोपियाँ निर्गुण पर ही व्यंग करती हैं। अन्त में गोपियों की प्रेमानुरक्ति प्रगट होती है (इत सब प्रेमी बसत हैं तुमरौ गाहक नाहिं– भ्र० गी० ५६)।

केवल उद्धव और कृष्ण पर ही नहीं समूचे मथुरावासियों पर गोपियाँ व्यंग करती हैं। गोपियाँ वेदान्त और कर्मवाद से प्रेम को श्रेष्ठ बताती हैं। (भ्र० गी० ५७)। गोपियाँ अपने व्यंग को थोड़ा और विस्तृत करती हैं। जो काला है वह कुटिल है। एक श्याम के स्पर्श से गोपियों का अंग जल रहा है। इसके बाद उद्धव ने योग का भुजंग ला दिया है–

एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग।
ता पाछे फिरि मधुप यह लायो जोग भुजंग॥
(भ्र० गी० ५८)

उद्धव पर व्यंग करते-करते स्वयं गोपियाँ प्रेम में मग्न हो जाती हैं। उनके पसीने के साथ मानों स्नेह का सागर पड़ा हो। उनकी कंचुकी, आभूषण, हार भीग गये। उसी प्रेम के प्रवाह में उद्धव भी बह गये। वे भले ही ज्ञान के तटबन्ध रहे हों, किन्तु ब्रज में किनारे के तिनके हो गये-

उमग्यो ओं तहँ सलिल सिन्धु लै तन की धारन।
भींजत अम्बुज नीर कंचुकी भूषन हारन॥
ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ चले बहाय।
भले ग्यान की मेड़ हौं ब्रज में प्रगट्यौ आप॥
कूल के तृन भये॥
(भ्र०गी० ६१)

उद्धव का ज्ञान पहले ही पराभूत हो गया था। अब वे प्रेम की प्रगाढ़ता का अनुभव करने लगे। प्रेम की अवस्था में ही शुद्ध भक्ति प्रकाशित होती है। ज्ञान की द्विविध, ग्लानि और मन की मन्दता नष्ट हो गयी है। उद्धव कहने लगे कि प्रेम की पात्र इन गोपियों का दर्शन करके मैं कृतकृत्य हो गया। (हौं तो कृतकृत ह्वै गयौ इनके दरसन मात्र भ्र० गी० ६२)। मैं इन्हें मर्यादा का मार्ग बताने आया था। मैंने ज्ञान और कर्म का निरूपण किया। लेकिन ये गोपियाँ कुल की लज्जा को समाप्त करके प्रेमासक्त हो गयीं। इसलिए ये गोपियाँ धन्य हैं। (भ्र० गी० ६३)। मर्यादा को मिटा कर जो मोहन का ध्यान करता है वह परमानन्द को प्राप्त करता है। सच्चा प्रेम ज्ञान और योग से परे होता है-

जे ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावैं।
काहे न परमानन्द प्रेम पदवी को पावैं॥
ग्यान जोग सब कर्म ते परे प्रेम की साँच।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे काँच॥
विषमता बुद्धि की॥
(भ्र० गी० ६४)

उद्धव को प्रेम की तीव्रता का अनुभव होता है। वे ब्रज के वनों की लतायें, वृक्ष और झाड़ियाँ बन जाना चाहते हैं। (भ्र० गी० ६७)। यह पुष्टि सम्प्रदाय के पुष्टि जीवों क़ी अभिलाषा है। गोपियाँ श्रीकृष्ण की केलि की अन्तरंग सहायिकायें हैं। उनके सान्निध्य से प्रेम का ऐसा प्रसार होता है जिससे सारी दुविधायें समाप्त हो जाती हैं-

गोपी प्रेम प्रसाद सों हौं ही सीख्यो आय।
ऊधौं तें मधुकर भयौ दुबिधा जोग मिटाय॥
पाय रस प्रेम कौ॥
(भ्र० गी० ६८)

सूरदास के 'भ्रमरगीत' का प्रयोजन सगुण का प्रतिपादन और निर्गुण का खंडन है। वे वियोगिनी ब्रज बालाओं की मनोव्यथा का मार्मिक उद्घाटन करते हैं। नन्ददास का प्रयोजन वियोग दशा की अभिव्यक्ति नहीं है। वे परम प्रेम रूपा भक्ति की ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। इस काव्य के आरम्भ में उन्होंने

अपने इस प्रयोजन को बीज के रूप में रखा है। क्रमशः इसका विकास होता है। इसकी समाप्ति के समय उद्धव की प्रेम दशा को दिखा कर नन्ददास ने अपने उद्देश्य की सिद्धि की है। स्वयं उद्धव पुलकित होकर गोपियों के गुणों को गाते हुए ब्रज में आते हैं। वे मोहन के गुणों को भूल गये। (भ्र० गी० ६९)। वे श्रीकृष्ण से ही कहने लगे कि आप वृन्दावन में जाकर रहें। और सबका साथ छोड़कर उन्हीं को सुख दीजिये–

पुनि पुनि कहै हे स्याम जाय वृन्दावन रहियै।
परम प्रेम कौ पुंज जहाँ गोपी संग लहियै॥

और संग सब छांडि कै उन लोगन सुख देहु।
नातरु टूट्यौ जात है अबहीं नेह सनेह॥
करोगे तौ कहा ?
(भ्र० गी० ७२)

ज्ञानमार्गी होने के कारण उद्धव को श्रीकृष्ण और गोपियों में भेद दिखाई पड़ा था। द्वैत की अवस्था में भी परम प्रेम रूपा भक्ति के कारण गोपिकायें कृष्णमय है। उद्धव से श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझमें और उनमें अन्तर नहीं है। आपने जैसे मुझमें गोपियों को देखा उसी तरह से मैं भी उनके ही अन्दर हूँ–

उनमें मोंमैं हे सखा छिन भरि अन्तर नाहिं।
ज्यौं देख्यौ मो माँहिं वे हौ हूँ उनहीं माहिं॥
तरंगिनि वारि ज्यौं॥
(भ्र० गी० ७४)

यह तादात्म्य की दशा है। प्रेमा भक्ति उभय पक्षीय है। यह जिस तरह से उपासक को भाव विह्वल बना देती है, उसी तरह से उपास्य भाव विह्वल हो जाता है। नन्ददास का यह काव्य सूरदास के समान वक्रोक्तियों और अनुभूति की सघनता से भरा हुआ नहीं है। फिर भी इस काव्य में ज्ञान और कर्म के ऊपर प्रेमा भक्ति को प्रभावशाली ढंग से स्थापित किया गया है। इसीलिए 'भ्रमरगीत' की परम्परा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। वल्लभ सम्प्रदाय में मान्य भक्ति को इस काव्य के द्वारा कवि ने प्रभावशाली ढंग से उपस्थित किया है।

●

श्याम सलूने गात री काहु को ढोटा।
आई हूँ देख खिरक मुख ठाढ़ो, न कुछ कहेन की बात॥
कमल फिरावत नयन नचावत, मोतन मुर मुसकात।
छवि के बल जगजीत गर्व भरयो, में न मानो इतरात॥
नखसिख रूप अनूप रूप छवि, कवि पे बरनी न जात।
नन्ददास चातक की चोंच पुट, सब घन कैसे समात॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाल लालौ विजयेते ॥

श्री शुद्धाद्वैत मधुरोपासना में आयुर्वेद

-राजवैद्य श्री शिवकुमार शास्त्री

लेखक सुविख्यात चिकित्सक, ज्योतिषी तथा संगीतज्ञ हैं । आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं तथा जो भी आपके संपर्क में आता है, वह आपकी विद्वत्ता और आपके अनुभव से मार्गदर्शन प्राप्त करता है । आप अभी तक पन्द्रह बार विदेश-यात्रा कर चुके हैं तथा देश-विदेश में आपके सहस्रों शिष्य विद्यमान हैं ।

अनेकानेक सोमयज्ञ से प्रसन्न हो जब वेद्यो वैद्यः साक्षात् नारायण अवतरित हों तो वेद, वेदांग सहित सभी विधाओं से प्रमाणित धर्म और आचार की पुनः स्थापना अवश्यम्भावी है । फलतः श्रीमद् वल्लभकुलाचार में सूचित क्रियाकलाप सभी स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद सम्मत हैं ।

आयुर्वेद है –

हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तन्त्र यत्रोक्तं आयुर्वेदस्तदुच्यते ॥

और स्वास्थ्य है –

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थानित्यभिधीयते ॥

काल क्रमानुसार जब समाज में ग्लानि और क्षोभ प्रबल होते हैं तब तब श्री भगवान् का करुणावतार होता है और संसार-ज्वर से संतप्तजनों को ज्वरमुक्त करने को श्री भगवान् की कृपा का उदय होता है ।

आयुर्वेद आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को मानता है । जीवात्मा सांसारिक प्रपंच बुद्धि से प्रसित रहकर सुख और दुःख के झूले में झूलता , मनुष्य जन्म को निष्फल कर काल कवलित होता रहता है । इसीलिए उपदेश है-

नाश्रितोवल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले ।

मनुष्य का जन्म मिला, तो जो वचन दिया था उसे भूले, प्राणियों को आसुरी सम्पदा छोड़कर दैवी सम्पदा प्राप्त हो, उनकी आत्मा-भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न हों और प्राणी (देही) स्वस्थ रहे, यह आयुर्वेदोक्त उपदेश श्रीमद् आचार्यवर ने सुलभ कराया है ।

भगवान् स्वयं वैश्वानर रूप में सभी प्राणियों में स्थित हैं, यह तो सुविदित है ही ।

आयुर्वेद में चिकित्साविधि हैं-

१. दैव व्यपाश्रया
२. युक्ति व्यपाश्रया और
३. सत्वावजया

व्यवहार में चिकित्सकगण सामान्यतया युक्तिव्यपाश्रया मात्र से रोगी की व्यवस्था करते हैं । चिकित्साक्रम में औषधि योगों का व्यवहार तो है ही साथ ही मणि, मन्त्र, दान, बलि, उपहारादि भी उल्लिखित हैं । अब मन्त्र पुस्तक में पढ़कर जप करने का कोई वांछित फल मिले, ऐसा तो सम्भव नहीं । फल चाहिये तो गुरूचरणों में शरण लेना ही होगा और इसका सरल सुयोग उपलब्ध है– श्री वल्लभ शरणागति । यही दान, बलि, उपहार के सम्बन्ध में भी है । फलतः दैव व्यपाश्रया और सत्वावजया चिकित्सा का पूरा फल मधुरोपासना में सुलभ है ।

विचार, वाणी और कर्म का ही फल सभी को प्राप्त होता है । आयुर्वेदोक्त दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या के अनुकूल ही भगवद्सेवा का विधान भी मंदिर में वैष्णवजनों को सहज सुलभ है ।

आहार शुद्धौ, विचारशुद्धि एतद्नुसार कथन, श्रवण, कीर्तन, सुगन्ध, षडरस भोजन और इष्ट का मनोरम दर्शन आहार शुद्धि का मार्ग उपलब्ध करता है । अभोज्य भोजन और अपेय पेयन से रोग और क्लेश होता है, इसीलिए अभक्ष्य भक्षण का निषेध है । अशुद्ध जल रोगकारक है, रोगमुक्त रहना है तो जल शुद्ध ही व्यवहार में लेना उचित है । इसी प्रकार संसर्गज रोग न हों इसीलिये सत्संग को प्रशस्त बताया है । आहार विहार कैसा हो इसके लिये आचारशुद्धि अनिवार्य है । शास्त्रोक्त आचार रसायन इसीलिये अनुपालनीय माना है ।

नायमात्मा बल हीनेंन लभ्यो–

एतदर्थ शरीर और मन को पुष्ट करना ही धर्म कर्म को पुष्ट करेगा और तभी भगवद्चरण युगल में मधुराभक्ति पुष्ट होगी । इसीलिये पुष्टिमार्ग का आश्रय लेना व्यक्ति, समाज और राष्ट्र–विराट् विश्व के स्वस्थ रहने का उपाय है ।

सभी प्राणियों के शिर पर काल नाचता है, और जो काल के फन पर नाचता है उसके आश्रित को फिर संसार–ज्वर कहां ? आयुर्वेद में ज्वर को महाव्याधि माना है । श्री भगवान् स्वयं ही परमवैद्य हैं जिनकी कृपा से तापत्रय दूर होता है । योगयुक्त और योगारूढ़ होने से सरलतम है परब्रह्म परमेश्वर की शरणागति और यही योगक्षेम का परम साधन भी ।

●

गायो न गोपाल मन लायो ना रसाल लीला ।
सुनि न सुबोध जिन साधु सङ्ग पायो है ॥
सेयो ना सवाद करी धरी अव धरी हरी ।
कबहुँ न कृष्ण नाम रसना कहायो है ॥
वल्लभ श्री विट्ठलेश प्रभु की सरण आये दीन ।
व्है के मूढ़ छन सीस न नवायो है ॥
रसिक कहाय अब लाज हूँ न आवे तोही ।
मानुष शरीर धरी कहाँ धौ कमायो है ॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के कर्तव्य

(आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में)

- डा० गोपीवल्लभ पाठक

लेखक दर्शन में एम० ए०, वेदान्ताचार्य तथा पीएच० डी० की डिग्रीयाँ प्राप्त किये हुए हैं । आप वंशपरम्परागत भागवत कथाकार तथा प्रसिद्ध विद्वान् व कथावाचक श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री ''तदीय'' के सुपुत्र हैं । आपके पिताश्री का भी एक लेख संस्कृत भाषा में इस ग्रन्थ में समाविष्ट है । आप पंडित राममूर्ति शास्त्री पौराणिक के प्रसिद्ध श्रीमद्भागवत विद्यालय, ललिताघाट, वाराणसी में श्रीमद्भागत का अध्ययन कराते हैं । प्रतिदिन नियमित रूप से श्री गोपाल मन्दिर में आप प्रातःकाल मंगला के दर्शन के पहले कथामृत का पान श्रोताओं को कराते है । आपके दादा श्री लक्ष्मणजी व्यास तथा आपके पिताश्री के भी कथा वचनामृत का लाभ श्री गोपाल मन्दिर में वैष्णवजनों को मिलता रहा है।

आज जब पूरे विश्व के देशों में मानवाधिकार की चर्चायें जोरों पर चल रही हैं, मानवाधिकार आयोगों का गठन हो रहा है, ऐसे समय में मानव अपने कर्तव्यों को विस्मृत कर केवल अधिकारों के लिये संघर्ष कर रहा है । मानव में मानवता की विस्मृति ही संघर्ष का कारण बनती है । सृष्टि के आदिकाल में अनेकानेक योनियों में जीवों की उत्पत्ति करने के बाद जिस समय ब्रह्मा ने पुरुष की उत्पत्ति की, उसे देखकर ब्रह्मा स्वयं प्रसन्न हुए-

''तैस्तैरतुष्टहृदयैः पुरुषं विधाय, ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ।'' (श्रीमद्भागवत)

केवल ब्रह्मा ही नहीं वरन् देवों को भी प्रसन्नता हुई कि हम देवों को इनके द्वारा पूजा प्राप्त होगी । आज वही मानव अपने कर्तव्यों को भूलाकर दिग्भ्रान्त हो गया है ।

वस्तुतः मानवता का शुद्धरुप वैष्णवता है। केवल वैष्णवता को भी यदि मानव सम्यक् रूप से अपने आचरण में स्थान प्रदान करे, तो भी सर्वत्र सुख-शान्ति का प्रसार हो जायगा । वैष्णवता का प्रथम सोपान असुरों में भी मानवता का प्रतिष्ठापन कर सकता है । तभी तो भक्तराज प्रह्लाद अपने मित्रों से कहते हैं-

''तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरूत सौहृदम् ।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥''
(श्रीमद्भा० ७/६/२४)

जीवमात्र के प्रति दया का भाव मानवता के बिना असम्भव है और वह मानवता वैष्णवता के बिना पूर्ण नहीं हो पाती । वैष्णवता के माध्यम से ही

''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (उपनिषद्)

''मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।'' (श्रीमद्भगवद्गीता)

इन भावों को प्राप्त किया जा सकता है । आज इन्हीं भावों की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि सर्वत्र चराचर जगत् के प्रति अपने स्वार्थ के लिये मानव क्रूर व्यवहार कर रहा है । इन्हीं भावों को स्मृत कराने के लिये समय-समय पर अनेकों वैष्णवाचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ, उन आचार्यों में जगद्गुरू महाप्रभु श्रीवल्लभांचार्य का

सिद्धान्त एक विशिष्ट स्थान रखता है । महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त मानवमात्र को श्रुति-स्मृति प्रतिपाद्य उसके यथार्थ स्वरूप का न केवल बोधमात्र कराता है, अपितु उस मार्ग पर अग्रसरित होने के लिये कर्तव्यों का उपदेश भी करता है । महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने वैष्णवों को जिस मार्ग का पथिक बनाया वह मार्ग है- दीनता का मार्ग-

''भक्तानां दैन्यमेकं हि भगवत्तोष कारणम् ।''

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के इस मार्ग के अनुसार जीव की दैन्यता ही भगवत् प्रसन्नता की हेतु है । अपने अकिंचन भक्तों पर भी प्रभु अनुग्रह करके उनका पोषण करते हैं । प्रभु के द्वारा पोषण के इस मार्ग का नाम ''पुष्टिमार्ग'' है । इस पुष्टिमार्ग के विषय में महाप्रभु की स्पष्ट आज्ञा है-

''भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ।''

पुष्टिमार्ग कोई नया मार्ग नहीं, वरन् वेदशास्त्र प्रमाणित मार्ग है, पुष्टिमार्गावलम्बियों में वैष्णवता सहज ही प्राप्त होती है-

''वैष्णवत्वं हि सहजम्''

वस्तुतः वैष्णवता का प्रारम्भ भगवत् शरणागति से होता है । प्रभु शरणागत के समस्त पापों से उसकी रक्षा करते हैं-

''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥'' (गीता)

आचार धर्मों का पालन –

पुष्टिमार्ग में आचार धर्मों का पालन विशेषतया करणीय है-

''आचारः प्रथमो धर्मः''

इस नियम के अनुसार प्रभु सेवा में तथा अन्यत्र भी विचार करते रहने से राजस तामस वस्तओं का अनायास ही त्याग हो जाता है, वस्तुतः रोगों का मूल कारण राजस तामस वस्तुओं का सेवन है । आज के परिप्रेक्ष्य में जबकि सर्वत्र अभक्ष्य भक्षण का प्रसार तेजी से हो रहा है,स्वस्थ रहने के लिये आचार धर्मों का पालन और भी आवश्यक हो गया है । महाप्रभु ने जीवन के लिये अत्यावश्यक ''जल'' भी कौन सा ग्राह्य है, इस बात को अपनी लीला से प्रकट किया है । प्रायः बैठकजी में कूपस्थापना इस बात का प्रतीक है कि-पवित्रतम वस्तुएं ही सेवनीय है, और उन्हीं वस्तुओं के सेवन से मन, बुद्धि, प्राण आदि में निष्कल्मषता बनी रहती है और प्रभु भी उत्तम वस्तुओं के भोक्ता हैं इसलिये उत्तम अन्न, जल तथा वस्तुओं का ही प्रभु सेवा में विनियोग करना चाहिये तथा प्रभु को समर्पित करके ही अपने उपयोग में लेना चाहिये, इस विषय में महाप्रभु आज्ञा करते हैं-

''तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तु समर्पणम् ।''

भक्ष्याभक्ष्य विवेक –

भक्ष्याभक्ष्य के परिणाम सहित स्वभाव का उल्लेख करते हुए भगवद्-गीता में भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा है कि –

"कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥"

अत्यन्त कटु (नीम आदि) अत्यन्त खट्टे, अत्यन्त नमकीन, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त तीक्ष्ण(मिरचा आदि) अत्यन्त नीरस एवं अत्यन्त दाहक ये सब आहार राजस पुरुष को प्रियं लगते हैं, ये राजस आहार दुःख शोक एवं रोग को उत्पन्न करते हैं। तथा जो भोजन कम पका हुआ, रसहीन अथवा बासी या जूठा या अपवित्र है, वह भोजन तामस पुरुषों को अच्छा लगता है। राजस और तामस इन दोनों भोजनों का त्याग करके सात्विक भोजन करना चाहिये, क्योंकि जैसा अन्न खाया जाता है वैसा मन बनता है, इसलिये सात्विक भोजन करना चाहिये, जिस भोजन के करने से आयु, सात्विक-भाव, बल आरोग्य, सुख एवं प्रीति की वृद्धि होती है, ऐसे सरस, स्निग्ध (चिकने) स्थिर भोजन करने चाहिये।

भगवत्प्रसादी वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिये, जो भी अन्न, वस्त्र भगवत्सेवा में अंगीकार होने योग्य हों ,उसे भगवत्प्रसादी करके ही लेना चाहिये। प्रसादी वस्तुओं का सेवन करने वाले अजया माया को भी जीत लेते तहैं। बृहस्तपति शिष्य उद्धव भी इसी मार्ग के पथिक थे, उन्होंने भगवद् उपभुक्त वस्तुओं का ही सेवन किया-

"त्वयोपभुक्तस्त्रग्गन्ध्वासोलङ्कार चर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥"

(श्रीमद्भा० ११/६/४६)

अभक्ष्य वस्तुओं का सर्वथा त्याग करना चाहिये, इनके सेवन से न केवल तामस ही बढ़ता है, अपितु प्रभु भी अप्रसन्न होते हैं तथा दोष भी प्राप्त होता है।

असमर्पित का त्याग –

इसलिये पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का कर्तव्य है कि-

"असमर्पितवस्तुनां तस्माद् वर्जनमाचरेत् ।"

असमर्पित वस्तुओं का सर्वथा त्याग करना चाहिये, महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यचरण की इस आज्ञा की प्रासंगिकता आज के आधुनिक युग में और बढ़ गयी है। वस्तुमात्र में स्वाभाविक दोष रहते हैं, वस्तुओं में रहने वाले इन दोषों की निवृत्ति के लिये उस वस्तु को भगवद् अर्पण करना चाहिये। इस कलियुग में भी निर्दोष वस्तुओं को प्राप्त करने के उपाय बताते हुए आचार्यचरण आज्ञा करते है-

"कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ।

इस जगत् में भगवान् श्री कृष्ण को छोड़कर कोई निर्दोष नहीं है, इसलिए प्रभु को सर्ववस्तु समर्पण करना चाहिए। जिस प्रकार गंगाजी में सहस्त्रों जलप्रवाह मिलते हैं और वे भी गंगाजल हो जाते हैं, गंगाजी अपने सामर्थ्य से उन्हें गंगाजल बना लेती हैं, उसी प्रकार जो वस्तु प्रभु को अर्पण करके ली जाती है, वह भी प्रभु के सम्बन्ध से सर्वथा निर्दोष हो जाती है। शास्त्रों के अनुसार-

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदनन्त्याय कल्पते ॥''

भगवत्प्रसादी अन्न से अन्य देवताओं का पूजन तथा भगवत्प्रसादी अन्न से पितरों के श्राद्ध आदि करना चाहिये। यदि किसी समय समर्पण करने का अवसर न मिल सके तो तीन बार अष्टाक्षर का उच्चारण करते हुए उसमें चरणामृत पधराकर अथवा किसी छवि (चित्र जी) को भोगधर कर उसका ग्रहण करना चाहिये। महाप्रभु निबन्ध में आत्मक्लिष्ट,लोकक्लिष्ट तथा चित्तक्लिष्ट इन तीन प्रकार के क्लिष्टों को अर्पण करने का निषेध करते हैं। उसी प्रकार लोकनिषिद्ध तथा शास्त्रनिषिद्ध वस्तु प्रभु को अङ्गीकार नहीं कराना चाहिये । अपने उपयोग में ली गई वस्तुओं का भी प्रभु को समर्पण नहीं करना चाहिये ।

समर्पण –

प्रभु को मात्र मन का भी समर्पण करने वाले भक्त प्रिय लगते हैं, गीता में भगवान् श्रीकृष्ण आज्ञा करते हैं–

''मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्मकुरु ।''

मन और बुद्धि इन दो को जिसने प्रभु में समर्पित कर दिया निश्चित वह प्रभु में वास कर रहा है–

''मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः''

मन और बुद्धि को प्रभु में सलग्न करने के लिये हरिमन्दिर से बहुत दूर न रहना चाहिये–

''अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति ॥''

''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' (उपनिषद्)

इस सिद्धान्त के अनुसार ही आचार्यचरण भी भगवान् में बुद्धि लगाने के लिये आज्ञा करते हैं–

''अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्''

मन और बुद्धि के बाद जैसे–जैसे समर्पण के पदार्थ बढ़ते जाते हैं, वैसे–वैसे समर्पण में उत्तमता आती है–

''पत्र पुष्पं फलं तोयं'' तथा

''यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।''

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में समर्पण की उत्तमता वर्णित है । श्रीमद्भागवत में भी नौ योगीश्वरों ने समर्पण करने के लिये इस प्रकार राजा विदेह को प्रबोधित किया है–

''कायेनवाचामनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेतत् ॥''

(११/२/३६)

''इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥''

(११/३/२८)

(शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि और अहंकार से, अनेकों जन्मों अथवा एक जन्म की आदतों से स्वभाववश जो-जो करे, वह सब परमपुरुष नारायण के लिये ही है– इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे। यज्ञ, दान, तप, अथवा जप, सदाचार का पालन और स्त्री, पुत्र, घर, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ अपने को प्रिय लगता हो उन सब को भगवान् के चरणों में निवेदन करना चाहिये।) महाप्रभु के अनुसार सर्व समर्पण में ही जीव की कृतार्थता है–

''सर्व समर्पितं भक्तया कृतार्थोऽसि सुखीभव।''

ब्रह्मसम्बन्ध का महत्व –

समर्पण की सर्वोत्कृष्ट स्थिति ब्रह्मसम्बन्ध (आत्मनिवेदन) है। ब्रह्मसम्बन्ध करने मात्र से जीव के दोषों की निवृत्ति हो जाती है।

''जीवाः स्वभावतो दुष्टाः।''

भगवद् आज्ञा का अक्षरशः उल्लेख करते हुए ''सिद्धान्त-रहस्यम्'' में आचार्य चरण आज्ञा करते हैं–

''ब्रह्मसम्बन्धकरणाद् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः॥''

(ब्रह्मसम्बन्ध करने से देह और जीव सम्बन्धी सर्वदोषों की अवश्य निवृत्ति होती है। ये दोष पाँच प्रकार के हैं।) जिन्होंने प्रभु को आत्मनिवेदन किया है, उनको किसी भी प्रकार की चिंता नहीं करनी चाहिये; उनके लिये–

''निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।''

तादृशीय भगवदीयजनों के साथ आत्मनिवेदन का स्मरण तथा– ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' का सतत उच्चारण करते रहना कर्तव्य है।

ब्रह्मसम्बन्धी वैष्णवों को नित्यसेवा–

ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा का मुख्य प्रयोजन भगवत्सेवा है, वैष्णवता तो शरणमात्र में जाने से प्राप्त हो चुकी थी, परन्तु भगवत्सेवा का अधिकार ब्रह्मसम्बन्ध से ही प्राप्त होता है। नित्य नये-नये पदार्थों के उपयोग से नये दोषों के प्राप्ति की सम्भावना भी समाप्त हो जाये, इसलिये ब्रह्मसम्बन्धी वैष्णवों को नित्य भगवत्सेवा में पहुँचना चाहिये। महाप्रभु के अनुसार किसी भी देश में तथा किसी भी काल मे जीव का भगवत्सेवाके सिवाय कोई दूसरा धर्म नहीं है। यदि सेवा के बिना जीव अन्य धर्म करता है तो उसे दुःख की प्राप्ति होती है। यह सेवा तीन प्रकार की होती है– तनुजा, वित्तजा तथा मानसी। इनमें से तनुजा तथा वित्तजा सेवा साधन सेवा की कोटि में आती है। साधन सेवा करते रहने से मानसिक सेवा जो कि फलरूपा तथा श्रेष्ठसेवा है, उसकी सिद्धि होती है। जिस प्रकार गंगाजी का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से समुद्र की ओर बहा करता है, उसी प्रकार अविच्छिन्न रूप से मन का प्रवाह प्रभु की ओर बहा करे, उसका नाम मानसिक सेवा है। बिना तनुजा के मानसी सेवा की प्राप्ति कठिन होती है, इसमें वित्तजा सेवा सहायिका के समान होती है। इसलिये ब्रह्मसम्बन्धी वैष्णवों के नित्य अपने तन(शरीर) से सेवा अवश्य करनी चाहिये। दूसरों के द्वारा तनुजा सेवा करवाने से अपनी मानसी सेवा की सिद्धि हो नहीं पाती। इसलिये अन्यलोगों के रहने पर तथा व्यस्तता के समय भी कुछ न कुछ अवश्य तनुजा सेवा के लिये नित्य पहुँचना चाहिये।

वैष्णवता का गोपन –

वैष्णवता प्रचार की वस्तु नहीं है, मुरारीदास सुरध्वज ब्राह्मण (दो सौ बावन) की वार्ता के अनुसार अपनी वैष्णवता प्रसिद्ध नहीं करनी, गुप्त रखनी चाहिये, तादृशी जनों के मध्य ही भगवद्‌सहानुभावता को प्रगट करनी चाहिये। चित्त की स्थिरता के लिये स्वमार्गीय ग्रन्थों का अध्ययन, विचार , पाठ आदि करते रहना चाहिये। आचार्य चरण सुबोधिनी में आज्ञा करते हैं कि –

"शास्त्रमवगत्य मनोवाक्देहैः श्रीकृष्णः सेव्यः।"

दो सौ बावन वैष्णवन् की वार्ता के अनुसार श्रीगुसाईंजी महाराज ने रामदास विरक्त वैष्णव को महाप्रभु के ग्रन्थन् का तथा अष्टाक्षर का नित्यपाठ करने की आज्ञा प्रदान किया। किशोरी बाई की (दो सौ बावन वैष्णवन् की) वार्ता के अनुसार नित्य प्रथम यमुनाष्टक का पाठ करना चाहिये। "श्रीकृष्णाश्रय" और "श्री सर्वोत्तमस्तोत्र" का पाठ वैष्णवों के लिये गायत्री के सदृश सिद्धिप्रद है। गायत्री के जप से जैसे ब्राह्मणों को सिद्धि प्राप्त होती है, वैसे ही पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को "श्री सर्वोत्तमजी" के पाठ से सिद्धि प्राप्त होती है। वैष्णवता के गोपन (रक्षण) के लिये नित्य इनका पाठ करना चाहिये।

वैष्णवों के कर्तव्य –

जिस प्रकार राजकीय पुरुष अपने राजचिह्न धारण करके ही राजदरबार में जाता है। यदि उसके बिना दरबार में जाय तो राजा अप्रसन्न होता है, उसी प्रकार पुष्टिमार्गीय वैष्णव प्रभु के प्रिय सेवक हैं, उन्हें प्रभु के दरबार रूपी जगत् में सदा-सर्वदा वैष्णव चिह्न को धारण करे रहना चाहिए। तिलक-मुद्रा, तुलसी की कण्ठी तथा धोती बगलबन्दी (बण्डी) पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की वेशभूषा है। क्षणमात्र भी इसके बिना नहीं रहना चाहिये। दया भवईया(दोसौ बावन) की वार्ता के अनुसार वैष्णववेश को धारण कर लेने से भी शरीर से महापातक उतर जाते हैं। प्रातः भगवद् दर्शन, भगवत् स्मरण, रात्रि में विश्राम के पूर्व भगवत्स्मरण, कम से कम अष्टाक्षर महामंत्र का १०८ बार जप आदि वैष्णवों के नित्यकर्म हैं।

तुलसी की कण्ठी –

किसी भी अवस्था में तुलसी की कण्ठी का त्याग नहीं करना चाहिये। कण्ठी धारण के बिना अन्न जल का भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। पद्मपुराण के अनुसार–

"यज्ञोपवीतवद्धार्या कण्ठे तुलसी मालिका।
नाशौचं धारणे तस्याः यतः सा ब्रह्मरूपिणी॥"

द्विजों के लिये जैसे यज्ञोपवीत सदा धारणीय है, वैसे ही वैष्णवों को तुलसी की कण्ठी धारण करना चाहिये, इसके धारण करने से कभी भी अपवित्रता नहीं आती, क्योंकि कण्ठी ब्रह्मरूपिणी है। शास्त्रों के अनुसार आधे क्षण भी कण्ठी के बिना रहने वाला विष्णुद्रोही के समान होता है।

तिलक –

पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को भगवत्प्रसादी कुमकुम से भगवच्चरणाकृति तिलक को सदा धारण करना चाहिये। भविष्यपुराण के अनुसार इस प्रकार तिलक धारण करने वाले के कर्म अनन्त को प्राप्त कराने वाले होते हैं–

''हारिद्रेनारूणेनैव कृष्णभुक्तेन पुण्ड्रकम्।
कृत्वा कर्मसु कुर्वीत तच्चानन्त्याय कलप्यते॥''

ब्रह्माण्डपुराणोक्त भगवदाज्ञा के अनुसार पूर्वोक्त विधि से तिलक धारण करने से पातक समाप्त हो जाते हैं। दर्पण में अथवा जल में देखकर तिलक धारण करना चाहिये, इसके बिना तिलक धारण करने से तिलक व्यर्थ हो जाता है तथा भगवान् भी उससे प्रसन्न नहीं होते हैं। तिलक के मध्य में चरणामृत धारण करना चाहिये।

वेश-भूषा –

भारतीय संस्कृति के अनुसार पंचकच्छ वाली धोती सदैव धारण करना चाहिये। इसके बिना कोई भी सत्कर्म करने से वह कार्य अविधि ही रहता है। जो वस्त्र नीचे से पहने जाते हैं,जैसे पैन्ट आदि तथा जो वस्त्र ऊपर से पहने जाते हैं, जैसे कुर्ता आदि, उसको पहन कर सत्कर्म करने से उस कार्य का फल नहीं के बराबर होता है। इसलियें सदैव धोती और बगलबन्दी (बण्डी) धारण करना चाहिये। विशेष परिस्थिति में भी कम से कम प्रातःकाल तथा दैवी कार्यों में धोती बगलबन्दी अवश्य धारण करना चाहिये।

वैष्णवागमन –

वैष्णवमात्र के मिलने पर भगवत्स्मरण करना, वैष्णवों का सम्मान तथा उनके आगमन पर उत्सव करना चाहिये। गुजरात के लकड़ी बेचने वाले वैष्णव स्त्री-पुरूष(दो सौ बावन) की वार्ता के अनुसार– भगवदीयों के अन्तःकरण में भगवान् विराजते हैं, इसलिये भक्त और भगवान् में भेद दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। भगवदीयों का सम्मान भगवत्सम्मान है। षोडशग्रन्थ में आचार्यचरण आज्ञा करते हैं–

''उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा।''

वैष्णवों का आगमन पुष्टिमार्गीयों के लिये उत्सव होता है। श्री हरिराय महाप्रभु ने तो आचार्यचरण महाप्रभु से भीअधिक भाव वैष्णवों में करने की आज्ञा करते हुए लिखा –

''तदीयेषु च तद्बुद्ध्याभरः स्थाप्यो विशेषतः।
यथा दूतीषु भवति विषयिणं मतिस्तथा॥''

(शिक्षापत्र १/१९) (जैसा भाव श्री आचार्यचरण में हो, उससे विशेष भाव भगवदीयों में रखे, जिस प्रकार कामीपुरुष उस दूती का विशेष सम्मान करता है, जिसके द्वारा परस्त्री प्राप्त होती है, उसी प्रकार भगवदीयों का सम्मान विशेष आदर पूर्वक करें।)

वैष्णवों के आगमन का सर्वोत्तम फल सत्संग की प्राप्ति है। दोय वैष्णव गुजरात के (दो सौ बावन की) वार्ता के अनुसार जितना काल वैष्णवन् के सत्संग में जाये वही जीवन है।

आचार्यचरण का माहात्म्य –

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य की कृपा से ही भगवान श्रीकृष्ण की पुष्टिलीला का दर्शन होता है। एक क्षत्री वैष्णव ने कथा में सुना कि – ''जो जीव मन शुद्ध करके आत्मनिवेदन करें है और गुरू मन शुद्ध करि करावें हैं, तो महाप्रभुन की कृपा ते अलौकिक दृष्टि हो जात है।'' (दो सौ बावन) श्री गुसाईंजी की आज्ञा से श्री गिरिधरजी महाराज ने उस वैष्णव को जब तीन बार आत्मनिवेदन कराने के बाद चौथे बार जब महाप्रभु की

पलंगडी सन्मुख पधराकर आत्मनिवेदन करवाया तो उस वैष्णव को पुष्टिलीला के व्रजभक्तन सहित दर्शन भये। इस मार्ग में भगवान् श्री कृष्ण का ज्ञान देने वाले गुरु श्री महाप्रभुजी हैं– **''श्रीकृष्णज्ञानदो गुरुः।''**

जिसने अपने भावों से आचार्यचरण को प्रसन्न किया होता है, ऐसे ही पुष्टिमार्गीय भक्त के हृदय में यशोदोत्संग लालितप्रभु सदा विराजते हैं। जैसी भक्ति भगवान् श्रीकृष्ण की करी जाती है, वैसी ही भक्ति अपने आचार्यचरण की करनी चाहिये। इस विषय में शास्त्रों की आज्ञा है–

''यस्य देवे यथा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ'' (उपनिषद्)

आचार्यचरण को प्रभु का स्वरूप समझना चाहिये। आचार्य (गुरु) के सम्मान के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा है–

''आचार्य मां विजानीयाद् नावमन्येत् कर्हिचित्।
न मर्त्यबुद्धयाऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥''

(श्री मद्भा० ११/१७/२७)

(आचार्य को मेरा स्वरूप समझे, कभी उनका तिरस्कार न करें, क्योंकि गुरु सर्वदेवमय होता है।) आचार्यचरण के इस माहात्म्य को जानकर ही अष्टछाप भक्तहृदय सूरदास ने आचार्यचरणों के प्रति – **''दृढ़ इन चरणन केरो भरोसो''** से अपने आश्रय को प्रकट किया है। आज के समय का स्मरण करके श्रीहरिराय महाप्रभु भी शिक्षापत्र में स्पष्ट आज्ञा करते हैं–

''नैतस्मिन् समये कोऽपि सहायो मम वर्तते।
विना श्रीवल्लभाचार्य चरणाम्बुरूहाश्रयात्॥''

(शिक्षापत्र)

(इस समय श्री वल्लभाचार्यजी के चरणारविन्द के बिना मेरा कोई सहायक नहीं है।)

गोस्वामी बालकों का स्वरूप –

आचार्यचरण महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के वंशजों का भी वही स्वरूप है, जो महाप्रभु जी का है, उनमें किंचित् भी अन्तर नहीं करना चाहिये। स्वयं आचार्यचरण ने अपने अलौकिक माहात्म्य को अपने वंश में स्थापित किया है। प्रत्येक पुष्टिमार्गीय वैष्णव का कर्तव्य है कि ब्रह्मसम्बन्ध जयन्ती (श्रावणशुक्ला एकादशी) के दिन प्रभु को तथा दूसरे दिन महाप्रभु को और उनके वंशजों गोस्वामीबालकों, गुरुजनों को अवश्य पवित्रा धरावें।

माता-पिता का सम्मान –

चतुर्विध पुरुषार्थ के साधनभूत मानव देह की प्राप्ति कराने में जिन लोगों का महत्वपूर्ण सहयोग होता है, उनमें माता-पिता का स्थान प्रथम है। बिना माता-पिता की कृपा से मानवदेह की उपलब्धि कठिन है। माता-पिता को शास्त्रों में देव रूप से वर्णित करते हुए प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में **''मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः''** इस प्रकार वन्दना करने का विधान है। श्रीमद्भागवत के अनुसार– सभी पुरुषार्थों को देने वाले मानव देह की प्राप्ति कराने वाले माता-पिता की सैकड़ों वर्ष सेवा करने के बाद भी पुत्र माता-पिता के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। सामर्थ्यवान् पुत्र यदि माता-पिता की सेवा (भरण पोषणादि) नहीं करता है तो, मरने के बाद उसे अपना ही मांस खाने को मिलता है। जिसने अपने वृद्ध माता-पिता, साध्वी पत्नी, छोटे बालक, ब्राह्मण, गुरु तथा

शरणागत् का पालन नहीं किया, वह जीतेजी मरे के समान होता है (१०/४५/५-७)। महाराज पुरु पुत्रों के कर्तव्य तथा लक्षण का वर्णन करते हुए कहते हैं-

"को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान्।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद् विन्दते परम्॥
उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः॥"
(श्रीमद्भा० ९/१८/४३,४४)

(कौन ऐसा होगा, जो आत्म (शरीर का निर्माण करने वाले) कृत माता-पिता के ऋण से मुक्त हो सकता है, जिनकी कृपा से परमपुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। उत्तमपुत्र तो वह है, जो अभी पिता सोच रहे हों उसको कर दे, पिता की आज्ञा के बाद कार्य करने वाला पुत्र मध्यम, जिसने कार्य तो किया परन्तु अश्रद्धा (बेमन)से वह अधम पुत्र है तथा जिस पुत्र ने कार्य ही नहीं किया वह पुत्र नहीं अपितु पिता का मलरूप है।)

इस भूतल पर माता-पिता प्रत्यक्ष देवता हैं, इनका सम्मान करना तथा प्रत्येक आज्ञा का प्रसन्नतापूर्वक पालन करना पुत्र का कर्तव्य है। जिस पुत्र ने अपने कर्तव्य का सम्यक् पालन किया होता है उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। ममतामयी माँ को भारतीयपरम्परा के अनुसार "माँ" अथवा "माताजी" तथा पालनकर्ता पिता को "पिताजी" अथवा "बाबूजी" आदि शब्दों से सम्मानित एवं सम्बोधित करना चाहिये। किसी भी प्रसंग में माँ को "मम्मी", "मम" तथा पिता को "डैड", "पापा" आदि शब्दों से सम्बोधित नहीं करना चाहिये।

नामकरण –

वैयाकरण भाष्य के अनुसार- एक ही शब्द को यदि अच्छी तरह से समझ कर उसका प्रयोग किया जाय तो वह शब्द उस प्रयोग करने वाले की कामनाओं को पूर्ण करता हे तथा उसके माता-पिता स्वर्ग में पूजित होते हैं। तथा श्रीमद्भागवत के अनुसार- "तद् वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो" वाणी का वही प्रयोग सफल है- जिससे पापों का नाश होता है, इसलिये प्रत्येक शब्द के उच्चारण के समय इसका अवश्य चिन्तन करना चाहिये कि क्या इसका प्रयोग उचित है? तथा पापों को नाश करने वाला है? अपने बालकों का ऐसा नामकरण करे, जिससे उसके नामोच्चारण से किसी न किसी रूप में भगवन्नाम, भगवद्धाम अथवा भगवल्लीला का स्मरण होता हो। अजामिलोपाख्यान इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि "नारायण" नाम पुत्र का था तथापि नाम लेने वाला अपने पातकों से मुक्त हो गया।

जिसका जन्म जिस नक्षत्र के जिस चरण का हो उसके अनुसार नामकरण करना चाहिये, जहाँ तक सम्भव हो बालिकाओं का नाम दो अक्षर अथवा तीन अक्षर का तथा बालकों के नाम तीन अक्षर अथवा चार अक्षर के होने चाहिये। चिण्टु, पिण्टु, गोलु, राहुल आदि आधुनिक नामों का शास्त्रीय दृष्टि से कोई महत्व नहीं है।

तीर्थस्थल की मर्यादा –

तीर्थ शब्द का अर्थ ही है- "तरति यस्मात् तत्तीर्थम्" अर्थात जिससे तर जाय, वह तीर्थ है। मनीषियों ने जिस स्थल पर पधारकर तप, यज्ञ, कथा आदि करते हुए वास किया अथवा जिस स्थल पर प्रभु का प्राकट्य हुआ, वह स्थल पवित्रतम हो गया। ऐसे पवित्रतम (तीर्थ) स्थलों की यात्रा करने से सत्त्वगुण का उदय होता है

तथा प्रभु भी शीघ्र प्रसन्न होते हैं । वास्तविकता तो यह है कि तीर्थस्थलों में वास करना चाहिये, यदि यह सम्भव न हो सके तो तीर्थयात्रा करते हुए वहां त्रिरात्र निवास करें । तीर्थस्थलों में किये गये कर्म कई गुना फल देने वाले होते हैं, इसलिये विशेषकर तीर्थस्थलों में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि– यहाँ केवल सेवा, सत्संग, दर्शन आदि सत्कर्मों के सिवाय किसी भी प्रकार का अनाचार, दुराचार, अभक्ष्य भक्षण, अपेय एवं निषिद्ध वस्तुओं का पान, किसी का भी अपमान, तीर्थस्थल की पवित्रता में ठेस पहुँचाने वाले आदि असत्कर्म न हों, क्योंकि इन असत्कर्मों का फल जीवन को दुःखमय कर देता है । आत्ममनः शान्ति तथा अभ्युदय के लिये तीर्थस्थलों में जाना चाहिये, न कि सैर-सपाटा (पिकनिक) मनाने की इच्छा से ।

दुःसंग का त्याग –

उत्तम पक्ष तो यह है कि किसी का भी संग न करे, क्योंकि जिसका भी संग किया जाता है, उसके दोष गुण अपने में आते हैं । यदि बिना संग के लौकिक कार्य न बन सकें तो किसी सत् पुरुष का ही संग करें, क्योंकि सत्संग भी अलौकिक में सहायक बनता है, श्री हरिराय महाप्रभु के अनुसार–

"यश्च कृष्णे रतिं नित्यं बोधयत्यप्रयोजनाम् ।
निरपेक्षः सात्त्विकश्च तत्संगः साधुसंगमः ॥"

(शि० प० ३/९)

(जो सदा भगवान् श्रीकृष्ण में कारणरहित प्रीति का बोध करे और निरपेक्ष तथा सात्विक हो, उनका संग साधु पुरुषों का संग जानना चाहिये ।) दुःसंग से सदा दूर रहना चाहिये, जड़भरत को केवल मृगपुत्र के संग के कारण मृग बनना पड़ा था, आज तो कलिकाल के कारण लोग स्वतः दुःसंग की ओर अग्रसरित हो रहे हैं । श्री हरिराय महाप्रभु तो उसको भी दुःसंग की संज्ञा देते हैं– "जो महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के सिद्धान्तों, आज्ञाओं में अन्यथा वाक्य कहते हैं तथा जो संसार के प्रति अहंता और ममता की प्रेरणा देते हैं ।" दुःसंग अनायास ही प्राप्त होता है, परन्तु सत्संग दुर्लभ है, इसलिये–

"तस्मात्त्यक्त्वा दुष्टसंग कृत्वा स्वाचार्य संश्रयम् ।
तदीयजन संसर्गे स्थित्वा मार्गे तथा गुरौ ॥
कृत्वा विषयवैराग्य परितोषं विधाय च ।
सदानंदं सदानंदं फलप्राप्त्यै सदा भजेत् ॥"

(शि० प०)

दुःसंग का त्याग करके आचार्यचरण श्री महाप्रभु का आश्रय तथा भगवदीय जनों का संग एवं पुष्टिमार्ग में बुद्धि को स्थिर करके, हृदयमें विषयों के प्रति वैराग्य, संतोष को धारण करते हुए सदानंदस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का आनंद के लिये सदा भजन करना चाहिये ।

अन्याश्रयता का त्याग –

व्रजेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का अनन्यभाव से भजन पुष्टिमार्ग का मूल सिद्धान्त है,अपनी लौकिक कामना के लिये भी अन्य देवताओं के उपासना की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि "**प्रभुः सर्वसमर्थो हि**" ॥ सर्वात्मभाव से भगवान् श्रीकृष्ण का भजन करने वाले के लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं होता । आचार्यचरण अनन्यता के संरक्षण के लिये आज्ञा करते हैं–

"अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥"

दूसरे देवताओं का भजन और स्वयं वहाँ पर जाना तथा किसी भी कार्य के लिये उनसे प्रार्थना करना, इन तीन बातों को त्याग देना चाहिये। लोकव्यवहार में भी यह नियम है कि– कभी किसी तथा किसी अन्य समय किसी अन्य की सहायता लेने दौड़ने वाले का समय पर कोई सहायक नहीं बनता। प्रभु में विश्वास रखना चाहिये, यदि कभी आपत्ति आवे तो उसे भी प्रभु की लीला समझना चाहिये, उससे घबड़ाकर अन्य देवों की आराधना की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि परमकृपालु प्रभु अनन्यभाव से भजन करने वाले अपने भक्तों का कल्याण ही करते हैं, जीव अपने अल्पज्ञान के कारण दूर का हित नहीं देख पाता, अपने ही दोष के कारण प्रभु लीला में दोष दीखता है।

पुष्टिमार्ग में अन्याश्रय महान् बाधक है, अन्याश्रय से सदा बचते रहना चाहिये, शास्त्रों के अनुसार–

"नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं निरीक्ष्येत्।
नान्यत्प्रसादमद्याच्च नान्यदायतनं व्रजेत् ॥"

(अन्य देवताओं को नमस्कार न करें तथा उनका दर्शन, उनका प्रसाद आदि भी ग्रहण न करें।) श्रीहरिराय महाप्रभु के अनुसार–

"अन्याश्रयो महानेव बाधको भीयतां सदा।
तत्क्षणेनैव सच्चेतो विमुखं च विधास्यति ॥"
(शि० प० ८/४)

अन्याश्रय महान् बाधक है, वह सन्मार्ग पर चलनेवलों के चित्त में यदि प्रविष्ट हो जाय तो उन्हें भी बहिर्मुख कर देता है।

अनन्यता में निश्चिन्तता –

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा है कि – अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करने वालों के योगक्षेम का वहन मैं करता हूँ–

"योगक्षेमं वहाम्यहम्" (गीता)

कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् सर्वसमर्थ प्रभु की लीला के विषय में अविश्वास कभी भी नहीं करना चाहिये, इस विषय में ब्रह्मास्त्र और चातकपक्षी का उदाहरण दर्शाते हुए आचार्यचरण आज्ञा करते हैं कि–

"अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः"

बत्तीस लक्षणवाले राजा (दो सौ बावन) की वार्ता के अनुसार– भगवदीयों के वचन पर विश्वास तथा प्रभु का उपकार मानते हुए रहना चाहिये। लौकिक, अलौकिक किसी भी कार्य को करते समय चित्त में उद्वेग होने पर भी "ऐसी ही प्रभु की लीला है" ऐसा समझकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये–

"तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् ॥"

पुष्टिमार्गीय वैष्णवों को चिन्ता से मुक्त कराने का तात्पर्य यह है कि– चिन्ता छोड़कर सर्वात्मभाव से

भगवान् श्री गोकुलेश्वर का स्मरण और भजन करता रहे। चिन्ता में भजन और स्मरण छूट सकता है, जो कि कदापि त्याज्य नहीं है, इसलिये चिन्ता का त्याग ही उत्तम है। इस विषय में आचार्य चरण आज्ञा करते हैं–

''अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वर पादयोः।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥''

चिन्ता प्रभु के विषय में करें, ''कल प्रभु को क्या अङ्गीकार कराना है, उसकी व्यवस्था कहाँ से होगी'' आदि। लडुवावाली डोकरी (दो सौ बावन) की वार्ता के अनुसार प्रभु ने दस दिन की सामग्री एक ही दिन में अरोग के यह प्रकट कि ''प्रभुन के विषय में कभी निश्चिन्त न होनो''। चित्त को प्रभु में तल्लीन करना ही वास्तविक अर्थ में प्रभु सेवा है।

पुष्टिमार्ग में एकमात्र धर्म भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा है, जिसने कृष्ण सेवा प्राप्त कर लिया, उसने वास्तविक अर्थ में जीवमात्र की सेवा कर लिया, श्रीमद्भागवत के अनुसार–

''यथा तरोर्मूलनिषेचनेन..........'' (४/३१/१४)

वृक्ष के मूल जड़ में जल सिंचने से जैसे सम्पूर्ण वृक्ष को जल प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार जिसने स्नेहपूर्वक कृष्णसेवा किया, उसने ब्रह्म के अंशभूत समस्त जीवों की सेवा कर लिया।

आज भी कृष्णसेवा का वही महत्व है जो श्रीमहाप्रभु की लीला के समय था, उत्तरोत्तर भगवत्सेवा की आवश्यकता और अधिक हो रही है। स्वयं महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य–

''सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणी''

इत्यादि से कृष्णाश्रय ग्रन्थ का प्रारम्भ करके जिस एक वाक्य में उपसंहार करते हैं, वह है– ''कृष्ण एव गतिर्मम'' इस वाक्य से भी सेवा की अनिवार्यता लक्षित होती है। तभी तो आचार्यचरण कृष्णसेवा के विषय में आज्ञा करते हैं–

''कृष्णसेवा सदा कार्या''

आज भी नित्य कृष्णसेवा ही करनी चाहिये, इसको छोड़कर पुष्टिमार्गीय वैष्णवों का कोई अन्य धर्म तथा कर्तव्य भी नहीं है। चतुःश्लोकी के प्रारम्भ में ही महाप्रभु आज्ञा करते हैं–

''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन॥''

जगदगुरु श्रीवल्लभाचार्य षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री १०८ श्याममनोहरजी महाराजश्री की आज्ञा एवं अनुकम्पा से लिखित यह लेख षष्ठनिधि ठाकुर श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गोपाललालजी के चरणकमलों में समर्पित करते हुए विज्ञपाठकों से आशा है कि– वे इस अज्ञ के प्रयास को ''परोपदेशे पाण्डित्यम्'' जैसी चपलता समझते हुए त्रुटि को क्षमा करेंगे।

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाल लालौ विजयेते ॥

श्री गुसाईंजी का प्राकट्य स्थल–चरणाटधाम

- पं० श्री हरिप्रसाद शर्मा (हरिदास)

लेखक ने अपना संपूर्ण जीवन पुष्टिमार्ग के प्रचार-प्रसार में लगाया है । उनके कितने ही ग्रन्थ तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, पद व कविताएँ हिन्दी तथा ब्रजभाषा में उपलब्ध हैं । प्रस्तुत लेख में विद्वान् लेखक ने चरणाटधाम के आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक स्वरूप तथा गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजी के स्वरूप का वर्णन अत्यन्त ही हृदयग्राही रूप में प्रस्तुत किया है ।

अखण्ड भूमण्डलाचार्यवर्य्य चक्रचूड़ामणि जगद्गुरु महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के दृष्टिकोण से सभी पदार्थों के आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक स्वरुपों को स्वीकारा है । इस भित्ति पर ही चरणाटधाम का मूल्यांकन करना न्यायसंगत होगा ।

आधिभौतिक दृष्टि से चरणाटधाम गंगा तट पर स्थित होने से महान पुनीत स्थल है । शान्त और निर्जन वन में पहुँच कर प्रत्येक जीव को आत्म-शान्ति का स्वाभाविक अनुभव होता है । सरोवर में कमल खिले हुए हैं, जिनसे इस उपवन की शोभा में अनिर्वचनीय वृद्धि होती है । स्थल का प्रभाव जीव मात्र के हृदय पर पड़ता है । यह एक मनोवैज्ञनिक सिद्धान्त है ।

श्री गंगाजी को भगवद्पदी कहा गया है जिसमें करोड़ो तीर्थों का निवास माना जाता है । अखिल ब्रह्माण्ड नायक भगवान् के चरणारबिन्दों से प्रगट श्री गंगाजी का माहात्म्य शास्त्रों में वर्णित तथा लोक में भी प्रसिद्ध है । गंगाजी के पद अष्टछाप के पुष्टिमार्गीय भक्त कवियों ने बनाये हैं तथा श्रीनाथजी के सम्मुख गाये जाते हैं । अन्य पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में भी नित्य कीर्तन में श्रीगंगाजी के पद श्री ठाकुरजी को जगाने से पहिले राग विभास में गाये जाते हैं ।

गंगा जी के पद –

राग विभास

श्री गंगा जग तारण को आई ।
भागीरथ तपस्या कीनी, शिव लै सीस चढ़ाई ॥ १ ॥

पापी दुष्ट अजामिल, गणिका, पतित परम गति पाई ।
परम पुनीत प्रीति ब्रह्मादिक, वेद व्यास मिल गाई ॥ २ ॥

नाम लेत तुम ध्यान धरत हैं, तारत वार न लाई ।
विप्र 'गदाधर' भारद्वाज कुल, केवल गंग सहाई ॥ ३ ॥

अष्ट छाप के परमानन्दजी गाते हैं–

राग विलावल :–

गंगा पतितन को सुख दैनी।
सेवा कर भागीरथ लाये, पाप काट को पैनी।
सकल ब्रह्माण्ड फोर के आवत, चलत चाल गज गयनी ॥
'परमानन्द' प्रभु चरण परसते, भई कमल दल नयनी ॥

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चरणाट धाम को चरणाद्रि कहा गया है। भगवान् ने राजा बलि पर कृपा करने के लिये वामन अवतार धारण किया। यह भक्तोद्धारक अवतार था। अष्टछाप के भक्त कवियों ने इस अवतार का वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से ब्रज भाषा में किया है। भक्तोद्धार अवतार होंने के नाते यह उत्सव पुष्टिमार्गीय सेवा पद्धति से मनाया जाता है। श्री ठाकुरजी के सन्मुख पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में ये पद गाये जाते हैं।

हरि कौ वामन रूप बनायो।
नन्द राय यह मानी जयन्ती, उबटि सुगन्ध न्हवायो।

श्री सूरदास जी का पद :–

द्वारे ठाढ़े हैं द्विज वामन।
सुनत वचन हृदय सुख उपज्यो, भयो कहाँ ते आवन।
चरण धोय चरणोदक लीनो, कहयो विप्र मन भावन।
तीन पैंड धरती हौं माँगो, पर्ण कुटी एक छावन।
अहो विप्र कहा तुम मॉग्यो, बहुत रत्न देहुँ गामन।
'सूर' सुबल हरि सर्वस लीनो, दीयो पीठ पग पावन ॥

(सूर सागर)

दूसरा पक्ष यह भी है कि इसमें समर्पण का सिद्धान्त निहित है। राजा बलि ने अपना सर्वस्व श्री ठाकुरजी को समर्पित कर दिया। पुष्टिमार्ग में शरण के पश्चात् समर्पण ''रसो वै सः'' भगवान् श्रीकृष्ण के सान्निध्य में आचार्यो द्वारा कराया जाता है। इसी को निवेदन या ब्रह्म सम्बन्ध कहते हैं। ब्रह्म सम्बन्ध की आज्ञा श्रीमद् गोकुल में ठकुरानी घाट पर महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को श्रीनाथजी ने स्वयं प्रगट होकर साक्षात् मुखारबिन्द से की थी जिसका उल्लेख षोड़ष ग्रन्थों में सिद्धान्तरहस्य में मिलता है।

ब्रह्मसम्बन्धकरणात्, सर्वेषां देहजीवयोः
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः ॥

ब्रह्म सम्बन्ध सभी जीवों को करना चाहिये, सब दोषों की निवृत्ति इसी संस्कार के द्वारा हो सकती है। दोषों से निवृत्ति होने का और कोई उपाय है ही नहीं। दोष पाँच प्रकार के माने गये हैं।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथंचन।

१. सहज दोष,
२. देश दोष,

३. काल दोष,

४/५. लोक और वेद में निरूपित दोष, संयोग और स्पर्श द्वारा उत्पन्न दोष-आत्म निवेदन के बाद इनको नहीं मानना चाहिये । ऐसी श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करते हैं । इसलिये पुष्टि मार्ग भगवदुक्त है, गुणातीत है ।

इस समर्पण का वास्तविक स्वरुप राजा बलि के समर्पण के प्रसंग में उपलब्ध होता है । अत: अष्टछाप के भक्त कवि गा उठे ।

श्रीपरमानन्ददासजी का पद :-

बलि राजा को समर्पण साँचो ।
बहुत कहयो गुरु शुक्र देवता, मन दृढ़, आप नहिं काँचौ ।
यज्ञ करत हैं जाके कारण, सो प्रभु आपुहि याच्यो ।
'परमानन्द' प्रसन्न भये हरि, जो मन कौं जानत हैं साँचों ॥

(परमानन्द सागर से उद्धरत)

तो जब भगवान् ने दो पग में सारी पृथ्वी नाप ली तब एक चरणारबिन्द चरणाटधाम में पड़ा और वहआज तक चरण पहाड़ी पर स्थापित है । इसीलिये इस स्थल का नाम चरणाद्रि पड़ा । यह तो भारतीय संस्कृति की धरोहर है कि उस समय पृथ्वी इतनी आद्र हो गई कि भूतल पर भगवान् का चरण अंकित हो गया । अत: आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह स्थल अति महत्वपूर्ण है और महान् तीर्थ स्थल है ।

इसीलिये महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने इस स्थल पर विराजने का निश्चय किया ।

अष्टछाप के पुष्टिमार्गीय भक्त कवि श्री परमानन्ददासजी ने भगवद् चरणारबिन्दों का माहात्म्य निम्नलिखित पद में बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है-

पद-

तिहारे चरण कमल कौ महात्तम शिव जाने के गौतम नारि ।
जटा जूट मध्य पावनी गंगा अजहू लिये फिरत त्रिपुरारि ॥
कै जाने शुक्रदेव महामुनि, कै जाने सनकादिक चार ।
कै जाने नारद मुनि ज्ञानी, गुप्त फिरत त्रैलोक्य मँझार ।
कै जाने ये जन 'परमानन्द' जिनके हृदय बसत भुज चार ॥

एक पद में ''बहि रोचन कौ सुत'' राजा बलि की ओर संकेत दिया है जिन्होंने असुर कुल में जन्म लेने के उपरान्त भी आत्मनिवेदन भक्ति को सिद्ध करके दिखा दिया । यद्यपि उनके गुरू श्री शुक्राचार्य ने इस भूमिदान का निषेध किया फिर भी राजा बलि ने उनकी अर्थात गुरू की आज्ञा का उल्लंघन कर प्रभु को सर्वस्व अर्पण आत्मनिवेदन भक्ति द्वारा कर दिखाया ।

पंचम गृह तिलकायित श्री द्वारिकेशजी महाराज भावना वारे (कॉमा) का यह पद भी उल्लेखनीय है कि राजा बलि ने अपने गुरु श्री शुक्राचार्यजी को यह उत्तर दिया कि यदि भगवान् मुझे छलने भी आये हैं तो इससे बड़ी पदवी मुझे कौन सी प्राप्त हो सकती है अर्थात मैं धन्य हूँ और गुरु की आज्ञा न मानकर भूमि का दान दिया, फलस्वरूप एक चरण भगवान् ने राजा बलि के माथे पर रखा और आज तक भुतल में राजा बलि के द्वारपाल

होकर रह रहे हैं। यह है आत्मनिवेदन भक्ति का प्रभाव, यह है सच्चे समर्पण का प्रभाव, यह है ब्रह्म सम्बन्ध लेने के पश्चात् पुष्टिमार्गीय पद्धति से श्री ठाकुरजी की सेवा करने का रसास्वादन। अतः भगवदीय जीवन बिताना ही मानव जीवन की सार्थकता है। इसलिये आज के इस घोर कलि काल में जीव मात्र को अपने आत्मोद्धार हेतु पुष्टिमार्गीय दीक्षा कंठी, ब्रह्म सम्बन्ध वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्यो से लेनी चाहिये। तत्पश्चात् ''शास्त्रमवगत्य मनोवागदेहैः श्रीकृष्ण सेव्यः'' पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों का पाठ, अवगाहन करते हुये भगवान् श्री कृष्ण की सेवा अपने घर में रहकर करनी चाहिये। तादृशी भगवदीयों का सत्संग मिल जाये तो सोने में सुहागा वाली बात हो जाती है। अतः जीवन में नित्य प्रति सत्संग अवश्य करना चाहिये।

पद–

बलि पै याचत वामन बाल।
तीन पैंड़ भूमि मोहि दीजै, अधिक कहा कहों भूपाल॥१॥

तीन पैंड़ मोपै कहा माँगत, बहुत देहौ, लेहु इहि काल।
शुक्राचारज कह्यो राजा सों, छल कर आये श्री गोपाल॥२॥

मोय छलन श्री पति आये हैं, याते पदवी कहा विशाल।
यों कहि दीनों वामन लीनों, दोय पैंड़ में किये बेहाल॥३॥

एक चरण बलि सिर पर धरि के, ततक्षण राख्यो सुतल रसाल।
यदुपति द्वारपाल है रहि हैं, 'द्वारिकेश' प्रभु बड़े दयाल॥४॥

आधिदैविक दृष्टिकोण से इस महत्वपूर्ण स्थल का नाम चरणाटधाम है। जैसे गर्ग संहिता में ''गोलोक धाम'' है और श्रीमद्भागवत में ब्रजधाम है उसी प्रकार चरणाटधाम है। धाम का अर्थ स्थायी निवास से है गोलोक धाम नित्य है, वहाँ नित्य लीला है। उसका पार श्रुति भी नहीं पा सकी इसीलिये वल्लभाख्यान में श्री गोपालदासजी के हृदय कमल में बिराज कर श्री गुसाईंजी ने आज्ञा की:-

''नित्य लीला नित्य नौतन श्रुति न पायें पार''।

वहाँ नन्दनन्दन भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र अपनी आल्हादिनी शक्ति श्री मुख्य स्वामिनी सहित सदैव रसात्मक दिव्य क्रीड़ाओं में निमग्न रहते हैं। आधिदैविक स्वरूप से रत्नजड़ित श्री गिरिराजजी सदैव बिराजते हैं श्री यमुनाजी सदैव श्याम रूप धारण कर बिराजती हैं जिनके तट स्फटिक मणियों से रत्नजड़ित हैं। तो जिस प्रकार गोलोक धाम का वर्णन गर्ग संहिता में मिलता है उसी प्रकार ब्रजधाम , बृन्दावन धाम का वर्णन श्री मद्भागवत महापुराण में मिलता है। **जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि**– इस गोपी गीत की सुबोधिनी टीका में श्री महाप्रभुजी आज्ञा करते हैं कि **''ते जन्मना ब्रजः अधिकं जयतीति''** ब्रज का उत्कर्ष तो पहिले से ही था परन्तु श्री ठाकुरजी के प्रादुर्भाव से ब्रज का उत्कर्ष और बढ़ गया और लक्ष्मीजी निरन्तर यहीं पर हीन भाव से निवास करने लगी।

उसी प्रकार चरणाटधाम है यह गुप्त वृन्दावन है। यहाँ की चरण पहाड़ी श्री गिरिराज महाराज की भावना से गुप्त रूप से स्थित है। पर्वत के ऊपर नाना प्रकार की वृक्षावली है– झरना, सरोवर से शोभा अत्यधिक बढ़

रही है। नाना पक्षी सुन्दर मधुर शब्द करते रहते हैं। इस चरण पहाड़ी को श्री गिरिराज महाराज का छोटा भाई माना गया है–

गौरी तन्त्र में काल महादेवोक्त श्लोक इस बात को प्रमाणित करता है कि चरणाटधाम गुप्त वृन्दावन है।

पौष कृष्ण नवम्याञ्च विट्ठलेशेतिसञ्ज्ञकः।
द्विजालये महादेवि काश्याः सन्निहिते हरिः ॥ १ ॥

गुप्तं वृन्दावनं यत्र नाना पक्षि-समाकुलम्।
गिरि-राज-कनिष्ठस्य चरणाद्रेश्च गह्वरे ॥
भविष्यति कलेर्मध्ये प्रथमे नन्द-नन्दनः ॥ २ ॥
''रसोवैसः''

प्रभु और प्रभु का प्रागट्य स्थल वृन्दावन आदि शृंगार रस रूप है। रसों का राजा शृंगार रस है। ''मव रस में कविजन कहयो-सबते अधिक शृंगार'' श्री ठाकुरजी को मोर पंख का शृंगार इसीलिए धराया जाता है कि मयूर का स्वरूप शृंगार रस उद्‌बोधक है।

श्री वृन्दावन अलौकिक है अपरिमित शोभा युक्त है। नाना प्रकार रास मण्डलों की रचना करिके अनन्त स्वामिनीयों के साथ आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र रास क्रीड़ा इसी गुप्त वृन्दावन में किया करते हैं। यह लीला नित्य है। इस लीला का नित्यत्व वेद में तथा श्रीमद् भागवत में भी वर्णन है।

''जयति जन निवासो देवकी जन्मवादो''
(श्रीमद् भागवत)

समस्त सृष्टि के आधारभूत सबके हृदय में निवास करने वाल भगवान् ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया यह तो कथन मात्र है। वे प्रभु तो अजन्मा है, नित्य है अतः नित्य लीला में ही सदैव श्री वृन्दावन में विराजमान है। यह गुप्त वृन्दावन चरणाटधाम अलौकिक भावात्मक स्वरूप का सूचन करता है।

पुष्टिमार्ग वेद प्रतिपादित है अतः वेद पथ का विस्तार करने के लिये इस रमणिक स्थल चरणाटधाम में श्री गुसाईं जी श्रीविट्ठलनाथजी का प्रागट्य हुआ। इस प्रागट्य से इस चरणाटधाम की शोभा और बढ़ गई जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के प्राकट्य से ब्रज की शोभा बढ़ गई थी। **'जयति तेऽधिकं'** जन्मनाव्रजः के प्रमाण से यह सिद्ध होता है। अष्ट छाप के पुष्टिमार्गीय वैष्णव भक्त कवि श्री छीतस्वामीजी को कृपा कर श्री गुसाईंजी ने अपने स्वरूप का ज्ञान कराया। इसका वार्ता साहित्य में स्पष्ट उल्लेख है अतः उनके पदों में श्री गुसाईंजी को साक्षात् पूर्ण पुरूषोत्तम श्री कृष्ण ही वर्णित किया गया है। यह निम्न पद इस सिद्धान्त का द्योतक है।

राग बिहाग –

श्री विट्ठल प्रगटे ब्रजनाथ।
नंदनंदन कलियुग में आये, निज जन किये सनाथ।
तब असुरन कौ नाश कियो हरि, अब माया मत नाशे।
तब गोपी जन कों सुख दीनो, अब निज भक्त प्रकाशे।
तबकें वेद पथ छोड़ रास रमि, नाना भाव बताये।

अब स्त्री, शूद्रादिक सबको, ब्रह्म सम्बन्ध कराये।
यह विधि प्रगट करी निज लीला, श्री बल्लभ राज दुलारे।
'छीत स्वामी' गिरिधरन श्री विट्ठल, इनको वेद पुकारे।

इसका फलितार्थ यह है कि घोर कलि काल के जीव अनेक दुःखों से दुःखित होंगे, जन्म-स्मरण के दुःख से दुःखित दैवी जीवों को अगणित आनन्दरूप पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री कृष्ण की प्राप्ति , सेवा, सत्संग द्वारा सानुभावता जताने की कृपा करेंगे।

पुरुषोत्तम अक्षर ब्रह्म से भी उत्तम माना गया है। श्रीमद्भगवद् गीता में

''यस्मात्क्षर मतीतोऽहमझरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥''

प्रभु इस जगत से परे है अक्षर ब्रह्म से भी उत्तम है। इसलिये शास्त्रों में तथा वेद में पुरुषोत्तम कहा गया है। वल्लभाख्यान के द्वितीय आख्यान में श्री गोपालदासजी ने लिखा है कि 'हली मली ने चालीया'-

हली मली ने चालीया चरणाट ज्यों निज धाम।
नवरंग नागर प्रगटिया, मन पूरवा बहु काम॥

इसकी ब्रज भाषा टीका करते हुये श्री जीवनेशजी महाराजश्री मोटा मन्दिर बम्बई वालों ने लिखा है- ॥ ''हली मली'' ॥ सो श्रीनाथजी सो हिलि मिलि के इतने परस्पर स्व मनोगत कथन पूर्वक मिलिके ॥ चालिया ॥ सो पधारे। तो कहाँ पधारे सो कहत हैं ॥ ''चरणाट ज्याँ निजधाम ॥'' चरणाद्रि, काशी सों सात कोस है वहाँ शिला में प्रभुन के चरणारबिन्द कौ चिन्ह है ता पर्वत की तरहटी में ॥ निजधाम सो आपको घर है, तहाँ पधारे। अब निजधाम कह्यो याते यह सूचन कियो जो काशी में आप महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी को सासरो है तहाँ पधारिके वहाँ ते महालक्ष्मीजी को संग लै के कछु दिन अड़ैल में बिराजे वहाँ श्री गोपीनाथजी को प्रागट्य भयो। फेरि चरणाट में पधारिके घर करिके बिराजे। अब वहाँ श्री गुसाईंजी को प्रागट्य भयो।

''नवरंग नागर प्रगटिया''।

नव, सो नित्य नवीन- ''रंग'' सो रासाद्रिक नृत्य कौ स्थान वृन्दावन ताकै विषै 'नागर' सो बिहार चतुर श्री कृष्ण सो प्रगट भये अथवा 'नव रंग' सो 'तदेवरम्यं रूचिरेनवं' इत्यादि वचन सों प्रतिक्षण नवीन, ऐसौ, रंग जो भक्ति कौ आनन्द तामें नागर सो चतुर ऐसे श्री गुसाईंजी प्रगट भये। अब प्रभु कौ प्रागट्य प्रयोजन बिना होय नहीं याते प्रयोजन कहत है ॥

''मन पूरवा बहु काम''-

मन जो श्री महाप्रभुजी ''कौ मनं ताके 'कामं' जो मनोरथ सो 'वह' अनेक तिनको पूर्ण करिवे कों प्रगट भये।''

श्री विट्ठलनाथजी श्री गुसाईंजी का अवतार अंश व कला अवतार नहीं है पूर्णावतार है। आनन्दात्मक प्रभु का प्रादुर्भाव हृदय से होता है। प्राकृत जन की तरह गर्भ सम्बन्ध नहीं होता अतः श्री गुसाईंजी का प्रादुर्भाव इसी चरणाटधाम में हुआ जिससे इस धाम का उत्कर्ष और बढ़ गया। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हुआ उस समय के वर्णन में श्री शुकदेवजी श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में आज्ञा करते हैं कि-

''आविरासिद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः''

प्राची इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार प्राची दिशा से पूर्ण चन्द्र का उदय होता है उसी प्रकार आपका प्राकट्य देवकीजी से हुआ। फलितार्थ यह है कि प्राची दिशा से चन्द्रमा आता है, उत्पन्न नहीं होता है। परन्तु लोक में ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का देवकीजी से प्रादुर्भाव मात्र हुआ। जिस प्रकार और जीव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार प्रगट नहीं हुए।

उसी प्रकार श्री विठ्ठलनाथजी का भी चरणाटधाम में प्रादुर्भाव मात्र हुआ, और जीव मात्र की तरह उत्पन्न नहीं हुए। इसी की पुष्टि बल्लभाख्यान में श्री गोपालदासजी तृतीय आख्यान में कर रहे हैं।

''अक्का जी उर उपज्यो आनन्द आ चन्द वृन्दावन तणों।''

अर्थात अक्काजी के हृदय में आनन्द उत्पन्न हुआ और वहीं आनन्द साकार रूप में श्री विठ्ठलनाथजी के रूप में प्रगट हो गया।

ऐसा स्वरूप श्री विठ्ठलनाथजी श्री गुसाईंजी का प्रागट्य स्थल चरणाटधाम है। इस अलौकिक स्थल का दर्शन, अनुभव, अनुभवी वैष्णवों को ही हो सकता है–

''जिनकी वे आँखे नहीं, क्यों देखे वह रूप।
तिन्हें विश्वास क्यों अपने, जे परे कर्म के कूप॥''
सखा सुनि श्याम के।

(श्री नन्ददासजी कृत भ्रमरगीत)

अतः आनन्द स्वरूप, भावात्मक और फलात्मक माना गया है। रसात्मक स्वरूप का अनुसन्धान रसिक भगवदियों को ही हो सकता है।

''भगवत रसिक'', रसिक की बातें, रसिक बिना, कहो समझ सकै को॥

●

गुप्तं वृन्दावनं यत्र
नाना पक्षि समाकुलं
गिरिराज कनिष्ठस्य
चरणाद्रेश्च गह्वरं
भविष्यति कलेर्मध्ये
प्रथमो नन्दनन्दनः

(पद्मपुराण)

॥ श्री मुकुन्द गोपाल लालौ विजयेते ॥

पुष्टिमार्ग का गौरव-स्थल चरणाटधाम

श्री मोहनदास एडवोकेट

लेखक श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान, काशी के महामंत्री तथा श्री वल्लभ युवक परिषद, वाराणसी के अध्यक्ष तथा ऐसी कितनी ही संस्थाओं से बहुत ही सक्रिय रूप से सेवाभाव से जुड़े हुये हैं। इस ग्रन्थ में उनके कुल दो लेख प्रकाशित हो रहे हैं जो कि उनके व्यक्तित्व तथा उनकी कार्यक्षमता पर प्रकाश डालते हैं।

पुष्टि मार्ग के प्रवर्तक तथा प्राचीन भारतीय सनातन संस्कृति के उन्नायक जगद्गुरु श्री मद्वल्लभाचार्यजी ने वेद-पुराण-भागवत-गीता-उपनिषद आदि का काशी में अध्ययन करने के उपरान्त, भक्तिमार्ग के द्वारा जीव मात्र का कल्याण करने तथा भारतीय सनातन संस्कृति का सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से तीन बार सम्पूर्ण देश की परिक्रमा की। प्रथम परिक्रमा महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी ने लगभग १३ वर्ष की अवस्था में शुरू की। प्रथम यात्रा में लगभग ९ वर्ष लगे, दूसरी यात्रा में लगभग ५ वर्ष लगे तथा तीसरी यात्रा में ४ वर्ष लगे।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के साथ देश परिक्रमा में श्री शालिग्रामजी और श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री भागवतजी विराजते थे। महाप्रभुजी के परम शिष्य श्री दामोदरदासजी श्री भागवतजी को पधराकर पद यात्रा में साथ रहते थे। भगवद कृपा से श्री मुकुन्दरायजी (षष्ठ निधि के ठाकुरजी) काशी स्थित विख्यात श्री गोपाल मन्दिर में विराजमान हैं।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी ने प्रत्येक परिक्रमा के समय जिन-जिन स्थानों पर श्री भागवतजी का परायण किया था, वहाँ पर आपश्री की बैठकजी स्थापित हुई। आपश्री ने पद यात्रा के दौरान अनेक पवित्र नदियाँ, सरोवर, संत महात्माओं के आश्रम, राम-कृष्ण-शिव के जीवन से सम्बन्धित स्थल, पौराणिक स्थान, प्रसिद्ध नगर आदि का दर्शन किया। आपश्री ने परिक्रमा सर्वप्रथम काशी से ही शुरू की। आपश्री ने परिक्रमा के द्वारा देश के विभिन्न भागों की यात्रा की तथा भक्तिमार्ग के जन सन्देश के द्वारा जीवों के कल्याण का मार्ग मानव जगत को सहजता से दिखलाया। आपश्री की सम्पूर्ण भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों पर श्री बैठकजी स्थापित हुई, जिनकी संख्या चौरासी बतलायी जाती है। अन्तिम बैठक चरणाटधाम में स्थित हुई। चौरासी वैठकजी आज भी देश की एकता व अखण्डता बनाये हुए है।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी की चौरासी बैठक देश के विभिन्न प्रदेशों में इस प्रकार से स्थित है।

१. उत्तर प्रदेश	३५	९. केरल प्रदेश	२
२. मध्य प्रदेश	४	१०. हरियाणा प्रदेश	१
३. बिहार प्रदेश	२	११. बंगाल प्रदेश	१
४. महाराष्ट्र प्रदेश	४	१२. उड़ीसा प्रदेश	१
५. गुजरात प्रदेश	१९	१३. राजस्थान प्रदेश	१
६. तमिलनाडु प्रदेश	७	१४. अन्य	२
७. आंध्र प्रदेश	२		
८. कर्नाटक प्रदेश	३		

काशी में आपश्री की तीन बैठकजी स्थापित हुई हैं। प्रथम बैठकजी सेठ पुरूषोत्तमदासजी के निवास स्थान, जतनबड़, चैतन्यरोड, दूधकटरा, विश्वेशरगंज, वाराणसी है तथा दूसरी बैठक श्री पंचगंगाघाट के ऊपर है जहाँ पर आपश्री का लग्न हुआ था। श्री पंचगंगाघाट की बैठकजी ८४ बैठकजी में सम्मलित नहीं है तथा तीसरी बैठक हनुमानघाट पर जहाँ पर आपश्री ने आसुरव्यामोह लीला की थी।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी अन्तिम परिक्रमा करते हुये वि० सं० १५७२ में काशी के समीप चरणाद्रि (चुनार) नामक स्थान पर पधारे। यह स्थान विंध्य की ऊँची पर्वत माला के मध्य स्थित है तथा यहाँ के पर्वत का आकार चरण की तरह है इसलिये इस स्थान का नाम चरणाद्रि पड़ा। इसी पावन स्थल पर पुष्टिमार्ग के उन्नायक श्री मत्प्रभुचरण गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी का प्राकट्य मिति पौष कृष्ण ९ वि० सं० १५७२ में हुआ।

गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी हिन्दी-संस्कृत-ब्रजभाषा और न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान आचार्य थे। आपश्री ने भारतीय सनातन धर्म एवं पुष्टिमार्ग का व्यापक प्रचार-प्रसार करते हुये, पुष्टिमार्ग पें संगीत-साहित्य एवं विविध कलाओं का समावेश किया। आपश्री ने अपने पिताश्री द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग का विशद विस्तार करते हुये, उसे आध्यात्मिक वैभव प्रदान किया तथा कृष्ण भक्ति की अष्टयाम सेवा के माध्यम से साहित्य-संगीत और कला का नवोत्थान किया।

गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी ने हिन्दी साहित्य के आठ कवियों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की तथा अष्ट छाप के माध्यम से श्री कृष्ण भक्ति के लाखों पदों की रचना हुई। महाकवि भक्त सूरदासजी अष्टछाप के प्रधान कवि थे। श्री सूरदासजी ने अपनी काव्य-रचना के द्वारा विश्व हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। सूरदासजी द्वारा वात्सल्य भाव से की गई रचना, विश्व काव्य साहित्य में सूर्य के समान चमक बनाये हुये है।

महाप्रभुजी की अन्तिम बैठक तथा श्री गुसाईंजी का प्राकट्य स्थल चरणाटधाम का महत्व सम्पूर्ण वैष्णव समाज में बहुत अधिक है। इस बैठकजी की विशेषता है कि श्री गुसाईंजी महाप्रभुजी की गोद में विराजते हैं। यहाँ पर स्थित बैठकजी प्राकृतिक हरियाली से परिपूर्ण है तथा श्री बैठकजी के सम्मुख ऐतिहासिक कमल सरोवर अपनी भव्यता के लिये काफी विख्यात है। श्री बैठकजी के पीछे सुन्दर निकुंज (बगीचा) एवं विशाल सरोवर स्थित है। जो वल्लभ सागर के नाम से जाना जाता है। बैठकजी का ऐतिहासिक भवन वास्तुकला की अनुपम देन है। बैठकजी में स्थित 'आचार्य कूप' वैष्णवजन एवं आसपास की ग्रामीण जनता के लिए आकर्षण का केन्द्र है। इस कूप की ऐसी मान्यता है कि इसका दर्शन करने मात्र से व्यक्ति की मनोक़ामना पूर्ण हो जाती है। कुछ दिन तक इसके जल का नियमित पान करने से उत्तम स्वास्थ्य की भी प्राप्ति होती है, ऐसा लोगों का व्यक्तिगत अनुभव है।

चरणाटधाम की बैठकजी का संबंध काशी स्थित षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर, वाराणसी से आरम्भ से रहा है। महाप्रभुजी के सेव्य स्वरूप षष्ठ निधि के ठाकुर श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गुसाईंजी के सेव्य स्वरूप श्री गोपाललालजी काशी स्थित श्री गोपाल मन्दिर में आज भी विराजमान हैं। जिनकी सेवा आज भी सुन्दर ढंग से होती है। षष्ठपीठाधीश्वर नित्यलीलास्थ गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज जो काशी स्थित विख्यात श्री गोपाल मन्दिर में विराजमान थे, उनका भी चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी के बैठकजी से विशेष लगाव व स्नेह था। आपश्री बराबर चरणाटधाम पधारते थे और श्री गुसाईंजी के प्राकट्य उत्सव पर तीन-चार दिन तक

बराबर सेवा का आनन्द लेते थे और अपने वचनामृत द्वारा वैष्णवजन में प्रभु सेवा की भावना को पुष्ट करते थे। आपश्री सदैव वैष्णवजन को चरणाट धाम की बैठक जी का महत्व बतलाते थे।

नि० ली० गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज की इच्छा थी कि चरणाट धाम का सुन्दर ढंग से विकास एवं जीर्णोद्धार हो। जिससे यहाँ पर आने वाले गोस्वामी बालकों एवं वैष्णवजन को किसी प्रकार की असुविधा न हो तथा उन्हें सेवा का आनन्द प्राप्त हो। आपश्री के जीवन काल में ही चरणाट धाम के जीर्णोद्धार सेवा का कार्य प्रारम्भ हुआ था। आपश्री के नित्य लीला में पधारने के पश्चात आपश्री की गद्दी पर जामनगर के गोस्वामी १०८ श्री श्याममनोहरजी महाराज का तिलक हुआ। गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज श्री गोपाल मन्दिर के अन्तर्गत आने वाली अड़ैल एवं चरणाट की बैठकजी की भी देखरेख करने लगे। गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज के मार्ग निर्देशन में पुष्टिमार्ग के उन्नायक गुसाईं श्रीविठ्ठलनाथजी का प्राकट्य महोत्सव का आयोजन चरणाट धाम में हुआ। इस अवसर पर आयोजित वैष्णव सम्मेलन में श्री वल्लभदर्शन के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिये, सम्प्रदाय के प्रमुख स्थलों के जीर्णोद्धार के लिये तथा वैष्णवजन को संघटित करने एवं उनमें वैष्णवता के संस्कारों का सिंचन करने के उद्देश्य से वि० सं० २०५० मिति पौष बदी १० को एक संस्था की स्थापना का संकल्प हजारों वैष्णवजन की उपस्थिति में पूज्यपाद महाराजश्री ने हर्षध्वनि के मध्य लिया।

षष्ठपीठाधीश्वर नि०ली० गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज के प्राकट्य महोत्सव वि० सं० २०५१ मिति चैत्र सुदी १३ (सन् १९९४ ई०) के शुभ अवसर पर विख्यात श्री गोपाल मंदिर के ऐतिहासिक श्री गोवर्धन चौक में षष्ठनिधि के ठाकुर श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गोपाललालजी के सानिध्य में षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज ने विधिवत श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान नामक संस्था की स्थापना की घोषणा की तथा उपस्थित हजारों वैष्णवजन ने हर्षध्वनि के साथ संस्था की स्थापना का स्वागत किया और अनेक प्रमुख वैष्णवजन ने तत्काल संस्थान की आजीवन सदस्यता ग्रहण की।

श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान ने अपने उद्देश्यों के अनुरूप सेवा कार्य शुरू किया तथा अपने उद्गम स्थल चरणाट धाम के चतुर्दिक विकास की योजना पूज्यपाद महाराजश्री के मार्गदर्शन में बनायी। चरणाटधाम को वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र के रुप में विकसित करने के साथ-साथ यहाँ के प्राचीन स्थलों का जीर्णोद्धार सेवा कार्य शुरू कराने की योजना बनायी गयी। इस विशाल योजना में देश-विदेश के समस्त वैष्णवजन का सहयोग प्राप्त करने का भी निश्चय किया गया। चरणाट धाम के विकास की योजना से वैष्णवजन को अवगत कराने के उद्देश्य से एवं उनका सहयोग प्राप्त करने के लिये विभिन्न नगरों की यात्रायें भी पूज्यपाद महाराजश्री के साथ की जा रही हैं। प्रभु कृपा से चरणाट धाम का विशाल जीर्णोद्धार सेवा कार्य विगत ४-५ वर्षो से आरम्भ हो जाने पर समस्त वैष्णव समाज में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी है। जो भी वैष्णव चरणाटधाम आता है वह जीर्णोद्धार सेवा का कार्य देखकर हर्ष का अनुभव करता है तथा तन-मन-धन से सहयोग प्रदान करने की इच्छा व्यक्त करता है। काशी के वैष्णवजन में चरणाट धाम के जीर्णोद्धार कार्य के प्रति विशेष उत्साह है।

काशी के वैष्णवजन के उत्साह के कारण ही विगत ४-५ वर्षो से श्री गुसाईं का भव्य प्राकट्य महोत्सव अखिल भारतीय स्तर पर श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान द्वारा चरणाट धाम में षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री श्याम मनोहरजी महाराज की अध्यक्षता में विशाल रूप से मनाया जाता है। प्राकट्य उत्सव में दूर-दूर से गोस्वामी बालक एवं वैष्णवजन भाग लेने हेतु चरणाट धाम पधारते हैं।

श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान, वाराणसी, जिसे आयकर की धारा ८० जी में छूट प्राप्त है, वैष्णवजन के सहयोग से विगत ५ वर्षों में निम्नलिखित सेवा कार्य चरणाट धाम में किया है।

१. बैठकजी स्थित बगीचा के कुएं तथा कमल सरोवर के पास स्थित कुएं तथा आसपास के स्थान का जीर्णोद्धार एवं दोनों कुएं में पम्प एवं मशीन लगवायी।
२. बैठकजी के पीछे स्थित बगीचा का गोस्वामी श्री श्यामा बेटीजी की स्मृति में श्यामा निकुंज का सुन्दरीकरण एवं वृक्षारोपण कराया।
३. गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराज की स्मृति में बगीचे के कमरों का जीर्णोद्धार कराया।
४. श्री वल्लभाचार्यजी की स्मृति में तालाब के समीप स्थित गुलाबी बंगला का जीर्णोद्धार कराकर श्री वल्लभ भवन नामकरण किया।
५. गोस्वामी श्रीमद्गिरिधरजी महाराज की स्मृति में बारहदरी का जीर्णोद्धार कराकर "सत्संग कक्ष" के रूप सें नामकरण किया।
६. गोस्वामी श्री जीवनलालजी महाराज की स्मृति में कमल सरोवर स्थित श्री वल्लभ घाट का जीर्णोद्धार।
७. गोस्वामी श्री भामिनी बहूजी महाराज तथा श्री प्रेमप्रिया बहूजी महाराज की स्मृति में चम्पा के पेड़ के समीप कमरों का जीर्णोद्धार कराकर नामकरण किया।
८. महाकवि श्री सूरदासजी की स्मृति में सूर निकुंज एवं सूरशिलालेख की स्थापना की।
९. प० भ० श्री कृष्णदासजी मेघन की स्मृति में पेड़ के नीचे "वैष्णव विश्राम स्थल" लाल चबूतरे का निर्माण कराया।
१०. श्री विठ्ठलेश प्रभु की स्मृति में श्री विठ्ठलेश गौशाला का निर्माण कराया।
११. श्री विठ्ठलेश प्रभु अतिथि भवन के चार आधुनिक सुविधा से युक्त कमरों का नवनिर्माण कराया।
१२. निकुंज भावना तथा चरणाट धाम की हरियाली को बनाये रखने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के फल-फूल के हजारों पेड़ का वृक्षारोपण किया।
१३. कमल सरोवर के चारों घाट का जीर्णोद्धार कराया तथा चारों ओर वृक्षारोपण किया।
१४. बैठकजी के विभिन्न स्थानों पर स्थित मूर्तियों तथा दीवालों पर चित्रकारी करायी।
१५. विभिन्न स्थानों का जीर्णोद्धार तथा उनके आसपास जाने के रास्ते का मार्ग का निर्माण कराया।
१६. वैष्णवजन के आवास की समुचित व्यवस्था की गई।
१७. वैष्णवजन के लिये भण्डार, बिछावन आदि की व्यवस्था की गई।
१८. पुस्तकालय एवं वाचनालय की स्थापना की गई।
१९. विभिन्न स्थानों (खेत) की सफाई एवं उसमें वृक्षारोपण कराया गया।
२०. पुष्टिमार्ग के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकास की योजना पर कार्य हो रहा है।
२१. वैष्णवजन के महाप्रसाद की व्यवस्था की गई है।

उपरोक्त सेवा कार्य विगत ५ वर्षो में किये गये है। जिसके कारण चरणाट धाम की लोकप्रियता वैष्णव समाज में बढ़ती जा रही है तथा वैष्णवजन उदारतापूर्वक अपना सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

श्री बैठकजी के विकास की योजना :-

१. श्री बैठकजी के निज मन्दिर जी का भव्य जीर्णोद्धार कराना।

२. श्री बैठकजी का चतुर्दिक विकास एवं जीर्णोद्धार कराना।
३. श्री विठ्ठलेश प्रभु अतिथि भवन के अन्य भाग का निर्माण कराना।
४. श्री बैठक जी में समुचित जलापूर्ति की व्यवस्था कराना।
५. वैष्णव मंडान के लिए स्थायी कोष का निर्माण कराना।
६. वृद्ध वैष्णवजन के लिये वृद्धाश्रम का निर्माण कराना।
७. पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली की शिक्षा देना।
८. कमलसरोवर एवं वल्लभ सागर की सफाई एवं जीर्णोद्धार कराना।
९. परिक्रमा मार्ग का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराना।

उपर्युक्त कार्य वैष्णवजन के सहयोग से किया जायेगा।

चरणाट धाम- चुनार शहर के विकास की योजना :-

१. चुनार नामक शहर का नाम चरणाट धाम कराना।
२. चुनार शहर को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित कराना।
३. चुनार शहर में बैठकजी के समीप तथा किला से बैठकजी आनेवाले मार्ग पर "यात्री विश्राम गृह" का निर्माण कराना।
४. चुनार स्थित उस्मानपुरा से बैठकजी जाने वाले मार्ग पर "प्राकट्यस्थल प्रवेश द्वार" का निर्माण कराना।
५. बैठकजी मार्ग पर स्थित "श्री विठ्ठलेश प्रभु मिशन अस्पताल" का विकास कराना।
६. बैठकजी से किला मार्ग के मध्य में "श्री विठ्ठलेश पार्क" का निर्माण कराना।
७. उस्मानपुरा से बैठकजी होकर किला की ओर जाने वाली सड़क के दोनों ओर वृक्षारोपण कराना।
८. चुनार से बैठकजी होकर किले की ओर जाने वाली सड़क पर प्रकाश की व्यवस्था कराना।
९. चुनार में बस स्टेशन का निर्माण कराना।
१०. चुनार रेलवे स्टेशन पर प्रमुख यात्री गाड़ियो को रुकवाने की व्यवस्था करवाना।
११. चरणाट धाम में पर्यटन विभाग की ओर से प्रतिवर्ष सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन करवाना तथा मिट्टी के खिलौना उद्योग को सरकारी संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिलाना।

उपर्युक्त योजना पर कार्य उत्तर प्रदेश एवं केन्द्र सरकार के द्वारा कराये जाने की कार्यवाही संस्थान द्वारा की जा रही है।

श्री महाप्रभु की बैठकजी तथा चरणाट धाम(चुनार) शहर के चतुर्दिक विकास होने से यहाँ पर आने वाले वैष्णवजनों को काफी सुविधा मिलेगी तथा शहर में निवास करने वालों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास होगा।

श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु की असीम कृपा से तथा षष्ठपीठाधीश्वर नि०ली० गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधर लालजी महाराज की प्रेरणा से एवं षष्ठपीठाधीश्वर गोस्वामी श्री श्याममनोहरजी महाराज के मार्ग निर्देशन में चरणाट धाम की सेवा करने का जो परम सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, वह श्री महाप्रभुजी एवं श्री गुसाईजी की कृपा का साक्षात् फल है। समस्त वैष्णवजन से नम्र निवेदन है कि चरणाट धाम के उत्थान में तन-मन-धन से सहयोग प्रदान करके गोस्वामी १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज के सपनों को साकार करें। जय श्रीकृष्ण।

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

पुष्टिमार्ग और हवेली संगीत

श्री विट्ठलदास बापोदरा

लेखक वंशपरम्परा से जाने-माने संगीतज्ञ, विशेषकर हवेली संगीत के मर्मज्ञ हैं। प्रस्तुत लेख इनकी विद्वत्ता का परिचायक एवं संगीत में उनकी कितनी पैठ है, उसका द्योतक है।

वैष्णव सम्प्रदायों में जो मार्ग महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्यजी ने प्रगट किया वह पुष्टि सम्प्रदाय है। श्री आचार्यश्री और उनके पुत्र श्रीमद् विट्ठलनाथजी (श्री गुसाईंजी) की कृपा से आठ वैष्णवों ने जो भगवदीय भक्त होने के साथ साथ कवि और संगीतकार थे, प्रभु श्रीनाथजी के अष्टसखा का स्थान प्राप्त किया।

सोलहवीं शताब्दी में इन अष्ट सखाओं ने जो कीर्तन पद्धति का प्रारम्भ किया वह उस वक्त की शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद धमार की प्रचलित गायकी थी। उसमें प्रभुलीला के गुणगान द्वारा एक विशिष्ट प्रकार की विशिष्ट शैली से प्रभु को प्रसन्न एवं साक्षात्कार करने हेतु साहित्य, संगीत और कला के संगम स्वरूप एक कीर्तन भक्ति परम्परा बाद के भगवद्भक्तों के लिये स्थापित किया गया।

भक्ति और संगीत ये दोनों एक दूसरे के साथ घनिष्ठ रीति से जुड़े हुये हैं। कला से आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। सभी कलाओं में आध्यात्म्य पक्ष प्रधान होता है। इन सब कलाओं में संगीतकला श्रेष्ठ है। इस कला का भक्ति के साथ समन्वय करके मनुष्य जीवन के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हो सकता है। संगीतकला का आदर्श मोक्ष प्राप्ति यानी आत्मा का परमात्मा से मिलन है।

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में लिखा है कि गीत माहात्म्य की प्रशंसा करने में कौन समर्थ है। श्रीमद् वल्लभाचार्यजी आज्ञा करते हैं कि ईश्वर के गुणों का गान करने से भक्त में ईश्वरीय गुण आ जाते हैं। आगे भी वे आज्ञा करते हैं कि जब तक ईश्वर अपनी पूर्ण कृपा नहीं करता तब तक साधनदशा में प्रभु के गुणगान का कीर्तन ही भक्त को आनन्द देने वाला है। इससे भक्त को सदानन्द प्राप्त होता है। अतः अन्य साधन छोड़कर भगवान के गुणों का गान ही करना चाहिये जिससे ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सुलभ हो जावे।

वि० सं० १५३५ के वैशाख कृष्ण ११ को श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का प्रागट्य हुआ। उसी समय गोवर्धन पर्वत पर साक्षात् प्रभु श्रीनाथजी का भी प्रागट्य हुआ। तत्पश्चात् श्रीमद्वल्लभाचार्यजी ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की और उनके पुत्र श्रीमद्गुसाईंजी ने उनके साथ रहकर सुविस्तृत रूप से सेवा प्रारम्भ की। इस तरह प्रभु की प्रसन्नता के लिये प्रभु में राग, भोग, और श्रृंगार तीनों का विनियोग किया गया। सेवा की प्रक्रिया में हमारा मन संलग्न हो और लौकिक विषयों में लगी हुयी हमारी चित्तवृत्तियां प्रभु में जुड़ जायें, इसलिये उन्होंने एक विशिष्ट संगीत परम्परा शुरू की।

कीर्तन संगीत की यह सेवा दोनो आचार्यों ने महानभक्त कवि और संगीतकार ऐसे अष्ट सखाओं को सौंप दी और इन आचार्यों द्वारा जो कीर्तन परम्परा का प्रारम्भ हुआ उसे ही हवेली संगीत (पुष्टि संगीत) कहा जाता है। पुष्टिमार्ग में कीर्तन भक्ति को विशेष महत्व दिया गया है तथा भगवदीयकृत कीर्तनों से भगवद्गुणानुवाद द्वारा पूर्ण लीला पुरूषोत्तम का स्वरूप तथा लीला का वर्णन यथार्थ रूप में हुआ है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी तथा श्रीमद

प्रभुचरण गुसाईंजी श्री विट्ठलनाथजी ने अपने निज भक्त कवि और गायकों को कीर्तन की सेवा में नियुक्त किये। वे ही आठ कीर्तनकार 'अष्टछाप' कविजनों ने प्रभु की साक्षात् लीला का अनुभव करके कीर्तन गान किया। नवधा भक्ति में भी कीर्तन भक्ति का समावेश होता है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्

श्री महाप्रभुजी ने सेवा में राग , भोग और शृंगार को अंगीकार किया है जिससे ठाकुरजी की सेवा में हमारा मन प्रसन्नतापूर्वक एकाग्र हो। लौकिक में लगी हुयी हमारी चितवृत्ति प्रभु में लग जाये और हमारे हृदय के शुद्ध भाव से प्रभु प्रसन्न हों ऐसे तीन हेतुओं को ध्यान में रखकर राग-भोग और शृंगार में भी राग का स्थान प्रथम है। यहाँ राग शब्द कीर्तन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रभु की मंगला से लेकर शयन पर्यन्त की बारह मास की सेवा कीर्तन के साथ ही होती है। प्रभु स्वयं ही गीत संगीत शिरोमणि है। वार्ता साहित्य में प्रसंग है कि रूपा पोरिया को कीर्तन गाने का ज्ञान नहीं था परन्तु भाव बहुत था। उसी से रूपा जब कीर्तन गाते थे उसी समय श्रीगोवर्द्धनधर श्रीनाथजी को निद्रा आती थी। गोविन्द स्वामी के कीर्तन बिना श्री गोवर्धननाथजी अरोगे बिना बिराजे रहते ते। धोंधी जब कीर्तन करते तब श्री नवनीतप्रियाजी स्वयं श्रीहस्त से ताल देते थे। इसी तरह प्रभु की सेवा में प्रभु प्रसन्नता में रहें इसीलिये श्री महाप्रभुजी और श्री गुसाईंजी ने कीर्तन को सविशेष स्थान दिया।

श्री लालू भट्ट ने कीर्तन की व्याख्या करते हुये कहा है कि पुराण पुरुष श्री हरि के अनन्त नाम, दिव्य लीला और स्तोत्रादिक का श्रद्धापूर्वक कथन कीर्तन है। पुष्टिमार्ग में कीर्तन शब्द दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होता है। भगवद् कृपा से जब हमको प्रभु के साक्षात् दर्शन हों और प्रभु की लीलाओं का स्वानुभव हो तथा अलौकिक गान को जब ध्रुपद धमार की पद्धति से गाया जाता है तब वह कीर्तन कहा जाता है।

पुष्टिमार्ग में कीर्तन को पांचवाँ वेद कहा जाता है। क्योंकि वेद और भागवत में जो लीलायें प्रकट नहीं की गयीं उन लीलाओं की झांकी इन कीर्तनों में प्रकट हुयी हैं। इन भक्त कवियों द्वारा रचित कीर्तन रचनायें मात्र अपनी बुद्धि-कल्पना से रचे हुये सामान्थ काव्य या भजन नहीं हैं। अपितु साक्षात् स्वरूप की लीला का अनुभव करके उन्होंने पदगान किया है। वही प्रभु का निगुर्णात्मक नाम स्वरूप है। इसीलिये कीर्त्तन-साहित्य वेद और भागवत के समान ही पवित्र और उच्च कोटि का साहित्य रहा है।

कीर्तन का स्वरूप समझना बहुत जरूरी है। कारण श्री आचार्यजी श्री सुबोधिनीजी में आज्ञा करते हैं कि **"ज्ञात्वा पाने महान रसः"** समझ के पान करे तो ज्यादा रस प्राप्त होता है। इसीलिये कीर्तन भगवदस्वरूप की तरह स्वरूपात्मक है। जैसे सेवा में सेव्य स्वरूप हमारे गृह में बिराजते हैं उसी तरह कीर्तन साहित्य ग्रन्थ भी स्वरूपात्मक भाव से बिराजते हैं। अतः सेव्य सेवा के समय और परोक्ष स्थिति में अनोसर के समय में कीर्तन गाने चाहिये। जिस तरह से सेव्य स्वरूप कृपा करके उनका गूढ़भाव प्रगट करते हैं उसी तरह कीर्तन भी कृपा करके अपना स्वतः गूढ़ भाव प्रगट करते हैं। इसीलिये हमारे यहां कीर्तन समाज के समय ग्रन्थों एवं वाद्यों को तिलक और भेंट करने की परम्परा है।

श्री महाप्रभु निरोध लक्षण ग्रन्थ में आज्ञा करते हैं कि गोविन्द के गुणगान से जिस अलौकिक सुख की प्राप्ति होती है, वैसा सुख तो आत्मनिष्ठ श्री शुकदेवजी को भी नहीं मिला है। इसीलिये कीर्तनों के गान और श्रवण से हमारे हृदय की मलिनता दूर होती है तथा हमारा हृदय प्रभु को बिराजने योग्य बनता है। और किसी

समय प्रभु भक्त के सामने बाहर प्रगट होते हैं। उसी तरह कीर्तन में वर्णित प्रभु और कीर्तन करनेवाले सब एकरस हो जायें इसी सें कीर्तन की सफलता है।

कीर्तन सुखानुभव के लिए है। इससे भगवान् और भक्त दोनों को सुखानुभव होता है। कीर्तन गान से प्रभु प्रसन्न होते हैं और प्रभु को प्रसन्न हुये देखकर भक्त भी प्रसन्न होता है। सूरदासजी ने एक पद में ऐसा गान किया है– **''सूरदास प्रभु मदन मोहन पियको गाइये-रिझाइये, सुनाइये मीठी मधुरी तान''**

जब व्यक्ति सुख और दु:ख की अनुभूति करता है, तब वह सहज ही गा उठता है। लौकिक अनुभूति और वृत्तियों को प्रभु की ओर मोड़ने का सरल मार्ग कीर्तन संगीत है।

श्रीनाथजी की कीर्तन गान की सेवा श्री महाप्रभुजी ने सबसे पहले श्री कुंभनदासजी को और तत्पश्चात् दूसरे भक्तों को सौंपी थी। कीर्तन गान की सेवा को श्री गुसाईंजी ने सुव्यवस्थित रूप दिया तथा अष्ट सखाओं की स्थापना की जिनमें (१) श्री कुंभनदास (२)श्री सूरदास (३) श्री परमानन्ददास (४) श्री कृष्णदास (५) श्री गोविन्दस्वामी (६) श्री छीतस्वामी (७) श्री चतुर्भुजदास एवं (८) श्री नन्ददास थे। मंगला से लेकर शयन पर्यन्त की प्रभु की नित्य लीला के अनुकूल कीर्तन तथा विविध वाद्यों के साथ गाने की जो सुन्दर योजना उन्होंने की उसे कीर्तन प्रणालिका कहते हैं।

हमारे ये कीर्तन सामान्य जन समाज में 'हवेली संगीत' के नाम से प्रख्यात हैं। पुष्टिमार्ग के सभी मंदिर श्री नन्दरायजी हवेली की भावना (नन्दभवन) हैं। इस कारण से ये कीर्तन 'हवेली संगीत' के नाम से प्रसिद्ध है। 'हवेली संगीत' और पुष्टिमार्गीय कीर्तन दोनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

हवेली संगीत (लीला गान) दिन के अलग अलग प्रहर के और ऋतु ऋतु में समयानुसार रागों में गाये जाते हैं। इसका नियमानुसार पालन पुष्टिमार्गीय मंदिरों में कीर्तन प्रकारों में ही देखने को मिलता है।

प्रात: काल साधारणत: कीर्तन भैरव राग से प्रारम्भ होता है। भैरव, विभास, रामकली, देवगंधार, ललित, मालकोस, पंचम, सुहा, सुघराई, हिंडोल, इसके बाद विलावल, आशावरी, धनाश्री, टोड़ी, दोपहर के समय सारंग, नूरसारंग, मदमात सारंग, सावंत सारंग, गौड़ सारंग, शुद्ध सारंग, इसके बाद शाम को राग नट, गौरी, पूर्वी, सोरठ, विहाग, हमीर, नायकी, इमन कल्यान, अडाना, केदार, कान्हरो, विहागरो आदि नित्य के राग भी भिन्न-भिन्न ऋतु अनुसार बदलते रहते हैं। दानलीला एवं अन्नकूट समय पर विलावल उसके बाद शीतकाल में मालकौंस, ललित, वसंत् के दिनो में वसंत, उष्णकाल में सारंग और नूर सारंग, वर्षाऋतु में मल्हार राग विशेष गाया जाता है। इस शैली -कीर्तन शैली में ढाल, तरज, चाल, चोखरा का ढाल आदि गाया जाता है।

पुष्टिमार्गीय मंदिरों में प्रयुक्त कीर्तन संगीत पद्धति दक्षिण की कर्णाटक पद्धति नहीं परन्तु उत्तर की विलावल पद्धति है ऐसा कीर्तन मर्मज्ञों का मानना है। यह कीर्तन प्रणालिका पांच सौ वर्ष पुरानी है और आज पर्यन्त यह पद्धति मंदिर हवेलियों में सुरक्षित है।

विविध रागों में पदों के साथ राग मालाओं के पद भी विविध समय पर गाये जाते हैं। इस रागमाला के पदों में प्रत्येक चरण पर या आधे चरण पर या चरण के टुकड़ों पर राग बदलता रहता है और साथ ही साथ ताल भी बदलता रहता है। विलावल मेल की इस पद्धति की ध्रुपद धमार शाखा पद्धति से कीर्तन का गान होता है। ध्रुपद गान संगीत की दृष्टि से अतिशय कठिन है। धमार भी एक प्रकार का ताल है। इस ताल में जो पद गाये जाते हैं, उसे 'धमार' के पद कहे जाते हैं। होली के दिनों में ऐसे पद विशेष गाये जाते हैं।

पुष्टिमार्गीय संगीत कीर्तन के अनेक प्रकार हैं । इसके कवित्त, दोहा, अष्टपदी, धोल, रास, ध्रुपद, धमार, वसंत, रसिया, होरी, कांफी, लोकगीत, रास के पद चौखडा, आख्यान ठुमरी आदि अनेक प्रकार हैं । परम्परा से आये ये सब प्रकार सब राग शास्त्रिय संगीत से जरा अलग पड़ते हैं ।

ये राग तथा पद गाने की प्रणाली परम्परागत है । अष्ट सखाओं के उपरान्त उनके समकालीन ८४ तथा २५२ वैष्णव भक्तों में से भी कई भक्तों के लीलागान के पद कीर्तन हैं ।

कीर्तन के प्रकार –

१. नित्यलीला के कीर्तन
२. बारह मास के उत्सव के कीर्तन
३. वसंत, धमार, होरी, डोल, उत्सव के लीलागान के कीर्तन
४. गोपीगीत, अष्टपदी तथा सुगम गान के प्रकार

कीर्तन शैलियां –

१. श्रीनाथद्वारा कीर्तन शैली
२. श्री मथुरा कीर्तन शैली

प्रस्तुत हवेली संगीत में साहित्य, शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत व प्राचीन परम्परागत शैलीयुक्त भक्ति संगीत प्रभु लीलाओं का गान है, एवम् प्रभु कृपा प्राप्ति का उत्तम प्रकार है । इस कीर्तन गान से प्रभु प्रसन्न होते हैं तथा मानसी सेवा का उत्तम प्रकार भी इसी से सिद्ध होता है । हमारे प्राचीन गोस्वामी आचार्य का भी यही मत है कि कीर्तन पांचवां वेद होने से इसके द्वारा ही प्रभु सर्व सेवाओं को अंगीकार करते हैं । एक ओर ठाकुरजी की समग्र सेवा है तो दूसरी ओर मात्र कीर्तन की सेवा स्वीकृत है । इसी से पुष्टिमार्गीय कीर्तन संगीत सेवा की श्रेष्ठता सिद्ध होती है ।

नाट्यशास्त्र में दिखाये गये वाद्यों के प्रकारों में से तंतुवाद्य, पखावज और झांझ का उपयोग हमारी कीर्तन प्रणाली में विशेष होता है । कौन सा वाद्य किस समय बजाया जाय, उनका भी निश्चित क्रम होता है ।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली में श्री को जगाने और पोढ़ाने तक के कीर्तन तानपूरे के साथ ही गाये जाते हैं । अत: तानपूरे को कीर्तन गान का मुख्य वाद्य कहा जायगा । बीन भी संप्रदाय की प्रणाली में प्रचार में है । नाथद्वारा और कांकरोली आदि मंदिरों में बजायी जाती है । बीनवीणा के अभाव में सितार का भी प्रयोग किया जाता है । मुरारीदास की अडाना राग की धमार में इस प्रकार उल्लेख किया है –

गावत धमार आई ब्रज को सुकुमार नार
शंख, श्रृंग, चंग, उपंग, महुवर, बंसी, सहवार ।

सारंगी का उल्लेख परमानन्ददासजी ने 'रुज, मुरज, आवज, सारंगी, झांझ, किन्नरी बाजे' के रूप में किया जाता है । ठाकुरजी के सम्मुख सारंगी बजाने की परिपाटी हरिरामजी के काल से ही प्रारम्भ हुयी है । मंगला के दर्शन के बाद मृदंग का उपयोग किया जाता है । उत्सव-त्यौहारों में शयन दर्शन में भी पखावज को बजाया जाता है । सम्प्रदाय की प्रणाली में उत्सव-त्यौहारों के दिनों में कीर्तन गाते समय मृदंग के साथ झांझ बजायी जाती है । इन दिनों में तानपूरे के स्थान पर झांझ बजाकर ही कीर्तन गाये जाते हैं । ताल-वाद्यों के साथ होली के दिनों में

धमार गान के साथ झांझ के उपरान्त किन्नरी बजायी जाती है। डफ भी होली के त्यौहारों में झांझ-मृदंग के साथ बजाया जाता है। डफ-उपंग, खंजरी आदि सब साधनों का प्रयोग होली के दिनों में होता है। हारमोनियम ने तो संप्रदाय में सारंगी का स्थान ले लिया है। लगभग ६० साल से इसका उपयोग होने लगा है।

हमारे संगीत की यह विशेषता है कि जिस प्रकार सामग्री और शृंगार में ऋतु अनुसार परिवर्तन होता रहता है, तदनुसार कीर्तन गान के राग भी ऋतुओं के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। शीतकाल में गाये जाने वाले राग अधिकतर उष्ण प्रकृति के होते हैं जो हेमंत शिशिर ऋतु में ही गाये जाते हैं। ये राग उष्णकाल में ग्रीष्मऋतु में – गौण हो जाते हैं। किन्तु वसंत ऋतु होरी खेल में सभी रागों को अंगीकार किया जाता है। माघ सुदी ५ से १५ तक वसंत राग का बन्धन है। षड्ऋतु के साथ रागों की तथा भक्तों की लीला सम्बन्धित भावना के अतिरिक्त संगीत के सात स्वरों की भावना की ओर देखा जाय तो छः स्वरों में धर्म की भावना और सातवें स्वर में धर्मी की भावना मानी गयी है।

इस प्रकार अष्टछाप संगीत की दृष्टि से उपर्युक्त तीन प्रकार जो हैं – (१) नित्यकीर्तन (२) वर्षोत्सव (३) वसंत धमार और साहित्य की दृष्टि से देखा जाय तो (१) नित्य सेवागान (२) वर्षोत्सव वधाई (३) पर्व त्यौहारगान (४) लीलात्मक ज्ञान (५) प्रकृति सौन्दर्यगान (६) भावात्मक रसगान (७) विनय दीनतादि और (८) गुरु निष्ठादि प्रकीर्ण गान विभाग में सुप्रसिद्ध हैं।

इस तरह कीर्तनों में शब्द के साथ भाव की प्रधानता है। पदों को, अष्टछाप कवियों ने प्रभु के जैसे जिस रूप में दर्शन किये उन्हीं भावों को शब्दों में बांधकर व्यक्त किया है।

संगीत मनोयोग का श्रेष्ठ साधन है। संगीतमयता से कोई भी कार्य करते हैं तो हम सहज ही संगीत के माध्यम से उस कार्यविशेष में तल्लीन हो जाते हैं। इसलिए इसे प्राचीनकाल से प्रभु सेवा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली में कीर्तन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान हैं। यूं तो कोई भी प्रभुनाम का संकीर्तन करे तो उसे कीर्तन कह सकते हैं। परन्तु पुष्टिमार्ग में अष्टछाप आदि कवियों की वाणी के लिए ही कीर्तन शब्द रूढ़ हो गया है। इसलिए कीर्तन खासकर के प्रभु सेवा का माध्यम है। इसे किसी भी और वस्तु का माध्यम बनाना अनुचित है।

कीर्तनों का प्रचार-प्रसार हो यह उचित ही है परन्तु जिन उच्च भावों को प्रभुकृपा से अष्ट सखाओं ने प्रकट किया था, उन भावों का हनन न हो, इसे लक्ष्य में रखकर चलना चाहिये।

अतः कीर्तन का प्रचार-प्रसार इस ढंग से होना चाहिये कि उसकी गरिमा बनी रहे एवं कीर्तन का वास्तविक स्वरूप नष्ट न हो।

●

॥ श्री मुकुन्दगोपाललालौ जयतः ॥

श्री मुकुन्दरतिवर्द्धिनी

श्री श्यामलाल शर्मा (कीर्तनियाजी)

लेखक ब्रजवासी हैं और श्री गोपाल मन्दिर में मुख्य कर्तिनिया के पद पर पिछले कई वर्षों से कार्यरत हैं। पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के विषय में भी आपकी बहुत अच्छी जानकारी है। आप अष्टछाप कवियों के कीर्तन संगीत का प्रशिक्षण निःशुल्क रूप से पिछले चार-पाँच वर्षों से वैष्णव शिक्षार्थियों को दे रहे हैं।

श्री यमुनाजी को स्वरूप, जाके स्मरण व पान करवे सूं श्रीमुकुन्दप्रभु के चरणारविन्द में रति (प्रेम) में वृद्धि करवे वारो है, क्यों, जो श्रीयमुनाजी को स्वरूप श्रीठाकुरजी को अपनो ही स्वरूप है। ठाकुरजी ऐसो प्रमाण अष्टछाप की वाणी द्वारा रचित कीर्तनन और श्री महाप्रभुजी विरचित ''**श्रीयमुनाष्टक**'' में सिद्ध होत है। जैसो ही श्री महाराणीजी को जीव के ऊपर कृपा करवे को सहज स्वभाव है। सो यह पद श्री गोविन्द स्वामी रचित है–

श्याम संग श्याम व्है रही श्री यमुने।
सुरत श्रमबि विन्दुते सिंधुसी बहि चली,
मानो आतुर अली रहीं न भवने ॥ १ ॥

कोटि कामहिं वारों, रूप नैनन निहारों,
लाल गिरिधरन संग करत रमने।
हरखि गोविन्द प्रभु निरखि इनकी ओर मानो
नवदुलहनी आई गवने ॥ २ ॥

ये गोलोकधामकी ऐसी लीला के दरसन गोविन्द स्वामी को भये तासो गायो। क्यों ? श्री महाराणी मां को स्वरूप तो अलौकिक है, सो देवन को हूं दुर्लभ है, सो यह अलौकिक स्वरूप सूर्य देवता के पास कैसे आयो ? सो या कीर्तन द्वारा जान्यो जाय है + ''**सूरत श्रमबि विन्दुते सिंधुसी बहि चली**'' तथा ''**स्मरश्रमजलाणुभिः**'' यह गोलोकधाम की लीला को वर्णन है। जा समय श्री ठाकुरजी श्री स्वामीनीजी, ब्रजगोपी, ब्रजभक्तन के संग रसमग्र व्है अति श्रम सो रसात्मक लीला करन लगे तब श्रीठाकुरजी के श्रीअंग सो ''**रसात्मक-श्रमविन्दु**'' प्रवाहित भये, तिनको पान किरण द्वारा श्री सूर्यदेव किये। यह लीला इतनी रसात्मक हती कि सूर्यदेव अपनी गति भूल और दर्शन करवे लगे।

तो वो जो श्री ठाकुरजी के श्रीअंग को रसात्मक भाव, श्रमबिविन्दु (श्रमकण) को सूर्यदेव ने अपनी किरण द्वारा वा रस को पान कियो, सो वह रस सूर्यनारायण के हृदय द्वारा श्री यमुनाजी के रूप में प्रादुर्भाव भयो ताके साथ ही श्री यमुनाजी ने जो लीलायुक्त भगवत् स्वरूप को दर्शन, गोलोकधाम में किये, ताकी खोज में चल पड़ी। जब आपश्री महाराणीजी चलते-चलते कलिन्दगिरि पर पधारीं, सो आपके (यमुनाजी के) अलौकिक कोटिकन्दर्प लावण्य स्वरूप के दर्शन करके कलिन्दगिरि ने पुत्री कहिके विनती करी कि आप या स्वरूप सों भूतल पर पधारोगे तो यह मृत्युलोक को जीव तो कुदृष्टि वारो है या ते आप हमारी पुत्री कालिन्दी के जलधारा में प्रवेश करिके आपको जहां पधारनो है सो आप तहाँ पधारो। तब श्री यमुनाजी (महाराणीजी) कलिन्द पर्वत

की शिलाखंडन सूं प्रवाहित होती भयी खाण्डववन में पधारी और वहां सहस्त्रवर्ष तक आपश्री ने तप कियो । जब मथुरा में श्री पूर्णपुरुषोत्तम षोडशकला पूर्ण भगवान् श्री कृष्णचन्द्र को प्रादुर्भाव भयो और वासुदेवजी श्री ठाकुरजी को सुपड़ा में ले कोयलोगाम ते गोकुल के लिये श्री यमुनाजी में प्रवेश किये ता समय श्री यमुनाजी ने अपने प्रीतम को आगमनं जान अनेक प्रकार के शुभ सगुन को अनुभव कियो और मन में अतिआनन्दित हरषित होय जल में अतिवेग बढ्यो तथा श्री प्रभु के चरणारविन्द को स्पर्श कर अपने निकुंज में पधराये और विविध भाँति की सामग्री आरोगायी के अपने मनोरथ को पूर्ण कियो ता मनोरथ को वर्णन अष्ट सखा हूँ नाहिं कर सके तासो महाभोग (जन्माष्टमी रात में) के कोऊ कीर्तन नहीं लिखे क्योंजो ये गूढ़ लीला है यातें ।

श्री यमुना और श्री ब्रज के द्वारा भगवान् की लीला प्रकट भई । अत: श्री ब्रज दिव्यगोलोक है और वही गोकुल या ब्रज है । ब्रज शब्द ही व्यापकता उद्बोधक है । जा प्रकार यह सृष्टि सद्रूप में व्यापक है वाहि प्रकार लीलासृष्टि स्वरूपात्मक व्रज और श्री यमुनाजी अलौकिक और व्यापक हैं । ताते वामें यशोदोत्संगलालित गोपीजन वल्लभ श्री कृष्ण पूर्णपुरुषोत्तम परब्रह्म प्रगटे व्हे विहार करत हैं ।

श्री यमुनाजी में सदासंयोग, स्थायी भाव एकरस अखण्ड प्रभु लीला विहार करत हैं । श्रीकृष्ण के मिलने को नाम ही श्रीयमुनाजी है । ताते श्रीकृष्ण के मिलवे के अर्थ व्रजकुमारिकान ने श्रीयमुनाजी को ही श्रेष्ठ करिके यमुनातट पर ही श्रीकृष्ण मिलन हेतु व्रत धारण कियो । याते ही श्री हरिरायचरण यमुनाष्टक में आज्ञा करे हैं–

कृष्णव्रतफलप्रदायै नमः –

जब कुमारिका ने श्री यमुनाजी की रेणुकाजी की पूजा करी, कात्यायिनी व्रत कियो ता समय चीरहरण के मिस श्री यमुनाजी के तीर पर श्रीठाकुरजी के दर्शन और मिलन श्री यमुनाजी की कृपा ते भयो । याते पुष्टि जीव को श्री यमुनाजी को आश्रय सर्वप्रथम करनो तो प्रभु प्राप्ति में सहायता मिले याते (श्री आचार्यजी महाप्रभुजी) श्री मदाचार्य चरण ने षोडशग्रन्थ में सर्वप्रथम श्री यमुनाजी की स्तुति "**श्रीयमुनाष्टक**" की रचना करी के वंदन कियो । सो जीव को श्री महाराणीजी को आश्रय सदा करनो ।

कृष्णलीलामृतजलायै नमः –

प्रभु ब्रजभक्तन सहित रासादिक लीला करत हैं तब श्रम द्वारा नितरते रस निकसत है । सो जल क्रीड़ा के मिस सगरी लीला को श्रम रूप अमृत जल श्री महाराणीजी में है या भावते जलपान करे तो फलरूप नौतन शरीर होय । क्यों जो । बृज में ही श्री महाराणीजी को जल है जो श्री यमुनाजी सम्बन्धी है । तिनके सीचे जो फल फूल मेवा सब प्रभु सम्बन्ध करायके पाछे लीजै ।

कृष्णस्थितायै नमः –

श्री ठाकुरजी में श्री यमुनाजी सदा स्थित हैं, श्री यमुनाजी में श्री ठाकुरजी सदा स्थित हैं ।

कृष्णवासहृदयायै नमः –

श्री यमुनाजी के हृदय में श्रीकृष्ण सदा बसत हैं, ताते श्रीकृष्ण के हृदय में श्री यमुनाजी सदा बसत हैं । सगरे भक्तन के हृदय में श्रीकृष्ण कू बसाइये, यह अभिप्राय जान के श्री ठाकुरजी प्रसन्न होयके श्री यमुनाजी कूं अपने हृदय में बसाये हैं ।

●

कृष्णकमलस्थानभुजायै नमः –

श्रीकृष्ण के मिलने को नाम श्री यमुनाजी है। ताते यह सन्देह है जो श्री यमुना जी कोउ देश में है। तहां श्री आचार्यजी महाप्रभुजी कहे **''विशुद्ध मथुराततटे सकल गोपगोपीवृते कृपाजलधिसंश्रिते''**। ब्रज में तीन प्रकार ते श्री यमुना जी हैं और तीन ठोर विराजत हैं। एक मथुरा तट पर विश्रांत घाट पर, स्नान, जलपान करे तो अनेक पापरूप प्रतिबंध ते जीव शुद्ध होय जाय। **''सकल गोपगोपीवृते''** एक श्री ठकुराणी घाट पर, सकल गोप गोपी आवत प्रभुन सूं मि़ले हैं। ताते भगवदीय गाये हैं। **''श्री गोकुल के निकट बहत हैं लहरन की छबि आवे।''** ताते श्री ठकुराणी घाट पर मिलवे को स्थान है, ताते जो प्राणी जीव श्री गोकुल सम्बन्धी है, लीला के भाव सुं श्री ठकुराणी घाट के आश्रय ते प्रभुन सुं मिलाप होय याते ब्रज में श्री यमुनाजी को पुष्टिस्वरूप सूं श्री वल्लभघाट पर **''कृपाजलधि संश्रिते''** या के भाव सो विराजत है।

श्रीकृष्णलीलास्थलविशुद्धकायै नमः –

श्री कृष्ण को लीलास्थल जो श्री गोकुल, श्री गिरिराज, श्री वृन्दावन चीरघाट आदि हैं सो सब स्थल ठोर-ठोर शुद्ध स्वच्छ लीला सामग्री की सिद्ध करत है। जहां-जहां श्री ठाकुरजी की लीलास्थली है वहां कुंड, कूप, लता-पत्ता, वृक्ष रज आदि सभी वस्तुन में मिली अनेक रूपधरी श्री महाराणीजी विराजत हैं।

प्रभु को नाम कृष्ण और श्री यमुनाजी को नाम कृष्ण ताते सिद्ध होत है कि श्री ठाकुरजी और श्री यमुनाजी (पटरानी जी) एक ही स्वरूप है। श्री यमुनाजी को ऐसो ही स्वरूप है याते श्री यमुनाजी ब्रज में ही पुष्टिस्वरूप सूं विराजे हैं।

भाग्य सौभाग्य श्रीयमुने जु देई।
बात लौकिक तजौ पुष्टि यमुने भजो, लाल गिरधरनवर तब मिलेई ॥ १॥
भगवदीय संगकर बात इनकी लहें, सदा सान्निध्य रहें केलि मेई।
नन्ददास जापर कृपा श्रीवल्लभ करें ताके श्रीयमुने सदाबस जु हेई ॥ २॥

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण

खण्ड

[ग]

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

तीन पद

प०भ० गोलोकवासी रामदेई का भरापूरा व सम्पन्न परिवार था। परन्तु श्री मुकुन्दप्रभु की इच्छा कुछ ऐसी ही थी कि वह सब की ममता छोड़कर श्रीमुकुन्दप्रभु के सान्निध्य में आ गयी और अपने देह-विलय पर्यन्त मंदिर के दूधघर, फूलघर, सागघर वगैरह की सेवा एकनिष्ठ होकर करती रही। प्रस्तुत तीन पद वह बड़े प्रेम से व राग से गाती रही जिसे यहाँ ग्रन्थ के वाचकों के हितार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१)

मुकुन्द लला पलना झुले हो रामा, मुकुन्द लला झुले
पलना हो रामा मुकुन्द लला मेरो
काहे को तेरो पलना बन्यौ है
काहे को लागी है फुलना हो रामा
मुकुन्द लला मेरो
चैती गुलाब को पालना बन्यौ है
पंचरंग फुलना लगाय हो रामा
मुकुन्द लला---
माथे मुकुट काने कुण्डल सोहे
चीबुक की शोभा निराली हो रामा
मुकुन्द---
कंठे मोती की माला सोहे
दुलरी को शोभा निराली हो रामा
कठला की शोभा निराली हो रामा
मुकुन्द---
बाह मे बाजु पहुचियां कर में
नूपुर की शोभा निराली हो रामा
मुकुन्द---
श्री मुरलीधरजी पालना झुलावे
तन मन धन सर्व वारि हो रामा
मुकुन्द---
दीन दासी कर जोर कहत है
तन मन धन सर्वे वारी हो रामा
मुकुन्द---

(२)

मुकुन्द प्यारे की सूरत पर
हुए कुर्बान बैठे हैं
नहीं है राह हमें मालुम
हुए बेजान बैठे हैं।
मुकुन्द प्यारे---
कहां यमुना की तट आली
कहां कद्‌मो की छइयां है
कहां बंसी बजाते हैं
लगाए कान बैठे हैं
मुकुन्द प्यारे---
रहे ना तेज दुनियां के
कभी छूठे हुए बिलकुल
सभी को छोड़कर तुमको
ही अपना बैठे हैं।
मुकुन्द प्यारे---
कहीं भी ठौर है नाहीं
बसेरा ले कहां जाके
चरण कमलों में कृष्ण अपना
ये घर हम मान बैठे हैं।
मुकुन्द प्यारे---

(३)

धन्य-धन्य चैत्र मास सुदी तेरस रे आज सोहेलो
प्रगट्या श्री मुरलीधरलाल रे आज सोहेलो
श्री जीवनलालजी ने सुत थया रे आज सोहेलो
तेल सुगधें चोलाओ रे आज सोहेलो
उस्नोधक जल स्नान कराया रे आज सोहेलो
अंग वस्त्र कराओ रे आज सोहेलो
केसरी धोती बगलबन्दी धराओ रे आज सोहेलो
मोती ना कठला कंठे धराओ रे आज सोहेलो
वऊ बेटी सऊ पलने झुलावे रे आज सोहेलो
पलना ना दरशन खुल्या रे आज सोहेलो
ताल मृदंग झाझर बाजे रे आज सोहेलो
गोपाललालजी बालकृष्णलालजी पालना झुलावे रे आज सोहेलो
बालक ने दरशन ने लई आव्या रे आज सोहेलो
मुरलीजी ने बालकृष्णलालजी दरशनने लई आव्या रे आज सोहेलो

गोपाललालजी आरती कर्या रे आज सोहेलो
न्यौछावर करी आप्या रे आज सोहेलो
बालक ने भेट कराव्या रे आज सोहेलो
मारकण्डेय नी पुजा थई रे आज सोहेलो
गोपाललालजी मुरलीधरलालजी ने लई ने बेठ्या रे आज सोहेलो
बालकृष्णलालजी भेंट कराव्या रे आज सोहेलो
नारी सऊ मली ढोल गावे रे आज सोहेलो
कीरतनीयाजी बधाई गावे रे आज सोहेलो
चन्द्रप्रियाबेटीजी आरती लई आव्या रे आज सोहेलो
इड़ी पीड़ी आरती कीधी रे आज सोहेलो
जन्म पत्रिका त्याहा बचाये रे आज सोहेलो
ब्राह्मण लोगो ने दक्षिणा दीधी रे आज सोहेलो
मारकण्डेय पुजा करी रे उठ्यारे आज सोहेलो
सहु वैष्णव भेंट करवा आव्या रे आज सोहेलो
दासी नी विनती सुनजो रे आज सोहेलो
राखो चरन ने पास रे आज सोहेलो
धन्य-धन्य चैत्र मास सुदी तेरस रे आज सोहेलो
प्रकट्या श्री मुरलीधरलालजी रे आज सोहेलो

●

श्री वल्लभ विठ्ठल के सब वंशज को सुमिरन करूँ कराऊँ
अष्ट सखान सुमिर चौरासी दो सौ बावन को चित लाऊँ
श्री वल्लभ गोपीनाथ श्री विठ्ठल गिरधर गोविन्द बालकृष्ण श्री
गोकुल नाथ पधारो हृदय में हे यदुनाथ मेरे चितभावत
हे यदुनाथ चरणधरो मेरे हृदय में हे घनश्याम रहो नित
हे गिरधर श्यामा गिरधर मुरलीधर को मैं दास कहावत
कृष्ण प्रिया तेरी धन्य धन्य अति शरद वल्लभा सुख बरसावत
श्याम मनोहर मेरे प्यारे काहे न मोपे कृपा दिखलावत
सूरदास परमानन्द बाल लीला को वर्णन सबहि सुनावत
कुभनदास भावे किशोर लीला को मोई नित पान करावत
कृष्णदास नन्ददास नित्यलीला रस रास को सुख दरसावत
छीत स्वामी स्वरूप गुरु गोविन्द लीला एकहि रूप दिखावत
सखाभाव दरसाय चतुर्भुजदास विरहलीला दरसावत
पुनि लीला लाडली लाल की पोढ़न की निज जनन दिखावत
सुन्दर वदन स्वामिनी को देखन को दीपक बरत दिखावत
विरह श्री विठ्ठलेशनहि सहिके निज जीवन अवसान करावत
श्री गोवर्धन यमुना वृज के धाम गुप्त लीला प्रगटावत
राधेकृष्ण कहे हे गुरुजन काहे ना मोपे कृपादरसावत ॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

षष्ठपीठाधीश्वर नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की सुखद स्मृति में वैष्णवों के संस्मरण

(१)

१– श्री वल्लभ कुलभूषण गो० श्री १०८ श्री गुरुदेव की प्रेरणा से एवं गो० श्री १०८ श्री श्याममनोहरजी महाराज की आज्ञा से महापतित गोपालदास को आपश्री के वचनामृत की आज्ञा मिली। हमारे गुरुवर महाप्रभुजी के अवतार थे। पूरे भूतल पर आपश्री की मान्यता रही। सब कुछ का निर्णय आप ही पर रहा। श्रीनाथजी के तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज जतनबर में पधारे रहे। तब आपश्री पधार के साष्टांग दण्डवत् किया। तिलकायितश्री कहने लगे कि काकाजी क्या कर रहे। आपश्री ने कहा कि आपको नहीं आपकी गद्दी को दण्डवत् कर रहे हैं।

२– श्री मुकुन्दरायजी को आपश्री श्रीनाथजी जब पधरा कर के ले गये उस वक्त का आनन्द अद्‌भुत रहा। श्रीनाथजी में शोभायात्रा गोधूलि समय निकली। तिलकायितश्री व सब गोसाईं बालक, एवं वैष्णव जन की अद्‌भुत शोभा रही। जिस दिन आपश्री ने श्रीनाथजी का शृंगार किया वह अद्‌भुत रहा। आपश्री का सेवा शृंगार, व्यवहार, वैष्णवों के प्रति प्रेम, मेड़ मर्यादा अद्‌भुत रही।

३– तिलकायितश्री के लालजी का मथुरा में प्रस्ताव रहा। हम वहीं पर रहे। आपश्री ने वहां हमको भेजा। तिलकायित के यहां तार लेकर गये। तार को देखते ही तिलकायितश्री हर्ष से प्रफुल्लित हो गये। तुरन्त विशेष मीटिंग बुलाई और कहा कि काकाजी पधार रहे हैं। आपश्री की व्यवस्था सुचारु रूप से हो और रोज की रिपोर्ट हमको दी जाये। आपश्री छोटे मदनमोहनजी में बिराजे। प्रस्ताव में आप बराबर पधारते रहे। एक दिन दाउ बाबा बिराजे रहे। साथ में श्रीनाथजी के कीर्तनियाजी रहे। दाऊ बाबा ने आपश्री से कीर्तन करने की विनती की। तब आपश्री ने कहा कीर्तनिया तो है। तब दाऊ बाबा एवं कीर्तनिया ने बहुत विनती की तब आपश्री ने कीर्तन शुरू किया। कीर्तनिया को झेलने के लिये कहा तो वह नहीं झेल सके। तब थाप देकर आपश्री ने बताया, आप कीर्तन के बहुत मर्मज्ञ रहे।

४– जतीपुरा में द्वारिकाधीश की यात्रा में आपश्री पधारे। अद्‌भुत आनन्द रहा। उसमें गो०श्री प्रथमेशजी के खुले अधिवेशन में आप पधारे। गो० श्री प्रथमेशजी के वचनामृत करने के आग्रह पर आपश्री ने वचनामृत किया। आपश्री ने श्री महाप्रभुजी के सिद्धान्तों का वर्णन किया– **आप सेवा करी सीख्वे श्री हरि**, घर में निधि विराजती हो वहाँ सुचारु रूप से सेवा न चले तो प्रभु परिश्रम पावे और दूसरी आज्ञा आपश्री ने किया कि वैष्णव को उपदेश में हम उनको कर्तव्य बतावें लेकिन हमलोगों ने भी ब्रह्मसम्बन्ध लिया है। हमारे कर्तव्य भी वैष्णव से ज्यादा होने चाहिये।

५– एक बार कोई बड़ा शास्त्री आपश्री के पास आया। उससे आपश्री ने कहा हमारे सम्प्रदाय में ॐ क्यों नहीं है ? वह इसका कारण नहीं बता सका। तब आपश्री ने आज्ञा किया कि श्रीनाथजी साक्षात् पधार कर ब्रह्मसम्बन्ध की आज्ञा दी इसलिये ॐ की जरूरत नहीं है।

६– जबलपुर के सेठ गोविन्ददास आये और कहा कि यह जो सम्प्रदाय है उसमें जनहित क्या है । आपश्री ने कहा कि– **प्रकट हूवे मारग रीत दिखायी । सेवा रीत प्रीत व्रजजन की जन हित जग प्रगटायी ।** महाप्रभुजी का प्राकट्य दैवी जीवों का उद्धार एवं ठाकुर जी के पीछे सब परिकर वैष्णव, गौ, ब्राह्मण के प्रतिपालक ही जनहित हैं ।

७– कोई ब्रजवासी आवे उनकी रहने तथा प्रसाद की व्यवस्था, उनको किसी प्रकार की तकलीफ न हो उस पर ध्यान देते रहे ।

८– कोई साधु दर्शन में दिखाए तो उसे बुलावें उससे पूछें - कहाँ के हो । उसके प्रसाद की व्यवस्था करें । कोई परदेशी वैष्णव दर्शन में दिखाई दे तो उको बुलावें उसका भी स्वागत करे । आपश्री नित्य ही राजभोग एवं संध्या आरती के उपरान्त ठाडे-ठाडे घण्टों वचनामृत का अमृतपान करावें । राजभोग संध्या आरती में उत्सवानुसार कीर्तन करते रहे । आपके पास जो भी अनाथ आपके शरण में आवे उसका पूरा ध्यान रखते रहे । आखिरी में एक जबलपुर की ९० वर्ष की डोकरी बगीचे में रहती रही । वह एक दिन आपश्री के पास आई और कहा कि हमारे आँख का आपरेशन करवा दें । आपश्री ने कहा कि हम क्या डॉक्टर हैं ? तब डोकरी ने कहा आप हमारे सर्वस्व हैं । जब वह चली गई तब हमको आज्ञा भई कि उसने क्या कहा तुमने सुना । इसकी जिम्मेदारी अब हमारे ऊपर आ गयी । इसका आपरेशन तुमको करवाना है । आपरेशन करवाने के बाद आज्ञा भई जब तक इसको चश्मा न मिले इसकी पूरी व्यवस्था करना ।

९– आखिरी पधरई मोहनदास एडवोकेट के घर भई, आपश्री का श्रीअंग बिल्कुल अस्वस्थ रहा, हमने बिनती किया कि आपश्री का अंग ठीक नहीं है तो आपश्री न पधारें । हमारे ऊपर खीझ गये और आज्ञा की कि हमारा प्राकट्य किसलिये है दैवी जीवों के ऊपर कृपा करने के लिये । उस वक्त पानी बरस रहाथा पर छाता लेकर आपश्री वैष्णवों के साथ पधारे । इसी प्रकार निज वैष्णवों की तबियत खराब रहने पर भी आज्ञा करके पधारते रहे ।

१०– आपश्री की पधरई वैष्णव के घर रही । उसने पूछा प्रभु कैसे प्रसन्न होंगे । जयपुर के आभूषण चमकते (चमकते हुये एक साथ आवेगी) हुवे ठाकुरजी को धराये रहे । जब उनके घर की बहू बेटी भेंट करने आई तो वे लोग असली हीरा, मोती, पन्ना की वस्तु पहने थीं फिर वह वैष्णव ने वही प्रश्न पूछा, ठाकुरजी कैसे प्रसन्न होंगे, आपश्री ने आज्ञा किया तुम हमसे मत कहलाओ । बहूजी, बेटी असली आभरन पहनी है और ठाकुरजी---- ।

११– एक समय गोरखपुर के वैष्णव के घर पधरई की विनती रही । कई दिन तक गोलघर में पधारने के लिये लाईन डोरी पड़ी रही । आखिरी दिन वहाँ से तार आया कि आपश्री नहीं पधारेंगे तो यह प्रस्ताव रुक जायेगा तब आपश्री को राजभोग आरती करते समय पता लगा तो वही वस्त्र धराये आपश्री गोरखपुर पधारे ।

१२– दर्शन जब बन्द होने लगे और कोई वैष्णव आ जाये तो आपश्री टेरा खोलकर दर्शन करावें और आज्ञा करें कि हमारा प्राकट्य दर्शन वचनामृत अधरामृत देने के लिये है । आपश्री की वैष्णवों के ऊपर अत्यन्त दयालुता रही ।

१३– एक बार मन्दिर में मरम्मत का कार्य चल रहा था थोड़े से मोखे रहे उनको हमने बन्द करवा दिया, आपश्री पधारे और आज्ञा की कि यह सब मोखे गिरिधरजी महाराज के समय के हैं । इसकी मरम्मत हो सकती है न किं बन्द हो सकते हैं ।

१४- आपश्री का दण्ड विधान भी बहुत अद्भुत रहा। पहले कोठी जलघड़ा के बगल में रही। यदि कोई गलती करे तो जहाँ वर्तमान में कोठी है वहाँ उसे लाइन हाजिर किया जाये चाहे मैनेजर हो या अधिकारी उसी जगह पर काम करे और किसी वक्त ऐसा भी करते रहे कि पानी बरसते भये ध्वजाजी के सामने खड़ा कर देते रहे। आपका प्यार वैष्णवों व परिकर के प्रति बहुत रहा। इसलिये आपकी आज्ञा को कोई उल्लंघन नहीं करता रहा। कोई वैष्णवों या परिकर का कार्य होतो उसे अपना समझकर करवाते रहे।

१५- एक बार आपश्री रणछोड़जी के मन्दिर में पधारे। गायक ने आपश्री से विनती किया कि आपश्री गाने के लिये आज्ञा करें तो आपश्री ने कहा कि इस राग में यह राग मिलाकर गाओ। तब उसने कहा कि हम यह नहीं गा सकते।

१६- ब्रह्मसम्बन्ध कोई वैष्णव लेने जाए तो उसको मारग की रीति, मेड़, मरजाद सब समझावें।

१७- हमारे गुरुदेव की बहुत ही अद्भुत कृपा हम पर रही। पहले हम अपने पिताजी के संग फल पधराने जाते रहे। पिताजी के बाद हम फल पधराने जाएं और पधराकर चले आवें। एक दिन आपश्री ने कृपा करके कहा कि चरण स्पर्श करके जाया करो। ऐसी कृपा भई कि चरण स्पर्श के बाद पंखे की, पंखे के बाद श्रीअंग की खवासा की गहनाघर की मंदिर की भण्डार की गौशाला की जतीपुरा की अडेल चुनार की जहां भी आज्ञा देवें वहां बराबर सेवा में रहैं। आपश्री की कृपा का वर्णन नहीं कर सकते। एक बार हमारे घर देव प्रबोधिनी एकादशी के दूसरे दिन कुछ डाकू लोग आए। आपको पता लगा। आपश्री अरोगते रहे हम गए वहां आपश्री को मालूम भया कि हम आये हैं आपने आज्ञा किया कि अरोगते वक्त हम बोल नहीं सकते फिर भी हमारा अरोगने में मन नहीं लगता। बताओ क्या हुआ। हमने कहा कि आपश्री की कृपा से सब ठीक है। आपश्री ने कहा कि अब हमसे अरोगा जाएगा। ऐसे हर के प्रति आपश्री का स्नेह रहा।

१८- एक बार जब नये मंदिर में ठाकुरजी पधराने की विनती आपश्री से की तो आपश्री ने आज्ञा की कि हमारी क्या जरूरत है तब हमने विनती किया कि आप हमारे सर्वस्व हैं। दूसरे दिन आप प्रातः ६बजे जगनजी को साथ लेकर घर पधारे। जब भी आप की पधरई रही तो आपश्री मियाना से पधारते रहे लेकिन उस दिन आप स्वतः चरणारविन्द से पधारे एवं पधार कर कवाड़ी खटखटाया तो लोग आपश्री का दर्शन कर चकित हो गए। आपश्री ने आज्ञा किया कि तुमने जब हमको सर्वस्व मान लिया तो हमें आकर के तुम्हारी मंदिर की तैयारी देखने का फर्ज है। आपश्री तैयारी देखकर जब वापस पधारने लगे तो हमलोग भेंट करने लगेतो आपश्री ने आज्ञा किया कि भेंट के लिए नहीं पधारे हैं संध्याकाल जब ठाकुरजी पधारेंगे उस समय आवेंगे तब भेंट करना। इसी प्रकार हमारी बहन के घर भी चुनार पधारते समय एकाएक पधारे। इसी तरह हर वैष्णव के ऊपर कृपा करते रहे। श्री मुकुन्दरायजी के दूधघर की सेवा जगनजी करते रहे। उनके न रहने पर हमारे घर में यदुनाथजी के उत्सवपर दण्डवत् करने गई रही। आपश्री ने आज्ञा किया कि तुमसे एक चीज मांग रहे हैं नहीं मत करना। तुमको दूधघर की सेवा दे रहेहैं। आपश्री की जन्म दिन पर आज्ञा लेने गयी तो आपने आज्ञा किया कि तुमको हम आज्ञा जब देंगे जब तुम बराबर सेवा करोगी। ऐसी कृपा वैष्णव पर बराबर करते रहे।

१९- आपश्री जब बहुत अस्वस्थ अस्पताल में रहे तब आपश्री ने ताली देते हुए कहा कि यह ताली तुमको दे रहे हैं। आपश्री जो गद्दी पर बिराज रहे हैं उनकी भी आपश्री की तरह कृपा है। दास विनती कर रहा है कि इसी तरह हमारे वंश पर आपश्री की कृपा बनी रहे।

आपश्री एक समय प्रसन्नता से विराजे रहे तो सम्प्रदाय का सिद्धान्त आपने बताये कि- ''प्रीतम प्रीत ही ते पइये यथार्थ है रूप है गुण है शील है सुघढ़ता है, सत्कुल में जन्म है, कर्म है, शुभ लक्षण है यह सब बेकार है यदि जीव में प्रभु के प्रति प्रेम नहीं है। यह सम्प्रदाय में जेने श्री विठ्ठल नाथ विचारे तेने प्रकट पदारथ चारे रे।'' इत्यादि।

संक्षेप में यह आपश्री जो आज्ञा करते रहें व हमने देखा उसको आपश्री के सम्मुख विनती कर रहा हूँ।

आपश्री के चरणों में कोटि-कोटि दण्डवत् दास की जो भी गलती हो उसको क्षमा करेंगे।

गोपालदास सोनावाला

(२)

गुरूकृपा का फल

मैं अपने गुरुचरणों के याद में जो प्रभुसेवा में पारंगत अपने सर्वस्व सुख एवं वैभव को प्रभुसेवा में न्यौछावर करने वाले, वैष्णव जन-जन को प्रभु-सेवा की रीत सिखाने वाले, अपनी महती कृपा द्वारा बिछुड़े हुए दैवी जीव पर अपनी असीम कृपा कर श्री प्रभु सेवा में लगाकर श्री चरणों तक पहुँचाने वाले वल्लभ कुलभूषण षष्ठपीठाधीश्वर नि०ली०गो० १०८ श्री मुरलीधरलालजी महाराज काशीवाले जो मेरे गुरुवर हैं, उन गुरूचरणों की महती कृपा इस दास पर किस प्रकार हुई और उसका फल मुझ दास को किस प्रकार आज तक मिल रहा है उसके बारे में आज श्री गुरूचरण के उत्तराधिकारी गो० १०८ श्री श्याममनोहरजी महाराज की कृपा से दो शब्द लिखने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है-

मुझे गुरूचरणों द्वारा ब्रह्मसम्बन्ध जब मेरी आयु ६वर्ष की थी तब श्री मुकुन्द प्रभु के सम्मुख प्राप्त हुआ जिसमें सेवा कार्य में जाने का मार्ग खुल गया परन्तु मैं आज इस प्रकार सोचता हूँ कि बिना गुरु कृपा प्रभु सेवा और उनका सान्निध्य प्राप्त नहीं होता और न तो प्रभु उससे अपनी सेवा लेते हैं और न ही उसका फल प्राप्त होता है। मुझ पर गुरूचरणों की असीम कृपा प्राप्त हुई जिसके द्वारा मुझे श्री आचार्य चरण श्री महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी के प्राणप्यारे षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्द प्रभु के सेवा करने योग्य बनाकर इस दास के नश्वर शरीर को प्रभुचरणों तक पहुँचा दिया और श्री मुकुन्द प्रभु ने भी गुरूकृपा के फलस्वरूप अपनी अपार कृपा करके अपनी दुर्लभ सेवा करने का सौभाग्य प्रदान किया जो आज तक प्राप्त हो रही है।

मुझे ब्रह्मसम्बन्ध लगभग सन् १९४४ में प्राप्त होगया था। जब मेरी उम्र ६ वर्ष की थी मेरे पिताश्री स्व० श्रीरामदासजी सतभैया वाले जिनका सम्पूर्ण जीवन मुकुन्द प्रभु एवं गुरूचरणों की सेवा में ही बीता। वह चाहते थे कि मैं जो उनकी एक मात्र पुत्र संतान रहा श्री मुकुन्द प्रभु तथा श्री गुरू चरणों की सेवा करने योग्य बन सकूँ। इसी कारण से उन्होंने मेरे सात वर्ष के उम्र से ही एक कठोर नियम का आदेश दिया कि रोज घर के श्री ठाकुरजी की सेवा में नहाना झारी-चरणस्पर्श करना तथा षष्ठनिधि स्वरूप श्री मुकुन्द प्रभु के मन्दिर में जाना, कुछ फल-फूल पधराना, ध्वजाके दर्शन करना, श्री प्रभु के ड्योड़ी पर दण्डवत् करना। तभी प्रसाद यानि (भोजन) करना होगा उनके कठोर आदेश को मैं पालन करने लगा और आज तक भी करता चला आ रहा हूँ परन्तु गुरूचरणों की कृपा प्राप्त नहीं हो सकी और धीरे-धीरे समय बीतता चला गया। समय-समय पर अपने पिताजी के साथ अपने गुरूचरणों के चरण-स्पर्श करने जाने का अवसर मिल जाता था। श्रीगुरूचरण आज्ञा करते- तुम हमारे पास आया करो परन्तु संकोचवश अकेले गुरूजी के पास नहीं जा पाता था। पिताजी भी बार-बार कहते थे कि

महाराजश्री के पास जाया करो परन्तु मन्दिर में जाता फल पधराता दण्डवत् करके वापस चला आता परन्तु गुरुजी के पास नहीं जा पाता था। गुरुजी भी बार-बार अपने पास बुलाना चाहते थे फिर भी मैं उनके चरणों में नहीं जा पाता था। धीरे-धीरे मेरी उम्र करीब २१-२२ वर्ष हो गयी। मेरी शादी भी हो गयी। एक पुत्र संतान भी प्राप्त हुई। यह बात लगभग १९६० की है। तभी अचानक गुरू-चरणों ने इस दास को अपनी असीम कृपा सेवा में लगाने हेतु एक कठोर झटका देकर अपने पास बुलाया और अपनी असीम कृपा मुझ दास पर किया। उसी समय अचानक मेरा एकमात्र पुत्र जो लगभग डेढ़-दो साल का था प्रभु की शरण में पहुँच गया। मुझे तीन दिनों का अशौच होने के कारण मैं चौथे दिन बाल वगैरह बनवाकर अपने नित्य क्रम के अनुरूप मन्दिर में फल पधराने दण्डवत् करने पहुँचा तभी अचानक महाराजश्री जो हमारे गुरूजी थे ऊपर से स्नान करके नीचे प्रभु सेवा में जाने वास्ते सागघर के पास से पधार रहे थे। तभी मेरा सामना हो गया और उसी समय उस महती कृपा का दान मुझको प्राप्त हुआ। गुरूजी ने पूछा- यह माथा क्यों मुड़ाए हो। मैंने धीरे से दण्डवत् करते हुए कहा - हमारा लड़का रहा सो जाता रहा। आज चार दिन हुआ है। तभी आपश्री ने अपनी असीम कृपा करते हुए कहा कि- अच्छा हुआ लड़का मर गया और मत आओ हमारे पास अब भी आओगे कि नहीं ये कहते हुए आपश्री नीचे सेवा में पधार गये। मैं वही खड़ा-खड़ा अश्रुपात करता रहा और उसी समय अपनी भूल समझ कर निश्चय किया कि अब जो भी हो कल से गुरूचरणों की शरण में जाना ही है। दूसरे दिन मंगला के दर्शन के समय मैं अपने रोज के क्रम से फल पधरा कर ऊपर महाराजश्री के पास गया। आपश्री विराजे थे। वैष्णव जन चरण-स्पर्श कर रहे थे। मैंने भी डरते-डरते दण्डवत् कर चरण-स्पर्श किया। आपश्री ने पूछा- तुम आ गये ? आना ही चाहिए। चलो घबराओ नहीं प्रभु कृपा से सब ठीक हो जायेगा, परन्तु अब आना बन्द मत करना और उसी दिन से बराबर मैं गुरूचरणों की शरण में जाने लगा और उसी समय से गुरूवरने अपनी महान् कृपा इस दास पर कर मुझ दास को श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु की सेवा करने के मार्ग पर चलाना शुरू कर दिया और वह महती कृपा क्रमशः-क्रमशः इतनी प्रबल हो गयी कि जो आज तक बनी हुई है। यह बात मेरे समझ में आज आ रही है कि बिना गुरूकृपा प्रभु भी अपनी सेवा नहीं देते। कृपा बल से धीरे-धीरे मुझे सेवा कार्य सौंपा जाने लगा श्री प्रभु के भोग, राग, मनोरथ, अधिक मास के मनोरथ, प्रशासनिक कार्य तथा तरह-तरह के सेवा कार्य गुरू कृपा से लिया जाने लगा। सन् १९६६ में गुरूचरणों की अपार कृपा हमारे ऊपर हुई। श्री मुकुन्दराय प्रभु श्रीनाथद्वारा पधारे। सप्तस्वरूपोत्सव के अवसर पर दास को श्री मुकुन्द प्रभु के साथ-साथ छड़ीदार के रूप में छड़ी लेकर चलने की सेवा प्राप्त हुई। श्री मुकुन्द प्रभु ने गुरू-कृपा का दुर्लभ फल मुझ दास को प्रदान किया। दिनांक २३-८-१९६६ को शाम साढ़े छः बजे इस दास को गुरूचरणों की आज्ञा अनुसार लाल बाग से जब श्री मुकुन्द प्रभु को श्री श्रीजी बाबा के मन्दिर तक सुखपाल में कन्धा लगाकर पधराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और यह नश्वर शरीर पावन हो गया, यह भी श्री गुरू कृपा का ही फल है। धीरे-धीरे गुरूकृपा प्रबल होती चली गई। सन् १९७८ में मेरे पिताजी के स्वर्गवास के बाद श्री मुकुन्दप्रभु के कान जगाई के दर्शन में दीवाली के दिन प्रभु की गायों का कान जगाने की सेवा भी गुरू कृपा से प्राप्त हुई इसके बाद सन् १९७९ में गुरू चरणों ने लौकिक दृष्टि से प्रभु सेवा कार्य के लिये षष्ठपीठ श्री जीवनजी गोपाललालजी ट्रस्ट का निर्माण कर सेवा कार्य के भार को और पुष्ट कर दिया।

गुरूचरण के नित्यलीला प्रवेश के बाद भी गुरू कृपा बराबर बनी रही और पूज्य अम्माश्री प्रेमप्रियाजी बहूजी महाराज के कार्यकाल में सन् १९८४ में श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु के छप्पन भोग मनोरथ में सेवा करने का

पूर्ण लाभ मिला तथा पूज्य अम्माजी के नित्यलीला प्रवेश के बाद हमारे गुरूवर की श्री बेटीजी महाराज श्री शरद् वल्लभा बेटीजी (जीजी) के कार्यकाल में भी श्री प्रभु के अलौकिक वैभव का दर्शन एवं सेवा का लाभ प्राप्त हुआ। आज वर्तमान में गुरूचरणों की ऐसा महती कृपा है जिसके द्वारा गो० श्री १०८ षष्ठपीठाधीश्वर श्याम-मनोहरजी महाराजश्री की भी असीम कृपा मुझ दास पर है और उनकी कृपा द्वारा प्रभु सेवा का लाभ आज भी बराबर मिल रहा है। गुरूकृपा का इससे बड़ा और क्या फल चाहिए ? जिस कृपा द्वारा लौकिक-अलौकिक सुखों की प्राप्ति होती रहती है। गुरूचरणों में दास की साष्टांग दण्डवत् पहुँचे और प्रभु अपनी सेवा लेते रहें यही दास की अन्तिम इच्छा है।

निवेदक:-

मैं मुकुन्द प्रभु का सेवक हूँ,
श्री मुरलीधरजी का चेला हूँ।
मुकुन्द का दास नाम मेरा,
प्रभु पधारे जहां मवइया धाम मेरा।
सतभैया वाले पहचान मेरी॥

-मुकुन्ददास सतभैयावाले

(३)

श्री मद् वल्लाभाचार्य के वंशज तथा भक्ति के उन्नायक श्री मुरलीधरलालजी महाराज की कृपा से हम आप ही के विषय में कुछ नम्र निवेदन कर रहे हैं-

सप्त स्वरूपोत्सव के अवसर पर नाथद्वारा में श्री मुकुन्द प्रभु करीब आठ रोज बिराजे। तब पवित्रा एकादशी का उत्सव प्राप्त हुआ। उस रोज सब प्रभु एक साथ विराज रहे थे उस वक्त पवित्रा पहिले बादले की तथा बाद में सूत की प्रभु धराते हैं, तब और धराते हैं। बा० प्रह्लाददासजी बनारस से सच्चे बादले की पवित्रा प्रभु के नाप की बनवाकर अपने साथ ले गये थे। बा० प्रह्लाददासजी ने महाराजश्री के पास सुबह ही पवित्रा पधरा दिया था, परन्तु महाराजश्री उसे ले जाना भूल गये तब ज्योंही बादले की पवित्रा श्री श्रीनाथजी को धराने का समय आया तो महाराजश्री ने बा० प्रह्लाददासजी से बादले की पवित्रा मांगी तो उन्होंने आपश्री के कमरे से लाकर उसे तुरन्त दिया तब तक सभी महाराज रुके हुए थे। जब बादले की पवित्रा आ गयी तब श्री श्रीनाथजी को धरायी गयी। यह श्री श्रीनाथजी की बड़ी कृपा थी।

इसके दूसरे रोज पवित्रा द्वादशी रही उस वक्त एक बहुत बड़े हाल में करीब पचास-साठ गुसाईं बालकों ने कुर्सियों पर विराज कर वैष्णवों से पवित्रा धरायी। उस वक्त उस स्थान की छटा बहुत ही अनुपम व मनोहारी थी। टिकैत श्री गोविन्दलालजी महाराज व श्री मुरलीधरलालजी महाराज एक-दूसरे को पवित्रा धराने के लिए खड़े हुए। श्री गोविन्दलालजी महाराज पहले श्री मुरलीधरलालजी महाराज को पवित्रा धराना चाहते थे व उनका प्रयास भी था, मगर श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने उन्हें ऐसे नहीं करने दिया। बहुत देर तक यह वार्ता होती रही, अन्त में श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने श्री गोविन्दलालजी महाराज को समझाया। पहले पवित्रा श्री मुरलीधरलालजी ने श्री गोविन्दलालजी को धराया। हम भी प्रह्लाददासजी के साथ उसी स्थान पर थे व मैंने भी

सभी महाराजश्री को पवित्रा धरायी। इस प्रकार महाराजश्री ने पवित्रा एकादशी व द्वादशी का आनन्द एवं सुख हमलोगों को दिया।

एक दिन शंखनाद होने में अत्यन्त विलम्ब हो रहाथा, तब हमने महाराजश्री को बहुत विनती किया कि आप पधारकर शंखनाद करें। तब आपने मुझसे कहा कि नीचे जाकर मन्दिर की बत्ती जला आओ उनकी आज्ञा से मैं नीचे गया व मैंने मन्दिर के चौक की बत्ती को जला दिया। उस वक्त हमारे कान में प्रभु के रास करने की आवाज आ रही थी, परन्तु दिखायी कुछ नहीं पड़ा। बत्ती जलाकर जब मैं ऊपर महाराजश्री के पास पहुँचा तब आपश्री ने मुझसे पूछा कि तुमने कुछ सुना, मैंने कहा चौक में रास होने की आवाज सुनाई पड़ी। तब आपने आज्ञा किया कि देखो ठाकुर जी सोये तो नहीं है। आपने कहा हमको सारी बातों का अनुभव होता रहता है। सिर्फ तुमको बताने के लिए ही बत्ती जलाने के बहाने नीचे भेजा था। इस प्रकार श्री मुरलीधरलालजी महाराज हर वक्त मानसी सेवा करते रहते थे।

आखिरी समय आपकी तबीयत खराब हुई तब आपश्री को अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। मगर अस्पताल में भी श्री मुकुन्दरायजी का बराबर दर्शन हो रहा था। आपश्री को प्रभु के मुखारविन्द एवं शृंगार इत्यादि का दर्शन बराबर होता रहता था। संयोग से मुखियाजीने कोई आभूषण नहीं धराया जो धराना जरूरी था तब हमारे सामने ही उन्होंने मुखियाजी से पूछा कि आज आपने वह आभरण क्यों नहीं धराया, तब उन्होंने बताया कि भूल हो गयी। इस प्रकार अस्पताल में तबीयत खराब होने पर आपश्री श्री मुकुन्द प्रभु को बार-बार लाड़ लड़ा रहे थे।

-कल्याणदास अग्रवाल

(४)

शैशवावस्था से ही अपने परिवार में श्री वल्लभ कुलाचार से पूजित श्री राधाकृष्ण के युगल चरण और नटखट श्री बालगोविन्द के प्रसाद से और मातृ-पितृ चरण की कृपा से-

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

कण्ठस्थ हुआ। साथ ही मन्दिर के प्रांगण में बाल्यावस्था में खेलते हुए महाराजश्री के दर्शन और वन्दन का भी सौभाग्य मिला। महाराजश्री तब श्री भगवान् की राजसी सेवा के अनुरूप ही दर्शन देते थे।

अपने पिता, पितामह के समय से ही लोगों से सुना है कि मेरे पैतृक भवन ''धन्वन्तरि निवास'' में श्री भगवान् के विग्रह गोसाईंजी महाराज के समय से ही विराजमान हैं। मेरे पिताश्री पं रामशंकर वैद्य से भी महाराजश्री का परस्पर सौहार्द्य और विश्वासपूर्ण स्नेह बना रहा। सन् १९४५ में मेरे व्रतबन्ध और उपनयन के उपलक्ष्य में महाराजश्री ने पूरी वैष्णव मण्डली के साथ पधार कर आशीर्वाद दिया था और संगीत का आनन्द भी लिया था। मन्दिर में विख्यात गायिका, बम्बई की श्रीमती केसरबाई केरकर की भैरवी आयोजित थी। मेरे पूज्य पिताजी को रोगियों की व्यवस्था पूरी करने में विलम्ब हो गया। महाराजश्री से लोगों ने गायनारम्भ की अनुमति चाही तो महाराजश्री ने आज्ञा किया कि वैद्यराज के आ जाने पर ही गाना आरम्भ होगा। महाराजश्री की ऐसी ही कृपा मुझ पर भी बनी रही।

मन्दिर के एक वैष्णवभक्त से एक दिन सन्देश मिला कि महाराजश्री की सेवा में पहुंचना है। चौथे महले की सीढ़ी चढ़ के ऊपर पहुंचकर महाराजश्री का दर्शन मिला। सभी को वहां से हटाकर महाराजश्री ने लीलाका

विवरण बताया। श्री भगवान् के विग्रह को रात में खिड़की खुली रह जाने से ठंडी हवा का झोंका लगता रहा। भोर में साढ़े तीन बजे महाराजश्री ने स्वयं जाकर खिड़की बन्द किया। अस्तु महाराजश्री को ज्वर और कास के साथ अरूचि के उपचार का आदेश मिला। साथ ही साथ- ''वैद्यराज जी ! आपकी बड़ी कृपा होगी- औषधि शुद्ध रहे वही भेजियेगा।'' अनुपान के लिये सहज उत्तर हां, ''यहां तुलसी के रस और मधु में मिलाकर ले लेंगे।'' रिक्त पाणि वैद्य निष्फल होता है एतदर्थ सदैव पान का बीड़ा, नगद तो मिलता ही भगवान् का भोग प्रसाद भी बराबर मिले।

महाराजश्री की कृपा से इसी तरह अनेक अवसर मिलते रहे और महाराजश्री के अनुग्रह से भगवान् की लीला के और मन्दिर के विविध विधि विधान और स्थूल सूक्ष्म ज्ञान के स्पष्ट उपदेश एवं निर्देश भी। महाराजश्री राजसी वैभव से सुशोभित, वीतराग, विरह लीला से सन्तप्त परन्तु रसो वै स: के संगीतानन्द में मग्न, परम स्वातंत्र्य में स्थित पर लीला के बन्धन से बंधे श्रीमद्वल्लभ कुल के भूषण हैं। स्थूलाक्षरों के माध्यम से सूक्ष्मतर अनुभूतियों को स्वेच्छा से दान करने में समर्थ श्री गुरू पद पूज्य , तथाकथित जड़ पदार्थों के संयोजन से चैतन्य की अनुभूति के आचार्य और सर्वशास्त्र पारंगत पर प्रदर्शन से सर्वथा अलग। संकीर्ण मार्ग(एक मार्ग) के पथिक परन्तु उदारमना प्रशस्त बोध के दाता।

महाराजश्री ने आज्ञा किया कि वैद्यराज- श्री वल्लभकुल के संक्षिप्त इतिहास के साथ चुने हुये पदों का प्रकाशन और गायन का कैसेट बनाना है। पदों के चयन में त्रिवेणी स्तोत्र भगवान् आद्यशंकर का ही जंचा। महाराजश्री को पदों की सूची सुनायी- महाराजश्री ने प्रसन्न होकर आज्ञा दिया- आद्यशंकर भी तो अपने ही हैं आप इसी को रखिये। और इसी प्रसंग में महाराजश्री ने स्वयं गाकर कुछ दुर्लभ पद सुनाये। बनारस की संगीत परम्परा में 'लावनी' गायन आज लुप्त हो गया है। महाराजश्री के श्रीमुख से अनेक 'लावनी' और बहुत से पदों के गायनामृत को प्राप्त किया है।

महाराजश्री करूणानिधान के साक्षात् स्वरूप हैं। कुछ लिखने के प्रसंग में उन्होंने गुरू से अलग रहकर मधुरोपासक एक शिष्य के लिये आज्ञा किया कि उनका नामोल्लेख रख दीजिये-वह भी शिष्य है। क्रोध, क्षोभ रहित- सांसारिक प्रपंच से विलग महाराजश्री दयानिधान ने यमुना विज्ञप्ति से भी सुपरिचित्र कराने की कृपा किया।

महाराजश्री षष्ठपीठाधीश से निवेदन है कि उनकी कृपा से महाराजश्री की सेवा पूरी करते रहने का अवसर मिलता रहे और जीवन सफल हो।

महाराजश्री तो - सदा योगी, स्वसंवेद्य श्रीकृष्ण लीला में नित्यस्थित हैं ही ।

-राजवैद्य श्री शिवकुमार शास्त्री

(५)

श्री गुरूचरण कमलों में सप्रेम श्रद्धापूर्वक नम्र भाव से चरणस्पर्श और साष्टांग दण्डवत् करते हुए आपश्री के आज्ञानुसार अपनी छोटी बुद्धि के अनुसार आपश्री के वचनामृत का उल्लेख और गान करने की टूटी फूटी भाषा में आपश्री के चरणारविन्द का सहारा लेकर लिखने की हिम्मत कर रहे हैं।

एक बार आपश्री ने पूछा था तो हमने विनती किया कि कृपानाथ तरहटी श्री गोवर्धन की हम करते हैं। इस पर आपश्री बड़े प्रसन्न हुए और उस समय तो आपश्री कुछ बोले नहीं, कुछ समय बाद एक दिन श्री गोपाललालजी के मन्दिर के बीच वाले किवाड़ के पास ठाड़े रहे अपरस में आपश्री थे। हम नीचे चौक में

आपश्री के पास ही खड़े थे। उस समय आपश्री ने तरहटी श्री गोवर्धन की रहिये यह कीर्तन पूरा राग से गाकर हमको सुनाया। उस दिन से मालूम पड़ता है कि आपश्री ने यह कीर्तन हमारे हृदय में स्थापित कर दिया है। अब रोज इस कीर्तन का पाठ करते हैं।

एक दिन आपश्री हमलोगों पर अत्यन्त कृपा करने के लिये सुबह स्वयं करीब आठ बजे एकाएक हमारे घर पर पधार गये। हमलोग घबड़ाकर तुरन्त आपश्री को जैसे तैसे पधराया। आपश्री करीब एक घण्टे विरीजे रहे फिर मन्दिर पधार गये।

आपश्री की हमारे पूज्य माताजी के ऊपर अत्यन्त कृपा थी। उनकी कृपा के बल पर हमारी माताजी ने काल को दो तीन बार विदा कर दिया कि अभी हम नहीं चलेंगे। हमसे कहा गोली इनको बैठाओ और जल और बीड़ा दो, प्रसाद दो। हमलोगों को तो कुछ दीखता नहीं था। परन्तु उनको पधराने और प्रसाद, जल, बीड़ा देने के लिये तत्पर खड़े थे। माताजी ने कहा कि अभी हमें बहुत सी सेवा करनी है अभी फुरसत नहीं है। एक बार आपश्री के कृपा से श्री गोवर्धननाथजी लाल वस्त्र धराये हुये लाल छड़ी अपने श्रीहस्त में लिये हुए पधारे थे और माताजी से चलने को कहा तब माताजी ने विनती किया कि नाथ! अभी बहुत सी सेवा करना बाकी है अभी हम कैसे चलें। तब आपश्री अन्तर्ध्यान हो गये। यह दर्शन केवल माताजी को ही हुआ था और किसी को नहीं। जब हमारी पूज्य माताजी बहुत बीमार थी और पूष वदी १ को आपश्री चुनार के लिये पधारने लगे तब हमने आपश्री से विनती किया कि कृपानाथ! हमको क्या आज्ञा है ? आपश्री ने आज्ञा किया कि जरूर आओ। आज्ञा पाकर हम चुनार चले गये। एकादशी को सुबह जब आपश्री से हमने आज्ञा मांगी तो आपश्री ने आज्ञा दे दिया। तब मदनजी ने कहा– गोली भईया आपश्री परसों पधारेंगे तब साथ-ताथ चलियेगा। इस पर आपश्री ने तुरन्त आज्ञा किया कि इनको मत रोको जाने दो। इनके माताजी की तबियत ठीक नहीं है। पता नहीं कब कैसा काम पड़े। उसी समय हम घबड़ा गये और ध्यान में आ गया कि अब कोई रोक नहीं सकता है। हमने अपने घर में आकर सबसे कह दिया कि अब घर का जहाज जा रहा है। जिसको जो लूटना हो लूट लो। हमने अपनी धर्मपत्नी को और बच्चों को समय की ड्यूटी बांधकर लगा दिया और पूष सुदी ४ को माताजी पहुँच गई।

हमारे पूज्य चाचाजी बा० जमुनादासजी (राजू के बाबा) बहुत बीमार थे। आपश्री वहाँ पधारे थे और जब वापस पधारने लगे तब कहा– जमुनादासजी जमुना में गोता लगावो और आपश्री के पधारने के ५-१० मिनट में ही गोता लग गया अर्थात वे हरिशरण हो गये।

मन्दिर में श्रीगोवर्धन चौक में एक गाय ४-५ दिनों से बड़े कष्ट में थी। किसी ने आकर विनती किया कि कृपानाथ गाय एक गोवर्धन चौक में ४ दिनों से बड़े कष्ट में पड़ी है। आपश्री ने ऊपर से ही उसके ऊपर जल छिड़क कर कहा गौमाता गोलोक जाओ। दो-तीन घण्टे में ही वह पहुँच गई।

खवासी में थे मौका मिलने पर जबानी पाठ आवाज निकाल कर कर रहे थे। आपश्री जब श्री बैठक जी से पधारे तो आज्ञा किया कि मन में जबान हिलाकर पाठ करो।

एक बार आपश्री दातुन कर रहे थे। जलघड़े में बात चलते में आपश्री ने आज्ञा किया कि गोली बाबू तुम हमारा नाम जानते हो। हमने विनती किया कि कृपानाथ सभी लोग जानते हैं। इस पर आपश्री ने आज्ञा किया कि यह नाम तो हंम छोटे थे तो मुरली बहुत बजाया करते थे तो हमारा नाम मुरलीधर पड़ गया। हमारा नाम तो तुम श्रीसर्वोत्तम जी का पाठ करते हो न, उसमें त्रिलोकीभूषण नाम आता है न, हमारा नाम वही है।

एक दिन आपश्री ने हमसे आज्ञा किया कि गोलीबाबू अब तुम गोलघर वाले नये मकान में बहुत रह चुके

अब वहाँ से हटो। हमने विनती किया कि कृपानाथ हमलोग कहाँ जायें। आपश्री ने आज्ञा किया कि कहीं किराये का मकान खोजकर वहाँ चले जाओ। काफी कोशिश करने पर बड़े मुश्किल से जगह मिली। हमलोगों ने खुशी से आपश्री से आज्ञा लेकर कार्तिक व० १३ की साइत में अपने घर से निकलकर अपने श्रीठाकुर और श्री तुलसी जी को साथ में पधराकर चले गये। मकान मालिक ने कहा कि हमारे इस मकान में कोई किरायेदार छः महिना ज्यादा से ज्यादा एक वर्ष से ऊपर कोई नहीं रहा और कोई भी फला-फूला नहीं। आप यहां ४ वर्षों से कैसे रह गये हमें ताज्जुब है।

आपश्री ने एक दिन कहा कि जो अपना होता है, उसका कुछ पक्षदारी भी करना पड़ता है। एक दिन अपने दफ्ती के मिल में आपश्री को अपने घर की जीप गाड़ी में पधराकर लिवाकर जा रहे थे। आपश्री की तरफ धूप आ रही थी। हमने विनती किया कि कृपानाथ आपश्री को धूप लग रहीहै। आपश्री दूसरी तरफ सुखेन पधारें तो धूप नहीं लगेगी। आपश्री ने आज्ञा किया कि वन में गाय चराने श्रीठाकुर जी पधारते थे तो वहाँ धूप लगती थी कि नहीं। मिल में पधारे, वहाँ ठण्डई का इंतजाम अपरस में किया था। आपश्री ने सुखद अरोगा। हमने खुशी के मारे कीर्तन किया आपश्री बड़े प्रसन्न हुए। एक कमरा माल से भर गया था, बिक नहीं रहा था विनती किया तो ३-४ माह में ही सब साफ हो गया, मिल भी चलने लगी। आपश्री ने वहाँ पर पहले कृपा करके इस दीनदास को कृपा का उपरना ओढ़ाया।

एक बार आपश्री ने हमको घर से आदमी भेजकर बुलवाया। भीतर खबर करके थोड़ी देर बाहर बैठे थे। फिर आपश्री ने आवाज देकर हमको बुलाया। हमारे ऊपर अत्यन्त कृपा करके अपने पूरे श्रीअंग की फूलेल की सेवा प्रदान किया।

जब श्री राधिकाजी बीन बजा रही थी तो श्री ठाकुरजी ने उनसे बीन लेकर बजाना शुरू किया और उसमें आपश्री ने जान बूझकर एक राग चूक कर बजाया तब श्री राधिकाजी ने दुबारा लेकर वही राग फिर से सही करके बजाया। यह कीर्तन आपश्री बड़े प्रेम से राग से गाया करते थे।

जब दान एकादशी आती उस दिन आपश्री हमारे पूज्य बाबा को जरूर याद करते और कहते कि दान बड़े भाव से देते और एकबार-दोबार इस प्रकार से बार-बार देते और गदगद हो जाते। आपश्री ने ही दान के लिये बताया है कि केवल पैसा रुपया ही नहीं देना चाहिये। कपड़े में सूखा मेवा बांधकर देना चाहिये। रुपया तो नहीं खाया जायगा। मेवा तो खा लेंगे। हमलोग तो अनाड़ी मूर्ख हैं,हमलोगों को जब तक ज्ञान आपश्री नहीं देंगे हमलोग क्या जाने।

दण्डवत् करने के लिये आपश्री ने आज्ञा किया कि दाहिना घुटना टेककर जमीन पर और बाँया घुटना ऊपर उठाकर तब दण्डवत् करना चाहिये।

चरणस्पर्श के लिये आज्ञा करते कि केवल एक हाथ दाहिने हाथ से चरणस्पर्श करना चाहिये। आज्ञा करते श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माहि अंधेरो, तो जो चरणारविन्द का अग्रभाग नाखून के पास का हैवहाँ पर चरणस्पर्श करना चाहिये। इसके ऊपर कभी नहीं। एक बार पहले बायें चरण का फिर दाहिने चरण का फिर बायें चरण का बस। इसके साथ आँख में, कण्ठ में, हृदय में हाथ लगा लेना चाहिये।

एक बार आपश्री ने आज्ञा किया-गोलीबाबू तुम भण्डार का काम देखो। रोज एक समय बांध लो उसी

समय आकर भण्डार की सफाई कराकर रोज के नेग का सामने तौलाकर दे दो । फिर साफ करवाकर बन्द करके गुच्छा भी ऊपर पधरा दो । यह सेवा आपश्री की कृपा से सालों चलती रही ।

बा० मनसुख दास के बड़े लड़के दु:खी होकर पिताजी के जाने के बाद आये विनती किया कृपानाथ! हम बहुत दु:खी हैं और दुकानदारी कुछ चलती नहीं है कैसे करें । आपश्री ने जब वो चरणस्पर्श करने लगे तो दोनों चरणारविन्द मस्तक पर पधरा दिया और फिर बीड़ा देकर अपना श्री हस्त माथे पर पधरा दिया । इतने में उनकी भली हर तरह से हो गई जो आज तक चल रहा है ।

आपश्री बराबर आज्ञा करते थे कि गुरू का तीन दिन का सूतक होता है । चौथे दिन क्षौर कराकर सही ढंग से स्नान करके जनेऊ कण्ठी बदल कर तब आदमी शुद्ध होता है ।

जब हमारा दुबारा ऐक्सिडेण्ट के बाद पैर आपश्री की कृपा से ठीक हुआ तो हम आपश्री के दर्शन और चरणस्पर्श करने की उत्कण्ठा से गये तो आपश्री ने कहलवाया कि हम नीचे ही पधार रहे हैं कहो ऊपर आवें । हमको यह बिलकुल अच्छा नहीं लगा और धीरे-धीरे घर भर सहित ऊपर पहुँच गये । आपश्री ने आज्ञा किया ऊपर क्यों आ गये हम तो नीचे पधार ही रहे थे । हमने विनती किया नाथ तुच्छ जीव के लिये आपश्री को श्रम पड़े यह हमारे लिये सर्वथा उचित नहीं है । फिर आपश्री बड़े प्रसन्न हुए, हमलोग चरण-स्पर्श करके मारे खुशी के नाचने लगे तब आपश्री बड़े प्रसन्न होकर ठाढ़े हो गये और तीनों बच्चों, दोनों बेटियाँ हमारे और हमारे घर में बारी-बारी से सबके माथे पर अपना श्रीहस्त पधरा दिया । हमने अलग होने के बाद सपने में भी नहीं सोचा था कि हम अपने लड़कों या लड़कियों की शादी कर पायेंगे या नहीं । आपश्री के कृपा कर देने से सबका विवाह हो गया । आपश्री ने हम सातों आदमी की जन्मपत्रिका भी मंगाई थी क्यों मंगाई और क्या किया यह हमें नहीं मालूम ।

एक बार श्री गोपाललालजी के चौक में पं० रामजी व्यास श्री भागवत् जी का सप्ताह कर रहे थे । उसकी जब पूर्णाहूति हो गई तो आपश्री ने अपने प्रवचन में आज्ञा किया कि सेवा और प्रभु का सुमिरन दोनों ही जरूरी है । इसके अलावा जो श्री अष्टाक्षर का जप अधिक से अधिक करते रहेंगे, उनके यहाँ श्री लक्ष्मीजी बराबर रहेंगी । आपश्री के अत्यन्त कृपा से हमने बराबर पूरी भागवत सप्ताह का पाठ सुबह और शाम दोनों समय आपश्री के सन्निधान में सुना था ।

एक बार ११ दिसम्बर सन् १९७३ को हमारी पूज्य माताजी ने श्री तुलसीजी का विवाह बड़े धूम-धाम से किया । दूसरे दिन तारीख १२-१२-७३ को हम-हमारे बड़े भाई साहब और बा० जगन्नाथदास विश्वम्भरी वाले यहाँ से इलाहाबाद (दफ्ती की मिल बैठाने के लिये) एक इंजीनियर से मिलने गये । वापसी में विलम्ब होने से भोर में गाड़ी से ४ बजे मुगलसराय स्टेशन पहुँचे । वहाँ कोई टैक्सी टैम्पो वगैरह कुछ नहीं था । केवल एक सीटी बस शहर आने के लिये थी । उसमें हमलोग बैठ गये । वहाँ से चलने के समय से ६ मिनट के भीतर ही इतने तेजी से भगाकर बस ड्राइवर लाया कि राजघाट पुल के मोड़ से टकराकर ऐक्सिडेन्ट कर दिया । ५-७ को छोड़कर सभी पहुँच गये । हमारे भाई साहब और विश्वम्भरी वाले किसी तरह नीचे उतर चुके थे । हम घायल ज्यादा हो गये थे और बेहोश होने से पड़े थे । भाई साहब ने बाहर से कई आवाज लगाया जब थोड़ा होश हुआ और कान में पुकारने की आवाज गई तो किसी तरह से उठकर गेट परआये । हमने उनसे कहा हमारा हाथ पकड़ लीजिये तो हम नीचे आ जायें । काफी ऊँचे पर होने से हमारी हिम्मत नहीं पड़ रही थी । उन्होंने कहा कि यदि

कूदकर उतर सको तो ठीक है हम हाथ नहीं पकड़ सकते हैं । इस पर हम ऊँचे से कूद पड़े, कूदने से जो हड्डियां टूटी थी वो सांस लेने वाली नली को झटका पाकर फाड़ दिया । हम बेहोश होकर लेट गये । दो रिक्शा वाले आये । पूज्य भाई साहब यह कहकर चले गये कि आओ हम आगे बढ़ते हैं । घर पर आकर यह कहा कि 'भाई का खून दौड़ गया । हम बस में से खींचकर कन्धे पर लादकर लाये हैं ।' रिक्शा से घर तक ठंडे में आने से गरम खून ठण्डा हो गया जिससे शरीर जाम हो गई । बड़े मुश्किल से आराम से कुर्सी पर बैठाकर सबलोग ऊपर लाये । पूज्य माताजी को जब मालूम हुआ उन्होंने पहले घर के श्री ठाकुरजी को दण्डवत् करके भागी हुई मन्दिर आपश्री के पास आई । उस समय आपश्री छीवे पधारे थे । यहां खवास से कहकर माताजी फिर घर आ गई । जब आपश्री छीवे से पधारे तो पूछा कौन आया था, क्या बात है ? खवास ने सब बात बताया । आपश्री ने तुरन्त प्रसादी बीड़ा और जल भेजा कि बीड़ा सिरहाने बराबर रहेगा और जल अभी मुंह में दे देना । डाक्टरों ने कह दिया कि हमारी सभी पढ़ाई वगैरह सब फेल है आप कैसे और इतनी जल्दी अच्छे हो गये पता नहीं । बीड़ा और जल के साथ आपश्री ने आशीर्वाद भेजा था कि गोली बाबू का एक बाल भी बांका नहीं होगा । आपश्री के चरणों का कृपा से आज भी उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं ।

एक बार आपश्री ने जब हम और आपश्री ही थे, आज्ञा किया कि गोलीबाबू तुम **श्री गोवर्धनवासी सांवरेलाल तुम बिन रहो न जाय हो ब्रजराज लड़े ते लाड़िले** । इस पूरे पद का रोज शाम को कीर्तन किया करो । इसके लिये आपश्री ने एक पुस्तक दिखाई और कहा इस पुस्तक को खरीद लो और रोज किया करो । कुछ दिन तो रोज करते रहे फिर रोज नहीं हो सका । तब एक दिन आपश्री ने इसका राग बताते हुए कहा कि कम से कम रविवार को ही शाम को करते रहना । जिसको करने की पूरी कोशिश करते हैं । इसमें १२ श्लोक हैं ।

आपश्री आज्ञा करते कि श्री जमुनाजी के ४१ पद में से रोज सुबह कम से कम दो बार भी **भक्त प्रतिपाल जंजाल टारे** के पूरे पद का जो ४१ पद में से यह ३०वां पद है यदि पाठ कर ले तो श्री जमुनाजी में प्रीति होती है और वह कृपा करती रहती है ।

एर बार दान का अवसर चल रहा था । आपश्री ने आज्ञा किया कि इसमें ''कृपा अवलोकन तुम दान देरी महादान श्री वृषभान कुमारी'' यह कीर्तन जरूर करना चाहिये ।

आपश्री आज्ञा करते कि नीचे जब दर्शन खुले तब दर्शन करने में स्नेहपूर्वक ध्यान से दर्शन करके श्रीप्रभून को अपने हृदय में पधरा लेना चाहिये । कीर्तन जो हो उसे ध्यान से सुनना चाहिये । जैसा कीर्तन होता रहता है भीतर वैसी ही लीला होती रहती है ।

आपश्री आज्ञा करते कि खुले दर्शन में श्री मुकुन्दरायजी बालक हैं । इनसे कभी भी कोई याचना नहीं करना चाहिये । श्री गोपाललालजी से भी नहीं । श्री राधिकाजी बहुत ही परम दयालु हैं । जो भी मांगना हो आपश्री से ही मांगना चाहिये, यहभी कभी-कभी रोज नहीं मांगना चाहिये ।

आपश्री आज्ञा करते कि जिसमें अपनी बड़ाई होती हो ऐसा ध्यान करके कोई काम नहीं करना चाहिये । गुप्त तरीके से करने से अच्छा होता है और प्रभु सुखेन अंगीकार करते हैं । जो भी सेवा पधराना हो वह गुप्त रूप से अपने नाम से नहीं, ऐसी आज्ञा करते थे । आपश्री आज्ञा करते नाम बड़ाई जिस दिन पाई उस दिन किस्मत फूटी, बड़ी नाम महंती आई लगन राम से टूटी ।

आपश्री ने गद्य मंत्र का जप करने के लिये आज्ञा किया कि सुमिरनी पर पहले पूरा गद्य मंत्र करके तब आगे पंचाक्षर से जप करो और आखिरी दाना जब रह जाये तो फिर उस पर पूरा गद्य मंत्र करके पूरा किया करो।

एक बार आपश्री ने बात चलते में आज्ञा किया कि यदि कहीं भी रहो मन में बराबर जप करने के लिये माला की जरूरत नहीं है। हाथ पर ही बराबर माला किया जा सकता है। हमने आपश्री से पूछा कि कृपानाथ! कैसे होगा कृपा करके आज्ञा कीजिये। तब आपश्री ने आज्ञा किया कि कनिष्ठिका और अनामिका इसमें छः बार मंत्र कहने पर मध्यमा के ऊपर वाली में एकबार फिर तर्जनी में ऊपर से नीचे तीन बार इस प्रकार दस बार होने पर हर दस मंत्र दाहिने में करने के बाद बांये में एक बार गिनती पर अंगुली रखे रहना चाहिये। इस प्रकार दस गुणे दस सौ बार हो जाने के बाद फिर दाहिने हाथ पर फिर उसी प्रकार से आठ मंत्र फिर करने पर अब १०८ अष्टाक्षर का जप हो गया। एक माला का जप हो गया।

तिलक करते समय अष्टाक्षर मंत्र का उच्चारण मन में करते हुये तिलक करने से तिलक प्रभु के प्रताप बल से बराबर बना रहता है।

एक बार हमने मदनजी से आपश्री के संध्याका जल मांगा था। मदनजी ने आपश्री से हमारी विनती बता दिया। एक दिन जब हम पहुँचे तो आपश्री संध्या कर रहे थे। आपश्री ने मदनजी से आज्ञा किया कि हमारे संध्या का जल गोलीबाबू को दे दो। हमारी बोतल पहले से रखी थी उसी में भर दिया और हम घर लाकर बहुत हिफाजत से रखा जो आज भी हमारे पास है। यह कई ऐसे मौके पर इतना बड़ा काम देती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

एक बार आपश्री ने हमसे आज्ञा सेवा अपरस में करने की किया तो यह आज्ञा किया कि पहले तीन बार घण्टानाद करके तबश्री ठाकुर जी को जगाने की व्यवस्था करना और श्री प्रभुन को जगाकर सिंघासन पर विराजने के पहले भोग सजाकर तब सिंघासन पर पधराना। इसलिये कि आपश्री को जागते साथ तुरन्त भूख लगती है तो भोग के आसरे न बैठना पड़े। हमारे पास घण्टा नहीं था तो हमने विनती किया कि कृपानाथ तीन बार अष्टाक्षर कहकर जगा सकते हैं ? आपश्री ने आज्ञा किया कि नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिये। जब अपनी विवशता बताया तब आपश्री ने आज्ञा किया कि पहले भोग साज लो फिर हथेली तीन बार बजाकर और मनुहार करके ''जागो श्री जशोदाजी के लाड़िले प्रभू: जागिये श्रीगोपीजन के ईश, जागिये श्री नन्द यशोदाजी के लाडिले प्रभु! जागिये श्री ब्रज भक्तन के प्राण अधार! जागिये श्री जमुनाजी के अधिपति! जागिये श्री गिरिधर-लालजी के प्राण अधार! जागिये अशरण के शरण प्रभु!'' इस प्रकार से स्नेहपूर्वक मनुहार कंरके तब जगाना। श्रीझारीजी भरने के लिये आपश्री ने आज्ञा किया कि ''मुकुन्दरतिवर्धिनी से लेकर तुर्यप्रियाम्'' तक कहने की आज्ञा किया है और इतने में ही श्री झारीजी अच्छी तरह से भर भी जाती है। झारीजी पधराने के सभय श्री यमुनाजी पधारें श्री झारीजी पधारें ऐसे कहते हुए पधराना चाहिये। फिर एक कीर्तन कम से कम ''छगन मगन प्यारेलाल कीजिये कलेवा'' का करना चाहिये। समय भये पीछे भोग सराकर माला प्रभून को अवश्य धराना चाहिये। माला यदि न बन सके तो एक फूल भी धराने से प्रभु मान लेंगे। यदि समय पर वह भी न हो तो केवल पवित्रा हीधरा देना चाहिये। श्री ठाकुरजी २४ घण्टे भूखे कैसे रहेंगे। इसके लिये बंटा की आज्ञा किया। आभरन शृंगार में एक माला मोती की और गुंजा अवश्य की आज्ञा किया। श्री मस्तक पर टोपी की आज्ञा किया। यह भी आज्ञा किया कि खाली मीठा-मीठा अरोगाने से ठीक नहीं है। कभी-कभी फीका भी कुछ सिद्ध करके अवश्य पधराना चाहिये उससे श्री ठाकुरजी का मन फेर होता है। उत्सव पर शृंगार में एक माला अधिकी होना

चाहिये और सामग्री में रोज से विशेष में नई सामग्री सिद्ध करके कुछ अधिकी पधराना चाहिये। यदि बन पड़े तो एक कीर्तन उस उत्सव का करना चाहिये। बरसात वगैरह सुहावने मौसम में मीठे के साथ कुछ फीका पधराना चाहिये। कुछ भी न हो तो थोड़ा सा चूड़ा (अरवा वाला) ही तलकर नमक कालीमिर्च पधराकर पधराना चाहिये। वस्त्र के लिये आपश्री केसरिया और लाल वस्त्र की आज्ञा कर गये हैं। आपश्री आज्ञा करते कि श्री ठाकुरजी को भोग धरने के बाद, झारी पधराने के बाद टेरा लेकर दण्डवत् करके यह विनती करना चाहिये कि श्री महाप्रभुजी, श्री गुसाईंजी, श्री गुरूदेव के बड़ेन की कानी से श्री हर्सानीजी के कानी से व्रज भक्तन की कानी से आप श्री सुखेन अरोगो प्रभु! अरोगो श्री श्रीनाथजी प्यारे श्री नवनीतप्रियाजी प्यारे, श्री मुकुन्दरायजी प्यारे, श्री गोपाललालजी प्यारे, श्री जमुनाजी महाराणी सुखेन अरोगो प्रभु! इस दास पर कृपा करके अपना श्री हस्त लगाओ मेरे नाथ! काफी मनुहार करने से तब आपश्री अरोगते हैं! ऐसे नहीं।

आपश्री आज्ञा करते कि गर्मी के दिनों में जो चांदी के थाल में जल, खिलौना, फल वगैरह व फूहारा सब रखा रहता है उसमें ठाकुरजी श्री स्वामिनीजी व सब बालक लोग जलक्रीड़ा करते हैं। खेलते हैं। यह राजभोग से संध्या आरती तक रहती है। बाद में बड़ी हो जाती है।

आपश्री आज्ञा करते कि श्री मथुरा जी में विश्रांत घाट और श्रीगोकुल में श्री ठकुरानी घाट पर रोज मानसी स्नान कर लेना चाहिये और दोनों जगह की आरती के दर्शन की भी भावना कर लेना चाहिये। आपश्री के कृपा से "यह प्रसाद हौ पाऊं श्री जमुनाजी" का कीर्तन रोज करते समय कर लेते हैं।

आपश्री आज्ञा करते कि श्री श्रीहरिरायजी कृत बड़े शिक्षापत्र एवं ८४, २५२ वैष्णवन की वार्ता भी बराबर देखते रहना चाहिये।

आपश्री आज्ञा करते कि यदि श्री गोविन्दस्वामीजी का एक पद भी रोज कोई कर ले तो प्रभु उसपर बहुत जल्दी कृपा करते हैं।

आपश्री श्रीसर्वोत्तमजी के पाठ की आज्ञा करते कि इसका पाठ कम से कम एक पाठ तो अवश्य ही करना चाहिये और वैसे जितना भी हो जाय करना चाहिये। वैशाख वदी १० को शोभायात्रा निकलने के बाद (मन्दिर में ही) जब श्रीवल्लभ प्रभु को पधरा लेते थे तो उस दिन आपश्री स्वयं बैठकर एक पाठ करते और फिर वैष्णवजन भी करते जाते थे।

एक बार आपश्री ने हमसे आज्ञा किया कि देखो गोलीबाबू के यहाँ पर श्री प्रभुन की मंगला कब कै बजे होती है। राजभोग कै बजे आता है। शयन कै बजे होता है। फिर श्री प्रभुन कब जागते हैं। इन सबबातों परकभी ध्यान मत देना न कुछ कहना। हमने विनती किया कि ठीक है। और उस पर आखिर तक ध्यान नहीं दिया। उस समय तो समझ में नहीं आया परन्तु बाद में समझ में आया कि जाली वाले के ही इच्छा से ऐसा होता था। आपश्री ने यहाँ प्रगट लीला का दर्शन काशी के वैष्णवों को करा दिया कि जब आपश्री के जागने की समय होती उसी के हिसाब से चिरैया चुचुहाती और जब आपश्री होली खेलते उसी समय सूर्य निकला हुआ होता, भले ही रात की एक बजी हो। जब आपश्री शयनभोग अरोगकर शयन करें उसी समय रात है, भले ही भोर की सात बजी हो।

एक बार आपश्री ने आज्ञा किया कि घर में यदि कोई प्राणी प्रभु शरण हो जाये तो घर के श्रीठाकुरजी का रज का पात्र निकाल देना चाहिये। श्रीठाकुरजी की धातु वाली झारी भी बड़ी करके मांज कर उसकी नेबदीजी

भी बदल देना चाहिये। यदि किराये के मकान में रहते हैं और उससे कोई मतलब नहीं है तब भी सब झारीजी व जल का पात्र भी गिराकर नया जल भरना चाहिये। रज का पात्र भी निकाल देना चाहिये।

आपश्री आज्ञा करते कि परिक्रमा श्री गुरूचरण प्रभु की या मन्दिर की कम से कम दो बार करनी, नहीं तो चार बार करनी चाहिये।

आपश्री के श्रीकण्ठ की तुलसी की कण्ठी उतारी हुई और उतारी हुई जनेऊ हमने विनती किया था तो मदन जी से आज्ञा करके हमको दे दिया है जो आज भी विराज रही है।

आपश्री आज्ञा करते कि श्री जेष्ठा स्नान का जल श्री तृष्टि जी के जल से भी ऊँचा है क्योंकि तृष्टि जी का जल तो केवल आपश्री के कुल्ला किया हुआ है। यह जल तो जब आपश्री स्नान करते हैं तो खूब आनन्द से स्नान तो करते ही हैं उसमें भी स्नान करते-करते में बार-बार श्रीमुखारविंद में जल लेकर कुल्ला करते हैं और श्रीमुख में जल लेकर फुहारा भी छोड़ते हैं। इसलिये यह जल उससे भी श्रेष्ठ है।

यदि कभी आपश्री अपरस में स्नान करके जोड़ धराकर जल लेकर नीचे पधार जाते और हमलोगों को चरणस्पर्श नहीं मिल पाता और आपश्री की परछनी भी धोकर फैला दिया जाता था तो हम नीचे आकर विनती करते तो जब आपश्री जाली में से मन्दिर में सेवा में पधारने लगते तो अपना चरणारविन्द जमीन में घस देते थे और आज्ञा करते कर लो तब हमलोग जमीन में जहाँ आपश्री ने चरणारविन्द पधराया है, चरणस्पर्श आज्ञानुसार कर लेते।

आपश्री ने यहाँ तक आज्ञा किया कि यदि कोई वैष्णव को समय चूक जाने से दर्शन यदि नहीं मिल सका है तो श्रीगादीजी का दर्शन करके नीचे बगीचे में श्री ध्वजाजी का दर्शन करके वह जहाँ भी जाना जाहे जा सकता है या नियम वाला हो तो वह इतना दर्शन करके भोजन वगैरह कर सकता है।

एक बार आपश्री ने आज्ञा किया कि गोलीबाबू हम तुमपर प्रसन्न हैं तुमको कुछ दान देना चाहते हैं। हम अपना एक घुटना टेककर और दोनों हाथ से अंजुली बनाकर जमीन में बैठ गये तब आपश्री ने आज्ञा किया कि आज हम तुमको "विरह का दान" देते हैं। हमने हाथ पसार कर लेकर अपने हृदय से लगा लिया और दण्डवत् किया।

परमभगवदीय प्रह्लाददास अग्रवाल के द्वितीय पुत्र
गोपालकृष्णदास उर्फ गोलीबाबू

(६)

एक समय दर्शन चरणस्पर्श के समय आपश्री ने वचनामृत में अपने लड़कपन में मिट्टी की चिरैया बनाकर कहा उड़जा तो चिरैया उड़ गई। इस प्रकरण पर आपश्री की मातुश्री ने आज्ञा करी ऐसा करने से भूतल पर रहना मुश्किल हो जायेगा।

एक समय हमारे ताऊजी स्व० बृजपालदासजी की तबियत खराब थी। आखिरी सांस चल रही थी। वह दूसरे मकान में रहते थे। घर पर राजभोग की सेवा बाकी थी। दादाजी सेवा पहुँचकर आपश्री के पास गये व उनसे विनती करी। जै अपने होश में कोई गलत काम नहीं किया, हमारे ऊपर इतनी विपत्ती पड़ रही है। अश्रु बहने लगे, आपश्री द्रवित होकर आज्ञा करी जहाँ पर खड़े हो उसी स्थान पर बैठ जाओ। हम अन्दर से जब तक

न आवें अगर लघी भी लग जाय तो बैठे-बैठे ही कर लेना। थोड़ी देर पश्चात् अन्दर से आकर एक पुरवा में अमृत जल दिया और बोले जाकर उनको पिला दो। लेकिन उनके दाँत बैठ चुके थे। तब उन्होंने आज्ञा करी कैसे भी सड़सी वगैरह से खोलकर पिला दो लेकिन इसके बाद इस किस्मके कार्य के लिए हमारे पास मत आना। फिर कुछ साल बाद हमारे पिताजी स्व० जमुनादासजी को मोतीझरा बुखार हुआ। अस्सी दिन हो गये थे बीच में समाचार आपश्री लेते रहते थे। अस्सीवें दिन स्वतः आपश्री बिना किसी सूचना के हमारे घरपर पधारे व अपनी कृपा दृष्टि से उनके कष्ट को दूर कर दिया। दोनों ही अवसर पर आपश्री के आशीर्वाद के पश्चात् डाक्टरों ने यही कहा इनको कोई रोग नहीं है खाली कमजोरी है खाना देना चाहिए।

आपश्री के लीला प्रवेश के ३-४ वर्ष पूर्व हमारे यहाँ अन्नकूट उत्सव पर आपश्री के लिए तैयारी लेकर मैं स्वयं गया था। आपश्री ने देखते ही वचनामृत किया- श्रीठाकुरजी को गोवर्धन पूजा के पश्चात् शीतल भोग अवश्य अरोगवाना चाहिए जो कि भूलवश उस दिन भोग नहीं आया था। कितनी अन्तःदृष्टि थी। हमलोग रोमांचित होकर स्तम्भित रह गये।

हमारे पिताजी स्व० बाबू जमुनादासजी की आखिरी समय आपश्री के दर्शन की इच्छा हुई। सायंकाल पांच बजे के लगभग आपश्री से विनती करने गये। आपश्री ने आज्ञाकरी कल सुबह पधारेंगे। हमलोग विनतीकरी जै तबियत बहुत खराब है तब फिर आज्ञा करी सुबह सात बजे पधारेंगे। दूसरे दिन सुबह लगभग साढ़े ग्यारह-बारह बजे आपश्री दर्शन देने पधारे। चरणारविन्द से पिताजी को सब कुछ दे दिया। करीब आधा घण्टा बाद हमारे पिताजी ने कहा जै आप पधारो आपको श्रम पड़ेगा। उसके दो बार और कहने के पश्चात् आपश्री पधारे। गोवर्धन चौक तक ही पहुँचे थे तभी पिताजी का गोलोकवास हो गया।

हमारे पिताजी ने अपनी बिमारी में हमलोगों से कहा कि हमारे जाने के बाद मकान छोड़ देना। शौच से निवृत्त होकर हमलोग आपश्री के चरणस्पर्श कर विनती करी जै पिताजी ने ऐसा कहा है तब आपश्री ने द्रवित होकर कहाजाओ उसी मकान में रहो श्रीमुकुन्दरायजी सब ठीक करेंगे। हम कारीगर व वास्तुकार को भेजेंगे जो खामी है ठीक करवा लो उसके बाद प्रभु कृपा से दिन बदलना शुरू हो गया।

चार-पांच साल बाद आपश्री के जन्म दिन पर हमलोगों ने चैती गुलाब की माला सिद्ध करके आपश्री को धराने ले गये थे। जिसको देखकर स्व० नरोत्तमदासजी पनघरियाजी ने कहा भई इनकी क्या बात है जिसको आपश्री ने भी सुना और तुरन्त अपने वचनामृत में कहा अभी क्या है अभी तो हमारे मन की कहां भयी है। प्रभु कृपा से स्वतः ही असीम कृपा प्राप्त हुई।

''जै श्रीकृष्ण''

नागरीदास
(जी०एन० ब्रदर्स)

(७)

प्रातः स्मरणीय पूज्य महाराजश्री के चरणकमलों में दण्डवत् कर किंचित् दास आपके सान्निध्य में रहकर जो कुछ प्राप्त किया है उसका कुछ अंश यहाँ पर प्रकट करता हूँ।

प्रथम परम भगवदीय वैष्णव जगदीश नारायण मेहरोत्रा उर्फ जगनजी को दण्डवत् करता हूँ जो परम स्नेह से दास को आपश्री के सान्निध्य में ले गये और आपकी असीम दया करुणा और कृपा द्वारा दास को कृतार्थ किया।

इसके पश्चात् उस परम स्नेही भगवदीय वैष्णव रामाबीबीजी को दण्डवत् करता हूँ जिसने मार्ग को दिखलाने में भगवदीय जगनजी को बराबर कहती थी कि इन लड़कों पर बराबर खीझतें हैं लेकिन ये बच्चे आना जाना नहीं छोड़ते हैं ।

आपके पास रहकर अनेक प्रसंग सुनने को मिलता था एवं कृपाभी अनेक प्रकार की हुई है जिसे लेखनी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता है सिर्फ अनुभव ही किया जा सकता है फिर भी अनेक प्रसंग ऐसे हैं जो प्रकट कर रहा हूँ:-

यथा नाम तथा गुण जैसे कहा जाता है वैसे ही एक समय प्रथम बार जब हम परम भगवदीय वैष्णव जगनजी के साथ ऊपर कमरे में (गुलाबी कमरा) सायंकाल के समय गये तो हमें देखते ही आपके मुखारविंद के यह शब्द आज भी हमारे कानों में गुँजते हैं कि तुम जगमोहनदासजी के पौत्र हो न उनका क्या कहना था फूल के श्रृंगार, टिपारा, कुल्हें, मुकुट, दुमाला, पाग वागा वस्त्र, हार श्रृंगार ठाकुर जी की सेवा में बड़े निपुण थे । श्री गोपाललालजी के डोल तिवारी में या श्री मुकुन्दरायजी के हथिया पोर में चुपचाप श्रृंगार की सेवा करते थे । इस प्रकार से बड़ी हौ कृपादृष्टि द्वारा आपने तुच्छ जीव को अपने निकट कर लिया ।

आपमें एक विलक्षणता यह दिखाई देती थी कि यदि कोई भी वैष्णव आपके सम्मुख दुःखी जान पड़ता तो आप उसे खोद-खोदकर कुरेद-कुरेदकर वह सब बात पूछते थे जिस कारण से उसे दुःख हो रहा है । साथ ही उसका निवारण भी बताते थे जिससे वैष्णव आपके सम्मुख से प्रसन्न एवं दृढ़ विश्वास लेकर घर जाता था ।

आप वैष्णव बालक, जीव पशु-पक्षी सभी पर अपनी कृपा बनाये रखते थे । आप एक पशु लँगूरिया को रक्खा था । जो जलघड़ा (स्नान गृह) के बगल में एक बरामदा है वहीं रखते थे, वहीं बँधती थी । उसे अपने श्री हस्त से मंजन कराते थे । आये-गये अपने निज सेवकों को उससे (लँगूरिया से) जै श्री कृष्ण हाथ जोड़कर करवाते थे । ठण्ड से बचने के लिए आप स्वयं वैष्णव द्वारा कपड़ा सिद्ध करवाकर उसे पहनाते थे । एक समय जब आप मथुरा श्री राकेश बाबा के विवाह प्रस्ताव में पधार रहे थे तो उस लँगूरिया से कहा कि तू भी अइयो हम वृज को जा रहे हैं । दूसरे दिन ही सोनावाले के बगीचे में यह खबर मिली कि उस जीव ने अपनी देह छोड़ दी । आपने उसी समय यह कहा कि जीव जहाँ की थी वहीं पहुँच गई, हम अभी काशी में ही हैं और वह व्रज में पहुँच गई । आपका विछोह एक पशु नहीं सह सका । उसे आप बराबर याद भी करते रहे हैं । वह वचनामृत आज भी कैसेट में सुरक्षित है ।

दास के घर में श्री ठाकुरजी विराज रहे हैं । ठाकुरजी के स्वरूप की लावण्यता को देखते भये आप हमेशा (मीठी चिकोटी) आज्ञा करते हैं कि यह ठाकुरजी तुम्हारे घर में नहीं विराजना चाहिए । इन्हें तो कोई रसिक बालक के घर में विराजना चाहिए । बाद में आज्ञा करे कि ऐसे स्वरूप भूतल पर कहीं नहीं विराजता है इसलिये बड़ी सावधानी से सेवा करियो, श्याम स्वरुप की सेवा डर भय से करियो जैसे काले नाग से डर होता है । श्री ठाकुरजी के साँगामाची में आपने स्वयं आज्ञा कर पहिया लगवाया और आज्ञा किया कि ठाकुरजी को ज्यादा उठाना-बैठाना नहीं साँगामाची में पहिया लगाकर सरकाकर पधराओ । जैसे रथ में पहिया लगता है इस प्रकार से ठाकुरजी की हिफाजत का आप स्वयं ध्यान रखते थे ।

एक समय आपने रमन रेती के मनोरथ की आज्ञा किया । घर में सब बड़े लोग ने नहीं कहा लेकिन हमारी काकी ने कहा कि जब महाराजश्री की आज्ञा है तो कोई बाधा नहीं है । कारण कि काका स्व० कृष्णदासजी

कहते थे कि वैष्णव के घर में रमन रेती का मनोरथ नहीं होता। यह सब मनोरथ वल्लभ कुल के घर में ही हो सकें। लेकिन आपकी आज्ञा से मनोरथ पूर्ण हुआ। सारी रचना आपके द्वारा बताई हुई थी। दास को अपने निकट खींचने के लिए काकाजी को आपकी लीला के अलौकिक दर्शन हुये जिससे काकाजी भी सब भगवदिच्छा जानकर चुप कर रहे। श्रीठाकुरजी के और भी अनेक मनोरथ की रचना आपने आज्ञा की।

एक समय का प्रसंग है। आप ऊपर छत पर विराजे हुए थे। ऐसे ही दास ने प्रश्न कर दिया कि जै-जै श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी के मंगला बड़ी देर में होती है तो आपने बहुत ही साधारण रूप से समझाया कि देखो तुम्हारे यहाँ तुम लोग जब बुला-बुलाकर ठाकुर को खिला दोगे तो यहाँ तो देर हो ही जायेगी। जैसे व्रजभक्त इशारे-इशारे में ठाकुरजी को यशोदाजी के घर पर से बुलाती थी वैसे ही तुम वैष्णव भी श्री महाप्रभुजी, श्री गुसाईंजी एवं अपने गुरू की कानि से उन्हें बुला लेते हैं तो उनका पेट तो भर जाता है।

एक समय का ऐसा ही बहुत सुन्दर प्रसंग याद आ गया कि आप नीचे जाली में जहाँ संध्यावन्दन करते है विराज रहे थे-दास ने पूछा जै-जै अड़ैल की बैठक और चुनार की बैठकों में श्री महाप्रभुजी की गोद में श्री गोपीनाथजी बायें तरफ एवं श्री गुसाईंजी दाहिनी ओर विराज रहे हैं। उसका क्या कारण हैं ? आप हँसते हुए आज्ञा करते भये तुम रामा बीबी एवं जगनजी के चेले हो न इसीलिए इन सब बातों पर ज्यादा ध्यान देते हो। आपने आज्ञा करी कि श्री गोपीनाथजी बलदेवजी रूप वेद के अवतार हैं इसलिए बायें तरफ विराजते हैं और श्री गुसाईंजी तो श्री चन्द्रावलीजी का स्वरूप है। स्वकीया परकिया में इतनो तो अन्तर होना चाहिए कि स्वकीया हमेशा वाम भंग रहे और परकीया दायें भाग में रहे। आगे की भावना लेखनी द्वारा न लिखी जावे रसिक ही रसिक की बात जाने समझें।

एक समय का प्रसंग याद आता है कि वसन्त के खेल में केसर गुलाल(बुका, अबीर) एवं चोवा ही क्यों रहता है और खेल भी ठाकुर जी को इसी क्रम से होता है कारण क्या है? आप आज्ञा करते कि केसर श्री स्वामिनीजी को भाव है, गुलाल लाल रंग अनुराग स्नेह को स्वरूप है जो श्री ललिताजी को भाव सुं है। कारण कि एक श्री ललिताजी हू ऐसी सहचरी है जो दोऊन की मध्या है। ये बिना रोक-टोक कहीं भी आ जा सकती है इसलिए गुलाल सो खिलावनो फिर क्रमशः (बुका, अबीर) श्री चन्द्रावलीजी को स्वरूप हैएवं चोवा श्याम श्री यमुनाजी कूं भाव सो याते इसी क्रम से वसन्त होरी में खेल खेलें।

एक समय का प्रसंग आता है- आप सभी वैष्णवों को आज्ञा करते कि वैष्णवजन को एकादशी व्रत और चार जयन्ती अवश्य करनी जिसमें एकादशी तो अवश्य रहनो और जयन्ती उत्सव तक व्रत बाद में प्रसाद लेनो कारण कि स्वयं श्री गुसाईंजी ने सात लालजीन में बड़े घर (प्रथम पुत्र श्री गिरिधरजी के घर) यह रीति राखी उपवास। और ठौर उत्सवांते च पारणा।

आपके अनेक प्रकार के वचनामृत होते रहते थे। आपश्री की कृपा इतनी अधिक थी कि हम दो बालकों का विवाह प्रस्ताव भी आप द्वारा ही सम्पन्न हुआ। एक तो माधोदास, दूसरा स्वयं दास को कृपा कर आज्ञा कर विवाह करवाया था।

आपने अपने मुखारविन्द द्वारा अनेक वचनामृत का पान भी कराया:-

(१) वल्लभ कुल में आचार्य श्री महाप्रभु को भाव जाननो। (२) सेवा से अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त होती है । (३) फलसिद्धि में अन्याश्रय सर्वथा बाधक है। (४) गुरू के अपराध को भगवान् भी नहीं क्षमा

करते। (५) प्रभु प्रेम के ही बस होते हैं। (६) भगवान् अपने जनों की सदा रक्षा करते हैं। वैष्णव को हमेशा प्रभु का ही स्मरण रहना चाहिए। (७) भक्ति के बिना प्रभु की प्राप्ति दुर्लभ है। (८) जहां भगवन्नाम लिया जाय वहाँ भूत प्रेतों का प्रवेश नहीं हो सकता है। (९) गुप्त सेवा फल रूप और प्रतिष्ठा बाधक है। (१०) गुरू सुखार्थ भगवद् श्रमादि वैष्णव को बाधक नहीं है। (११) गुरू द्रव्य सर्वथा वर्जित है। (१२) अचानक वैष्णव घर आवें तो ठाकुर प्रसन्न हों ऐसा जानिए। (१३) निवेदन का अनुसन्धान भगवदीय के साथ करना चाहिए। (१४) सेवा गुरू की आज्ञानुसार करनी चाहिए। (१५) श्रीनाथजी सब देवों के दमन करने वाले पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण हैं। (१६) सेवा में आलस्य नहीं करनी चाहिए। (१७) गाय की सेवा श्री ठाकुरजी की सेवा है। (१८) सामग्री नित्य नयी करके प्रभु को अरोगानी चाहिए ताकि प्रभु सेवा सामग्री में अहर्निश चित्त लगा रहे। (१९) दीनता से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं। (२०) सेवा छोड़िके तीर्थादि नहीं करने चाहिए। (२१) श्री ठाकुरजी सर्वोपरि है। अन्य देवता उनके अधीन है इसलिए प्रभु सेवा को अवश्य करना चाहिए। (२२) ठाकुर प्रसन्नतापूर्वक अरोगें तब जानिए, जब वैष्णव महाप्रसाद की सराहना करे। (२३) अन्य मार्गीय के सामने हृदय का भाव गोप्य रखना चाहिए। (२४) सेवा में बाधक होय तो स्त्री पुत्रादि का त्याग बाधक नहीं है। (२५) दैवी बिना जीव का पुष्टिमार्ग में प्रवेश नहीं हो सकता है। (२६) अनप्रसादी का दोष चरणामृत से निवृत्त होता है। (२७) दान एकादशी को दही अवश्य भोग आवे। (२८) गुरू एवं प्रभु के सामने सिद्ध आसन और पाँव दीखे ऐसे नहीं बैठना चाहिए। (२९) अन्तिम समय भगवन्नाम लेने से सर्वदोष की निवृत्ति होती है। (३०) प्रभु के ऊपर सब कुछ न्यौछावर कर देना चाहिए। (३१) श्री यमुनाजी सब दु:खों का निवारण करने वाली है। (३२) षोडश ग्रन्थ का पाठ वैष्णव को नित्य नियम से करना चाहिए। (३३) रात्रि में सोने से पहले हाथ पैर धोकर भगवन्नाम लेते हुए सोना चाहिए। (३४) प्रभु जो वस्तु श्रीहस्त से अरोगते हैं वह ज्यों की त्यों रहती है, घटती नहीं है (क्योंकि आपके श्रीहस्त में पद्म है।) (३५) वैष्णवों को श्री ठाकुर जी या गुरू के चरण स्पर्श करनी हो तो प्रथम वाम चरण फिर दाहिने चरण के फिर वाम चरण को स्पर्श करनो। कारण की वाम चरण पुष्टि है यासो वाम चरण दो बेर एवं दाहिनों चरण मर्यादा को है यासो एक बेर छूनों।

एक समय आप बहुत ही प्रसन्न हुते। उस समय आपने आज्ञा करी प्रभु तो अपने सर्वस्व है उनसे लौकिक क्या माँगनो उनसे तो हमेशा भक्ति ही माँगनी। यदि लौकिक बाधा कोई आ पड़े मरणासन्न अवस्था में अशक्य अवस्था आ पड़े तो श्री नृसिंह कवच, सुदर्शन कवच, नारायण कवच, गोपाल सहस्त्रनाम का पाठ करवाना चाहिए लेकिन अपने प्रभु के पास अन्यथा कुछ भी न माँगनो।

एक बार की बात है वैष्णवों द्वारा विनती करने से आपश्री ने ब्रह्मसम्बन्ध की टीका श्री गोपाललालजी के चौक में व्याख्यान द्वारा की। जिसमें मन्दिर में ही जलघड़े में सैकड़ो वैष्णव नहा-नहाकर कोरे वस्त्र धारण कर तिलक मुद्रा कर श्री गोपाललालजी के चौक में बैठे। आपश्री श्रीप्रभुन को श्रृंगार करा रोजभोग धर के ब्रह्मसम्बन्ध की टीका पर व्याख्यान शुरू की। लगभग सायंकाल पड़ गई थी। इस बीच एक प्रसंग उसीमें आया कि ब्रह्मसम्बन्ध में जब प्रभु को सब कुछ समर्पण कर दिया तो हमारा क्या रहा। हमारे स्वामी जैसा चाहें वैसे ही हमें रखें। हमारी सभी वस्तु प्रभु की है यहां तक की हमारा मन भीप्रभु को विनियोग कर दिया तो ऐसी वैसी बातें भी हमारे दिमाग में नहीं आनी चाहिए जिससे हमारे दासत्व में बाधा पड़े।

एक समय का प्रसंग है आपश्री को कीर्तन का विशेष आग्रह रहता था। राजभोग, संध्या आरती में विशेष प्रभुन के सम्मुख आप कीर्तन गाया करते थे। यदा कदा ऊपर गुलाबी कमरे के आगे वाली छत पर जबविराजते

थे तो दीनता, आश्रय, विनती के कई पद वैष्णवों के आगे सुनाते थे। विशेष कर अक्सर यह वार्ता कहते थे – **''गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पाय, बलिहारी गुरू आपनो गोविन्द दियो दिखाय।''**

अपने श्री वल्लभ प्रभु की कृपा से श्रीनाथजी ने अपनो हाथ पकड़ो है तो अब कैसे छुटेगो। **जैसो हुँ तैसो तिहारो श्री वल्लभ, अब जिन छाड़ि देहुं मोहि कर ते, वाहँ गहे की लाज मन धरहों नाहिन भरोसो मोहि साधन बलते। तुम तज और ठौर नहीं मोको जासो जाय कछु दुःख भरत, रसिक शिरोमणि श्रीवल्लभ प्रभु राखो मोहिं चरण शरण भव डरते।**

इसलिए श्री महाप्रभुजी को आश्रय कभी नहीं छोड़नो। कभी इस प्रकार से आज्ञा वैष्णव प्रति करते कि रसखान ने क्या प्रभु से माँगा था– **मानुष हौं तो वहि रसखान, बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।** अपने यहाँ परमानन्द दास जी ने भी गाया है–

यह मांगो गोपीजन वल्लभ। मानुष जन्म और हरि सेवा,

दान लीला के विषय में आप आज्ञा करते कि यदि श्री वल्लभ न होते तो दानलीला न होती। कारण कि श्रीमद्भागवत में श्रीव्यासजी ने सब लीला का वर्णन किया है लेकिन दानलीला का वर्णन श्री महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने ही किया है। यह लीला प्रेम प्रधान आपस की हँसी मसखरी की लीला है। यह लीला तो ''रसिक प्रीतम'' श्री हरिरायजी महाप्रभु ने कितने भाव सो वर्णन कियो है–

तुम नन्द महर के लाल मोहन जान दे ॥
रानी जसुमति प्राण आधार ॥
मोहन जान दे ॥
श्री गोवर्धन गिरि सिखर ते मोहन दीनी टेर ॥

कितना सुन्दर भाव से भरा हुआ यह पद है। इसके साथ ही यह पद भी है–

अहो विधिनां तोपें अचरा पसारि मागों जन्म जन्म दीजे याही व्रज बसवो।

राजभोग सम्मुख ग्रीष्मऋतु में यह पद आप स्वयं अक्सर गाते थे–

दुपहरी भलेई मेरे आये हो पिय ठीक दुपहरी की बिरियां।

कुंज के भाव का कीर्तन :–

बैठे हरि राधा संग, कुंज भवन अपने रंग, कर मुरली अधर धरे, सारंग मुख गाई।

कीर्तन के आप बहुत रसिया थे। आपको बहुत से पद याद थे, जिसका वर्णन करना कठिन कार्य है।

आप आज्ञा करते थे– श्री यमुनाजी का स्मरण जीव को हमेशा रहना चाहिए। कारण कि बिना श्री यमुनाजी के जीव को ब्रह्मसम्बन्ध नहीं हो सकता है। (भाव रूप से श्री झारीजी यमुनाजी सदैव श्री ठाकुरजी के बाईं ओर विराजते हैं। श्री स्वामिनी रूप से) श्री हरिरायजी महाप्रभु आज्ञा करते हैं – **''कहत श्रुतिसार निर्धार करि के।''**

आपश्री कभी-कभी आज्ञा करते– **''राधा अधर सुधा बिना प्रभु ने बिजूँ काईं न भावें।''**

एक समय आपश्री ने इस प्रकार आज्ञा करी– विष्णु भगवान् ने एक-एक भक्ति एक-एक भक्त को दीनी हती, या प्रकार सुं–

१. श्रवण- राजा परीक्षित कूं, २. कीर्तनशुकदेवजी कूं, ३. स्मरण- प्रह्लादजी कूं, ४. पादसेवन- श्री लक्ष्मीजी कूं, ५. अर्चनराजा पृथु कूं, ६. वन्दन -अक्रूरजी कूं, ७. दास्य- हनुमानजी कूं, ८. सख्य- अर्जुन कूं, ९. निवेदन- राजा बलि कूं।

ये भक्ति मर्यादा मार्ग में एक-एक भक्त को दीनी लेकिन श्री महाप्रभुजी ने सबन को एक साथ सब भक्ति दीनी है :-

प्रथम श्रवन- सो कथा वार्ता सुने बिना वैष्णव को न रहयो जाय। **द्वितीय कीर्तन**- जो ठाकुरजी की सेवा कीर्तन सो ही होसके। **तृतीय स्मरण**- वैष्णव को अष्टाक्षर एवं पंचाक्षर को स्मरण हमेशा राखनो। **चतुर्थ पादसेवन**- श्री ठाकुरजी को अपने माथे पधराये है तो उनका नित्य चरणस्पर्श वैष्णव करते ही हैं। **पंचम अर्चन**- सो श्री ठाकुरजी को साक्षात् स्नान, श्रृंगार करत ही है। **षष्ठ वन्दन**- सो श्री ठाकुरजी के चरणारविन्द में वैष्णव बारबार दण्डवत् वन्दन करे हैं। **सप्तम दास्य**- सो अपने पुष्टिमार्ग में ब्रह्मसम्बन्ध लेकर श्री ठाकुरजी की सेवा स्वामी सेवक भाव सो करे हैं। **अष्टम सख्य**- श्री ठाकुरजी श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी की कानि से सेवकन सो सख्य भाव राखत है। सो गोविन्द स्वामी तथा गज्जन धावन की वार्ता में कहे हैं। कबहू घोड़ा करत हैं, कबहूं गाय करत हैं। **नवम निवेदन**- तो तुलसी दे के श्री ठाकुरजी के चरणारविन्द में निवेदन करावें हैं और दसम प्रेम लक्षणा सो श्री महाप्रभुजी ने प्रगट होय के अपने वैष्णवन को दीनी है।

आपश्री ने किसी-किसी विशेष समय पर श्री महाप्रभुजी रचित ''षोडश ग्रन्थ'' श्री गुसाईंजी द्वारा रचित श्री सर्वोत्तम स्तोत्र एवं श्री हरिरायजी द्वारा रचित पाठों को भी वैष्णवों को करने की आज्ञा दी। जैसे उदाहरण स्वरूप यदि कोई बालक हो या बुढ़ी स्त्री जो पढा-लिखा न हो उसे श्री सर्वोत्तमजी न याद हो सके तो उसे श्री हरिरायजी विरचित '' श्री वल्लभ शरणाष्टकम्'' करने की आज्ञा देते थे-''निःसाधन जनोद्धारकरण प्रकटीकृतः। गोकुलेश स्वरूपः श्री वल्लभः शरणं मम ॥'' आप आज्ञा करते थे कि श्री यमुनाष्टकम्, श्री कृष्णाश्रयः, एवं चतुःश्लोकी, सिद्धान्तरहस्यम् एवं नवरत्नस्तोत्रम् आदि पाठों को तो निश्चित रूप से नित्य पाठ करने से भगवदनुग्रह प्राप्त होता है। इससे सभी लौकिक कामना समाप्त होकर अलौकिक प्राप्ति होती है।

आपश्री आज्ञा करते थे- काशी कोई ऐसा वैसा स्थान नहीं है। काशी श्री महाप्रभुजी को गोकुल है।

आप श्रृंगार को भाव भी आज्ञा करते थे- दुमाला, ग्वाल पगा ये सखान के भाव के श्रृंगार हैं। किरीट जो है प्राचीन परम्परा को है प्रायः ब्रह्माजी को भाव सो है। टोपी-टोपा श्री ललिताजी को भाव को श्रृंगार है। कुलही श्री गुसाईंजी धराये चाकदार वागा महम्मद शाह बादशाह ने भेट करी। कुलही एक तरह की टोपीहै उस पर पान है जो श्री महाप्रभुजी को मेड़ भी राख्यो उस पर चन्द्रिका धरे। श्री महाप्रभुजी ने काछनी, सुथन, पीताम्बर धरा के मुकुट को सिंगार कियो। ''रास लीलैक तात्पर्य'' को भाव सो निज मन्दिर श्री चन्द्रावलीजी को निकुंज है सज्जा मन्दिर श्री स्वामीनीजी को निकुंज सो है। आगे की तिवारी कुमारिका ललिताजी को भाव डोल तिवारी श्री यमुनाजी को निकुंज को भाव है। श्री नाथजी के यहाँ छठी कोठा श्री यमुनाजी को निकुंज को भाव है। कमल चौक श्री नन्दरायजी के घर को प्रांगण है जहाँ श्री ठाकुरजी खेले हैं वैसे कमल चौक रास चबुतरा कोभाव भीहै इसलिये जानकार वैष्णव कमल चौक पर अपने पैर नहीं रखते हैं और भीअनेक भाव गुप्त प्रकट किये जो लेखनी द्वारा प्रकट नहीं कियो जा सके।

पुरुषोत्तमदास रासरसीन का जै श्री कृष्ण

(८)

परमपूज्य नि०ली०गो० १०८ श्री मुरलीधर लालजी महाराजश्री के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखलाने के समान है, फिर भी यथा शक्ति दो शब्द लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ। आपश्री से जब भी कुछ वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त होता था तब तब सेवा सम्बन्धी ही बातें बतलाते थे और उसी विषय की शिक्षा देते थे। एक बार आपश्री ने यह आज्ञा किया कि चतुर्थ लालजी श्री गोकुलनाथजी ने हमारा घर बसाया। उन्हीं के अनुग्रह से आज श्री गोपाललालजी हमारे पूर्वजों के माथे विराजमान हैं। श्री गिरिधरजी महाराज ने तो श्री दाऊजी महाराज से अपने छठे घर का अधिकार लिया और श्री मुकुन्दरायजी को काशी पधराया। जब चुनार हम लोग जाते थे तथा सेवा में रहते थे, उस समय आपश्री वहाँ सेवा में पधारते थे और हमलोगों को पानघर की सेवा में देखते थे तो आपश्री आज्ञा करते थे कि देखीयो गोद में बालक (श्री गुसाईंजी) विराजते हैं चूना बहुत थोड़ो लगाइयो, इसी प्रकार और सेवा में भी बहुत सावधानी रखने की शिक्षा देते थे। एक बार कलकत्ता से कुछ मारवाड़ी वैष्णव आये थे। वे सेवा में छेना की सामग्री (संदेश) सिद्धकर रहे थे, आपश्री उधर से पधारे एवं पूछने लगे कि यह क्या सामग्री सिद्ध हो रही है। तब उन लोगों ने कहा कि जै यह छेना की सामग्री (संदेश) सिद्ध कर रहे हैं। तब आपश्री ने कहा कि ठीक है किन्तु हमारे ठाकुर तो व्रज के हैं उनको तोदूध, दही, मक्खन, बसौंदी प्रिय हैं और एक पद सुनाया कि –"सूर खवैया घी को।"

आपश्री राजभोग आरती एवं संध्या आरती पीछे जाली में खड़े होकर नित्य ही सेवा सम्बन्धी वार्ता करते थे एवं वैष्णवों से उनके घर के श्री ठाकुरजी के सम्बन्ध में भी पूछते थे। इसी प्रकार फूल के शृंगार में जब हम लोग छाब सिद्ध कर पधराते थे और आपश्री शृंगारी रहते थे और कदाचित् कोई आभरण जैसे नुपूर, कधौंरा वगैरह कुछ बड़े सिद्ध हो जाते थे तो आप आज्ञा करते थे कि बड़े आभरण धराने में परेशानी होती है और अगर उसमें से कुछ कली निकाल कर छोटा करते हैं तो यह उचित नहीं है क्योंकि हमारा कर्त्तव्य सेवा में अंगीकार कराने का है न कि सेवा से अलग करने का क्योंकि जब कली अथवा फूल में सुई का स्पर्श होता है तो उनको बहुत ही प्रसन्नता होती है कि अब हमारा अंगीकार होने का समय आ गया है। अब प्रभु हमको धारण करेंगे। इसी प्रकार अनेक तरह की शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्त किया है वह उनकी कृपा का ही फल है। आपश्री के विषय में जो भी लिखा जाय वह थोड़ा है, इतना लिखकर अपनी लेखनी को विश्राम देता हूँ एवं जो भी भूलचूक हो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। पूज्य महाराजश्री एवं वैष्णवजन हमारी त्रुटि को ध्यान में न रख दास पर कृपा बनाये रखेंगे।

आपका चरणसेवक,
वल्लभदास दिल्लीवाला

(९)

आदरणीय पूज्य महाराजश्री द्वारा एक समय जाली में सेवा के समय से पहुँचकर प्रसंगवश आपश्री ने कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि महाराजश्री को सेवा में काफी देरी लगती है, इस बात को समझाते हुए जो कि सेवा करते हैं यह अनुभव उन्हीं को होगा, जब भोग सरने के पश्चात् बीड़ी आरोगते हैं उस समय हाथ मुखारविंद से हटता नहीं है। श्री ठाकुरजी अपनी ओर खींचते हैं ऐसा अनुभव होता है। उसी प्रकार सेवा में संलग्नता होती है या लर धराने के समय किसी प्रकार का लौकिक में मन नहीं रहता सिर्फ ध्यान उसीपर रहता है कि कहीं टेढ़ी

लर न रहे, ठीक से धरावें। इस प्रकार की बातें यदा-कदा आपश्री अपने जन की सम्भार करते हूए करते थे। कभी कभी तो आपश्री भावावेश में आकर इतना कह जाते थे कि देखना यहाँ की परम्परा नष्ट न होने पावे, आप लोग इस पर कड़ाई से बोलना और मुक्का दिखाना तो हम लोगों को आँखों में पानी भर आता था, वाह रे प्रभु ऐसी विभूति हम लोगों का भाग्य था जो दर्शन देते थे।

दासानुदास,
कन्हैयालाला दीशावाल

(१०)

श्री वल्लभ प्रभु आपश्री के चरण कमलों में दण्डवत् । प्रभुन ने जो भी आज्ञा करी वो तो शुद्ध हृदय हो तभी ठहरे किन्तु यह अधम तो केवल लौकिक संसार से लिप्त है। उस जगह सुन्दर वस्तु कैसे रहे। आपश्री की कृपा तो अनन्त थी और अभी भी है। आपश्री की पूर्ण कृपा से ही परम भगवदीय श्रीजगनजी द्वारा श्री मुकुन्द प्रभु के दूधघर की सेवा प्राप्त हुई थी नहीं तो इस अधम को उस वस्तु की योग्यता कहाँ थी केवल श्री वल्लभ ने अपनी समझ कर दान दिया। आपश्री सेवा व कीर्तन को ही मुख्यता से बताते थे। कीर्तन का सौख भी आपको बहोत था। कई बार अपने प्रभुन के सन्मुख करते भीथे। कहाँ तक लीला कहूँ। टूटा-फूटा शब्द कृपाकर अंगीकार करें और तो कुछ मैं जानती नहीं। आपश्री की चरणरेणुका दासानुदासी पतित

श्यामा

(११)

आपश्री के वचनामृत :-

(१) एक डोकरी बोली- गुरूचरण मिले बड़े भाग्य से। आपश्री आज्ञा किये जन्मभर गुरू ही समझा। (२) कमला को लकवा की हवा लगी उसके ऊपर कृपा। (३) एक बार वचनामृत किये बड़े लोग प्रेम किसी को देते नहीं और देते हैं तो कभी छोड़ते नहीं। (४) एक बार वचनामृत किये लोग दूरबीन लगाकर दर्शन करते हैं क्या ऐसे दर्शन होते हैं यशोदा मैया कनक कटोरा में ताती लेकर पधारी है लालन अरोगे। (५) एक बार हजारों वैष्णव पवित्रा धराये होंगे। दूसरे दिन एक वैष्णव का नाम लेकर कहेवह पवित्रा नहीं धराई। (६) बगीचे के माली की बात गोपाल लालजी झारी लेकर पधारे। (७) एक बार एक वैष्णव मंगला के दर्शन करने आई। टेरा आ गया था। वैष्णव बोली मैया अपने लालन का दर्शन करा दें। मुखियाजी बोले राजभोग करना। आपश्री सेवा में पधारे थे बोले- मुखियाजी व्रजभक्त क्या कह रही है। अपने लालन का दर्शन करा दीजिये। इतना कहकर आपश्री खुद ही टेरा हटाकर गुरू गोविन्द दोनों के दर्शन करा दिये। व्रजभक्त धन्य हो गई। आपश्री की लीला अपरम्पार है।

छोटी हीरा

(१२)

प०पू०पा०गो० श्री मुरलीधरजी महाराजश्री के मुखकमल से निर्झरित जिस दिव्य सुधाधारा की कुछ सुधाबिन्दुओं का रसास्वादन हमलोगों को समयानुकूल प्राप्त हुआ और जो यद्यपि(मन-मानस) हृदय पटल पर अंकित है, वही कुछ संस्मरण :-

१- आपश्री असीम करुणा और अपार दया के सागर थे। जीवमात्र पर सदा-सर्वदा आप कृपा की वर्षा किया करते थे। एक बार चुनार में श्री गुसाईंजी के जन्मोत्सव पर आपश्री ने पूछा कि तुम आज अपरस में क्यों नहीं नहाई ? हमने कहा, अपरस के वस्त्र नहीं लाये थे ? आपश्री ने कहा आज तुमसे श्रीगुसाईंजी के झारी व चरणस्पर्श बिना कैसे रहा गया ? हम तुम्हें श्री अक्काजी की प्रसादी साड़ी देते हैं। ऐसे आप करुणानिधान थे। आपने अपनी इस करुणा की दृष्टि द्वारा जीवों का यह मार्गदर्शन किया कि विशेष उत्सवों पर श्री ठाकुरजी का झारी-भोग व चरणस्पर्श जरूर करना चाहिए।

२- आपश्री हमेशा श्रीमहाप्रभुजी एवं श्री गुसाईंजी कृत स्तोत्रों का पाठ एवं ग्रन्थों का अध्ययन करने पर जोर दिया करते थेक्योंकि उनके द्वारा रचित स्तोत्रों में जो अमोघ व दिव्यशक्ति अन्तर्निहित है, वहअन्यत्र दुर्लभ एवं असम्भव है। एकबार आपश्री ने मुझे ''सूर निर्णय'' ग्रन्थ अध्ययन करने के लिये दिया। पुस्तक देते समय आपश्री ने कहा- ''वल्लभ बालक श्री ठाकुरजी के चाहक होते हैं, मुखिया-भीतरिया प्रसाद के चाहक होते हैं और वैष्णव पुस्तक के चाहक होते हैं। तुम पुस्तक का स्वाध्याय तो भलीभांति करना पर पुस्तक मत चुराना। हाँ, पुस्तक के गूढ़ार्थ को अवश्य ही चुरा लेना। इस प्रकार आपश्री ग्रन्थों, उत्सवों, सेवा, शृंगार, सामग्री व कीर्तन आदि के अनेकानेक गूढ़ार्थ भावों को समयानुकूल समझाया करते थे और उनका स्पष्टीकरण किया करते थे।

३- जीवमात्र के उद्धार की आपको सतत चिन्ता रहती थी। एकबार आपश्री अपनी पुरानी बैठक में विराजे थे। हमलोगों के निवेदन करने पर आपश्री अपने निजकार्य को अधूरा छोड़कर बाहर पधारे। ''जयराज'' आपको बहुत श्रम करना पड़ा। यह कहने पर आपश्री ने समझाया कि श्री महाप्रभुजी दैवी ज़ीवों के उद्धार के लिये गोलोकधाम से भूतल पर पधारे। हम अपनी बैठक से बाहर यहाँ पधारे। इसमें कौन विशेष श्रम की बात है ? ऐसा कभी न कहना। आपके इस पीयूषवर्षी वचन से दैवोद्धार प्रयत्नात्मा की भावना परिलक्षित होती है।

४- आपश्री के पास जब कभी हम स्कूल के छोटे बच्चों को लेकर जाते, तब उनसे उनका नाम पूछकर उसका अर्थ समझाते। उनको नियमित कुछ पाठ जैसे-मंगलाचरण, यमुनाष्टक, मधुराष्टक, नन्दकुमाराष्टक आदि करने के लिये उत्साहित करते। फिर आपश्री आज्ञा देते कि अपनी दीदी से सब सीखलो। बच्चों के बगीचे में खेलते हुए देखकर आपश्री विनोद करते हुए उन बच्चों को भी कभी लंगूर, बन्दर, बिल्ली आदि भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते और अपनी पुरानी बैठक की खिड़की से ऊपर से ही बगीचे में बच्चों को प्रसाद दिया करते थे। एक दिन बच्चों की क्रीड़ाओं से अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने बगीचे में मदन के द्वारा दो टोकरा प्रसाद भिजवाया और मुझे यह आदेश दिया कि तुम सभी बच्चों को थोड़ा-थोड़ा प्रसाद वितरित कर दो। प्रसाद प्राप्तकर बच्चे तथा उनके अभिभावक अत्यन्त आनन्दित हुए। इस घटना के बाद तो अधिकांशतः बच्चे नित्यप्रति मन्दिर आकर दर्शन करने के लिये अनुप्रेरित हो गये।आज भी बच्चे बड़े होकर उस प्रसादजनित आनन्द की बात को विस्मृत नहीं कर पाते हैं। ऐसी अनुपम वात्सल्यता से आप अलंकृत थे।

५- बाल्यावस्था से ही मन्दिर जाने पर सर्वप्रथम पू० महाराजश्री के दर्शन व चरणस्पर्श की ही उत्कट लालसा हमलोगों के मन में रहती थी। कभी-कभी आपश्री की बैठक में पर्दा रहने पर हमलोग पूछते थे- चरणस्पर्श होंगे ? आपश्री पूछते कौन है ? नाम बताने पर और चरणस्पर्श की इच्छा व्यक्त करने पर आपश्री अन्दर से ही पूछते कि चरणस्पर्श क्यों करना चाहती हो। हमलोगों के यह कहने पर कि ''चरणस्पर्श से आनन्द

मिलता है ।'' तब आपश्री ने समझाया कि चरणस्पर्श से तुमलोग हृदय के भाव को चुरा लेती हो । स्पर्श के भाव को आपने लौकिक दृष्टान्त से समझाया कि बिजली घर से जब घर में बिजली प्राप्त होती है तब जब होल्डर में बल्ब लगाते हैं तभी प्रकाश प्राप्त होता है । उसी तरह चरणस्पर्श से हृदयगत् भावों का जीवों में संचरण होता है ।

६- एक दिन श्रीराधाष्टमी के अवसर पर पालना के दर्शन बन्द होने पर, जय-जय-जय की पुकार करने से आपश्री ने यह प्रेरणा दी कि केवल जय-जयकार करने से कुछ नहीं होता । श्री ठाकुरजी में कभी कुछ मनोरथ करो, उनको नूतन-नूतन सामग्री अरोगावो, वैष्णवों को प्रसाद लिवावो । वैष्णवों को तो मनोरथ----होना चाहिए । तभी श्री ठाकुरजी प्रसन्न होते हैं, कृपा करके दर्शन देते हैं ।

७- आपश्री जीवों को अपने स्वरूप को पहचानने की तथा लीला में अपने स्वरूप का स्मरण करने की प्रेरणा दिया करते थे । आपश्री हमेशा इस बात पर विशेष सजग रहने के लिये कहते थे कि यह ध्यान रखो, तुम कहां से आई हो ? तुम्हें कहाँ जाना है ? तुम क्या कर रही हो । अपने में दीनता लाओ क्योंकि यह पुष्टिमार्ग दैन्यता का मार्ग है, प्रेम का मार्ग है, यह मार्ग व्रजभक्तों का है- वही इस मार्ग की गुरू हैं- गोपी प्रेम की ध्वजाहै । अत: व्रजभक्तों के प्रेमभाव, सेवाभाव तथा उनके दीनता-भाव का सतत स्मरण करो, उनकी तरह प्रभु से मिलने के लिये ताप, विरह, मिलन की भावना का चिन्तन करो । प्रेम की अधिष्ठात्री श्री गोपीजनों से प्रार्थना करो क्योंकि उनकी कृपा से ही प्रभु की सेवा, स्मरण, दर्शनजनित आनन्द की प्राप्ति हो सकती है । आपश्री आज्ञा करते गोपीगीत, वेणुगीत, युगलगीत तथा भ्रमरगीत आदि का समयानुसार गान किया करो । अष्टसखाओं के कीर्तन की लीलासम्बन्धी भावना का चिन्तन किया करो । आपश्री की यही चाह थी कि जीवमात्र की चित्तवृत्ति येन-केन प्रकारेण प्रभु के चरणारविन्द में लगी रहे । **''कृष्ण नाम जबते श्रवण सुन्योरी आलि, भूली री भवन हों तो बावरी भई री ।''** यह कीर्तन आपको अतिप्रिय था । आपश्री कहते थे इस कीर्तन के भाव का चिन्तन करो और प्रभु से प्रार्थना करो कि ऐसी मेरी स्थिति कब होगी ।

८- आपश्री में इतना निजत्व एवं ममत्व था कि जिसका स्मरण कर हृदय आज भी आनन्द रस में मग्न हो जाता है । एक दिन मुझे अधिक अस्वस्थ देखकर आपने अपनी एक विशेष दवा ''स्वर्णबटी'' मुझे दी और कहा कि हम दवा को बराबर लेते हैं तुम भी इस दवा का नियमित सेवन करो तो स्वास्थ्य ठीक रहेगा । इसे शहद के साथ लेना, लेकिन एकादशी के दिन शहद से न लेना क्योंकि यह मधुमक्खियों का वमन है ।

९- आपश्री के पास जब ऊपर जायें तब आप हमेशा हमलोगों को अपना जूठन प्रसाद या बीड़ा दिया करते थे । कुछ न होने पर श्री मुकुन्दरायजी की प्रसादी मालाजी में से तुलसीजी निकाल कर देते थे । कहते थे ये सब बीड़े की बड़ी शौकीन है । बीड़ा न होने पर खवास से प्रसादी सुपाड़ी देने के लिये कहते थे ।

१०- पवित्रा एकादशी के दिन का वर्णन अकथनीय है । आपश्री उस दिन एक-एक वैष्णव पर अपनी कृपादृष्टि की वर्षा करते थे । कोठी में जब आप पवित्रा धरने के लिये विराजते थे तो धूम मच जाती थी । अपार वैष्णवों का जनसमुदाय भक्ति-भाव से पूरित होकर उमड़ पड़ता था। कभी-कभी आपश्री वैष्णव का नाम लेकर पास बुलाते थे । और पूछते थे- ''क्या तुमने पवित्रा धराया ?'' हाँ का प्रत्युत्तर देने पर आपश्री ने कहा हमने नहीं देखा, तुम फिर पवित्रा धराओ । एकबार हमलोगों के पवित्रा धराने पर आपश्री ने पूछा – ''माता-पिता की तरफ से पवित्रा धराया'' ? नहीं कहने पर आपश्री ने आदेश दिया- ''पहले माता-पिता की सुधि करके पवित्रा धराओ और उनकी तरफ से चरण-स्पर्श करो । बाद में अपना पवित्रा धराना ।'' इस प्रकार आपश्री ने बड़ो की सुधि

करके कोई भी सेवाकार्य करने के लिये अनुप्रेरित किया। आपश्री ने एकबार यह भी आज्ञा दी थी कि पवित्रा एकादशी की महानिशि के दिन अपरस में नहाकर गद्यमंत्र का जप करना चाहिए।

११- आपश्री को दान का मनोरथ अतिप्रिय था। दान देने पर आपश्री दान का स्वरूप और उसका भाव समझाते थे। दान व्रजगोपियों के हृदय के असीम प्रेम, दिव्यभाव एवं अलौकिक स्नेह रस का स्वरूप है। इस दिव्य प्रेम रस के पात्र एकमात्र प्रभु ही हैं। अपने हृदयगत प्रेम रस का विनियोग प्रभु में ही होना चाहिए। प्रभु साकरी खोर में श्रीगोपीजनों को अपनी छड़ी के द्वारा सबको घेरकर,मार्ग में रोककर दूध, दही, माखन, मिश्री के मिस उनसे उनके अन्तस्तल में अन्तर्निहित गूढ़, दिव्य अलौकिक प्रेम भाव का दान माँग रहे हैं।

१२- आपश्री के जन्मदिन पर तो सभी वैष्णवों के हृदय में एक अनिर्वचनीय आनन्द की लहर दौड़ पड़ती थी। मन्दिर में चतुर्दिक् आपश्री के जन्मदिन की एक विशेष धूम मच जाती थी। उस दिन दोहरा मंडान होता था। आपश्री अपने निकटस्थ वैष्णवों को यह आज्ञा करते थे कि कल जल्दी आना नहीं तो केसर स्नान के लाभ से वंचित रह जाओगे। मार्कण्डेय पूजा के समय तो अद्‌भुत आनन्द की वर्षा होती थी। एक बार आपश्री ने अति प्रसन्न मुद्रा में एक कीर्तन गाया- **''ऐसी वंशी बाजी, वन-घन में व्याप्त भई, सुर मुनिजन की समाधि जागी। आदि''** अधिकांशत: वैष्णवों का समय उस दिन मन्दिर में ही जन्मदिन के आनन्दरस में व्यतीत हो जाता था। उस दिन लोगों को अपने घर के कार्यो की सुधि विस्मृत हो जाती थी। रात्रि को बधाई, कीर्तन आदि के कार्यक्रमों से मन्दिर गूँज उठता था। आपश्री बराबर यह भी जीवों को स्मरण कराया करते थे कि ये तुम्हारा अपना घर है, यहाँ तुम्हारा अलौकिक सम्बन्ध है।

१३- आपश्री हमेशा लौकिक, वैदिक मर्यादा के अनुसार कार्य करने की प्रेरणा देते थे। आपश्री कहते थे कि श्री महाप्रभु ने तो वैष्णवों के घर-घर श्री ठाकुरजी पधराये हैं। सर्वप्रथम उनकी भलीभांति मनोयोगपूर्वक टहल करो। कभी-कभी घर के सेव्य श्री ठाकुरजी की सेवा प्रणाली उत्सव, श्रृंगार, सामग्री आदि के विषय में पूछकर समझाते थे कि सूक्ष्मता से सुखद सेवा करो। परम धर्म-कर्तव्य समझकर करो, भार स्वरूप नहीं। इस प्रकार आपश्री अपने निजजनों को हमेशा सेवा, सुमिरन, सत्संग इत्यादि समुचित रूप से करने के लिये उत्साहित व प्रेरित किया करते थे।

ललिता अरोड़ा, चन्द्रा अरोड़ा, बृजलता अरोड़ा

(१३)

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

सन् १९८२ की बात है, मंगला के दर्शन करके आपश्री का चरणस्पर्श करने ऊपर गये तो आपश्री ने पूछा कि दुकान का काम बच्चे ने सम्भाल लिया होगा। मैंने कहा कि आपकी कृपा से बच्चे कामकाज देख लेते हैं, कुछ देर के लिये मैं भी जाता हूँ। इसको उचित ठहराते हुए कहा कि कुछ समय के लिये जरूर जाना चाहिये। इन दिनों आपश्री का श्रीअंग कुछ नरम चल रहा था। उन्होंने स्वत: पूछा कि क्या तुम मेरे पास रह सकते हो ? तो मैंने गदगद होकर कहा कि कृपानाथ की सेवा-टहल का मौका मिले इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके उनकी सेवा-टहल में लग गया, कुछ समय के लिये घर चला जाता था। रात्रि पहर आपश्री जहाँ पौढ़ते थे, वहीं उनके पास मैं भी सो जाता था। एक बार आपश्री ने अपने मुखारविन्द का ताम्बूल

का अधरामृत दिया। उसमें से मैंने थोड़ा रखने लगा तो उन्होंने पूछा कि यह गीताबाई (मेरा पत्नी) के लिये रख रहे हो क्या ? मेरे हाँ कहने पर उन्होंने निर्देश दिया कि तुम सब ले लो।

एक दिन प्रातः जल्दी आपश्री का चरण-स्पर्श करने हेतु मन्दिर गया, आपश्री ने तुरन्त पूछा कि आज इतनी जल्दी कैसे आना हुआ, लगता है कहीं बाहर जाना है। मैंने कहा, आप तो अन्तर्यामी हैं आप तो सब कुछ जानते हैं। किसी कार्य हेतु माधोसिंह जाना है। तत्पश्चात् आपश्री ने स्वतः इच्छा जाहिर की कि एक बार माधोसिंह जाने का विचार हमारा भी है। कुछ दिन बाद मैंने आपश्री से विनती की कि कृपानाथ माधोसिंह कब पधार रहेहैं। आपने दो दिन का समय दिया। दो दिन में मैं माधोसिंह जाकर आपश्री के लिये सारी व्यवस्था की। दो दिन बाद आप ठाकुरजी का राजभोग करके सायं गाड़ी द्वारा माधोसिंह के लिये रवाना हुए, आपश्री के साथ मैं तथा गोपालदासजी सोनावाले भी थे। माधोसिंह पहुँचने पर परिवार वालोंके साथ और भी लोग एकत्रित थे। सभी ने आपश्री का स्वागत ''वल्लभाधीश की जय'' बोलकर की। आपने वहाँ पर वचनामृत भी किया। वचनामृत के बाद आपश्री को केशर-स्नान कराके चरण-स्पर्श का आनन्द भी सभी उपस्थित जनों ने लिया। आपने रात्रि को वहीं पर विश्राम किया। आप प्रातः उठकर गादी, तकिया पर विराजकर वचनामृत किया। आपश्री की बहुत इच्छा थी कि मुकुन्दरायजी तथा गोपाललालजी को जब अड़ैल (महाप्रभुजी का निज घर) पधरायेंगे तब एक बार माधोसिंह रुकने का विचार है। वचनामृत करने के बाद आपश्री बनारस के लिये गाड़ी में बैठ गये। वहाँ सभी जनों ने ''वल्लभाधीश की जय'' का उद्घोष किया।

कुन्जलाल कोठारी

सन् १९७२ की बात है, सुबह घर पर श्री ठाकुरजी की सेवा करके मैं नित्य सायं दर्शन करने जाती थी लेकिन सायंकाल आपश्री का चरण-स्पर्श न होने के कारण मन को सुख-शान्ति नहीं मिलती थी। एक दिन आपश्री का चरण-स्पर्श करने की लालसा से प्रातः मन्दिर दर्शन करने गई। आपश्री ने पूछा कि आज सुबह कैसे आना हुआ तब मैंने कहा कि बहुत दिन हो गये आपका चरण-स्पर्श नहीं किया था। शाम को चरण-स्पर्श का मौका नहीं मिल पाता है इसलिये आज प्रातः आयी हूँ इस पर आपश्री ने कहा कि हमारा चरण-स्पर्श करके क्या करोगी, तुम नित्य श्री मुकुन्दरायजी का चरण-स्पर्श किया करो। मैंने कहा कि हमारा इतना सौभाग्य कहाँ है, तब आपश्री ने बताया कि श्री मुकुन्दरायजी का वस्त्र तुमको दूँगा, अपने घर पर पधरा लेना। तुरन्त ही आपश्री ने मुखिया नाथूराम जी को आज्ञा दी कि तुम ठाकुरजी का वस्त्र रेशमी कपड़े में लपेटकर गीताबाई को पधरा दो। इस तरह हमारे घर के ठाकुरजी के साथ श्री मुकुन्दरायजी का वस्त्र विराज रहा है जिनके चरणस्पर्श मैं तथा मेरे कुटुम्ब वाले नित्य करते हैं। श्री मुकुन्दरायजी का वस्त्र पधराने के बाद ठाकुरजी की शय्या छोटी पड़ रही थी, मैंने आपश्री से विनती की तो आपश्री ने आज्ञा की कि शय्या बड़ी बनवा लो।

एक दिन आपश्री ने पूछा कि गीता बाई तुम ठाकुरजी के अन्नकूट भोग धराती हो। मैंने कहा कि अन्नकूट भोग तो नहीं धराती हूँ। ठाकुरजी के उत्सव दिन पर सखड़ी भोग तथा अन्य दिन दूधघर तथा अनसखड़ी भोग धराती हूँ। तब आपश्री ने आज्ञा किया कि ठाकुर जी को सखड़ी को कोट जरूर होना चाहिये, जिसमें घी तथा जल की कटोरी जरूर रहे और पापड़, कांजी, बड़ा मिर्ची का साग, मिसरी का जल इत्यादि भी धराना चाहिये। आपश्री की आज्ञानुसार मैंने ठाकुरजी का अन्नकूट भोग धराने का विचार किया और अन्नकूट वाले दिन आपश्री को घर पधारने के लिये विनती की। आपश्री इतने परम कृपालु थे कि मेरी विनती सुन ली और घर पधारे तथा ठाकुरजी को भीभोग आपश्री ने धराया। आपने अपने मुखारविन्द से यह पद गाया –

भोग-शृंगार यशोदा मैया
श्री विठ्ठलनाथ के हाथ को भावे ।''

ठाकुरजी को भोग धराकर आपश्री थोड़ी देर घर पर विराजै । परिवार के सभीजनों ने आपश्री का केसर स्नान तथा चरण-स्पर्श करके आनन्द पान किया ।

घर में पुत्र का स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उदासी छायी हुई थी । जब हम से आपश्री ने उदासी का कारण पूछा, हमने कारण बताया, तब आपश्री ने कहा कि श्री मुकुन्दरायजी की झारीजी का जल तथा ठाकुरजी का प्रसादी डोरा लेती जाओ और लड़के को झारीजी का जल दे दो और प्रसादी डोरा उसको गले में पहना दो, सब ठीक हो जायेगा । मैंने घर जाकर लड़के को जल दिया तथा डोरा ग्रहण करा दिया । आपश्री के आशीर्वाद से पुत्र के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा ।

हमारा स्वास्थ्य बीच में बहुत खराब हो गया था, तब मैं नित्य आपश्री का चरण-स्पर्श करने नहीं जा पाती थी । काफ़ी दिनों के बाद जब आपश्री का चरण-स्पर्श करने मन्दिर गई तो आपश्री ने देखते ही तुरन्त पूछा कि क्या बात है तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है क्या ? मैंने हामी भरी तथा कहा कि डाक्टर ने खून जाँच तथा एक्सरे के लिये कहा है । तब आपश्री ने कहा कि झारीजी का जल तथा प्रसादी डोरा लेती जाओ, सब ठीक हो जायेगा । आपके आशीर्वाद से दोनों चीज ग्रहण करने के बाद स्वास्थ्य में सुधार होने लगा ।

गीतादेवी कोठारी

(१४)

मेरे पिता श्री स्व० जगमोहनदासजी मुकुटवाले जो कि ''छोटू बाबू'' के नाम से प्रसिद्ध थे । उन पर नि०ली०गो० श्री मुरलीधरजी महाराज की विशेष कृपा थी । एक बार उनकी कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव हमारे सम्पूर्ण परिवार वालों को हुआ । हमारे दादा जी श्री लल्लू जी मुकुटवाले के नाम से प्रसिद्ध थे । एक बार उनकी तबियत खराब हुई जो लगभग १५ दिनों में बहुत ही गम्भीर स्थिति में पहुँच गई । बनारस के सभी अच्छे डाक्टरों ने कहा कि अब उनके बचने की कोई गुंजाईश नहीं है । सभी ने कहा आखिरी समय है, जिसको जिसको मिलना मिलाना है मिला दो । हमारे दादाजी का विशेष प्रेम गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज श्री से था । घर में सबकी इच्छा हुई की आखिरी समय है पू० महाराजश्री का आशीर्वाद प्राप्त कर लें । पू० महाराजश्री के आगे विनती हमारे पिताश्री ने किया- ''कृपानाथ घर पधारना है, पिताश्री की इच्छा आपके दर्शन की है ।'' कृपानाथ राजी हुए, घर पधरई हुई । पू० महाराजश्री का श्रीहस्त हमारे दादाजी के मस्तक पर पड़ते ही, उनके प्रत्यक्ष प्रताप का अनुभव वहाँ उपस्थित डॉक्टरों को पहले हुआ जो कि पू० दादाजी की नाड़ी बराबर चेक कर रहे थे । एकाएक डॉक्टरों ने कहा की ये क्या हुआ ''इनकी नाड़ी तो अब ठीक चलने लगी ।'' डॉक्टरों ने कहा कि लगता है कि अब इनकी तबियत ठीक होजायेगी । बस कृपानाथ पधार कर मन्दिर आ गये । बस कृपानाथ का पधारना और मेरे दादाजी के तबियत में इतना सुधार हुआ कि अगले १५ दिनों में वह चार मंजिल सीढ़ी चढ़कर छत पर जाने लगे । ऐसा प्रताप था अपने पू० महाराजश्री की कृपा का ।

राजेश अग्रवाल मुकुटवाला
पुत्र स्व० श्री जगमोहनदास मुकुटवाला

(१५)

एक समय हमलोग दर्शन करके पूज्य महाराजश्री के चरणस्पर्श करने गये तो उन्होंने श्री मुख से आज्ञा करी कि रोज-रोज चरणस्पर्श करने क्यों आ जाती हो। कुछ सेवा किया करो तो हमने आपसे पूछा कि जो आप आज्ञा करें वहीहम सेवा करें तो महाराजश्री ने आज्ञा किए कि अपना हाथ पवित्र करो। इतने में पीछे जो श्यामाबेन रहती हैं उन्होंने हमको इतनी चीनी और दूसरी सामग्री बताई सो हम सब ले आये और शाम को ऊपर खवास कोठे में हम अपरस में नहाकर गये तो श्यामाबेन के साथ मिलकर हमने सामग्री बनवाई और फिर पूज्य महाराजश्री को अरोगाया तो पहले श्यामाबेन ने हमसे कहा कि तुम अरोगाने मत आना हम ले जायेंगे लेकिन हमारा मन नहीं माना और हम भी वहां पर पहुँच गये और आपश्री ने प्रेम से अरोगा। सो हमको बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। जो पूज्य महाराजश्री की हमलोगों के ऊपर बहुत कृपा थी ऐसी ही कृपा हमेशा बनी रही।

भगवानपुर वाली,
केशर बेन

(१६)

श्री १०८ श्री महाराजश्री के चरणों में दासी वसन्ती का दण्डवत् स्वीकार करियेगा। हमारी केसर बहन महाराजश्री को पवित्रा धराइन तो महाराजश्री कहिन कि वासन्ती का भी पवित्रा धराओ। उस समय हम बाहर थे। इतना दया करत रहे। आपश्री श्री मुकुन्दलालजी की छवि दिये रहे। एक रोज सपने में देखा कि आप आरती कर रहेहैं। घुम-घुम के मेरी तरफ देख रहे हैं। एक रोज देखा कि मन्दिर में मुकुन्दलालजी की आरती कर रहे हैं, हम बगल में खड़े हैं आप कह रहे हैं कि कीर्तन गावो।

महाराज श्री की दया से आज ११ साल बराबर गोपाल मन्दिर में रहते हो गया। महाराजश्री की बेटीजी को मालूम हुआ कि हमलोग उनके सेवक हैं। बेटीजी दया करीन कहीन कि तुम लोग महाराजश्री के सेवक हो। मुकुन्द लालजी उनके हैं तुम लोग यहाँ रहकर सेवा करो। बेटीजी हर प्रकार का सुख सुविधा दिहीन और उसी तरह हमेशा दे रही हैं। सेवा खासा कृष्ण भण्डार का दिहीन।

वसन्तीदेवी अग्रवाल
भगवानपुरवाली

(१७)

श्री १०८ महाराजश्री के चरणारविन्द में आपके सेवक नन्दकिशोर का साष्टांग दण्डवत् स्वीकार हो। आपकी कृपा का ही फल है कि आज मुझे आपके आशीर्वचनों को याद करने का और उनका संस्मरण लिखने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है।

एक बार का संस्मरण यह है कि महाराजश्री ने कहा कि तुम इंगलिश पढ़ाते हो तो ठीक है, इसके साथ यह भी ध्यान रखना कि तुम आगे जाकर श्री ठाकुरजी के सेवा में समय लगाना और कुछ ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद करके अपनी सेवा स्पष्ट करना। आज उन्हीं की कृपा है कि मैं अंग्रेजी विभाग में प्रोफेसर के पद पर हूँ। और मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं रिटायरमेन्ट के बाद कुछ अनुवाद का काम करूँगा ताकि श्री वल्लभ सम्प्रदाय के कुछ अमूल्य निधि लोगों को अंग्रेजी में भी प्राप्त हो सके। यह काम भी केवल उन्हीं की कृपा से

होगा। ऐसी ही उनकी दया हमलोगों पर थी, वह आपश्री की इस समय के श्री श्री १०८ महाराजश्री के माध्यम से प्राप्त हो रही है।

आपका सेवक,

नन्दकिशोरलाल
प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग,
कला संकाय, का०हि०वि०वि०

(१८)

श्री गुरू चरणों में सादर समर्पित मैं विलास गुरूजी के विषय में दो शब्द लिखने जा रही हूँ।

एक तो मेरी अल्पबुद्धि दूसरे स्त्री, तीसरे साठ के बाद की उम्र उसमें अनेक त्रुटियां हो सकती हैं, परन्तु वैष्णव हृदय बहुत विशाल होता हैअतः पाठक भक्त हमें माफ करने का बड़ा मन रखें। अस्तु श्री मुरलीधर महाराज के विषय में कहना तो सूर्य के सामने दिया दिखाने के समान है। उनके दर्शन मात्र से ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी सब समस्यायें दूर हो गई। एक चमत्कारी प्रतिभा उनके श्रीमुख पर थी। एक दिन की बात है, रात का आठ बजे का समय था। संध्या आरती के बाद जय तुलसी क्यारी के पास पधारे थे। दस-बीस वैष्णव जो उनके वचनामृत के रसिक थे, खड़े थे। इतने में एक वैष्णव आया जो वल्लभ कुल की रीत से अनभिज्ञ था। उसने महाराज को आते ही बराबर जय श्री कृष्ण कहा। बाकी खड़े वैष्णववृन्द उसके ऊपर नाराज होने लगे लेकिन जय ने सब वैष्णवों को शान्त करते हुए कहा- हमको उसके ऊपर नाराज नहीं होना चाहिये, उसके भाग्योदय का समय आ गया है। उसको ऐसी प्रेरणा हुई की हम इस पवित्र मन्दिर में प्रवेश करें और जैसे की वैष्णव में जय श्री कृष्ण की प्रणाली के अनुसार जय श्री कृष्ण करें। लेकिन उसको यह बात मालूम नहीं है कि जय माने कि वल्लभ कुल महाप्रभुजी का अवतार है इसलिये हमको गम्भीर बनकर मारग की रीति बतानी चाहिये। अगर हम उसके ऊपर नाराज होंगे तो उसको हमारे मार्ग को समझने का अवसर नहीं मिलेगा और उसकी श्रद्धा नहीं बढ़ेगी। फिर जय ने उसको मारग की प्रणाली बताई। उस दिन से हमारे मन में उनके प्रति अपार श्रद्धा हो गई। धन्य है हमलोग जो कि उनकी छाया में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो टूटे-फूटे शब्दों में श्री मुकुन्दरायजी ने हमसे लिखवाया। सादर सेवा में समर्पित,

विलासवतीबेन राणाशाह

(१९)

एक बार हमारे यहाँ मेहमान आये तो उनको लेकर हम दर्शन करने आये थे तो यहाँ पर दर्शन बन्द हो गये और टेरा आ गया था फिर हमने जै-जै किया तो खुद श्री महाराजश्री ने टेरा खोलकर हमको दर्शन करवाये और पूछने लगे कि कौन है, कहाँ से आये होतो हमने अपना परिचय दिया। हमको बहुत ही पश्चाताप हो रहा था कि दर्शन आज मंगला के हमको नहीं मिलेंगे, बहुत अन्दर से ताप हो रहा था। इतना होते हीतुरन्त महाराजश्री ने टेरा खोलकर दर्शन करवाये तो मन एकदम गदगद हो गया और अपने महाराजश्री ने आज्ञा करी कि यदि प्रभु में लगनी सच्ची दिल से होती है तो ठाकुरजी अवश्य दर्शन देते हैं इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

पुष्पाबेन

(२०)

श्री १०८ श्री महाराजश्री के चरणकमलों में साष्टांग दण्डवत् स्वीकार हो। आपकी ही कृपा का फल है कि मुझे आपके कुछ संस्मरण याद पड़ रहे हैं। दर्शन चरणस्पर्श करने रोज आते रहे तो महाराज कहीन की कुछ सेवा करो तो हम कहे की जै की जो आज्ञा हो सो हम करें। तो जै हमको सतुआ की सेवा दिये सो हम सेवा करने लगे उन्हीं की कृपा से तीस वर्ष तक प्रभुसेवा करवाये। जै कहे थे कि जब तक सेवा हो सके करना।

बृजकिशोर अग्रवाल
भगवानपुर

(२१)

श्री १०८ श्री महाराजश्री के चरणकमलों में अंजना दासी का साष्टांग दण्डवत् स्वीकार हो। जै से ब्रह्मसम्बन्ध लेने के लिए कहा तो राधा अष्टमी को दोनों लोग के साथ में दिये और कहे कि जैसे सांसारिक शादी में शहनाई बजती है। देखो, श्री मुकुन्दलालजी से सम्बन्ध करने में शहनाई बज रही है और बहुत खुश हुए। एक बार अपने लड़के को लेकर चरणस्पर्श करने आए जै लड़के को अपने गोदी में लेकर कहे अभी तक किसी के लड़के को गोदी में नहीं लिये, आज तुम्हारे बच्चे को गोदी में ले लिया और खवास से कहे कि दूध की पुड़ी ले आओ और अपने हाथ से प्रदान की। जब भी जाओ तो जै कुछ न कुछ वचनामृत करते रहे– उनकी कृपा से आज भी मन लगा रहता है ठाकुर जी और गुरू में।

दासी अंजना टकसाली (अग्रवाल)

(२२)

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरूर्देवो महेश्वरः।
गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अमावस की रात थी। वे मृत्यु से जूझ रहे थे। ''बड़ी विपत्ती में--छोड़ के-- जा रहा हूँ।'' बड़ी मुश्किल से वह ये बात कह पाये थे। निराशा झलक रही थी।

''छोड़िये न, ऐसा क्यूँ कह रहे हैं भगवान् पर भरोसा रखिये--- ।'' मैंने ढाढस देने का प्रयास किया।

हाथ में एक चिट्ठी लिए संकोच में सिमटी हुई जमाने से निराश हो आशा की किरण लिए वह श्रीगुरू के सम्मुख खड़ी थी। गुरूजी के पास बड़े-बड़े लोग बैठे हैं। यहाँ हम गरीबों को तो बड़ी हिचक होती है जाने में। सो गुरूदेव ने उनकी मनःस्थिति शायद जान ली थी। एक बार तो उन्होंने हाथ से जाने का इशारा कर दिया। कलेजा धक् कर दिया मगर दूसरे ही पल जब वे पुनः पास आने का इशारा किये तो आशा बढ़ी। हाथ में पत्र आगे किये वो आगे बढ़ी तो वहाँ उपस्थित सज्जनों में से किसी ने इस पत्र की ओर गुरूजी का ध्यान आकृष्ट किया तो गुरूदेव ने पत्र पढ़ने का उन्हें इशारा किया। पत्र इस प्रकार था– ''गुरूजी आपके श्रीचरणों में मेरा शत्-शत् नमन। मैं इस समय जीवन मृत्यु से संघर्ष कर रहा हूँ। बड़े विपत्ती में पड़ा हूँ आप मेरी रक्षा करे।''

गुरूजी न मालूम क्या सोचने लगे मगर अगले ही पल उन्होंने बड़े धीरे से कहा–''जा--जा--कुछ नहीं होगा, वह नहीं मरेगा।'' उन्होंने प्रभु का बीड़ा (सुपारी प्रसाद) दिया और कहा इसे उनके मुँह में दे देना। बस क्या था उन्हें जैसे एक बल मिल गया। वही बात वे याद करा रही थी। बार-बार कह रही थी–'' धीरज रखिये,

प्रभु पर विश्वास रखिये, कुछ नहीं होगा आपको--- ।'' कहते-कहते उनके भी आँख से आँसू लुढ़क गये, मगर अपनी वेदना पति के सम्मुख दबा लेने में समर्थ रही । मगर धैर्य का सम्बल थोड़ा बढ़ता रहता तभी ज्योतिषाचार्य श्री बापटजी महाराज की भविष्यवाणी का चक्रवात धैर्य को बहा ले जाता था । ख्याल आ जाता था उनका निर्णय- ''अरे! उनके ऊपर तो मारकेश है, देखो अगर अमावस्या बीत जाती है तभी हम कुछ बता पायेंगे'' । और फिर वो उनके पास से हटती हुई बाहर आती है तभी वो अन्दर की बात सुन लेती है बापटजी किसी से कह रहे होते हैं- ''क्या बताएंगे इसको अमावस बाद जब पति जिन्दा रहेगा तब न यह मेरे पास आयेगी-----।'' ये अन्तिम वाक्य मस्तिष्क पर हथौड़ा मार रहा था । दिल धाड़-धाड़ कर रहा था । बस एक टक अपलक वो अपने पति का चेहरा निहार रही थी । तभी मानो वो फफक कर रो पड़ती जब पतिदेव की आँख धीरे-धीरे निमीलित होती गयी मुँह खुल गया, दोनों हाथ दोनों तरफ फैल गये पैर एकदम सीधा, बदन सिर्फ हड्डी का ढांचा मात्र रह गया था । मगर कुछ सन्तोष हुआ ये देखकर की सांस चल रही है । निरन्तर भगवान् का स्मरण किये जा रही थी और रह-रहकर उधर ही देखती जिधर पतिदेव निर्विघ्न हुए सो रहे थे । एक, दो, तीन-चार-पाँच और इसी तरह छः बजा फिर क्या था आज बापटजी महाराज की भविष्यवाणी झूठ साबित हो रही थी और तभी पतिदेव की आँख खूली । छत की तरफ वे एक टक देख रहे थे लेकिन उन्हें शायद यह सच नहीं लग रहा था । हूँ- उन्होंने खाट छूआ, दीवाल की तरफ देखा- वही दीवाल-वही कैलेण्डर , कैलेण्डर में छपी हुई गोपालजी की मुस्कराती हुई छवि जैसे वो कह रहे हों-देखा न मेरा कमाल- हूँ ऽऽऽ-- बड़े करामती हैं हम । तभी सामने पत्नी का मुँख दीखा ''कैसे हैं आप ?'' पत्नी ने सहजता से पूछा । वे उत्तर पत्नी के चेहरे पर ढूँढ लिए। सुहाग चिह्न माथे पर जगमगा रहा था । उन्होंने मन ही मन गुरूदेव को नमस्कार किया ।

''ठीक हैं न--'' पत्नी ने पुनः प्रश्न किया । ''हम बच गये-- ।'' आँख में एक विशेष प्रकार की चमक थी । मगर प्रेमाश्रु में आँख डबडबा गयी, हृदय पुलकित हो गया । आज मौत टल गयी थी ये गुरूदेव के आशीर्वाद का चमत्कार था ।

नौ-दस बजे के लगभग जब पत्नी बापटजी से मिलने गयी तो वे इनको देखते ही हतप्रभ होगये । ''ये कैसे सम्भव हुआ ?'' बापटजी मन ही मन बुदबुदाये और उन्होंने कहा ''जब वो कल बच गया तो अब कुछ नहीं होगा मगर इस शनि के सुबह सात बजे तक वाराणसी छोड़ दो । उन्हें शनि तक वाराणसी छोड़ देना पड़ा । और यूँ ही समय बीतता गया और इसी क्रम में एक दिन रात्रि में सोने के उपरांत गुरूदेव ने वाराणसी की ओर इशारा किया । स्वप्न में आदेश पाकर वे पुनः वाराणसी आकर रह रहे हैं और नित्य गोपाल मन्दिर में सेवारत हैं । सायं नित्य वह उत्थापन के दर्शन पर्यन्त श्रीमद्भागवत का वाचन करते हैं ।

पति- राधेकृष्ण शर्मा
पत्नी- सावित्री देवी

(२३)

हमारे जै अन्तर्यामी थे

मन्दिर आने पर ज्ञात हुआ कि दर्शन अभी-अभी बन्द हुआ है । इतने में हमने देखा कि मेरी पू० सासूजी फूलघर की सेवाकर सीढ़ी उतर रही थी । मुझसे कहा- बबूआजी तुम्हें दर्शन मिला नहीं- तुम ऊपर जाकर जै

का चरणस्पर्श ले लो। इसके पहले मुझे जै के पास जाने का अवसर नहीं मिला था। परन्तु प्रेरणावश उनके कमरे में गया व दरवाजे पर खड़ा हो गया। कुछ क्षण पश्चात् जै ने कहा क्यों तुम चमेली कुँअर (मेरी दादी जो फूलघर सेवा की प्रधान थी) के पोते हो। मैंने तुरन्त कहा– हाँ जै। फिर कुछ समय पश्चात् आपने मुझे अपना चरणस्पर्श करने की आज्ञा किया तथा बीड़ा दिया। उसी दिन रात को आप अस्वस्थ होने की वजह से अस्पताल गये व लीला–धाम पधार गये।

माधव भईया बगीचेवाले

(२४)

महाराजश्री का दर्शन मुझे नित्य होता था परन्तु सौभाग्य बस एक दिन चरणकमल को स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चरणस्पर्श करते समय मेरे हृदय में ऐसी अद्‌भुत अनुभूति हुई थी कि मैं मुख से वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

चन्द्रकान्ता गुप्ता

(२५)

नि०ली० श्री मुरलीधर महाराजश्री जी का व्यवहार इतना अच्छा था कि सभी बच्चों से प्यार करते थे। कोई भी उनके पास जाता था उसीसे बात करते थे। जिस समय उनके पास जाते थे उस समय हम छोटे थे। सभी को कण्ठी लिया देखकर हमें भी लेने की इच्छा हुई। तब महाराजश्री के पास चरणस्पर्श करने जाते थे। उसी समय उनसे बोले कि जै हमें कण्ठी लेने की इच्छा है तो बोले शादी के पहले कण्ठी नहीं देंगे। जैनी घर शादी हो जाने से कण्ठी को तोड़ना पड़ता है तो फिर हमकुछ नहीं बोले और मन में लालसा बनी रही। उसके चार पाँच दिन बाद गए तो बोले कि मेरा नाम राधा है तो उसी समय तुरन्त बोलते हैं कि तुम राधा हो तब तो कण्ठी जल्द ले लो और जै अपने हाथों से कण्ठी दिए और मन्त्र बोले। यमुनाजी का पाठ और मधुराष्टकम् दोनों पाठ रोज करने के लिए बोले और मुख से मधुराष्टकम् गाकर सुनाए और उसका अर्थ बताए। जो आज भी उनकी बात सोचकर याद आती है और उनकी मुखारविन्द से निकली बात आज तक पूरा करते हैं और करते रहेंगे। ऐसे हमारे साथ बातें बहुत होती थी पर इतना लिखकर यहीं पर समाप्त करती हूँ।

सभी वैष्णव को जै श्री कृष्ण,

राधा अग्रवाल

(२६)

जीवन में मैंने नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज श्री के एक ही बार काशीजी में दर्शन पाए। मुझे उनके दर्शन श्री मुकुन्दरायजी के मन्दिर में हुए थे। उस समय उन्होंने मुझसे पूछा– "तुम्हारे जबलपुर में गोपाललालजी महाराज की सेवा कैसी चल रही है।" मैंने उन्हें बताया कि महाराजश्री, मुखिया लोग बहुत अच्छी सेवा कर रहे हैं। वे बोले कि देखो जब तक तुम घर वाले श्री ठाकुरजी की सेवा करोगे। तभी तक श्री गोपाललालजी वहाँ विराजेंगे। वरना वे वहाँ से चले जाऐंगे।" इतना कहकर वे अन्दर सेवा में पधार गए।

(महाराजश्री और मेरे बीच की) यह चर्चा स्मरणरूप में आपको प्रेषित कर रहा हूँ।

बालकृष्णदास मालपाणी।
जबलपुर

(२७)

जब मैंने महाराजश्री से कण्ठी लिया था। दादी ने दिलाया था, पवित्रा द्वादशी पर उस समय एक वर्ष का भी न था। पर जो बीजाक्षरमंत्र मेरे कान में पड़े वही मेरा आधार है।

मुझे बहुत अच्छी तरह से स्मरण है कि जब मैं ४ वर्ष का था। दादी मुझे लेकर मन्दिर गयी थी। उस समय आपश्री दरवाजे के जाली में समस्त वैष्णव को चरणस्पर्श दे रहे थे। दादी ने भी किये और मुझे हाथ में ५ पैसे थमा कर जयराज के चरणस्पर्श कराये, ये मेरा प्रथम चरण-स्पर्श था। मैंने सिर्फ जय के अंगूठे का ही स्पर्श किया था। जयराज ने दादी से कहा कि जमुनाबाई ये कौन छे, तो दादी ने उत्तर दिया कि जय-जय मेरा पोता है तब जय ने आज्ञा की अच्छो, बड़ा सात्विक दीखे छे। इस बात की भावनाएं आज बहुत है पर वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

कुछ वर्षों पश्चात् मैं ७-८ वर्ष का था। आपश्री के दर्शन अन्नकूट पर हुए। आप गोवर्धनपूजा कर कुनवाड़ा भोग रखकर सीढ़ी पर विराजे हुए थे और मैं जंगले के पास खड़ा होकर दर्शन कर रहा था। तब जयराज की दृष्टि मुझपर गयी और आज्ञा कर पूछा कि कि तू छोरो है कि छोरी फिर कहा यानि चड्डी पहन रखी है तो छोरो होयगो इतना कहने के बाद नाम पूछा (नाम मेरा अक्षय है।) नाम सुनकर प्रसन्न हुए। इतने में एक साँड़ चिल्ला उठा तो जय श्री ने कहा कि छोरो देख साँड़ कितने प्रेम से दर्शन कर रहा है। यानि वो जीव मात्र को प्रभु से मिलाने वाले ऐसे आचार्य शिरोमणि के श्री चरणकमलों में कोटि-कोटि दण्डवत्।

आपश्री की स्मृति ने मुझे व्याकुल सा कर दिया है और मुझे आपश्री का स्मरण और अधिक हो रहा है। आपके समय सेवा दर्शन का बन्धन न था न दिन न रात बस मेरे ठाकुर के कैसे लाड़ लड़ाये जाये यही आपकी मुख्य व प्रधान विशेषता थी। अगर कभी कोई वैष्णव विनती करते कि जय प्रभुदर्शन का समय निश्चित करें तो जय का उत्तर होता था तुमसे न देखा जाता हो तो मत आओ मन्दिर। ध्वजाजी का दर्शन करो और चले जाओ, मारा ठाकुर जी छे। मैं प्रभु को जगाऊँ या सोया रहने दूँ तुमसे क्या, थोड़ा कठोर भी थे इस सम्बन्ध में फिर आज्ञा करते कि मारे बस में कुछ नहीं छे ये श्री मुकुन्दरायजी की बाललीला है सो बाललीला का कोई समय नहीं होता न जाने बालक कब कौन सी हठ कर बैठे। इस प्रकार प्रभुसुख के आगे आपने समस्त न्यौछावर कर दिया। प्रभु को सुख किस प्रकार प्राप्त हो, श्रम न होवे यही ध्यान था आपश्री का ॥ इस प्रकार ममता भरे वचनों से वैष्णवों को सन्तुष्ट किया करते। उस दिन भी कुछ ऐसा ही था उस दिवस सन्ध्या आरती के दर्शन करने लगा। उस दिन वहाँ पर दो चार वैष्णवों के अलावा कोई और न था तथा प्रभु की छवि ऐसी थी कि मुझे तो संसार की सुधि न रही। मैं एक-एक शृंगार का दर्शन बड़े ही ध्यान से कर रहा था। मुझे प्रभु के दर्शन बड़े ही विलक्षण से हुए या ऐसे दर्शन प्राप्त हुए क्यों मुझे पता नहीं पर वो परमकृपा का दिन था। आपश्री ने आरती पीछे मुझपर दृष्टिपात किया और वार्ता की। आपश्री ने बहुत बड़ी विशेषता रही है कि वो स्वयं छेड़ कर दिव्य जानकारी वैष्णवों की करते थे तथा वही मेरे साथ भी किया। आपने नाम पूछा, पिताजी का नाम, किस खानदान से हो पर मैं घबड़ाहट के कारण कुछ न कह सका। एक तो छोटा सा बालक उसपर बुद्धिहीन, अज्ञानी और किसी गुरूश्री का प्रथम इस प्रकार स्वयं वार्ता करना मैं एकदम घबड़ा गया। पर यह क्या कम था मेरे लिए कि जय की दृष्टि मुझपर पड़ी और मैं धन्य होगया कृतज्ञ हूँ प्रभु का कि गुरू द्वारा मुझे परमकृपा पात्र बनाया या समझा नहीं तो मैं इस योग्य कहाँ कि मैं कुछ समझ सकूँ। मेरी शक्ति इतनी नहीं कि कृपा को सहेज सकूँ। घर आकर मैंने माँ को सब बताया तो माँ ने कहा कि तुझे कहना चाहिये था कि मैं अंधेरी कोठी वाले की ललिता

बहू की पोती का पुत्र हूँ तो आपश्री जान जाते क्योंकि मेरी नानी का खानदान प्रसिद्ध है अतः महाराजश्री जानते हैं और एक कारण ये भी है कि नानी के घर सेवा विराजती है तथा श्रीबालकृष्ण प्रभु विराजते हैं। एवं श्री मुकुन्दरायजी की अधिकांश सेवा पहले होती थी पर अब नहीं। लेकिन छड़ी की सेवा आज भी है पर जब ये बात लिख रहा हूँ तो ये भी सेवा बन्द हो गयी है। इसका कारण जो सेवा करती थी वो भी दो वर्ष पहले प्रभुधाम पधार गयी अतः अन्तिम सेवा जो होती थी वो भी समाप्त हो गई है प्रभु इच्छा।

मेरी माँ की एक चचेरी दादी जो किन्हीं कारणों से नेत्रविहीन हो गई थी। उनकी इच्छानुसार मैं उनको लेकर महाराजश्री के दर्शन व चरणस्पर्श को गया। सही अर्थो में वहीं से मेरा जय के साथ सम्बन्ध हुआ। दादी नानी ने चरणस्पर्श किये तब जयश्री ने उनका कुशलक्षेम पूछा तथा वार्ता की तब मुझे देखकर मेरा परिचय पूछा, परिचय प्राप्त होने पर मैंने भी चरण स्पर्श किये तब जय ने आशीर्वाद के रूप में अपने श्री हस्तकमल से बीड़ा दिया। ये श्रीगुरू के श्रीहस्त से प्रथमबार प्रसाद मिला वो दिन मैं भूल नहीं सकता। पश्चात् रथयात्रा के दिन चरणस्पर्श व दण्डवत हुए, आपने उस दिन भी परिचय प्राप्त किया तथा बीड़ा दिया। जयराज के साथ जो अल्प समय मुझे मिला ये मेरी धरोहर है। रथयात्रा पीछे एक दो बार और चरणस्पर्श हुआ तब तक आप मुझे बहुत अच्छी तरह से जान गये थे कि मैं कौन हूँ जब मैं आपश्री यहाँ जाता तब आपश्री प्रसन्न हो जाते थे ऐसा मुझे अनुभव होता था। आपश्री का अन्तिम दर्शन उसी आषाढ़ मास की व्यासपूर्णिमा को हुआ था तत्पश्चात् आप अस्वस्थ हुए और भाद्रपद वदी ११ के दिन लीला में पधारे।

अक्षय

(२८)

परमानन्दचिन्मूर्तिमधुरो मुरलीधरः
आविवेश स्वभक्तानां हृदयान्यमलानि च ॥ (भा० मा० अ० ४)

श्री वल्लभ कुलभूषण आचार्य शिरोमणि श्री मुरलीधरलालजी महाराज के आर्शीवचन हम सब वैष्णवों के हृदय को आज भी तरंगित करते रहते हैं। उनका एक वचनामृत आज भी हमलोगों के हृदय में विद्यमान है। हम सब जब मन्दिर में आकर श्री मुकुन्दरायजी के दर्शन करने के लिये उपस्थित होते हैं तब आपश्री का वचनामृत जो श्री मुकुन्द प्रभु के विषय में प्रकट किया था जो कि श्री मुकुन्द प्रभु के किन अंगों के दर्शन करनो चाहिये तब आपने श्रीमुख से हम जैसे अज्ञानी जीवों को वचनामृत का दान करते हुए आदेशित किया था कि देखो भागवत जी के दशम स्कन्ध के ४५ वें अध्याय में श्रीशुकदेवजी ने १९ वें श्लोक में भागवत में जीवों के पोषण के लिये वर्णन किया है कि श्री मुकुन्द प्रभु के मुखारविन्द का दर्शन करना चाहिये।

आपश्री ने आज्ञा की कि श्री लालन के मुखारविन्द के दर्शन से वृद्ध शरीर भी युवा जैसा शक्ति सम्पन्न हो जाता है–

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः॥

इस श्लोक का सबसे बड़ा प्रमाण आपश्री स्वयं थे। आप अति वृद्ध होते हुए भी युवाओं जैसे भगवत् सेवा में अहर्निश तत्पर रहते। आपका स्वरूप "श्री भागवतगूढ़ार्थप्रकाशनपरायणः" था।

स० प्रो० ब्रजवल्लभ शास्त्री
जो० म० गोयनका संस्कृत विद्यालय, वाराणसी

(२९)

कृपानिधिः –

एक दिन एक परदेशी वैष्णव डोकरी श्री महाराजश्री के चरण–स्पर्श करके हाथ जोड़कर ''जय श्री कृष्ण करी उसके जाने के बाद आपश्री वचनामृत करे कि इस डोकरी को सत्संग का अभाव है फिर पास खड़े वैष्णव से पूछे कि ''जय श्री कृष्ण'' क्यों किया जाता है । वैष्णव ने विनती करी कृपानाथ जीव क्या जाने जब आप कृपा करके बतावें तो तब ही जीव जाने । तब आप वचनामृत करे कि दो भूले–भटके वैष्णव कहीं भी मिले तो वैष्णव देखकर मन प्रफुल्लित हो जाये –

चार मिले चौसठ खिले बीस रहे कर जोर।
हृदय से हृदय मिले तो पुलकित साठ करोड़ ॥

गुरू एवं ठाकुरजी से दण्डवत् करना चाहिये । जय श्री कृष्ण वैष्णव के आपस का व्यवहार है । आप ऐसे कृपानिधि स्वरूप थे ।

भक्तपरायणः –

एक समय आपश्री वचनामृत करे कि चरणस्पर्श क्यों किया जाता है । वैष्णव ने विनती करी कृपानाथ आप बतावे तो जीव जाने । आपने आज्ञा करी– चरणस्पर्श करते ही हमारे हृदय में जो भाव है वह तुम्हारे हृदय में स्थापित हो जाये । जैसे– प्लग खोसने से बिजली का प्रवाह प्रवाहित हो जाता है ।

एक समय आपने चरणस्पर्श का भाव दर्शाते हुए कहा कि गुरू गोविन्द का चरणस्पर्श क्यों किया जाता है। आप जीव पर भाव खोलते हुए बतलाते हैं कि चरणस्पर्श गुरू गोविन्द का करने के बाद उनका ध्यान हमेशा हृदय में धरे तो ठाकुरजी जीव के संग डोलते हैं फिर आपने कीर्तन करके सुनाया–

दरस करी परस करी, ध्यान हिय में धरे
सदा व्रजनाथ इन संग डोले ।

आप ऐसे भक्त परायण स्वरूप से विराज रहे थे ।

स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमः –

एक समय श्री मुकुन्दरायजी के चौक में एक बिल्ली अचेत पड़ी थी । मंगला का समय था । वैष्णव में चर्चा थी कि अब मंगला के दर्शन कैसे होवें । आपश्री को खबर गयी । आप तुरन्त नीचे पधारे । आपश्री ने सबको हटा दिया फिर हाथ में जल लेकर कुछ मन्त्र पढ़कर जल छींट दिया फिर बोले कितना सो रही है उठ । बस बिल्ली उठकर चली गई ।

वाक्सीधुपूरिताशेषसेवकः –

एक समय आप सहज ही विराज रहे थे सहसा आपने आज्ञा किया–

मिलव को लाखो मिले, मन को मिले न एक ।
जो मन को एकहूँ मिले, लाख बराबर होय ॥

आपने भाव प्रकाश करते हुए कहा कि यदि एक भी जीव अपने मन का मिल जाय तो लाख जीव भी उसकी तुलना नहीं कर सकते ।

इस प्रकार आप ''कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टदासदासीप्रियः'' इस स्वरूप से ही भूतल पर विराजते थे।

दासानुदासी आपकी एक सेविका

(३०)

हमारे यहाँ देवी की स्थापना नवरात्र में होती है। उसकी पूजा विशेष रूप से होती है। आपसे हमने विनती किया कि इससे कोई अन्याश्रय तो नहीं होगा ? आपने आज्ञा किया की श्री यमुनाजी के भाव से सब पूजा किया करो। जैसे एक पतिव्रता स्त्री अपने सम्बन्धी में जो भाव रखती है उसी भाव से सबकी सेवा करना चाहिये। एकनिष्ठा जीव के लिए अत्यन्त जरूरी है।

अपनी लड़की मीरा के विवाह के समय आपसे विनती की थी कि हस्तमिलाप के लिए आप पधारो। आपश्री ने अच्छा तो कहा फिर पुनः बोले तुमने चरणस्पर्श किया की नहीं। हमने हाँ कही। आपने फिर आज्ञा किया और करो और करो।

उसके बाद आपके दर्शन पुनः प्राप्त नहीं हुए और आप लीला को पधारे।

अन्नपूर्णा अरोड़ा
केशवदास मुकुन्दास अरोड़ा
कलकत्ता

(३१)

गुरू की कृपा भक्त पर :–

मेरे दादाजी गोलोकवासी श्री कृष्णजी अग्रवाल की आखिरी अवस्था चल रही थी। अस्वस्थता के कारण वह चलने-फिरने में असमर्थ थे। वह लकवाग्रस्त थे। गुरू तथा ठाकुर का स्मरण किया करते थे। गोलोकवास के कुछ समय पूर्व श्री चरण श्री १०८ मुरलीधरजी महाराज को पधरवाया। आप अपने जीवन में विशेष रूप से अन्तिम समय के लिए रखी हुई गुरू व प्रभु भेंट जो कि गुप्त थी, आपश्री के चरणों में भेंट किया। आपश्री अन्तिम समय में पधारकर आज्ञा किया कि भगवान् श्रीमन्मुकुन्द प्रभु का स्मरण करो। प्रभु कृपा करेंगे। आप परम दयालु हैं। जीवों को उन पर पूर्ण रूप से आश्रित रहना चाहिये, यही परम धर्म है। आपकी कृपाप्रसाद के द्वारा दादाजी कुछ समय बाद ही गोलोक पधार गये। आचार्य चरण की वाणी भगवत् वाणी थी।

महोदार इति नाम विराजते :–

पू० महाराजश्री के लीला प्रवेश के ठीक एक दिन पहले भाद्रपद वदी दशमी वि० सं० २०३९ के दिन रात्रि के करीब १० बजे बालाप्रसाद जी जो कि मन्दिर के समाधानी हैं, आपश्री के वास्ते कुछ सामग्री हेतु इस तुच्छ जीव के घर पर आये। आपश्री ने इस तुच्छ जीव पर अपनी विशेष अनुकम्पा प्रदान करने के लिये ही अपने प्रमेय बल से समाधानी जी को इस जीव के घर भेजा, नहीं तो आप सर्वसमर्थ थे।

समाधानी जी के साथ इस जीव को पुनः आपश्री के दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई। अतः हम अस्पताल पहुँचे वहाँ पर पू० महाराजश्री कुर्सी पर विराज रहे थे। आप अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में थे। प्रसन्नता के साथ आपने चरणस्पर्श की आज्ञा प्रदान की तथा श्री मुकुन्दरायजी का प्रसादी बीड़ा प्रसाद स्वरूप प्रदान किये जिसे कि हम

अपने जीवन में विस्मरण नहीं कर सकते। इस बीड़ा का अनुभव विस्मरणीय है।

जय श्री कृष्ण।

दासानुदास, बटुकनाथ अग्रवाल
पुत्र गोलोकवासी श्री विठ्ठलदासजी
श्रीमती बिठ्ठन देवी (बर्तन वाले)

(३२)

एक संस्मरण अच्छी तरह याद है। एक बहन ने आप श्री को दस पैसा मात्र चरण स्पर्श किया तो आपने कहा कि हम दस पैसा लायक नहीं हैं वो भी मुस्कराकर कहा, क्रोध नहीं आया। इसी से अनुभव होता है कि आप श्री क़ितने उदार मना थे। इसमें बोध मिलता है वह बहन आज भी है।

पू० महाराज श्री ने एक बार श्री गोकुल का दर्शन कराया था। मात्र एक झलक सावन सूदी १२ वि. स. २०३९ पवित्रा धराया आपश्री को तो आपने आज्ञा करी कि श्री महाप्रभुजी को धरावो सो दो बार पवित्रा धराया। आप अस्वस्थ थे, उपर आपश्री के कक्ष में धराया गया।

पुरुषोत्तमदास मनसुखदास शाह

(३३)

हमारे पूर्वज मनुदासजी को छडी की सेवा तथा झापट की सेवा मिली रही जिसका नामपत्र षष्ठपीठाधीश्वर श्री गिरिधरजी महाराज ने लिखकर दिया। हमारे पूर्वज बल्लभदास छड़ीदार तथा झापटीया की सेवा में थे सो श्यामा बेटीजी ने प्रसन्नता से श्री मकुन्दरायजी को पालने की डोरी बल्लभदास छड़ीदार को दी थी। हमारे काकाजी नरसिंहदासजी को मि० कुँआर सुदी ११ वि०सं० १९९२ को श्री मुरलीधरलालजी महाराज भरत-मिलाप में हाथी पर पधारे थे सो आपश्री ने नरसिंहदास को छाते की सेवा कृपा करके दिया।

सोनावाला के वंश पर कृपा करके षष्ठपीठाधीश्वर श्री मुरलीधरलालजी महाराज ने मि० कार्तिक सुदी १ को जब श्री मकुन्दरायजी गोवर्धन पूजा करके चौक में आकर बिराजे थे सो ४ परिक्रमा की आज्ञा वि०सं० २०३५ में दी थी। यह कृपा आपश्री के जीवन तक ही हमें मिली।

सन् १९५४ से ५७ ई० तक में केवल गोवर्धन पूजा की सेवा और किसी किसी उत्सव की सेवा करते रहे और आपश्री बराबर खवास रामऔतारजी से सेवा के लिये कहवाते रहे सो सन् १९५८ ई० से कुछ रुची हमारी बढ़ी।

सन् १९६० ई० में एक दिन हम गये तो भोग के दर्शन खुले थे और पुरुषोत्तमदासजी सेवा में नहीं थे आपश्री सन्ध्या करने जाली में बिराजे थे हम लपक कर छड़ी पगडी निकाल रहे थे सो आपश्री ने कहा कि ठाकुरदास कैसा गुड़ में चुटा लगा सो हमने कहा कि कृपानाथ यह तो आपश्री की महान्ता है कि ऐसे जीव की सेवा को अंगीकार किया।

सन् १९६५ ई० में हमें बुलाकर कहा कि कुछ दिनों के लिये तुम्हारे बगीचे में पधारेंगे सो तुम सब इन्तजाम करो सो आपश्री पधारकर काफी समय तक बिराजे रहे कोई भितरिया यहां से नहीं ले गये न तो कोई खवास् सो हमने गोपाल भइया को खवासी में दिया रहा और भी परिवार के लोग सेवा में रहते रहे हम रोज एक समय जाते आते रहे सो आपश्री ने हमें वह दिन अपने श्रीहस्त से परोसकर सामने बैठाकर जुठन का प्रसाद लेवाया

रहा। एकदिन आपश्री ने पूछा कि गोपाल को कितने छोरा है सो हमने कहा कि कृपानाथ दो कन्या ही है सो आपश्री ने आज्ञा दिया कि इसको गिरिराजजी भेजो सो हमने गोपालभइया को गिरिराजजी भेजा सो आपश्री के कृपा से एक बालक हुआ था उसका नाम आपश्री ने गिरधारीलाल रखा जब दूसरा लड़का हुआ तो आपश्री ने उसका नाम कृष्णबल्लभदास रक्खा था उसके बाद गोपाल भइया को एक कन्या और हुई थी सो आपश्री के कृपा का वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं है।

सन् १९६५ ई० में मकान नं. ३०/६३ में, सन् १९९० ई० में मकान नं. ३०/६४ में तथा सन् १९९२ ई० में मकान नं. ३०/४७ में आपश्री पधारकर ठाकुरजी को पंचामृत स्नान करवा कर व भितरीयों से सामग्री सिद्ध करवा कर भोग रख कर तपेली अरोगे। उन मनोरथों में अद्भुत आनन्द आया तथा देह का भान नहीं रहा था।

१८-८-६६ को श्री मकुन्दरायजी मन्दिर से श्रीनाथजी के लिये रवाना हुए थे सो साथ में ठाकुरदास परसोत्तमदास दोनों छड़ीदार गये रहे। वापसी में जतीपुरा में आकर बिराजे आपश्री ने आज्ञा किया कि तुम्हारे बगीचे में श्री मकुन्दरायजी पधारेंगे सो हमने छड़ीदार के हैसीयत से इस आज्ञा का बिरोध किया रहा सो आपश्री ने आज्ञा दिया कि यह तुम्हारा मनोरथ नहीं है तुम्हारे पूर्वजों का है और जैसी आज्ञा हमें मिली सो हम आपश्री के आज्ञानुसार आकर सब इन्तजाम किया रहा।

१५-११-६६ को वाराणसी बुलियन रिफाइनरी चालू करने को बैजनाथजी आगरा वाले कारणवश नहीं आये सो हमें आकाश पाताल दिखने लगा सो हमें एक शक्ति ने आदेश दिया। हमने सिकड़ी दुप्पट्टा माला आपश्री के चित्र को घराया सो हमें कुछ घन्टों के लिये ऐसी शक्ति आयी थी वह कभी नहीं आयी सो ऐसे हमने रिफाइनरी चालू किया था।

सन् १९३७ ई० में आपश्री की कृपा से रिफाइनरी मकान नं. ३०/४७ में चालू किया था लेकिनऔर रिफाइनरिया चालू हो जाने से घाटा समझ में आने लगा सो हम काफी चिन्तित थे सो एक दिन हमें सपने में आदेश हुआ कि रिफाइनरी में इस इस प्रकार से टेकनीक बदल दो सो हमने टेकनीक बदलकर चालू किया सो ऐसी कामीयाबी मिली जिसे हमने सोचा भी नहीं था।

१-११-८१ को इन्कम टैक्स रेड पड़ी थी सो आपश्री ने फोन से कहा कि ठाकुरदास, घबडाना मत। उसी दिन मन्दिर का ताला का झुप्पा न मिलने से शंखनाथ काफी देर से हुऐ रहे। रेड कई दिन चली रही सो आपश्री के कृपा से उन्हें कुछ भी गलत नहीं मिला।

सन् १९९२ ई० में हमने आकर विनती किया कि आपका लड़का बड़ा हो गया है सो आपश्री ने कहा कि कहीं लड़की देखी है सो हमने लड़की भेजी सो आपश्री ने कहा कि इससे हम अपने लड़के की शादी करेंगे? सो हमारे जिद पर आपश्री ने हमें बैठाकर १५-२० मिनट तक ध्यानावस्था में हो गये जब नेत्र खोला तो यह कहा कि हमारी एक बात मानो तभी हम आज्ञा देंगे कि बहु को रोज सेवा में नहलावो। एक दिन आपश्री ने कहा कि ठाकुरदास कभी कभी वल्लभकुल हस्तमिलाप में पधारते रहे सो हमने हस्तमिलाप में पधारने की बिनती किया सो, ना तथा हां में चल रही थी सो बरात लगाकर हम जाकर बैठ गये सो आपश्री ने कृपा करके हमारे साथ पधारकर हस्तमिलाप करवाया था। सो उनके वाणी का वर्णन करने की हमारी लेखनी में सामर्थ्य नहीं है।

आपश्री जब अस्पताल में रहे सो आपरेशन में खून की जरूरत थी सो हमारे परिवार के सभी लोगों के खून की जांच हुई थी और बहुत से वैष्णवों के खून की जांच हुई थी सो काफी लोगों का खून का ग्रुप मिला था

लेकिन आपश्री ने केवल हमारे परिवार के जमुनादास, जीवनदास तथा मधुसूदनदास का ही खून लेने की आज्ञा किया सो तीनों का खून ही आपश्री को दिया गया रहा।

आपश्री जब अस्पताल में थे सो जन्माष्टमी के दिन आज्ञा किया कि कमल की माला बड़ी वाली क्यों नहीं धराई गई सो मुखियाजी से पूछने पर उन्होंने कहा कि हमसे गलती हो गई है सो आपश्री को अस्पताल में भी श्री मुकुन्दरायजी के दर्शन होते रहे।

ठाकुरदास सोनावाला

(३४)

प्रातःस्मरणयी पूज्यपाद श्रद्धेय श्री गुरुदेवचरण का स्मरण होते ही एक सम्पूर्ण युग हृदय के सम्मुख साकार हो उठता है। वस्तुतः आपश्री का जीवन पुष्टिमार्ग के इतिहास में एक युग का प्रतीक है।

मेरे मऊ कोठी परिवार के ऊपर आपश्री की महती कृपा थी एवं मेरे पूर्वजों के समय से ही आपश्री का पूर्ण स्नेह हमलोगों को प्राप्त था। लगभग पाँच दशक पूर्व आपश्री गम्भीर उदर रोग से पीड़ित हो गये थे, उस समय आपश्री ने मेरे पितामह श्री बृजभूषणदासजी को मऊ से काशी बुलाया एवं अपने चिकित्सा तथा सम्पूर्ण देख-रेख का पूरा उत्तरदायित्व उन्हे दे दिया था, बिना उनकी अनुमति कोई भी वैष्णवजन आपश्री के पास नहीं जा सकते थे। उस समय अनेक लोगों की राय थी कि आपश्री की डाक्टरी चिकित्सा की जाय। डाक्टरी चिकित्सा में शल्य चिकित्सा आवश्यक थी, लेकिन उस समय आपरेशन की सफलता केवल पाँच प्रतिशत ही सम्भावित थी, इससे श्री बृजभूषणदासजी ने अपनी पूरी जिम्मेदारी से डाक्टरी इलाज से इनकार कर दिया एवं भारतीजी वैद्य का इलाज दृढ़तापूर्वक चलाते रहे। भगवत्कृपा से आपश्री उन्हीं की चिकित्सा से पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये।

मेरे पिताजी गो० वा० श्री मदनमोहनदासजी के ऊपर भी आपकी बड़ी कृपा थी एवं आपश्री प्रायः उनसे मन्दिर की व्यवस्था के सम्बन्ध में चर्चा किया करते थे। आपश्री के अन्तरंग सेवकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान था। पूज्य महाराजश्री के साथ उनका एक दुर्लभ चित्र पूजनीया छोटी जीजी श्री शरदवल्लभाबेटीजी के अत्यन्त छोटी अवस्था में उनके जन्मदिन के अवसर का इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है।

बाल्यकाल में जब भी मैं आपश्री के पास जाया करता था, आपश्री बड़े स्नेहपूर्वक अपने उपदेशों का सरस पान कराया करते थे। पूज्य पिताजी के गोलोकवास के पश्चात् जब भी मैं जाया करता था, तब आप मुझे मेरे पिताजी के ही नाम से बुलाया करते थे।

मेरी माताजी के ऊपर भी आपश्री की विशेष कृपा थी एवं उनको आपने अपने तपेली में एवं मन्दिर के दूधघर में भी स्नान करके सामग्री सिद्ध करने की आज्ञा प्रदान की थी। पूज्य पिताजी के निधन के पश्चात् मेरी माताजी बड़ी ही व्याकुल थी, कि अब सामग्री सिद्ध करने की सेवा कैसे करूंगी, तब आपने आज्ञा की थी कि मस्तक का बाल पूरी तरह से क्षीर कराकर सेवा का अवसर अवश्य मिलेगा। मेरी माताजी ने तत्काल क्षीर करा दिया था एवं पूर्ण जीवनकाल में जब तक वे सेवा कर सकी, उनको यह सेवा मिलती रही। पूज्य पिताजी के निधन के पश्चात् मेरी माताजी लगभग छः मास तक घर के बाहर नहीं निकलती थी। उस समय ऐसी ही परम्परा थी। निधन के लगभग एक माह पश्चात् एक दिन अकस्मात् श्री रामदासजी सतभइया वाले मेरे घर पर आये और बोले महाराजश्री यह निकट में एक वैष्णव के घर पर पधारे हैं और यहाँ पधारने की आज्ञा आपने किया है।

हमलोग एवं सम्पूर्ण परिवार निहाल हो उठा एवं तत्काल बैठक साफ कराके आपश्री के विराजने की व्यवस्था हुई। आपश्री पधारे तथा लगभग एक घंटे विराजे। आपश्री की यह महान् कृपा हमलोगों के हृदय पर आप तक अमिट रूप में अंकित है।

श्री मुकुन्दरायजी जब तिलकायित श्री गोविन्दलालजी कृत सात स्वरूपोत्सव एवं छप्पनभोग पर नाथद्वारा पधारे तो वहाँ से लौटकर जतीपुरा पधारे। लगभग ४-५ दिनों तक पधार कर जन्माष्टमी एवं नन्द महोत्सव वहीं पर किये। इसी बीच श्री गिरिराजजी के मुखारबिन्द पर प्रथम निधि श्री मथुराधीशजी के साथ पधारकर कुनवारा अरोगे। श्री मथुराधीशजी उस समय जतीपुरा में ही विराजते थे, आपश्री ने मुझे एकान्त में बुलाया और आज्ञा किया कि श्री मथुराधीशजी एवं श्री मुकुन्दरायजी के सम्मुख भोग रखने का अवसर फिर जीवन में कभी मिलेगा नहीं। तुम्हारी जो भी इच्छा हो दूधघर की सामग्री सिद्ध कराके मुखारबिन्द पर अपने हाथ से भोग रख सकते हो। और भी जो वैष्णव स्नेहपूर्वक यह सेवा करना चाहते हों उनको यह बता सकते हो। हमलोगों ने तत्काल दूधघर की सामग्री सिद्ध कराके श्री गिरिराजजी श्री मथुराधीशजी एवं श्री मुकुन्दरायजी के द्वारा कुनवारा अरोगने के मनोरथ में अपने हाथ से भोग रखने का सौभाग्य प्राप्त किया।

जतीपुरा में जब श्री मुकुन्दरायजी पधारे थे तो एक वैष्णव वृद्धा आपश्री के पास आयी और उन्होने विनती किया कि श्री मुकुन्दरायजी को मेरे मुकाम पर पधरावें तो मैं २५०००/- मुद्रायें भेंट करूंगी, आपश्री अपने भीतर कमरे में पधार गये और कहलवा दिया कि आज के बाद यह मनोरथ लेकर मेरे पास मत आना। आपश्री अपने स्वाभिमान एवं श्री मुकुन्दप्रभु की महत्ता के प्रति इतना सजग थे, यह घटना इस बात की छोटी सी उदाहरण है।

जतीपुरा से आपश्री श्री मुकुन्दरायजी के साथ जब काशी के लिये पधारे तब सारनाथ पर भी जतीपुरा जैसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। काशी के एक सम्भ्रान्त वैष्णव ने विनती किया कि श्री मुकुन्दरायजी को थोड़े से क्षणों के लिए हमारे बगीचे में पधराने की कृपा करें तो मैं पच्चीस सहस्र मुद्रायें भेंट करूंगा, इस पर महाराजश्री ने आज्ञा किया, लक्ष्मी जिनके भृकुटिविलास के संकेत की प्रतिक्षा करती रहती हैं, वे प्रभू अर्थ के हेतु कहीं नहीं पधारते, प्रभु तो जीव की दैन्यता को देखकर अपनी कृपावश ही पधारते हैं। आपने प्रभु को वहाँ पधराने से इन्कार कर दिया।

काशी से नाथद्वारा पधारते समय आपकी सुखपाल कुछ क्षणों के लिए गोलघर पर दुलहिनजी की कोठी में स्थित चबूतरे पर विराजी थी। उसके तत्काल पश्चात् ही एकाएक बनारसी साड़ी की बहुत बड़ी मंडी विकसित हुई जो वहाँ पर प्रभु के विराजने के परिणामस्वरूप ही बनी, ऐसा वैष्णवजनों को विश्वास है। यह घटना देखकर महाकवि सूरदासजी का पद स्मरण हो आता है कि –

तब तादिन ते वे लोग सुखसम्पत्ति न तजे।
सुनि सूर सबन की यह गति जे हरिचरण भजे ॥

एक समय मैंने गोवर्धनचौक के पूर्वद्वार से प्रवेश किया तो आपश्री सिंहपौर के पास जहाँ से श्री मुकुन्दरायजी का भोग सरता था, वहीं पर खड़े थे, दूर से देखते ही आपश्री ने आवाज दिया कि दौड़कर आओ, तुरन्त ही टेरा आये थे तो आपश्री ने मुखियाजी को आवाज देकर टेरा खोलकर दर्शन कराने की आज्ञा दिया। आपश्री की भक्तवत्सलता का यह एक अनुपम उदाहरण है।

यह घटना उस समय की है जब श्री गोपाललालजी एवं श्री मुकुन्दरायजी अलग-अलग चौक में विराजते

थे। श्री गोपाललालजी के चौक में सन्ध्या आरती के दर्शन खुले थे। उष्णकाल का समय था आपश्री ने ऊपर की छत से आवाज देकर मुझे ऊपर बुलाया और बगीचा के ओर वाली छत पर लिवा गये। लगभग दो घंटों तक आपश्री भगवल्लीला, सम्प्रदाय की प्रणाली एवं भोगराग इत्यादि के विषय में चर्चा करते रहे और मैं मुग्ध होकर उनकी चर्चाओं का आनन्द लेता रहा।

आपश्री अपनी चर्चाओं में यह बराबर आज्ञा करते थे कि श्री मुकुन्दगोपाल प्रभु का छप्पन भोग करेंगे, तब अपने हाथ से वैष्णवजनों को परोसेंगे। आपश्री की इस आज्ञा को सुनकर वार्ताओं का यह प्रकरण स्मरण हो आता था, श्री गुसाईंजी ने अमुक वैष्णव को अपने श्रीहस्त से पातल धरी। लगभग ४० वर्ष से आपश्री मऊ नहीं पधारे थे। आपश्री की हार्दिक अभिलाषा थी कि मऊ पधारे। हमलोग अक्सर मऊ पधारने के लिए विनती किया करते थे, तो आपश्री आज्ञा करते थे, कि इस प्रकार हम मऊ थोड़े ही पधारेंगे। तुमलोग पूरे परिवार सहित अनशन करो कि आपश्री नहीं पधारेंगे तो हमलोग अनशन नहीं तोड़ेगे, तभी हम मऊ पधारेंगे। वस्तुत: आपश्री एकाकी रहने के कारण इतना व्यस्त रहा करते थे कि पधारने का अवसर ही नहीं मिलता था। उपरोक्त आज्ञा तो केवल विरह का अनुभव कराने के लिए ही हुआ करती थी। काशी के एक वैष्णव ने अपने सेव्य स्वरूप को मथुरा श्री बड़े मदनमोहनजी की ग्वालमंडली में पधरा दिया था। जब यह बात आपश्री को मालूम हुई तो आप बड़े ही अप्रसन्न हुए एवं उक्त वैष्णव के परिवारजनों को बुलाकर आज्ञा किया कि श्री ठाकुरजी की सेवा भी परिवार का एक सदस्य समझकर करना चाहिए। आपश्री ने उदाहरण भी दिया कि अमुक वैष्णव ने अत्यन्त कठिन परिस्थितियों के होने पर भी श्री ठाकुरजी की सेवा में कोई लापरवाही नहीं किया, तो उनकी सारी प्रतिकूल परिस्थितियां भी अनुकूल हो गयीं।

चुनार में प्राय: श्री गुसाईंजी के उत्सव पर श्री दीक्षितजी महाराज बम्बई से चुनार पधारा करते थे। श्री मुरलीधरलालजी महाराज एवं श्री दीक्षितजी महाराज दर्शन खुलने पर स्वयं एकसाथ कीर्तन करने लगते थे। एक बार श्री गुसाईंजी के उत्सव पर ही श्री प्रथमेशजी (श्री रणछोड़लालजी महाराज) व जामनगर के श्री बृजभूषणलालजी महाराज भी चुनार पधारे थे तथा बैठकजी के भवन के पीछे के मैदान में जहाँ आज अतिथि भवन का निर्माण चल रहा है, उसी मैदान में भव्य पाण्डाल बना था। दोनों गोस्वामी बालकगण एवं श्री मुरलीधरलालजी महाराज भी मंच पर आसीन थे तथा कीर्तन प्रतियोगिता चल रही थी। प्रतियोगिता के अन्त में तीनों गोस्वामी बालकों ने बड़े ही सुमधुर स्वर में कीर्तन का गायन प्रारम्भ किया, अन्त में **''हो चरणाट पत्र की छैंया''** पद बड़े ही लालित्यपूर्ण स्वरों में गाया था। चुनार से तीनों गोस्वामी बालक काशी भी पधारे तथा श्री गोवर्धनचौक के प्रांगण में बड़ी ही सुन्दर भगवद्मंडली का आयोजन हुआ, तीनों स्वरूपों ने प्रवचनों के पश्चात् कीर्तन का गायन प्रारम्भ किया, अंत में कीर्तनियाँजी एवं वैष्णवजनों के द्वारा जब कीर्तन प्रारम्भ हुआ तो श्री प्रथमेशजी अपने को रोक नहीं पाये और मंच से उतरकर वैष्णवजनों के बीच विराज गये एवं कीतर्नों की संगत में इतना सुन्दर मृदंग वादन किया जो आज तक विस्मृत नहीं हो सका है।

आपश्री के चरित्र तो अनन्त एवं अगाध है, उनका संस्मरण होते ही, उनके चरित्रों, उपदेशों एवं आचरणों की एक अटूट शृंखला जो हृदय के अन्तरतम् में प्रवाहित होने लगती है उनका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है। श्रीनन्दनन्दन से प्रार्थना है कि उनके जीवनकाल का जो अद्भुत अनिर्वचनीय, अनुकरणीय आनन्द हमलोगों में अंकित हुआ था, वह सदैव बना रहे एवं उनकी उत्ताल तरंगों में हमलोगों का हृदय नित्य निरन्तर अवगाहन करता रहे।

राधेकृष्ण अग्रवाल (काजूबाबू)

(३५)

श्रीमद् निजाचार्य चरणौ शरणं प्रपद्ये, षष्ठ पीठाधीश्वर श्री १०८ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज काशीस्थ वाले की स्मृति में अन्तरंग निज सेवकों, वैष्णवों के लिए आपश्री की कृति गुणानुवाद है ।

१. आपश्री को सम्बोधन सर्वसेवक जन एवं वैष्णवजन, श्री गोसाईंजी ही करते थे । जो अमुक कार्य की आज्ञा श्री गुसाईंजी की है । अमुख बात गोसाईंजी से पूछ लो इत्यादि प्रसंग की चर्चा सर्वविदित है । आपश्री की अपरस, आचार, विचार, स्वपाकिता अति गहन एवं कड़ी थी ।

२. आपश्री की नित्य सेवा शृंगार साहित्य की जानकारी भी विलक्षणता से युक्त थी । आप दर्शन के समय निज सेवकों से पूछताछ भी करते रहते थे । क्या धराया, क्यों धराया, क्या होनी चाहिये, ये सभी लीला आपश्री की, सभी दर्शनार्थी की समझ से परे थी और अति उच्च भाव एवं माधुर्य से सराबोर थी । अपनी बालवत् लीला से सभी सेवकों को आश्चर्यचकित किया करते थे । आपश्री की गूढ़ भाव यह थी कि सुनकर, देखकर, सभी वैष्णवों को सेवा साहित्य की जानकारी प्राप्त होती रहे एवं प्रभु कृपा की वृष्टि हो जाये ।

३. आपश्री बराबर कहा करते थे कि मैं तो गोकुल का फकीर हूँ मुझे शीत, धूप, कष्ट, चिन्ता, मान-अपमान का क्या प्रभाव है यानि मैं सब सहन करने में समर्थ हूँ । मेरी चिन्ता तुम लोग कदापि न करो ।

४. आपश्री की बड़ी ही कृपा वैष्णवों पर थी जो गर्ग संहिताजी से श्री यमुना सहस्र नाम की जो पांच अध्यायों में है अलग संग्रह कर निज अंतरंग सेवकों से संशोधित कराकर अलग पुस्तिका सभी समस्त वैष्णवजन की रक्षार्थ छपाने का सत्संकल्प हुआ जो हुआ जो पूर्ण भी हुआ और आज असंख्य वैष्णव उस श्री यमुना सहस्र नाम से पाठ कर नित्य सुख-शान्ति की अनुभूति करते हैं ।

५. आपश्री की बड़ी ही उत्कट आकांक्षा थी कि कोई योग्य बालक ही मेरे समक्ष मेरा उत्तराधिकारी बनें और सेवा शृंगार साहित्य को बड़ी ही चौकसी से सम्भाल कर प्रभु को लाड़ लड़ावे, मैं देख लूँ । लेकिन भगवद् इच्छा विलक्षण ही होती है । श्री आचार्य प्रभु की आज्ञा नवरत्न ग्रन्थ में है **निजेच्छातः करिष्यति, तथैव तस्य लीलेति** इत्यादि वचन स्मरण करते हुए यहां एक प्रसंग आपश्री का बता रहा हूँ, जो सर्वविदित है । आपश्री की गद्दी पर विराजमान वर्त्तमान षष्ठपीठाधीश्वर श्रीश्याममनोहरजी महाराज को पूर्व में ही गोद लेने के संबंध में सन् १९८० ई० में पूज्यपाद श्री बृजभूषण लालजी महाराज (चोपासनी जामनगर) की बृज यात्रा निकली थी जिसमें मैं भी था । श्री राधेकृष्णजी अग्रवाल गोपाल मन्दिर के ट्रस्टी की माताजी को साथ यात्रा कराने एवं श्रीमद्भागवत पाठ नित्य श्रवण कराने के लिये मैं भी यात्रा में गया था । काम वन में यात्रा जब पहुँची तो उस दिन बड़ी आंधी, तूफान, वर्षा आयी सभी व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी । मार्ग में कीचड़ पानी था । लेकिन उसी दिन आपश्री रात्रि ११ बजे के आसपास पण्डाल में सेवकों के संग पधारे और पूज्यपाद बृजभूषण लालजी महाराज से सभी बालकों की जन्माक्षर के लिये आग्रह किये और मुझे जन्माक्षर लेकर काशी आने को कहे । मैंने तीन बाबा की जन्माक्षर लाकर आपश्री को दिये और महाराजश्री की जन्माक्षर से मिलायी गयी तो वर्तमान महाराजश्री की जन्माक्षर से ही पुत्रवत् मिली । जिससे आपको सन् १९८१ ई० में ही श्रावण मास में पत्र एवं बाद में टेलीग्राम दिया गया परन्तु हरि इच्छा प्रधान होती है जो सर्वविदित है । मुकुन्द प्रभु तो '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थः**' है जो पुष्टि सिद्धान्त का रहस्य है **पुष्टीस्ततद्अनुग्रहः** मुकुन्द गोपाल प्रभु की पूर्ण कृपा चौदहवें वर्ष में प्राप्त भयी ओर श्रीश्याममनोहरजी

महाराजश्री ने यह स्मारिका के माध्यम से पूज्यपाद श्री महाराजश्री की कृति, लीला गुणगान, ख्याति, सेवा एवं आचार-विचार की निष्ठा से पालन करने की प्रेरणा जन-जन में चिरकाल तक पहुँचती रहे यही सुअवसर निज सेवकों को प्राप्त कराकर परम कृपादान किये है। हम सभी सेवक आपके आजीवन आभारी रहेगें।

६. सन् १९८२ ई० के जुलाई की प्रसंग है महाराजश्री की व्यवहारिकता निज सेवकों को क्षण-क्षण भगवत् सेवा स्मरण कराने में दक्षता अकथनीय थी। आपश्री के पास जो भी सेवक जाते थे उन्हें यही ज्ञात होता था कि कृपानाथ मुझे ही कृपा दान कर हृदय से मानते हैं। इस लिये आज भी सेवकों के हृदय में आपश्री के प्रति अपार प्रेम एवं गुरुत्व भावना है। आपश्री सर्वदा सर्वकाल में स्पष्ट कहते थे कि अरे मुझसे नहीं डरो लेकिन ठाकुर से तो डरो, ठाकुरजी बोलते नहीं पर बोर देते हैं। इसलिये सुनो, समझो, डरो, सावधानी ही सेवा है, गलतियां ही पुनर्जन्म है। असमर्पित वस्तु ग्रहण करने की कोशिश न करो बहुत बड़ा अपराध होगा।

७. आपश्री श्री बेटीजी महाराज के संबंध में कहा करते थे कि आपके ललाट पर प्रकट होते ही बिन्दी स्पष्ट थी। बेटीजी महाराज का शुभ प्राकट्य शरद पूनो का है जिससे आपश्री बिन्दराजा कहा करते थे। कभी-कभी निज सेवकों से दोनों बेटीजी महाराज के लिये अग्नि कुमारिका गोपी से संबोधित मानते थे जो रास से बिछड़कर बल्लभकुल में प्रगटी हैं। रासलीला से शृंगार किये हुए ही बिन्दीसहित भूतल पर आयी इसलिये आप बड़ी प्रतापी, भक्तिरस की स्वाभिमानी और जुगलरूप की सेवा सानिध्य सम्पन्ना होगी। आपश्री कभी-कभी बड़ी गम्भीर मुद्रा में कहते थे कि बालकृष्ण, बेटीजी में तो अलौकिकता है। इसलिये लौकिकता से ये दूर ही रहेगी। एक बार पुरुषोत्तम मास में श्री बेटीजी महाराज द्वारा ८४ श्रीमद्भागवत्जी सामूहिक सप्ताह यज्ञ आयोजित थी। तो मैं भी उस पाठ में श्री बेटीजी महाराज की कृपा से आमन्त्रित था और पाठ में बैठा था जब पाठ करके मन्दिर में आते थे तो आपश्री ऊपर बुलाकर एक-एक वहाँ की विधि-विधान, पूजन, आचार्यों का सम्मान इत्यादि चर्चा पूछकर सुनकर बड़ी ही प्रेमाद्र भाव से प्रसन्न होकर अश्रुपूरित नेत्रों से मधुर स्वर से बोल पड़ते थे कि आप भक्तिनिष्ठ भगवत् भाव से परिपूर्ण होकर ऐसे ही भगवत्कार्य में लगी रहें। यह सभी चर्चा अन्तरंग सेवकों से ही होती थी।

८. आपश्री एक बार मुझे आज्ञा किये कि मन्दिर में जाकर मेरी तरफ से मुकुन्द गोपाल प्रभु को जाली में दण्डवत् कर आओ और यह नियम तुझे आगे भी निभाना होगा, अपने लिये दर्शन दण्डवत् बाद में करना मेरे लिये प्रभु से नित्य साष्टांग दण्डवत् करते रहना यही मेरी आज्ञा है। तत्पश्चात् आपश्री ४० दिवस के लिये निजस्थान मन्दिर त्याग कर मानसिक संन्यास में लीन हो गये। भगवत् प्रागट्य के दूसरे दिन नन्द महोत्सव की शगरी लीला अवलोकन वहीं से करते हुए प्रभु के मस्तक के शृंगार की बात मुखियाजी को बताते हुए मुखियाजी को मन्दिर भेजे कि आज प्रभु के मस्तक के शृंगार टीढ़े-मेढ़े है, जाकर ठीक करो और सन् १९८२ ई० के १४ अगस्त की रात्रि, १५ अगस्त के भोर, में एकादशी तिथि में भगवत् गीता का पाठ सुनते हुए आप लीलाधाम को पधार गये। वो क्षण, वो समय हम सभी भक्तों के लिये अपार कष्ट का था। यह असुर व्यामोह की लीला आज भी जन-जन के मानस में आने पर विरहातुर कर देती है और अश्रुधारा बह चलती है।

निज गुरूदेव के प्रति वन्दना

परम उदार श्री जीवन नन्दन, करत कृपा सेवा रसदान ॥
भोग श्रृंगार राग गुणगान, हरि भक्ति के अगाध महान् ॥
निज भक्त मन भरत सेवा ज्ञान, दूरि करत निज जन अभिमान ॥
क्षण प्रतिक्षण लीला रसदान, पाते वैष्णव जनन महान् ॥
दम्भ दोष मिटावे निज जन, अनुचित कबहुँ नहीं आवत मन ॥
सेवक जन को मान-अपमान, निज गुण दई करते कल्यान ॥
निज मुख सम्मुख करें प्रशंसा, पूर्ण पुरूषोत्तम श्री भगवान् ॥

श्री गुरूदेव के युगल चरणों में तन, मन, धन समर्पित है, निजाचार्य चरणं शरणं प्रपद्ये ।

श्री मुकुन्द गोपाल की जय हो बार-बार जय हो, जय श्रीकृष्ण

पण्डित बालकृष्ण जोशी

श्रीगोवर्धननाथजी (गोपाल मन्दिर, चौखम्बा, षष्ठपीठ, काशी) के भूतपूर्व मुखिया

(३६)

आज भी बगीचे का झरोखा संदेश देता है । जब जब बगीचे में से ध्वजा के दर्शन के बाद ''आपश्री'' की बातें वर्तमान सी मालूम पड़ती हैं । आपश्री के कुछ संदेश और बातें इस प्रकार हैं :-

मेरी उम्र उस समय लगभग १० साल की थी ।

आपश्री- ''आओ कौन हो तुम ?''

''मैं, रामकृष्ण दूबे''

''नहीं, तुम दूबे नहीं हो, छब्बे हो छब्बे ।''

''नहीं, मैं दूबे हूँ ।''

''क्या हो ।''

''दूबे हूँ ।''

जय- ''नहीं, छब्बे हो छब्बे । आओ ऊपर ।''

मैंने कहा कि रास्ता नहीं देखा है, जय ।

आपश्री ने कहा- ''सीढ़ी पर आओ, कह देना ऊपर जाना है । और तुम्हारे बाप फूलधर में हैं, उनसे पूछ लेना ।'' मैं गया । देखकर मुस्कुराकर बोले, ''बोलो, यह घर किसका है ? जबाब दो किसका है ।'' मैंने कहा ''आपका है ।'' आपश्री बोले ''नहीं ।'' तो मैंने कहा, ''नहीं'' आपश्री बोले ''नहीं'' तो मैंने कहा, ''नहीं'' आपश्री ''फिर सोचो, किसका है ।'' मैंने कहा ''जय आपका ।'' आपश्री ''आपका नहीं बोलो बोलो बाबा दादा का ।'' ऐसा सुनकर मैं आपश्री के मुखारविन्द की तरफ देखने लगा और आश्चर्य चकित भाव से सोचने लगा 'जब मैं कक्षा ४-५ में पढ़ रहा था तो माँ से एक बार पूछकर अपने अध्यापकों को बतलाया था कि मेरे पिताजी गोपाल मन्दिर में सेवक हैं और अपने कुल के अकेले कुलदीपक हैं' और आप कह रहे हैं कि दादा-

बाबा का घर हैं ।''तब आपश्री बोले''कहो कि मेरा भी है ।'' तो मैंने कहा ''हाँ, मेरा भी है ।'' तब हँसते हुये विनोदपूर्ण वाणी में बोले'' चौबे को बुलाओ । मैंने चौबेजी को इधर-उधर जा कर देखने की कोशीश की और फिर आकर कहा कि जय अभी चौबेजी नहीं आये हैं । आपने कहा ''देखो, चौबे है, देखो ।'' मैंने कहा, ''नहीं है ।''''देखो, गोपाललालजी के चौक में, नीचे देखो बैठा है ।'' मैंने देखा कि चौबे जी नहीं हैं । वहाँ पर बेचन सिंह बैठे थे । वे बोले, ''चौबे है, देखो ।'' मैंने कहा जय चौबेजी कहाँ है ।''आप मुस्कुराते हुये बोले'' क्या तुम पहचानते हो चौबों को ।''हाँ जय हाँ अच्छी तरह ।'' वे बोले, ''चौबे की पहचान है- शरीर मोटा ताजा, गोरा वर्ण, जनेऊ, शिषा-बड़ी, निलक, तौद फेंके हुये विशाल काय ही चौबे है । देखो, निचे तुलसी गमला के बगल से देखो, ये ही हैं नकली चौबे । क्या कोई कहेगा, यह ठाकुर है । अब समझे, तुमको छब्बे बनना है, छब्बे । ये सब माल का कमाल है । बुलाओ मदन को पूछो, कनष्टरी में कुछ है ? शायद ही हो । ये सभी एक ही आम की गोठली है । देखो शरीर । नहीं हो तो जाकर गणेशजी भण्डारी से बोलदेना, ऊपर से आज्ञाभयी है, प्रसाद के लिये । दे देंगे । खाओ खूब । समझना कि दादा का घर है । यहाँ नहीं खाओगे तो कहाँ खाओगे । देखो तुम्हारे दादा के परिवार और तुम्हारे नाना के परिवार-दोनों का यही घर है । सभी तुम्हारे इसी घर में पले थे । याद करना, करोगे न ।'' मैंने कहा, ''जय हों ।''

आज सभी पुरानी बातें याद आ रही हैं ।

रामकृष्ण दूबे
पुत्र देवशंकर दूबे
(वर्तमान मुखिया, श्री गोर्वधननाथजी, श्री गोपाल मन्दिर)

●

हौं वारी इन वल्लभीयन पर ॥ टेर ॥

मेरे तन को करों बिछोना
शीश धरो इनके चरणन तर ॥१ ॥

भाव भरी निरखो मेरी अखिंयन
मंडल बीच विराजे गिरधर ॥

ये तो मेरे प्राण जीवन धन
दान दियो जिन श्रीवल्लभवर ॥२॥

मारग पुष्टि प्रकाश करन को
प्रकट भये श्री विठ्ठल द्विज तनुधर ॥

रसिक दास आश उनकी कर
वल्लभीयन की चरणरज अनुसर ॥३॥

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

उपसंहार

षष्ठपीठाधीश्वर श्री १०८ नित्यलीलास्थ गोस्वामी श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की स्मृति में प्रकाशित ग्रन्थ 'पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण' अपने नाम के अनुरूप पुष्टि सम्प्रदाय, षष्ठपीठ व नि०ली० महाराजश्री के विषय में अत्यन्त ही दुर्लभ सामग्री के साथ हम आप सबको सुलभ कराया गया है। जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में पूर्ण पुरुषोत्तम आनन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण की सतत सेवा व स्मरण तथा सर्वभाव से उनके होकर, उनके प्रति पूर्ण समर्पित रहकर, जगत् में रहना ही मुख्य कर्तव्य है। जगत् में प्रतिक्षण हम जो भी कर्म करते हैं उन सभी कर्मों का एक मात्र उद्देश्य अपने प्रभु को रिझाना, उनकी प्रीति प्राप्त करना, इस मार्ग में अभीष्ट है। मानव जीवन की असली सफलता तो प्रभु प्रेम की प्राप्ति है। तत्वज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य जीवन सफल हो गया ऐसा भी कहा जा सकता है। लेकिन जब तक प्रभु प्रेम प्राप्त नहीं हुआ और हृदय द्रवित नहीं हुआ और प्रभु के प्रति अपना आकर्षण प्रतिक्षण बढ़ा नहीं, तब तक हमको मनुष्य देह प्राप्त हो कर के भगवद्रस नहीं मिला। मनुष्य जीवन प्राप्त होने पर केवल सुख-दुःख से परे हो जायें, हानि-लाभ में, मान-अपमान में, निन्दा-स्तुति में सम हो जायें जो जीवन सफल हो गया। परन्तु इस तरह जीवन सफल हो जाना ही यथेष्ट नहीं है। मनुष्य जीवन इससे भी अधिक कुछ प्राप्त करने के लिए है, वह है प्रभु का प्रेम जिसमें की मादकता, आकर्षण व गद्‌गद होने से प्रतिक्षण प्रेम वर्धमान होता रहे और तभी जीवन की असली सफलता है।

यह हम वैष्णवों का सौभाग्य है कि आचार्यश्री वल्लभ की षष्ठगृह परम्परा में गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का प्राकट्य हुआ। महाराजश्री का जीवन प्रभु सेवा व स्मरण के लिए समर्पित था तथा आध्यात्मिकता की अनुभूति से परिपूर्ण था। आपश्री ने अपने आचरण द्वारा तथा जीवन के दैनिक क्रियाकलापों द्वारा आचार्य श्रीवल्लभ के सिद्धांतों का तथा पुष्टिमार्ग की सेवा प्रणालिका का वैष्णवों को बोध कराया और वैष्णवों को इस तरह स्नेहसूत्र में बाँधा कि आपश्री के नित्यलीला में पधारने के इतने वर्षों के पश्चात् भी वैष्णव समुदाय को आपश्री के प्रति वही प्रेम श्रद्धा बनी हुई है जो कि आपश्री के भूतल पर विराजने के काल में आपश्री के प्रति थी। ग्रन्थ में प्रकाशित विविध लेख महाराजश्री के बहुआयामी व्यक्तित्व पर बृहद् रूप से प्रकाश डालते हैं। महाराजश्री की सेवापरायणता, आपश्री का विद्वत्प्रेम, कीर्तन प्रेम, वैष्णवों के संस्मरण वैगरह जो सामग्री ग्रन्थ में समायोजित की गयी है उससे हमको यह प्रतीत होता है कि आपश्री का व्यक्तित्व निश्चल, सरल, प्रभुसेवा के प्रति समर्पित, भगवद्भाव से परिपूर्ण तथा विद्वत्ता एवं संगीत जैसे क्षेत्रों में भी अपना एक स्थान रखता था।

ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु हमें जो शुभकामनाएँ व आशीर्वचन प्राप्त हुए हैं उनसे हमारा उत्साह बढ़ा है। आगामी प्रकाशनों में हम अपने उत्तरदायित्व को और अच्छी तरह निर्वाह करेंगे, ऐसा हमें विश्वास है। शुभाशीर्वाद प्रेषित करने वालों में है सर्वश्री पूज्यपाद गो० तिलकायित श्री राजीवजी (दाऊजी) महाराज (प्रधानपीठ श्रीनाथद्वारा), गो० श्री इन्द्रदमनजी (राकेशजी) महाराज, प्रधानपीठ श्रीनाथद्वारा (मुम्बई), गो० श्री व्रजेशकुमारजी

महाराज, तृतीय गृहाधिपति (कांकरोली), गो० श्री घनश्यामलालजी महाराज, सप्तम गृहाधिपति (कामवन), गो० श्री विठ्ठलनाथजी वृजभूषणलालजी महाराज (जुनागढ़), गो० श्री हरिरायजी वृजभूषणलालजी महाराज (जामनगर), गो० श्री व्रजरत्नलालजी महाराज (नडीयाद), गो० श्री व्रजरमणलालजी महाराज (मथुरा), जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी रामनरेशाचार्यजी महाराज (वाराणसी), महाराजा विभूति नारायण सिंहजी (काशी नरेश), महाराजा गजसिंहजी (मारवाड़-जोधपुर), पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय (प्रधान सम्पादक, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाश्यमान संस्कृत वाङ्मय का बृहत् इतिहास) वाराणसी, व डा० मण्डन मिश्र, कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी। गो० श्री लालमणीजी महाराज (प्रथमेशजी), प्रथम गृहाधिपति, (कोटा-मुम्बई) ने कृपाकर के अपने आशीर्वचन के साथ-साथ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के काल के मधुर व प्रेरणादायक संस्मरण भी प्रेषित किये हैं। इन सभी आदरणीय महापुरुषों से प्राप्त वचनामृत हमारे लिए अमूल्य दस्तावेज के रूप में धरोहर हैं जिन्हें इस ग्रन्थ में स्थान देकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

ग्रन्थ का प्रकाशन असम्भव सा था यदि नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की द्वितीय सुपुत्री परम पूजनीया गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी (जीजी) का आशीर्वाद तथा वर्तमान षष्ठपीठाधीश्वर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज का सक्रिय सहयोग व मार्गदर्शन प्राप्त न हुआ होता। ग्रन्थ के प्रकाशन का संकल्प वि० सं० २०५३ में लिया गया था। तब से ग्रन्थ के प्रकाशन के समय तक पूज्य महाराजश्री श्री मुकुन्द गोपाल प्रभु की सेवा में अत्यन्त व्यस्त होने पर भी अनवरत प्रतिदिन घंटों इस उपसंहार के लेखक को तथा भगवदीय वल्लभदास मुनीमवाला को सम्मुख बैठाकर ग्रन्थ प्रकाशन निमित्त किन-किन विद्वानों तथा भगवदीयों से विभिन्न विषयों पर लेख के लिए सम्पर्क करना है, किन-किन महापुरुषों से अभिप्राय व आशीर्वाद प्राप्त करना है तथा कौन-कौन से चित्रों का समावेश इसमें करना है और उनको कहाँ-कहाँ से प्राप्त करना है इत्यादि अनेक विषयों पर आपश्री निर्देश देते रहे। जो भी सामग्री लेख के रूप में प्राप्त हो उसे स्वत: देखने का तथा उसको ऐतिहासिक कसौटी पर कसकर संशोधित करने का एक बृहद् कार्य आपश्री के मार्गदर्शन में होता रहा। स्थानीय जो लेखक हैं उनसे लेख प्राप्त होने पर और आवश्यकता अनुभव करने पर उनको बुला भेजना तथा उनसे विचार विमर्श कर उनके लेखों में उचित संशोधन करने का कार्य आपश्री बिना उकताये करते रहे।

श्री मुकुन्दरायजी जो आचार्यश्री के निज सेव्यस्वरूप हैं एवं जो सम्पूर्ण पृथ्वी परिक्रमा में उनके साथ विराजे थे, शुद्धाद्वैत मार्तण्ड गो० श्री गिरिधरजी महाराज काशीवालों के समय काल से षष्ठपीठ, काशी में षष्ठस्वरूपत्वेन विराजमान हैं और इस षष्ठपीठ को षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। इस विषय में एक तर्कपूर्ण और तथ्यों से पूर्ण लेख गो० श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री का "श्री वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास"- शीर्षक के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में समाविष्ट है। आशा है कि इस लेख का अवलोकन करने के पश्चात् किसी को भी काशीस्थ षष्ठगृह एवं षष्ठस्वरूप के स्थान के विषय में कोई भ्रम नहीं रहेगा।

गुसाईं श्री विठ्ठलनाथजी के छठ्ठेलाल गो० कुलभूषण श्री यदुनाथलालजी महाराज के जीवन पर गो० श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री ने स्वयं श्रम उठा कर एक तथ्यपूर्ण लेख इस ग्रन्थ में पाठकों के लिए सुलभ कराया है।

गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज ने अतिशय कृपा करके एक और विद्वत्तापूर्ण लेख 'श्री वल्लभदर्शन के मूल तत्व' शीर्षक के अन्तर्गत हम लोगों को सुलभ कराया है जो कि निश्चित रूप से पाठकों का मार्गदर्शन

करेगा और उनके ज्ञान की वृद्धि करेगा।

श्री वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास तो हमें पूज्य गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज से प्राप्त हुआ और षष्ठगृह काशी का इतिहास प्रसिद्ध बनारसी वस्त्र व्यवसायी तथा परमभगवदीय विद्वान् श्री राधेकृष्ण अग्रवाल (काजूबाबू) जो कि सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी एक अग्रणी स्थान रखते हैं से प्राप्त हुआ। श्री काजूबाबू द्वारा एक विस्तृत लेख नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के जीवन चरित्र पर भी हमें प्राप्त हुआ जिनका समायोजन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह दोनों लेख जो तथ्यों पर आधारित है, तैयार करने मे श्री काजूबाबू ने जो श्रम उठाया है उसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

यदुकुलभूषण षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैत मार्तण्ड गो० श्री गिरिधरजी महाराज के विषय में एक अत्यन्त ही उत्कृष्ट लेख, श्री गोपाल मन्दिर के वर्तमान बड़े मुखिया श्री नटवरजी शुक्ल से प्राप्त हुआ है और वह इस ग्रन्थ में पाठकों के लिए उपलब्ध कराया गया है। श्रीशुक्लजी ने मन्दिर में प्रतिदिन सेवाकार्य करते हुए भी अत्यन्त श्रम करके गो० श्री गिरिधरजी महाराज से सम्बन्धित सामग्री एकत्रकर यह एक अत्यन्त उपयोगी लेख इस ग्रन्थ के पाठकों को प्रदान किया है।

पं० श्री विश्वेश्वर शास्त्री द्राविड व पं० श्री गणेश्वर शास्त्री द्राविड, मूर्धन्य विद्वान् स्वर्गीय पं० श्री राजराजेश्वर शास्त्री द्राविड के सुपुत्र हैं। आप दोनों ने अपने पिताश्री के पदचिह्नों पर चलकर और विद्या अर्जितकर विद्वत् समाज में एक अत्यन्त ही सम्मानजनक स्थान प्राप्त किया है। ष०गृ०धि०नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के विद्वत् प्रेम के विषय में पं० श्री विश्वेश्वर शास्त्री द्राविड द्वारा प्राप्त एक अत्यन्त ही खोजपूर्ण लेख इस ग्रन्थ में प्रस्तुत है। पं० श्री गणेश्वर शास्त्री द्राविड का भी एक लेख ''श्री वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन'' शीर्षक के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। ग्रन्थ के लिए आप दोनों भाईयों ने परिश्रम कर बहुत ही उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी है। यह सौभाग्य का विषय है और श्रीमन्मुकुन्द प्रभु की कृपा है कि आप दोनों की सेवायें उन्होंने स्वीकार की है। श्री गिरिधर प्रकाशन की अगली कड़ियों में आप दोनों का सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

काशीराज का और श्री गोपाल मन्दिर का सम्बन्ध बहुत ही प्राचीनकाल से अक्षुण्ण चला आ रहा है। समय-समय पर काशीनरेश श्री गोपाल मन्दिर पधारते रहे हैं। इस विषय में तत्कालीन काशीनरेश महाराजा ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंहजी का तत्कालीन षष्ठगृहाधिपति महाराज गो० श्री जीवनलालजी महाराजश्री के साथ का चित्र इस ग्रन्थ में दिया हुआ हैं। वंशपरम्परागत काशी दरबार में जुड़े हुए प्रोफेसर गिरीशचन्द्र चौधरी द्वारा प्राप्त एक लेख जिसमें कि काशीराज के साथ माधुर्य सम्बन्धों का उल्लेख है, इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज की सेवापरायणता के विषय में कुछ कहना सूर्य को दीप दिखाने जैसा है। तथापि मुखिया श्री नृसिंहलाल हरीराम शुक्ल ने बहुत ही परिश्रम करके एक विद्वत्तापूर्ण व तथ्यों से भरपूर लेख महाराजश्री की सेवापरायणता के विषय में हम पाठकों को सुलभ कराया है।

श्रीनाथद्वारा में सप्तस्वरूपोत्सव के अवसर पर वि०सं० २०२३ में ष०गृ०धि०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज बड़ी संख्या में वाराणसी के वैष्णवों को लेकर पूर्ण वैभव के साथ षष्ठनिधिस्वरूप श्री मुकुन्दराय प्रभु को पधराये। इसके पूर्व गो० श्री श्यामाबेटीजी महाराज ने अपने पिताश्री ष०गृ०धि०गो० श्री गिरिधरजी महाराज की हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए वि०सं० १९२९ में छप्पनभोग का आयोजन काशी में किया जिस अवसर पर विभिन्न ऋतुओं व लीला के मनोरथ सम्पन्न हुए। इस मनोरथ के पूर्व वि०सं० १९२८

में भी गो० श्री श्यामा बेटीजी ने एक छोटा (गुप्त) छप्पन भोग अरोगाया था। गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के लीला प्रवेश के पश्चात् गो० श्री प्रेमप्रिया बहूजी (अम्माजी) ने काशी में छप्पनभोग का आयोजन वि०सं० २०४१ में किया। इन सब महोत्सवों का पूर्ण विवरण श्री मधुसूदनदास सोनावाला ने "गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के सान्निध्य में हुए विशिष्ट मनोरथ एवं अन्य विशिष्ट मानोरथ" शीर्षक लेख के अन्तर्गत दिया है। सोनावाला परिवार में इन सब आयोजनों के सम्पूर्ण वृत्त उपलब्ध होने के कारण तथ्यों पर पूर्ण आधारित यह लेख हम लोगों को सुलभ हो पा रहा है। विशेष प्रसन्नता का विषय है कि पू० गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज के दिशानिर्देश में इन सब आयोजनों और मनोरथों के चित्र अधिकाधिक संख्या में प्रयत्नपूर्वक एकत्र करके इस ग्रन्थ में पाठकों के लिए अवलोकनार्थ प्रस्तुत किये गये है।

गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री कीर्तन कला के मर्मज्ञ थे तथा हारमोनियम वादनकला में भी प्रवीण थे। श्री हरिदास पटनावाला (भट्टजी) का महाराजश्री के कीर्तनप्रेम सम्बन्धित लेख पाठकों को विशेषकर उन पाठकों को जिन्हें कीर्तनकला की जानकारी है और उसमें कुछ पैठ है, आह्लादित करने वाला रहेगा। श्री भट्टजी स्वयं एक अत्यंत कुशल कीर्तन गायक हैं और इसलिये उन्होंने विषय की प्रस्तुति बहुत ही सुन्दर ढंग से अपने लेख में किया है।

गो० श्री मुरलीधरलाल महाराजश्री मुकुन्द प्रभु के प्रति एकनिष्ठ थे तथा सम्पूर्ण वैष्णव समुदाय को अपने प्रभु का प्रिय जानकर सबसे समान प्रेम व सौहार्द रखते थे। श्री नारायणदास विश्वम्भरी का "महाराजश्री का वैष्णवों के प्रति प्रेम व सौहार्द" विषयक लेख महाराजश्री के हृदय में रहे हुए भावों को उजागर करने वाला है। लेख भावपूर्ण और वैष्णवों का मार्गदर्शन करनेवाला है।

गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के वात्सल्य भाव पर लिखना कोई सरल कार्य नहीं था। जो उस भाव से भावित हो और महाराजश्री के सम्पर्क में आया हो, उसी के लिए यह कार्य सम्भव था। पू० महाराजश्री के निकट सम्पर्क में रहे हुए श्री वल्लभदास मुनीम वाला ने अत्यन्त सरल व बोधगम्य भाषा में महाराजश्री के वात्सल्य भाव पर अपने भावों को लेखबद्ध किया और उसे इस ग्रन्थ में प्रकाशित करने के लिए सुलभ कराया है।

श्री मोहनदास एडवोकेट वर्तमान में श्री गोपाल मन्दिर के श्री मुकुन्द गोपाल सेवा संस्थान के महामन्त्री, श्री वल्लभ युवक परिषद, वाराणसी के अध्यक्ष तथा अनेक सेवाभावी संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ के लिए दो लेख उपलब्ध कराये हैं-एक गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज से सम्बन्धित और दूसरा 'पुष्टिमार्ग का गौरव-चरणाटधाम" शीर्षक के अन्तर्गत। चरणाटधाम के विकास की योजना विभिन्न चरणों में प्रारम्भ हुई है। सेवाकार्यों में श्री मोहनदास एडवोकेट जो अपना योगदान दे रहें हैं, वह अपने आपमें अविस्मरणीय है।

श्री गोपाल मन्दिर के परिसर में ही संतशिरोमणी गो० श्री तुलसीदास ने "विनयपत्रिका" की और उन्हीं के भ्राता अष्टछाप कवि श्री नन्ददास ने "भ्रमरगीत" की रचना की। जिस स्थान पर इन दोनों ने बैठकर साधना की थी वह दोनों स्थान आज भी बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए दर्शनार्थ बना हुआ है। पं० महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथ शास्त्री दातार ने "गोस्वामी तुलसीदास और विनयपत्रिका" पर तथा डा० विश्वनाथ प्रसाद ने "नन्ददास और भ्रमरगीत" पर लेख हमलोगों को उपलब्ध कराये हैं। श्री दातार शास्त्री का लेख बहुत ही मर्मस्पर्शी तथा हृदय को छू जाने वाला है। भावुकजनों को यह लेख बहुत ही पसन्द आयेगा।

"नन्ददास और भ्रमरगीत" विषयक लेख हमें डा० विश्वनाथ प्रसाद से प्राप्त हुआ है। वह डाक्टर साहब की विद्वत्ता और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही है। हिन्दी साहित्य जगत् में आप सर्वमान्य सुप्रसिद्ध कवि, समीक्षक तथा निबन्धकार हैं। आपका लेख सर्वसाधारण के लिए उपयोगी तो है ही साथ-साथ साहित्य जगत् में शोधकार्य करने वालों के लिए भी महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराता है।

इस ग्रन्थ की भूमिका के लेखक श्री गोपालदास नागर द्वारा प्रदत्त एक विद्वत्तापूर्ण लेख "भारतीय शुद्धाद्वैत दर्शन के आदि प्रवर्तक जगद्‌गुरु श्री वल्लभाचार्य और उनकी कर्मभूमि, काशी" शीर्षक के अन्तर्गत पाठकों के लिए इस ग्रन्थ में सुलभ किया गया है। हिन्दी साहित्य जगत् से पिछले पचास वर्षों से जुड़े हुये एक प्रतिष्ठित लेखक का हमें सक्रिय सहयोग प्राप्त होना हमारे लिए विशेष प्रसन्नता की बात है।

श्रीमद्‌भागवत के प्रामाणिक मूर्धन्य विद्वान् तथा सुप्रसिद्ध कथाकार पं० श्री मनोहरलाल शास्त्री चतुर्वेद: (मनोहरजी) ने कृपापूर्वक एक लेख "निर्गुण निराकार परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण" शीर्षक के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के लिए उपलब्ध कराया है। यह लेख निश्चित रूप से वाचकों का मार्गदर्शन करेगा और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के सदा सन्मुख रहने की प्रेरणा देगा।

हम लोगों के अनुरोध को स्वीकार करके सुप्रसिद्ध मूर्धन्य विद्वान् तथा भागवत कथाकार पं० श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री "तदीय" ने पुष्टिमार्ग पर एक लेख संस्कृत भाषा में इस ग्रन्थ के लिए तैयार करके हमको प्रेषित किया जिसे इस ग्रन्थ में वाचकों के लिए हमने सुलभ कराया है। आशा है पुष्टिमार्गीय प्रेमियों को यह लेख पसन्द पड़ेगा और उन्हें पुष्टिमार्ग के विषय में यथेष्ट जानकारी प्राप्त करायेगा।

काशी के जानेमाने चिकित्सक, ज्योतिषी तथा संगीतज्ञ राजवैद्य श्री शिवकुमार शास्त्री वंशपरम्परागत पुष्टिमार्गीय सेवापद्धति व श्री गोपाल मन्दिर से जुड़े हैं। इस ग्रन्थ में एक विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखा हुआ उनका विद्वत्तापूर्ण लेख 'श्री शुद्धाद्वैत मधुरोपासना में आयुर्वेद" प्रकाशित है। श्री शिवकुमार शास्त्री के गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज से भी मधुर सम्बन्ध रहे। इस विषय में उनके संस्मरण भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित हैं। ग्रन्थ के लिए आपने बहुत ही उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी है।

डा० गोपीवल्लभ पाठक विद्वान् तथा वंशपरम्परागत भागवत कथाकार हैं। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त तथा शुद्धाद्वैत दर्शन का गहरायी से आपने अध्ययन किया है। इसलिए समय की मांग को ध्यान में रखते हुए आपसे निवेदन किया गया था कि वैष्णवों के मार्गदर्शन के लिए आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में, ग्रन्थ के लिए एक लेख उपलब्ध करावें। आपने हमारे अनुरोध को स्वीकार कर एक लेख "पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के कर्तव्य (आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में)" शीर्षक के अन्तर्गत ग्रन्थ के लिए प्रदान किया जिसे ग्रन्थ में समायोजित करने में हमें बड़ी प्रसन्नता तथा संतोष का अनुभव हो रहा है।

पं० श्री हरिप्रसाद शर्मा (हरिदास) ने अपना सम्पूर्ण जीवन पुष्टिमार्ग की सेवा के लिए समर्पित किया हुआ है। इस ग्रन्थ में उनका 'श्री गुसाईंजी का प्राकट्यस्थल चरणाटधाम' विषयक प्रकाशित लेख, उनकी विद्वत्ता तथा उनके उदात्त सेवाभाव को दर्शाता है।

पुष्टिमार्गीय हवेली संगीत के जानेमाने जानकार श्री विठ्ठलदास बापोदरा का एक विद्वत्तापूर्ण लेख "पुष्टिमार्ग और हवेली संगीत" शीर्षक के अन्तर्गत इस ग्रन्थ में प्रकाशित है। ग्रन्थ के वाचकों को विशेषकर संगीत व कीर्तन प्रेमियों को यह लेख बहुत ही हृदयस्पर्शी होगा।

श्री गोपाल मन्दिर के कीर्तनिया श्री श्यामलाल शर्मा ने "श्री मुकुन्दरतिवर्द्धिनी" शीर्षक के अन्तर्गत श्री यमुना महाराणी के माहात्म्य को दर्शाता एक लेख उपलब्ध कराया है। श्री शर्माजी कीर्तनकला और कीर्तन साहित्य के अच्छे जानकार हैं। ग्रन्थ में प्रस्तुत आपका लेख आपके हृदय के मर्मस्पर्शी भावों को व्यक्त करता है।

ग्रन्थ अधूरा रहता यदि नि०ली० महाराजश्री के सम्पर्क में आये हुए वैष्णवों के संस्मरणों का समावेश इसमें न होता। जो वैष्णव पू० महाराजश्री के सम्पर्क में आये, उनके सान्निध्य में अथवा उनके सेवा में रत रहे वो आज भी पू० महाराजश्री के द्वारा दी हुई आज्ञाओं को और समय-समय पर अपने आचरण द्वारा आपश्री ने जो दिशा-निर्देश दिया उनको याद करके भाव विह्वल हो जाते हैं। यह संस्मरण विशेष रूप से पठनीय और मननीय हैं। वर्तमान महाराजश्री के बार-बार स्मरण कराने पर सम्बन्धित वैष्णवों को प्रेरणा मिली और उन्होंने अपने संस्मरणों को लिखित रूप दिया जिससे कि एक अति दुर्लभ संकलन वैष्णवों के संस्मरणों का, इस ग्रन्थ में समाविष्ट हो पा रहा है।

श्री वृजरमणदास एडवोकेट (पापाभाई) द्वारा रचित एक भावपूर्ण पद तथा गोलोकवासी रामदेई द्वारा गाये हुए पदों का भी ग्रन्थ में समावेश है।

उपर्युक्त सभी लेखकों को जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी लेखनी द्वारा अमूल्य योगदान किया है हम अपना हार्दिक आभार व धन्यवाद प्रकाश करते हैं। आशा है कि श्री गिरिधर प्रकाशन की अगली कड़ियों में भी आप सभी लोगों का यथासम्भव योगदान प्राप्त होता रहेगा।

श्री गोपालदास नागर द्वारा प्रस्तुत भूमिका का अंग्रेजी में अनुवाद प्रोफेसर नंदकिशोर लाल, अंग्रेजी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा सम्पन्न हुआ है, जिसके लिए हम हृदय से उनके आभारी हैं।

ग्रन्थ को वर्तमान रूप में प्रस्तुत करना असम्भव था यदि पूर्वकाल के प्रामाणिक लिपिबद्ध सामग्री एवं दस्तावेजों से तथ्यपरक जानकारी उपलब्ध न हो पाती। ग्रन्थ-रचना में हमनें जो सहायता प्राप्त की है उनमें निम्नलिखित साहित्य का विशेषरूप से योगदान रहा है :—

श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी की वार्ता, शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, गो० श्री हरिरायजी की भाव-भावना, शु० मा० श्री गिरिधरजी महराज द्वारा रचित प्राचीन श्लोक, गो० श्री गिरिधरलालजी के वचनामृत, ८४ और २५२ वैष्णवजन की वार्ता, हरिप्रबोधिनी टीका, मथुरावाले गो० श्री रमणलालजी के वचनामृत, कांकरोली के घर का इतिहास, श्री प्रभुदयालजी मित्तल द्वारा रचित व्रज के वैष्णवधर्म सम्प्रदायों का इतिहास, श्री वल्लभ दिग्विजय, भारतेन्दु साहित्य, प्राचीन वंशवृक्ष, गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के स्वहस्त लिखित वंश-वृक्ष, प्राचीन चित्रों के पृष्ठभाग में लिखे हुए विवरण, प्राचीन भावनाजी, प्राचीन कीर्तन साहित्य आदि आदि।

उपर्युक्त सहायता प्रदान करने में जिनका योगदान रहा है उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

ग्रन्थ के सामग्री संकलन में समय समय पर यथाशक्ति जिन वैष्णवों ने योगदान दिया है उनमें प्रमुख सर्वश्री गोलोकवासी श्री रामनाथजी ज्योतिषी के सुपुत्र श्री दिनेशजी, श्री बालाप्रसादजी समाधानी, मुखिया श्री तुलसी श्यामजी, श्री गोपालदासजी सोनावाला, श्री गोपालकृष्णदासजी (गोलीबाबू), श्री मुकुन्ददासजी

सतभैया वाले, श्री गोपालदासजी (कलकत्ता कोठी), श्री राजेशजी अग्रवाल (जी.एन. ब्रदर्स), श्री अनुज कुमारजी (राजू) गोठी, श्री माधवदासजी मुनीमवाला, श्री द्वारिकादासजी मुनीमवाला, श्री बिठ्ठलदासजी, श्री मुकुन्ददासजी मुनीमवाला, श्री शिवनाथदास नागर, श्री मदन खवास, छोटी हीरा, तथा श्यामा बाई (जयपुर) हैं जिनके प्रति हम अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकाश करते हैं। श्रीमद् वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान व श्री वल्लभ युवक परिषद के भी हम आभारी हैं जिनके पदाधिकारियों व कार्यकर्ताओं ने समय-समय पर अपना योगदान ग्रन्थ की सामग्री संकलन में दिया है।

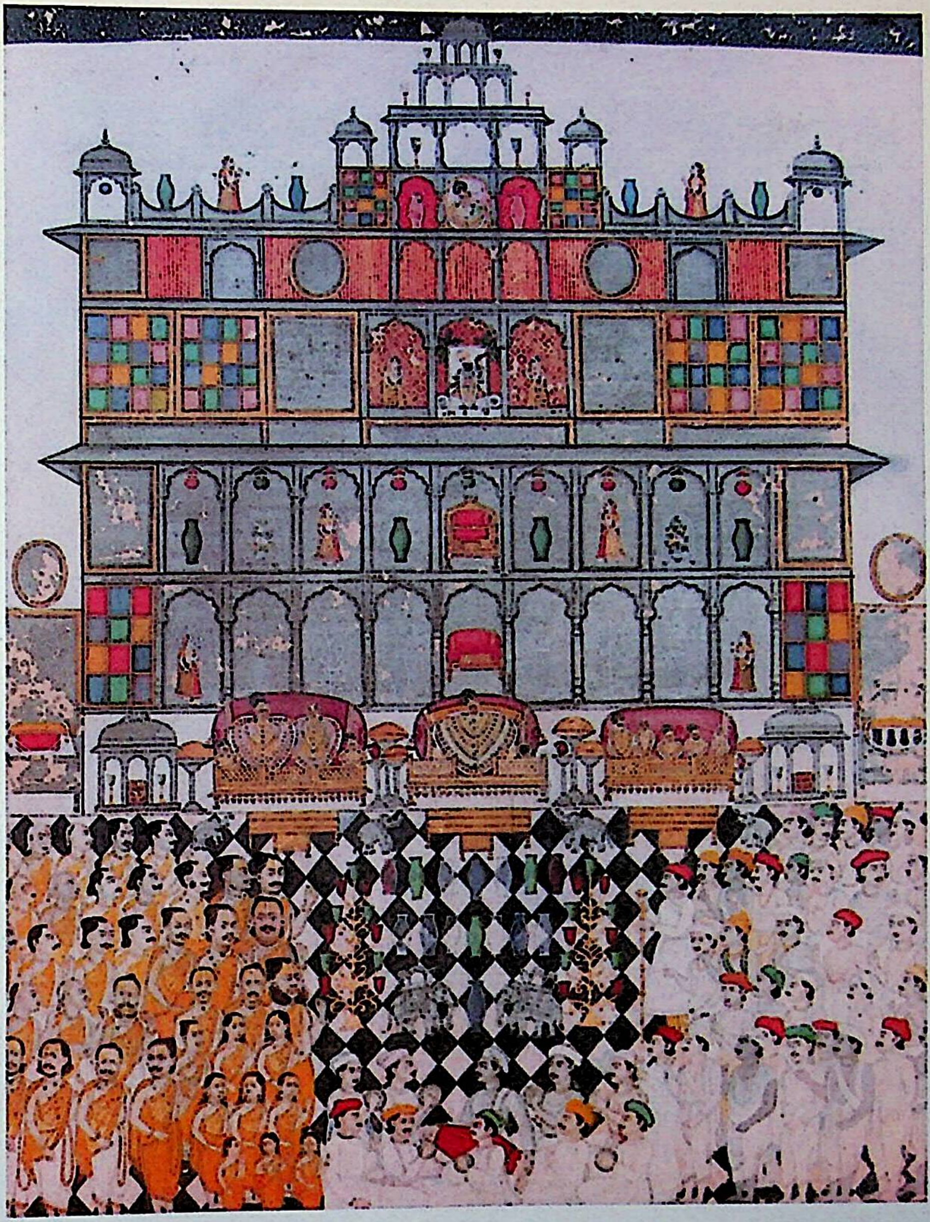
ग्रन्थ में समाविष्ट करने के लिए हमें कुछ अत्यन्त उपयोगी सामग्रियाँ विलम्ब से प्राप्त हुयीं जिन्हें हमने ग्रन्थ में परिशिष्ट में स्थान दिया है। गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज का व्याख्यान, काशी की विभूति गो० श्री जीवनलालजी महाराज की परम्परागत प्राप्त कुछ स्मृतियाँ (प्रोफेसर राय आनन्दकृष्ण द्वारा प्रेषित), गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजानां पुण्यस्मृतौ विशिष्ट संस्मराणि (गोलोकवासी पं० श्री रामनाथ ज्योतिषी द्वारा संस्कृत भाषा में लिखा हुआ) तथा श्री गोपालदास (सुपुत्र गोलोकवासी मथुरादास एडवोकेट) द्वारा लिखा हुआ अंग्रेजी में लेख 'Sixth Peeth Gopal Mandir Varanasi and Pushtimargiya Vaishnava Cult' and 'Seva Vidhi' ग्रन्थ की छपाई कें अंतिम चरण में प्राप्त होने पर भी इन सबको ग्रन्थ में समाविष्ट करते हमें अत्यन्त हर्ष है तथा सामग्री प्रेषित करने वाले वैष्णवों के हम हृदय से आभारी है।

ग्रन्थ के मुद्रण का तथा उसे एक अत्यन्त ही आकर्षकरूप में प्रस्तुत करने का कार्य श्री अतुलकुमार (प्रोपराइटर) मेसर्स चारू प्रिंटर्स, गोलघर, मैदागिन, वाराणसी द्वारा सम्पन्न हुआ है जिसके लिए हम उनका हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

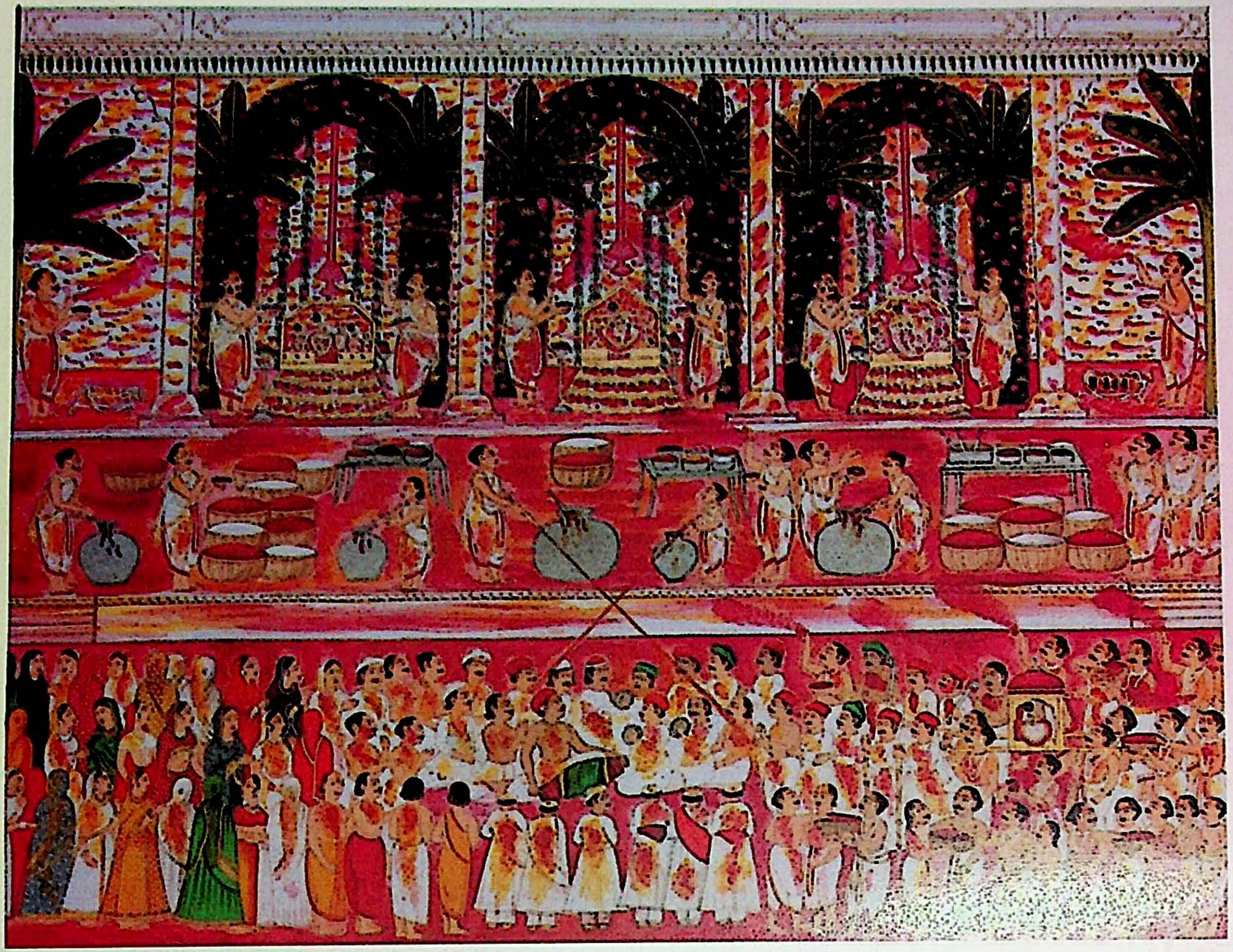
आशा है यह ग्रन्थ पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के लिए तथा अन्य सभी जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा तथा पुष्टिसम्प्रदाय, षष्ठपीठ व नि०ली०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के विषय में पर्याप्त जानकारी देने में सफल रहेगा।

सस्नेह जय श्री कृष्ण

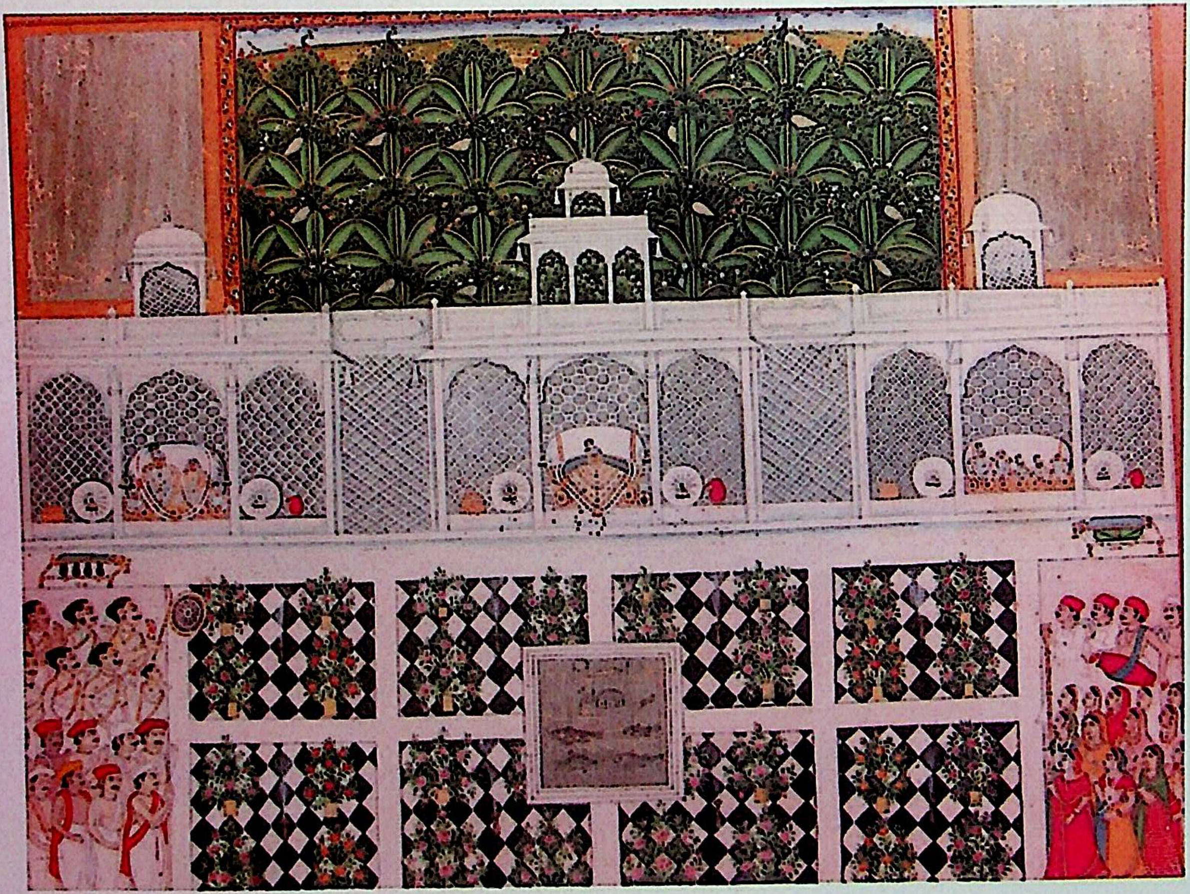
घनश्यामदास शाह



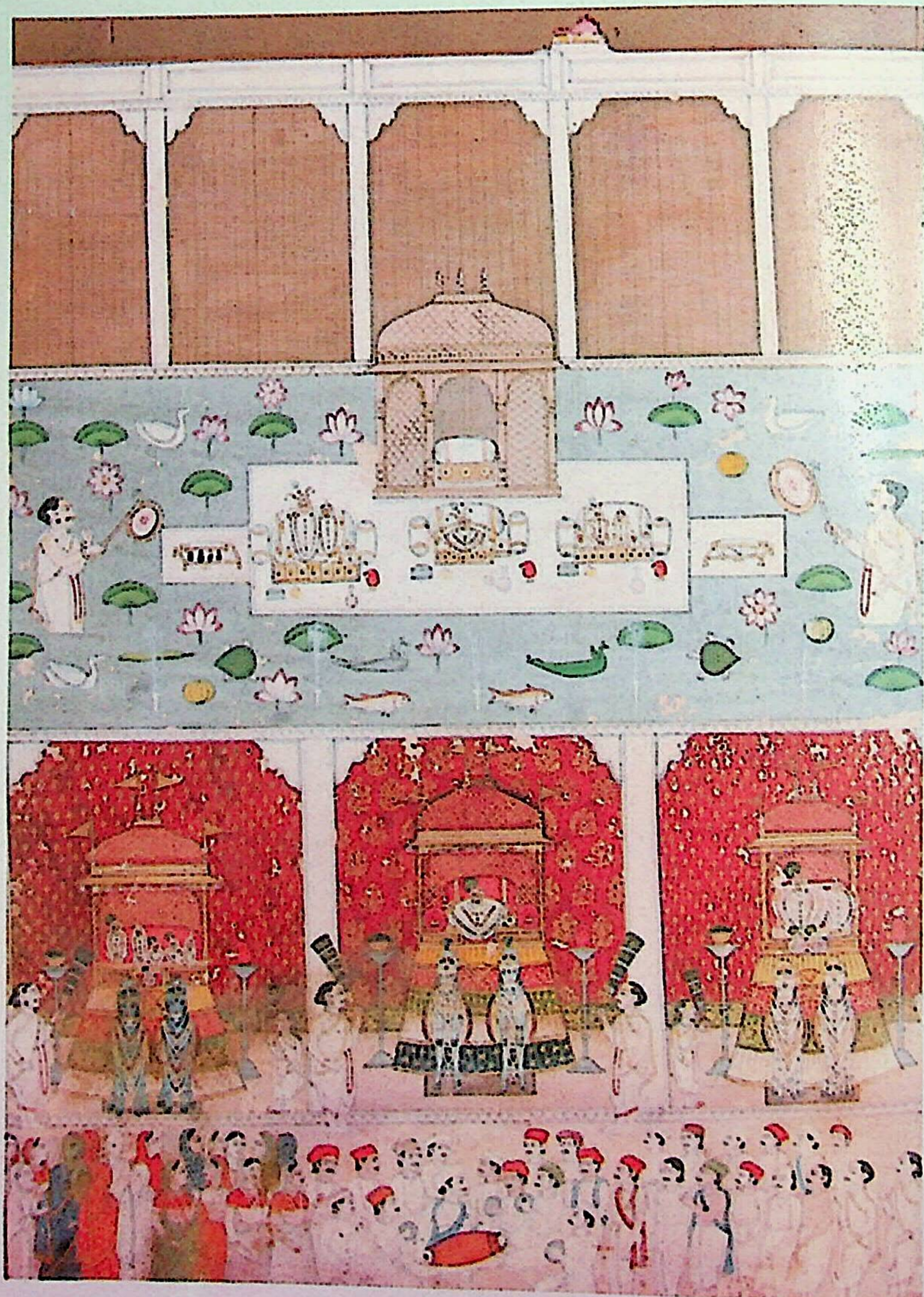
षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी एवं श्री गोपाललालजी कूँ श्री श्यामा बेटीजी (काशी वारे)
ने छप्पनभोग अरोगायो तब काँच की बड़ी हटड़ी में विराज के दर्शन भये
वि० सं० १९२९ मि० चै० शु० १५ मंगलवार



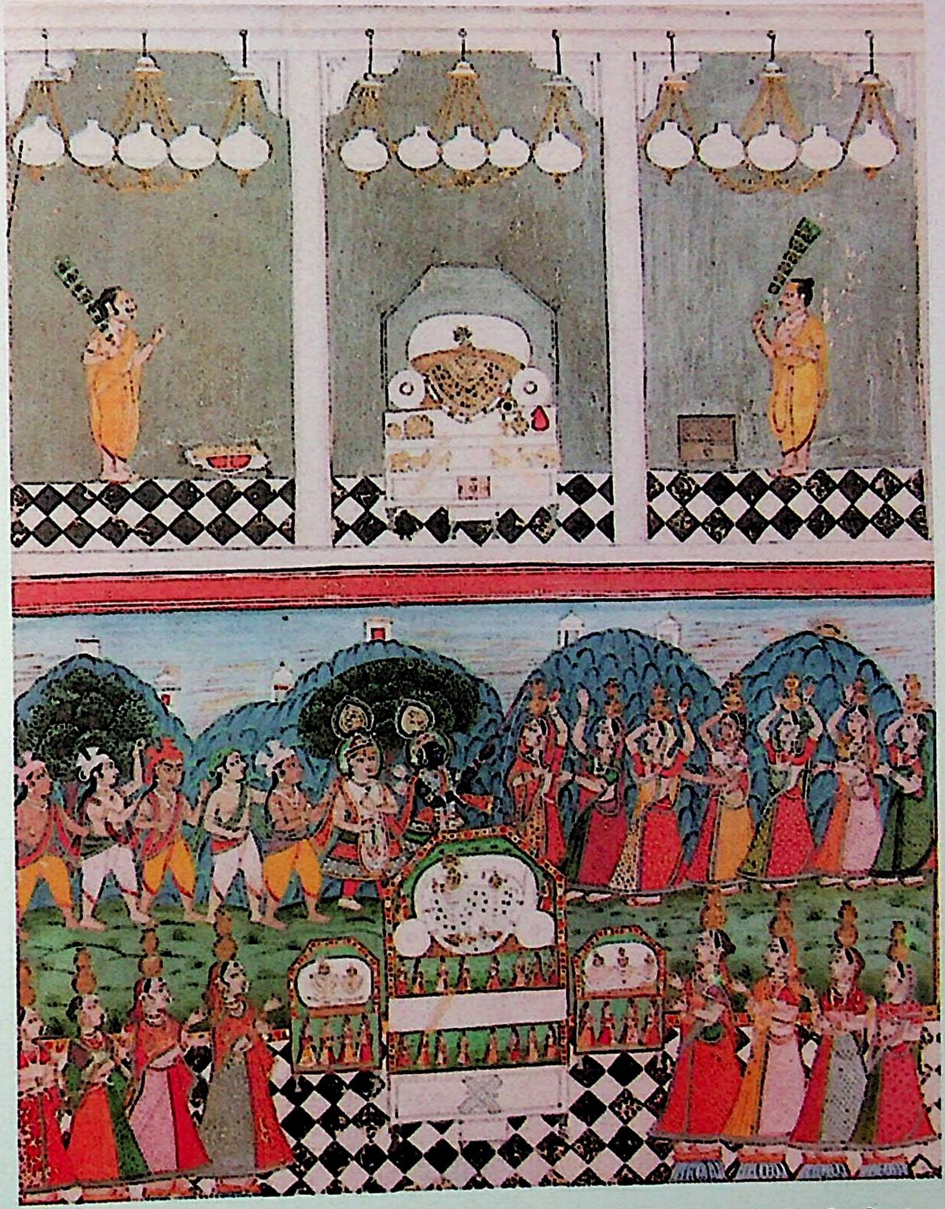
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे बसन्त को उत्सव भयो वाहि दिन पीछे डोलोत्सव
गोवर्धन पूजा के चौक की दालान में भयो वि० सं० १९२९



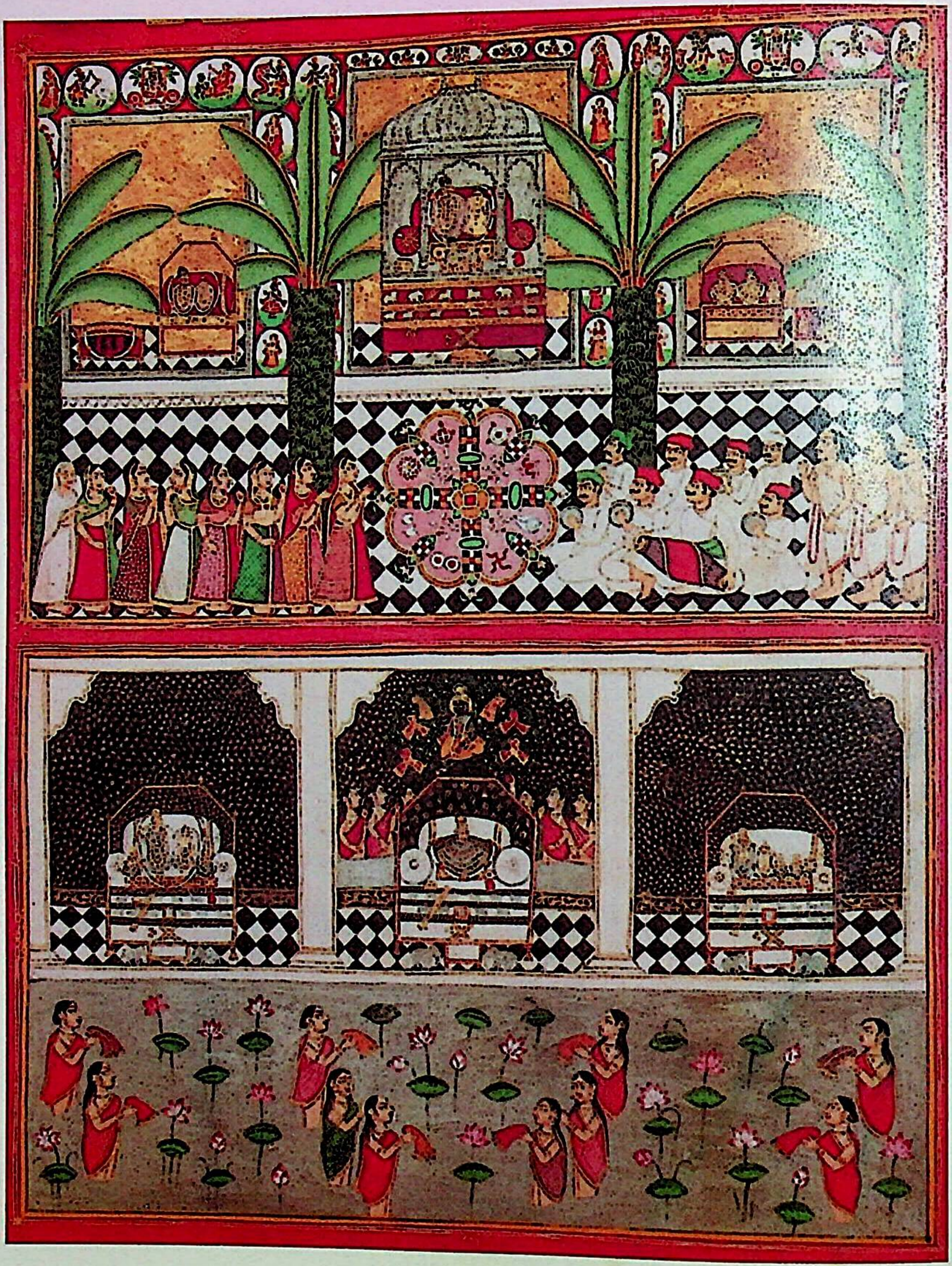
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे वैशाख के महिना को मनोरथ श्री मुकुन्दरायजी
के चौक में सुफेद फूल की तीन फूल मंडली भयी
वि० सं० १९२९ मि० चै० कृ० ११ बृहस्पतिवार



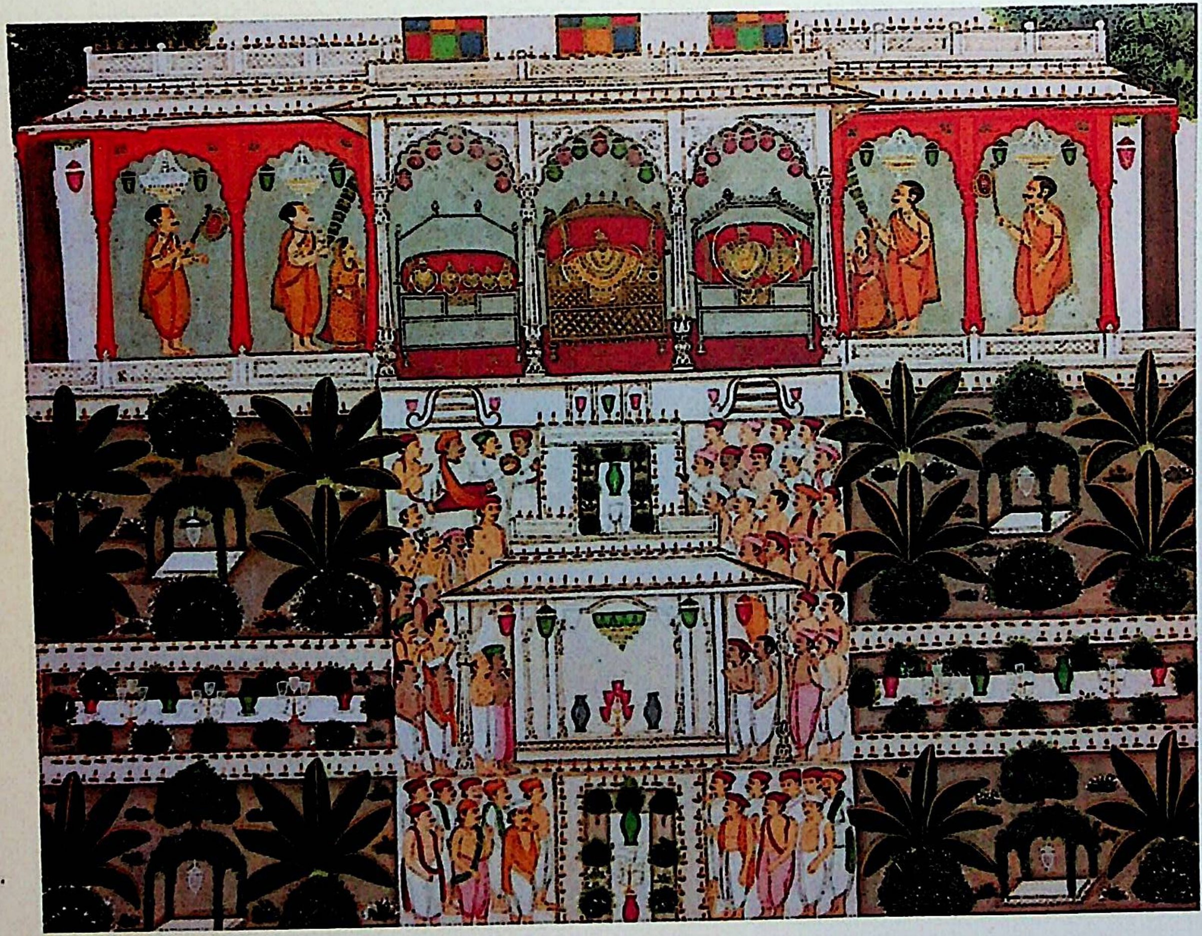
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे ग्रीष्मऋतु के मनोरथ में जलविहार
में चंदन के बंगला में विराजे – वि० सं० १९२९ मि० चै० शु० २
आषाढ़ के महिना को रथयात्रा को मनोरथ – मि० चै० शु० ३



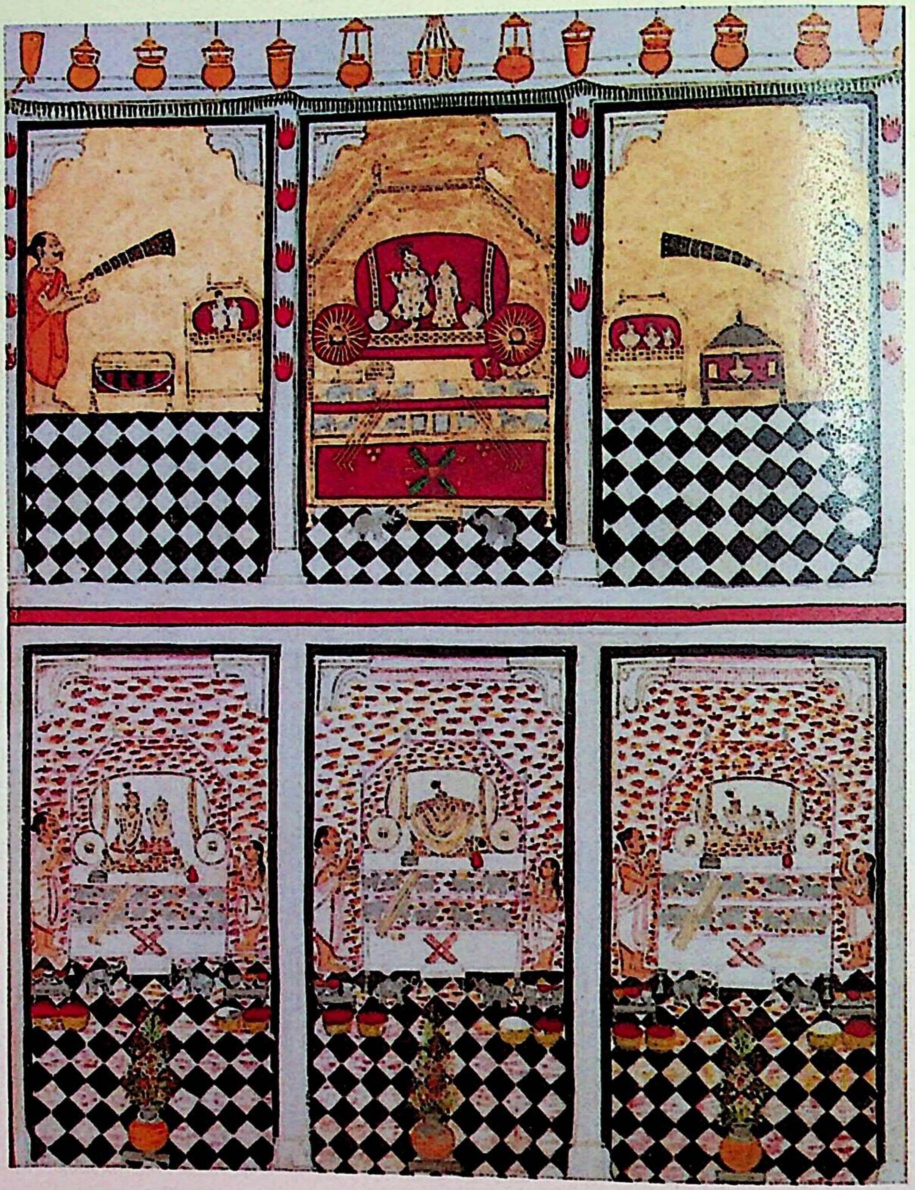
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे श्री मुकुन्दरायजी के दोहरो मंडान भयो, चौक में सुफेद घटा भई मोम की रोशनी भई वा दिन श्री गुसाईंजी को उत्सव भयो हतो। शरद् के उत्सव के दिन राजभोग के समय दान को उत्सव भयो तामें श्री गोपाललालजी विराजे



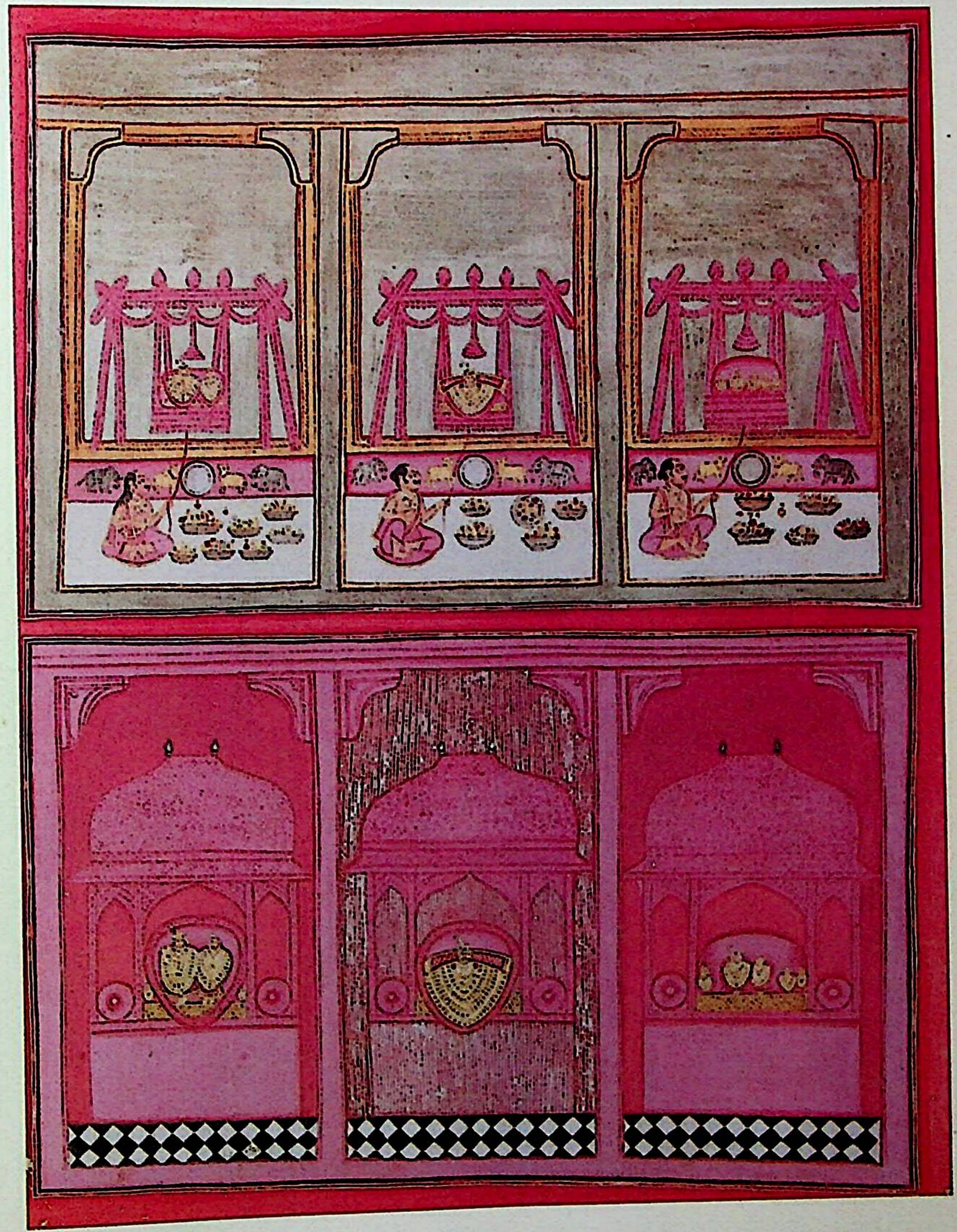
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे व्यावहुला को मनोरथ भयो तामें श्री गोपाललालजी एवं सब स्वरूप विराजे। चीरहरण को मनोरथ भयो तामें श्री मुकुन्दरायजी, श्री गोपाललालजी एवं सब स्वरूप विराजे



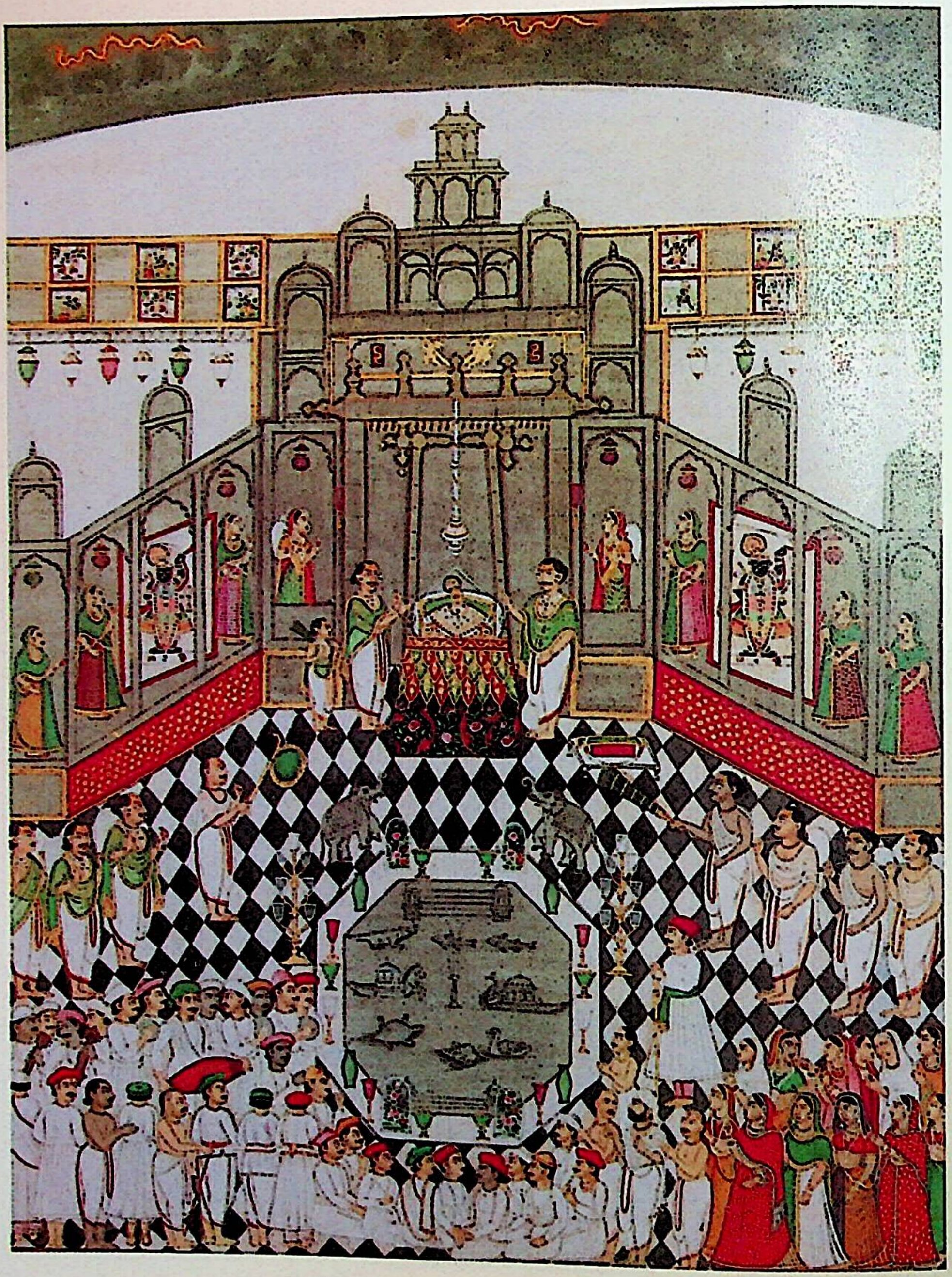
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे पीछे के बगीचा में
व्यावहुला को मनोरथ भयो। सब स्वरूप विराजे



श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे मि० चै० शु० दूसरी तीज गुरुवार
शिशिर ऋतु वा दिन श्री गुसाईंजी को उत्सव दोहरो मंडान भयो।
श्री गोपाललालजी पीली घटा में विराजे
मि० चै० शु० ४ शुक्रवार
श्री मुकुन्दरायजी के मंदिर में वसन्त पंचमी को उत्सव भयो। सब स्वरूप विराजे



श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे पीछे वाले बगीचा में
गुलाब के फूल के पालना भये। सब स्वरूप विराजे।
श्री मुकुन्दरायजी के मंदिर में गुलाबी घटा गुलाब की मंडली भयी। सब स्वरूप विराजे



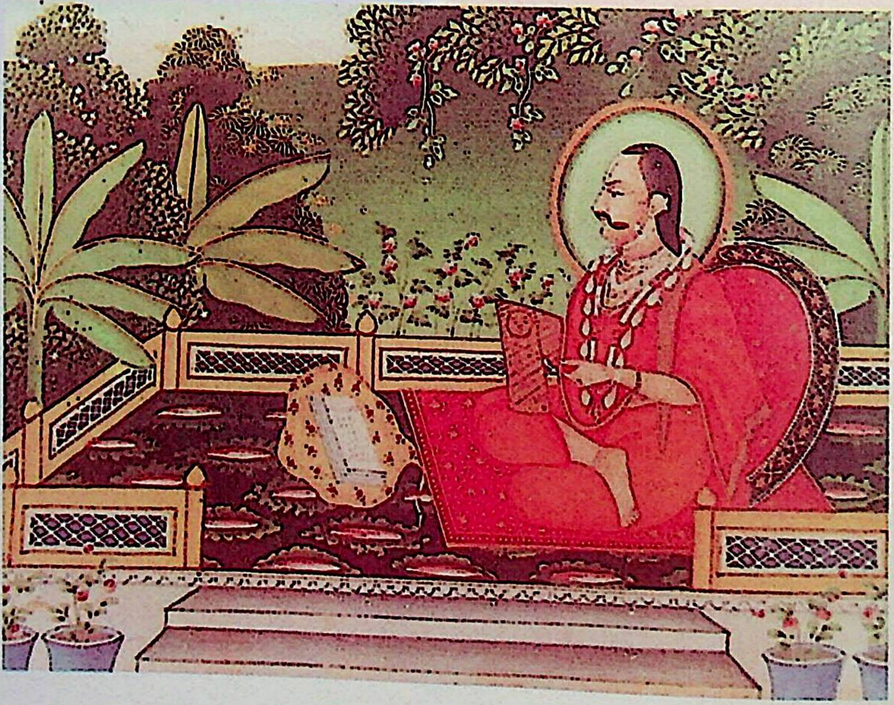
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे शीशमहल में हिंडोला भये।
श्री मुकुन्दरायजी विराजे



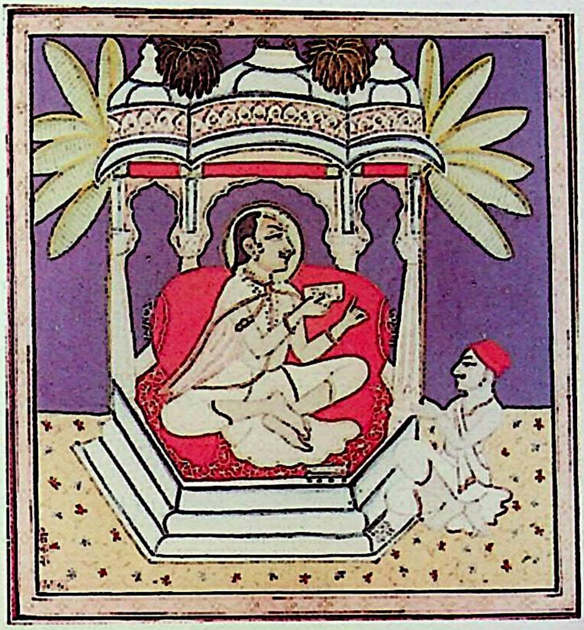
श्री श्यामा बेटीजी कृत छप्पन भोग के अवसर पे मि० चै० व० ७ रविवार भादों के महिना को जन्माष्टमी के पालना को नन्द महोत्सव को मनोरथ भयो। सब स्वरूप विराजे



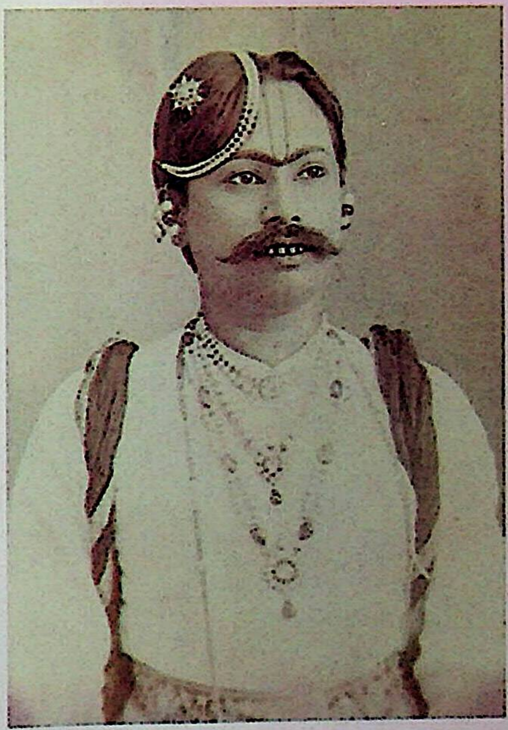
श्री वल्लभाचार्यचरण, श्री विठ्ठलनाथजी गुसाईंजी एवं सातो बालक



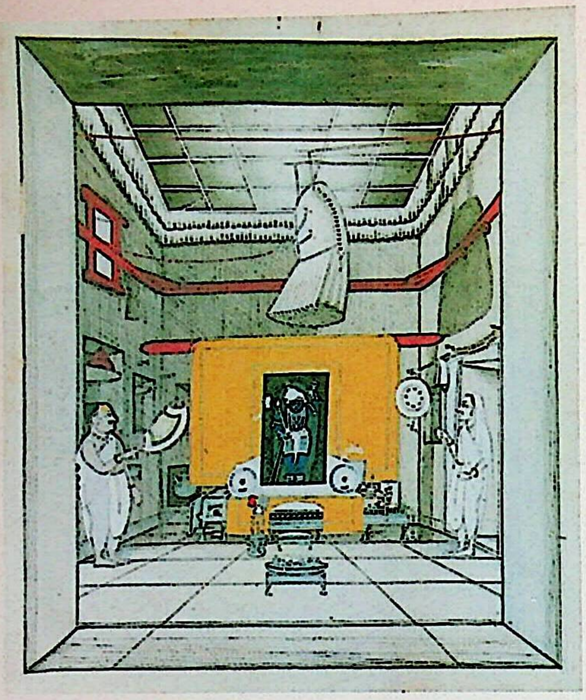
षष्ठगृहाधिपति श्री यदुनाथजी महाराज



षष्ठगृहाधिपति शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी महाराज विराजे हैं। सन्मुख में दासानुदास मन्नूजी



षष्ठगृहाधिपति श्री जीवनलालजी महाराज राजसी वेष में



श्रीनाथजी को राजभोग समय निज मंदिर में तिलकायित श्री गिरिधारीजी महाराज तथा षष्ठगृहाधिपति श्री जीवनलालजी महाराज, काशी



श्री जीवनलालजी महाराज (काशी) का बाल्यकाल



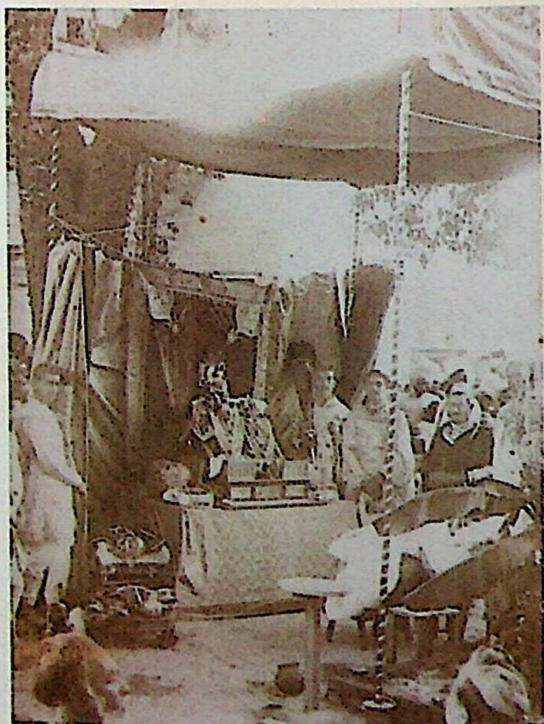
श्री जीवनलालजी महाराज के गोद में विराजमान श्री गिरिधरलालजी (बड़े लालजी)



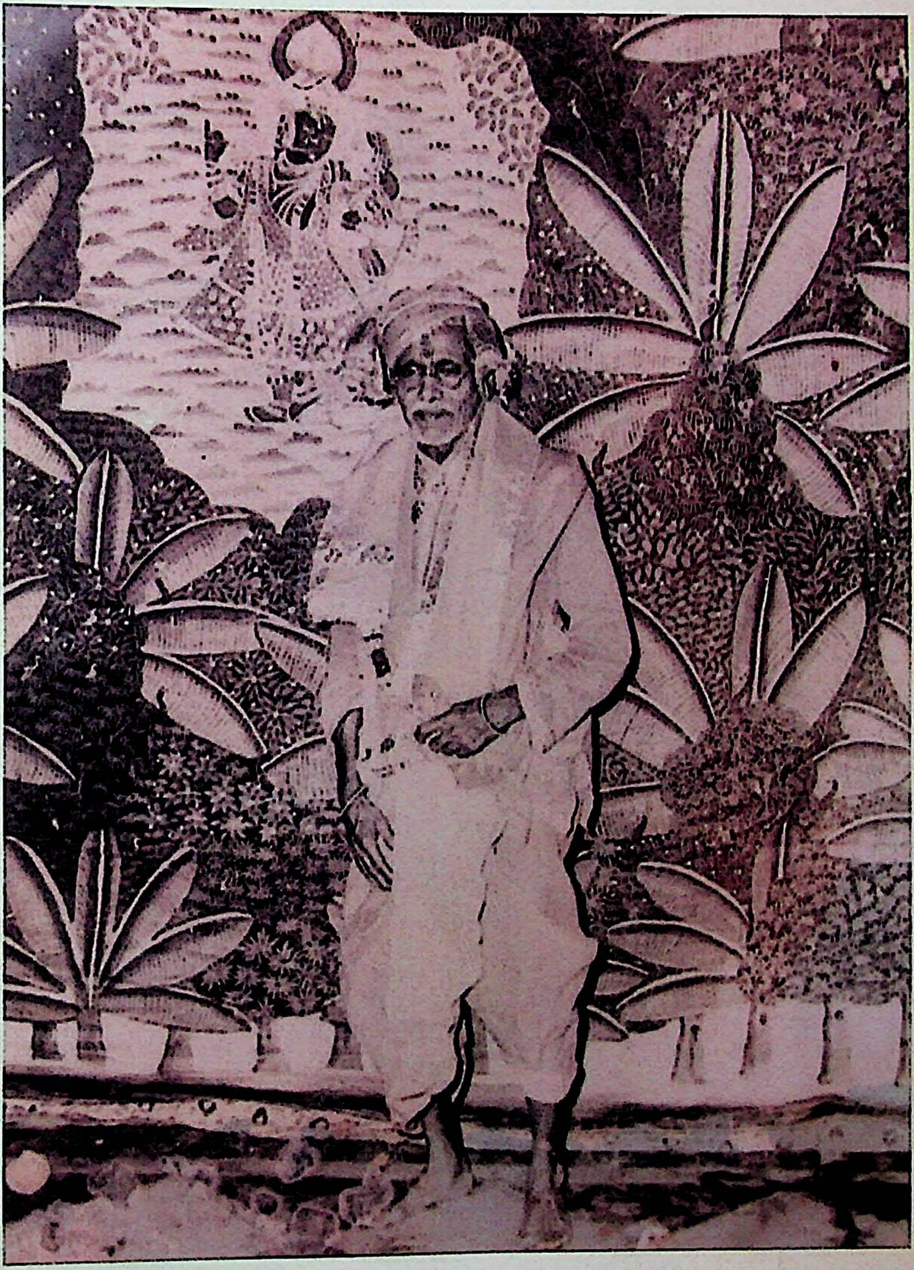
चित्र के मध्य में षष्ठगृहाधिपति श्री जीवनलालजी महाराज एवं उनके दाहिने काशी नरेश श्री ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहजी



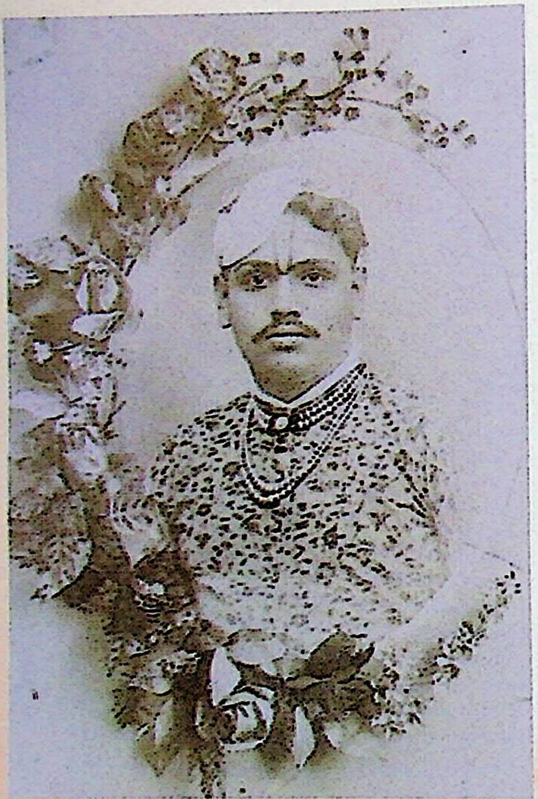
श्री गिरिधरलालजी महाराज काशीवालों की किशोरावस्था



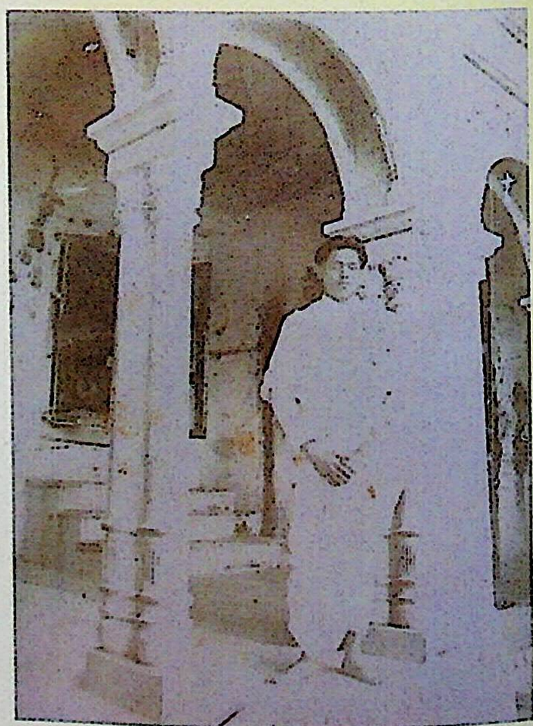
शेठ श्री गोविन्ददासजी, जबलपुर के निवास स्थान पर विराजमान ठाकुर श्री गोपाललालजी के मनोरथ विशेष पर श्री गिरिधरलालजी महाराज (काशी) पधारे



षष्ठगृहाधिपति नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के जन्मदिवस पर
मार्कण्डेय पूजन पश्चात् आपश्री वैष्णवन् को दर्शन का लाभ प्रदान करते हुए



श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की युवावस्था



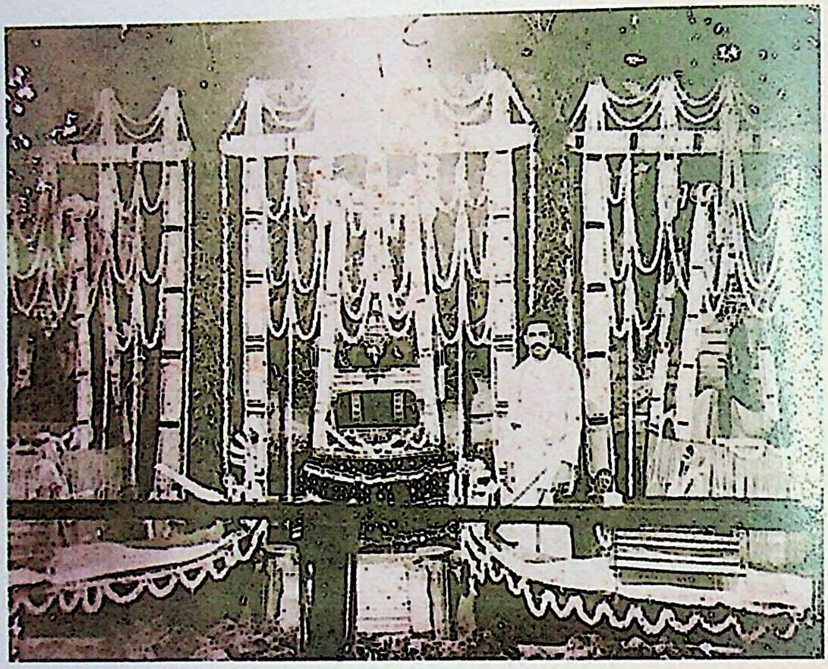
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री श्री गोकुल गोविन्द घाट श्री महाप्रभुजी बैठक में ठाड़े



प्रस्ताव स्थल पर विराजमान
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



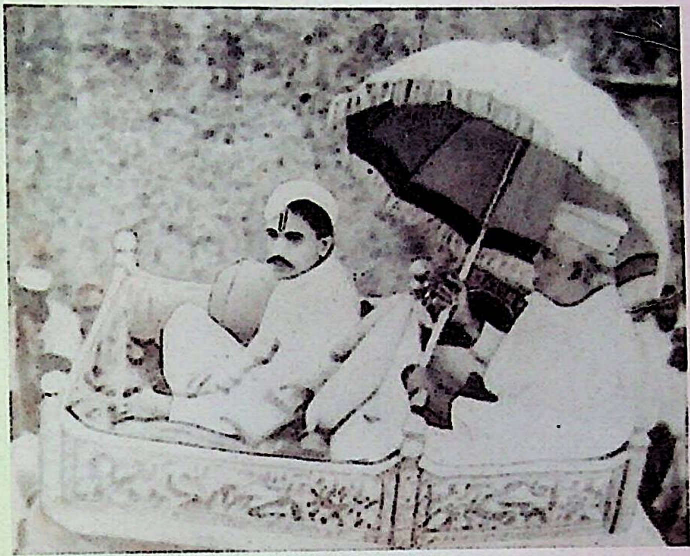
सिंघासन पर आसीन श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं
श्री शरद्वल्लभा बेटीजी तथा वैष्णवजन



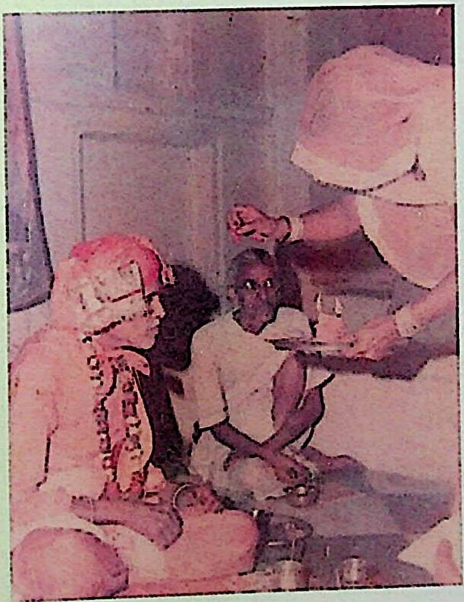
षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर में "श्री यमुना तट पर तीन हिंडोले" के
मनोरथ में ठाड़े श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



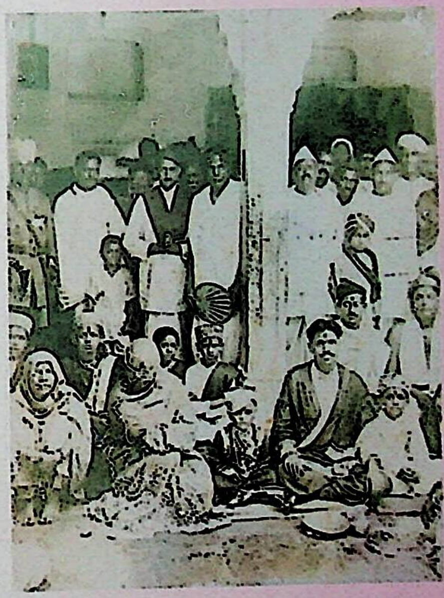
चरणाटधाम में बड़े तालाब पर नाव के मनोरथ में विराजे श्री महाप्रभुजी, श्री गुसाईंजी एवं
श्री गिरिराजजी, साथ में श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



विश्व प्रसिद्ध काशी के नाटीइमली भरत मिलाप में हाथी पर पधारते हुए षष्ठगृहाधिपति श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं आपश्री के पीछे छत्र लिए परम भगवदीय हरिदासजी



श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री जन्मदिवस पर मार्कण्डेय पूजन में विराजते। आपश्री के बाएं तरफ बैठे प० भ० जगनजी



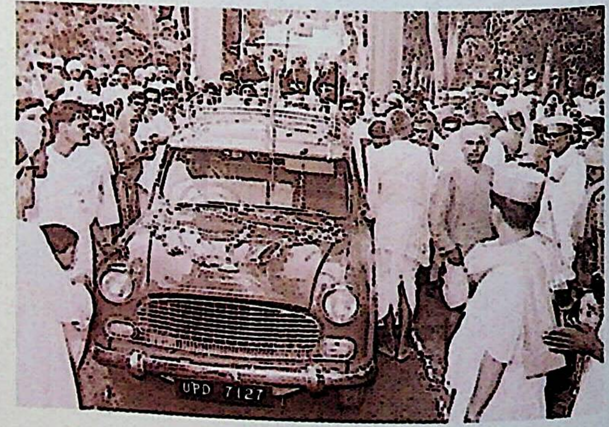
गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी के मुंडन प्रस्ताव के अवसर पर युगल स्वरूप ष० पी० धी० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजते हुये



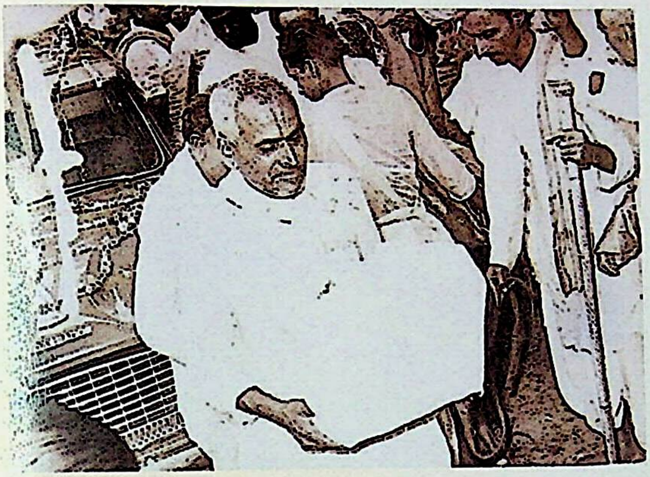
षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी वि० सं० २०२३ में श्री नाथद्वारा सप्तस्वरूपोत्सव में पधारते हुये गोलघर, काशी में शोभायात्रा की झाँकी



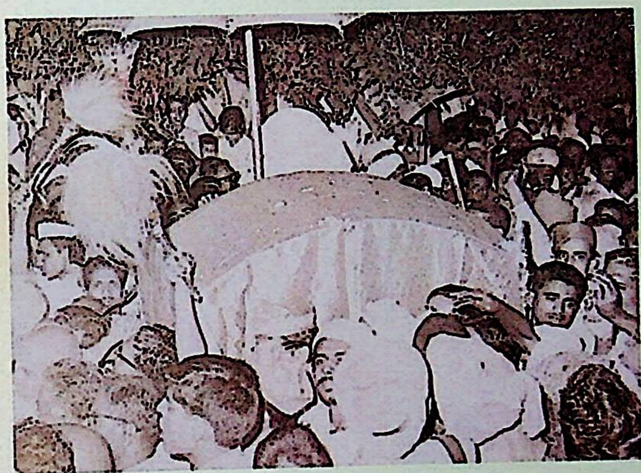
श्री ठाकुरजी जिस बस में विराजकर श्रीनाथद्वारा पधारे



श्रीनाथद्वारा में षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी का पधारना



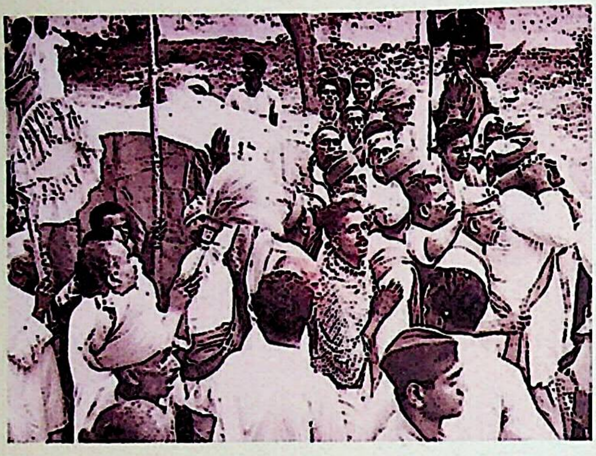
श्रीनाथद्वारा में कार में से पधारते हुये श्री ठाकुरजी



श्रीनाथद्वारा लालबाग में सुखपाल में पधारते हुये श्री ठाकुरजी

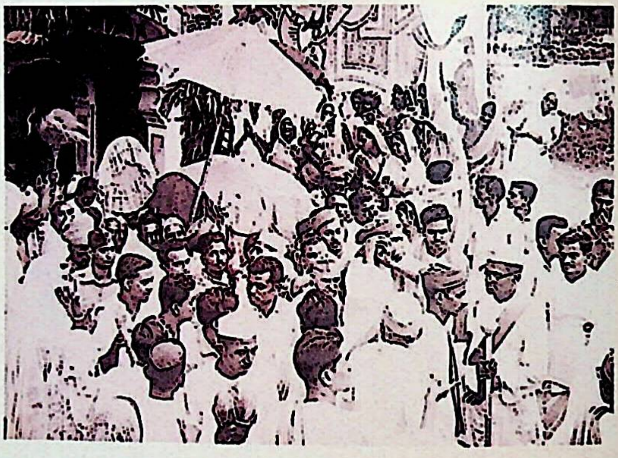


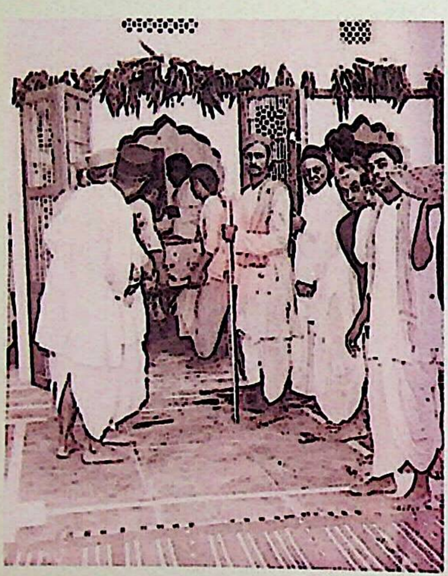
लालबाग से शोभायात्रा निकलती हुयी



लालबाग से श्रीनाथद्वारा शहर पधारते हुए

श्रीजी मंदिर में षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी का पदार्पण

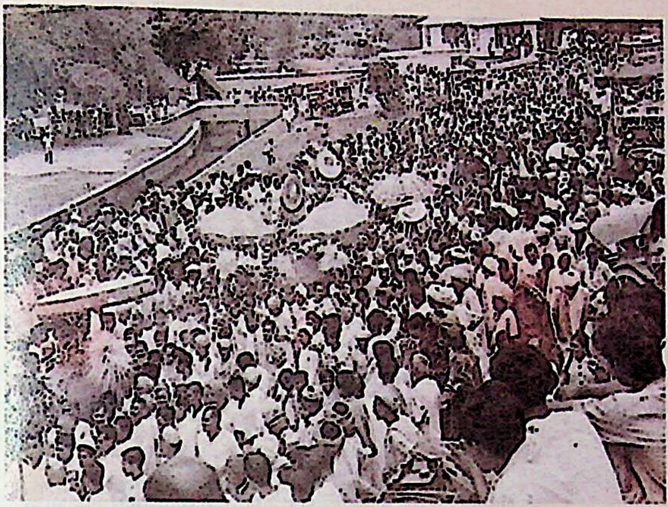




प्रीतमपोल, श्री गोकुलनाथजी मंदिर में पधारते हुए

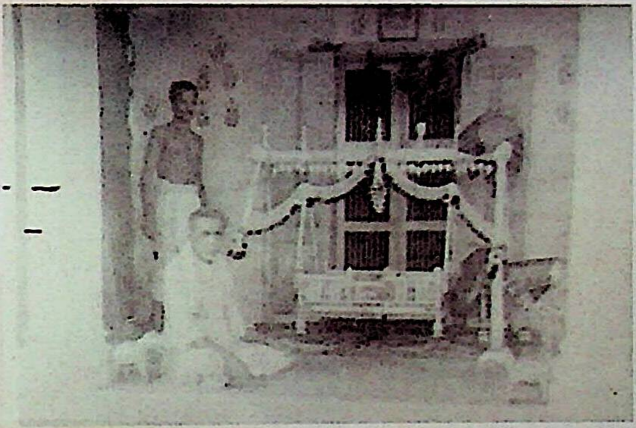


निज मंदिर में पधारते हुए श्री झाँपीजी



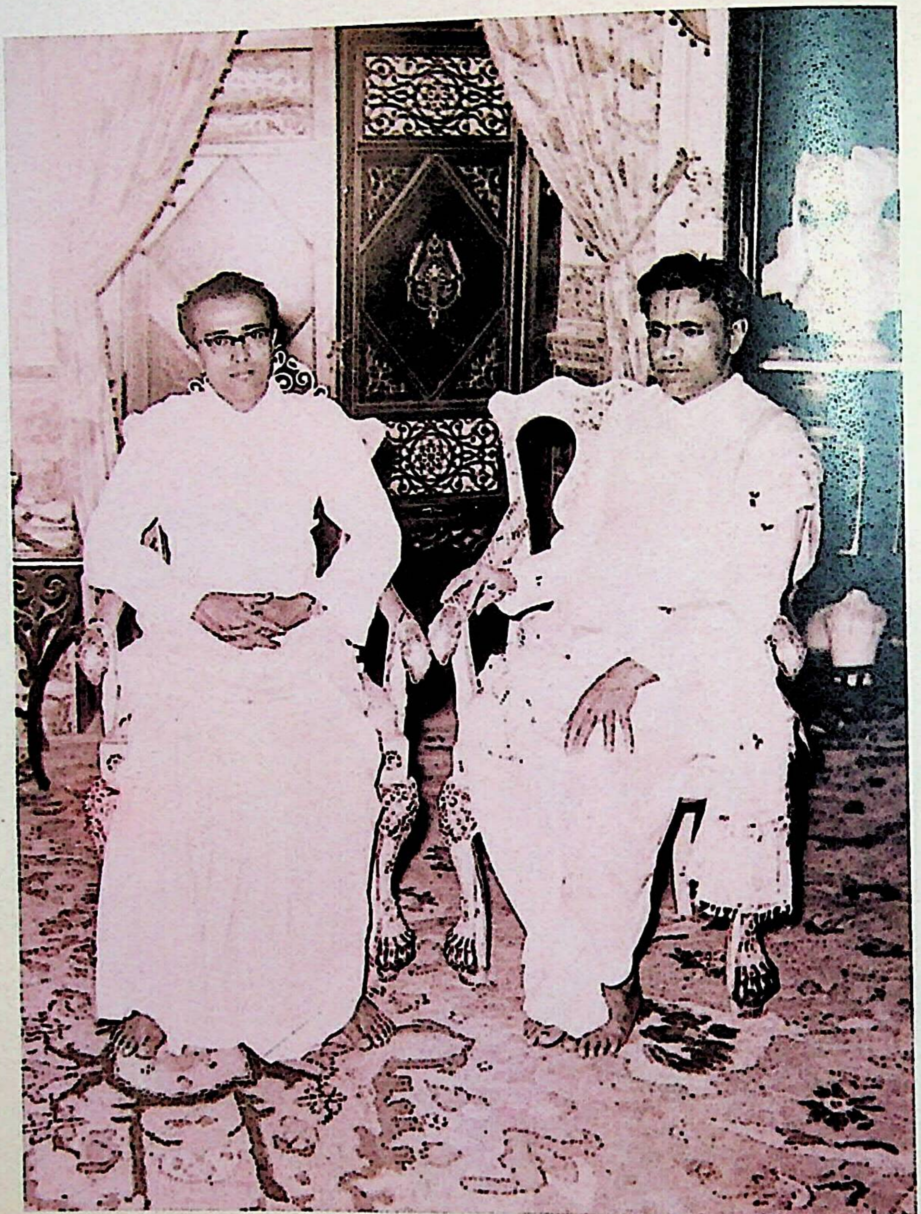
बगीचा में मनोरथ में पधारते हुए सप्तस्वरूप

श्रीनाथ द्वारा षष्ठपीठ श्री मुकुन्दरायजी मंदिर में हाथी दाँत के पालना के पास में विराजे श्री महाराजश्री एवं पीछे बड़े मुखिया श्री गिरिधरजी

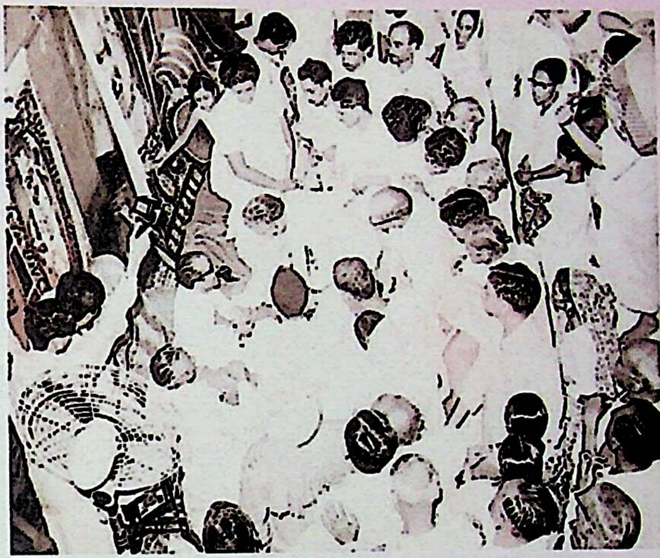




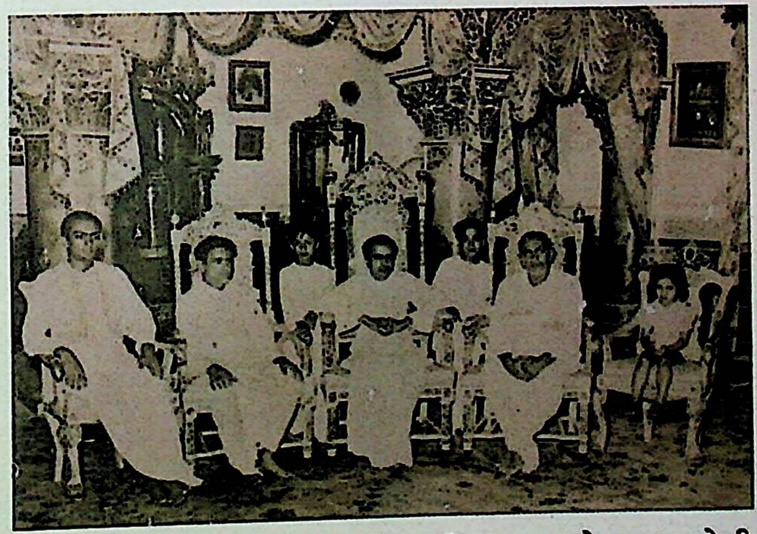
गो० तिलकायित नि० ली० श्री गोविन्दलालजी महाराज के साथ ष० पी० धी० नि० ली० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज विराजमान



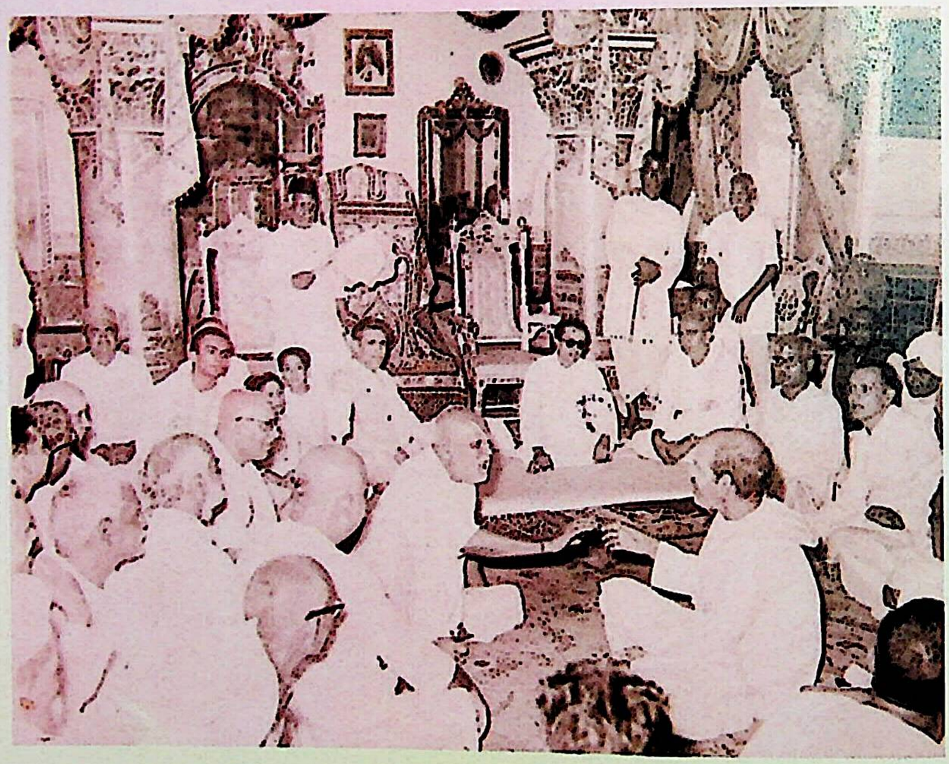
प्रधान गृहाधिपति पूज्यपाद गो० तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज एवं षष्ठगृहाधिपति पूज्यपाद गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज मोतीमहल श्रीनाथद्वारा में विराजते हुये



तिलकायित श्री गोविन्दलालजी महाराज को श्रीनाथद्वारा मोतीमहल में पवित्रा धराते हुए षष्ठगृहाधिपति श्री मुरलीधरलालजी महाराज एवं अन्य गोस्वामी बालक



पुष्टिमार्गीय वैष्णवसभा, षष्ठपीठ, काशी पण्डित सम्मेलन, मोतीझील, दिनाङ्क १४-८-१९५७, मध्य में प्रधान गृहाधिपति गो० श्री गोविन्दलालजी महाराज तिलकायितश्री, बायीं ओर खड़े चि० गो० दाऊजी, प्रथमलालजी और दाहिने ओर खड़े चि० गो० श्री राकेशजी, द्वितीय लालजी, बायीं ओर कुर्सी पर विराजमान तृ० गृ० धि० गो० श्री बृजभूषणलालजी महाराज और उनके पास कुर्सी पर विराजमान तिलकायितश्री के चि० बेटीजी, दाहिने ओर कुर्सी पर विराजमान ष० गृ० धि० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री एवं उनके पास कुर्सी पर चि० श्री बृजेशकुमारजी



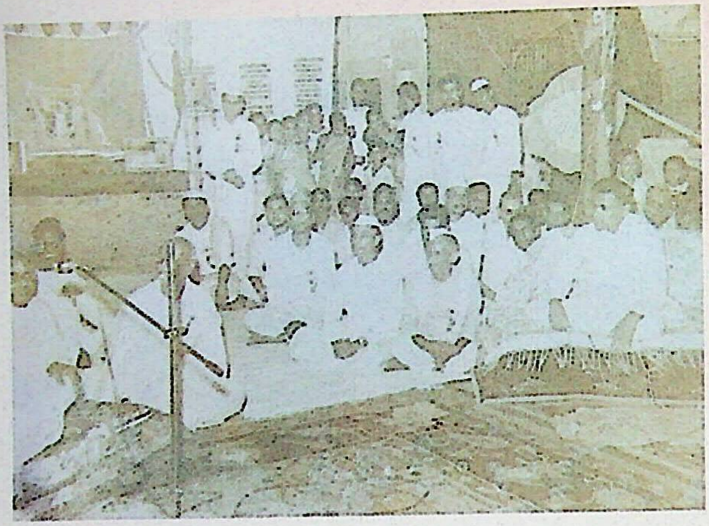
मोतीझील काशी में विद्वत् गोष्ठी में विराजमान तिलकायितश्री एवं
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री व अन्य आचार्य बालक



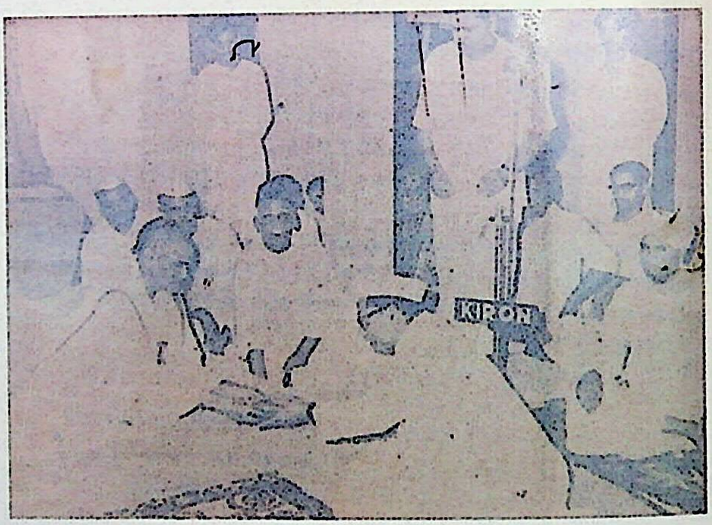
श्रीनाथद्वारा से वापसी में हरदोयी में प० भ० जगनजी के निवास स्थान पर
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजमान



काशी की विराट धर्मसभा में विराजित ष० गृ० धि० गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री,
तृ० गृ० धि० गो० श्री बृजभूषणलालजी महाराज कोटावाले एवं अन्य
आचार्य तथा मठाधीश, विद्वत् समुदाय एवं वैष्णवगण



श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के अध्यक्षता में ष० पी० श्री गोपाल मंदिर प्राङ्गण में आयोजित श्री वल्लभाचार्यचरण प्राकट्योत्सव की वृहद् सभा



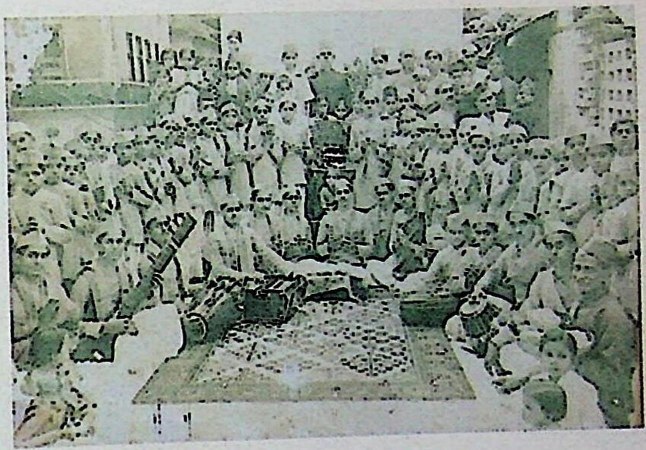
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री श्री मद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान के माध्यम से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में वल्लभ चेअर की स्थापना पर प्रस्तोता श्री पं० कुबेरनाथ शुक्ल को पच्चीस हजार मुद्राएं प्रदान करते हुये



श्री मद्वल्लभ सिद्धान्त सेवा संस्थान के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता करते हुये श्री मुरलीधरलालजी महाराज। इस संस्थान के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन काशी के मूर्धन्य विद्वान् पं० श्री राजराजेश्वर शास्त्री द्राविड द्वारा हुआ



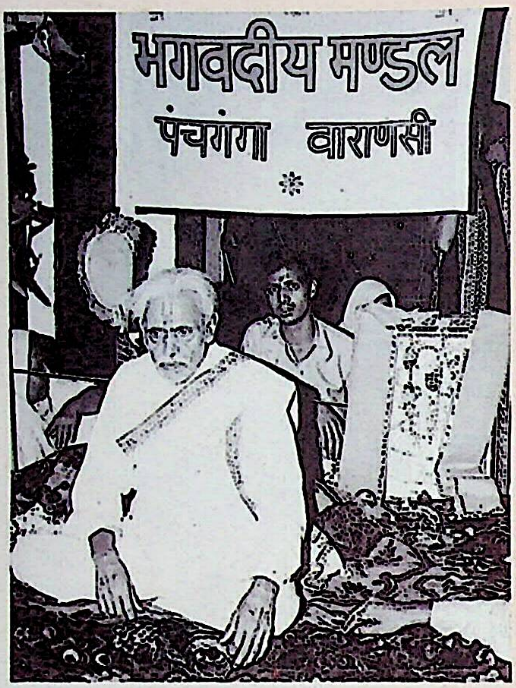
श्री वल्लभ युवक परिषद्, काशी के शारदीय नवरात्र के अवसर पर श्री बड़े महाराज के मन्दिर में प्रवचन करते हुए श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



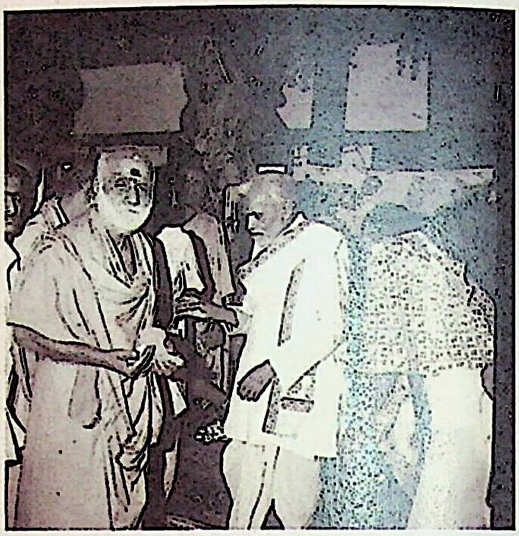
श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के संरक्षण में नियमित अष्टछाप कीर्तन पाठशाला में भाग लेते हुए आबाल-वृद्ध वैष्णवगण



काशी की प्राचीन भगवद् मण्डली परम्परा में श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री विराजमान



भगवदीय मण्डल में विराजमान श्री महाराजश्री



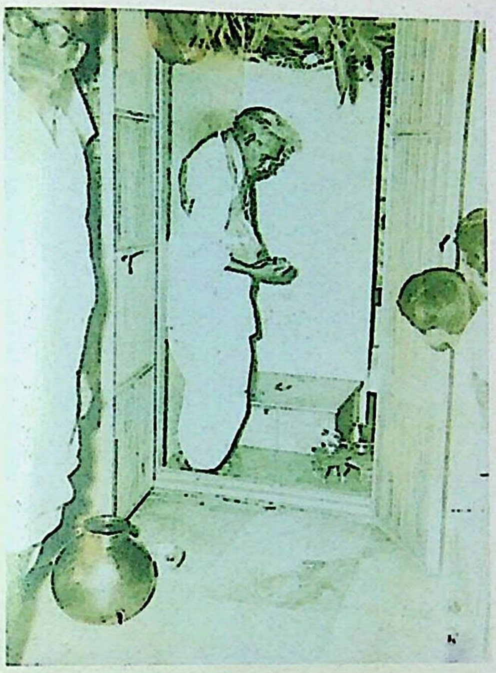
भ० म० के भागवत सप्ताह में श्री लक्ष्मणजी व्यास को प्रसाद देते हुए श्री महाराजश्री

मध्य में श्री मुरलीधरलालजी महाराज। आपश्री के दाएँ श्री वैकुण्ठनाथ शास्त्री 'तदीय' और बायें पं० श्री केदारनाथजी जेतली (वि० सं० २०३५)

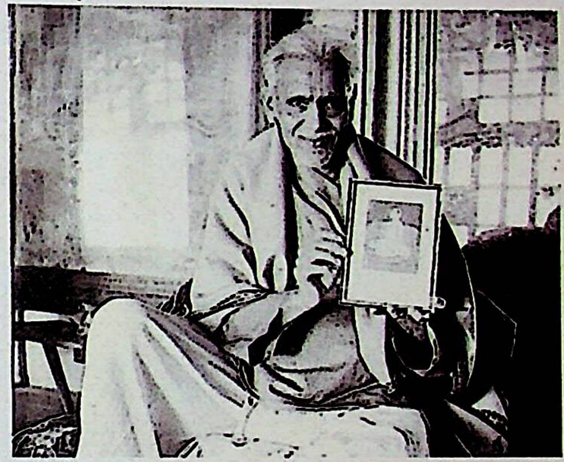




काशी की विद्वत् सभा में पधारते हुये महाराजश्री



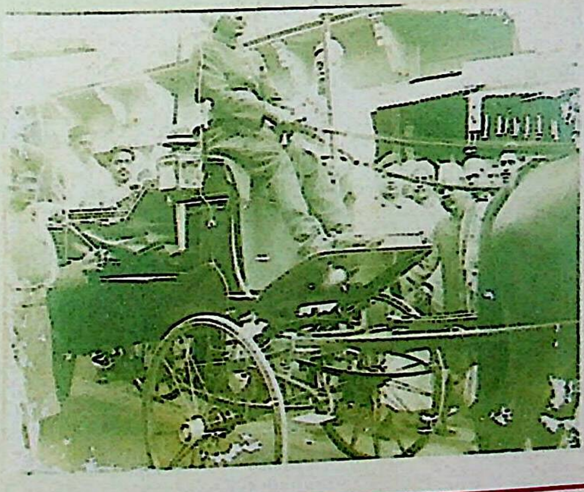
श्री महाप्रभुजी के उत्सव पर पञ्चगङ्गाघाट बैठक, काशी में दुग्धस्नान कराते हुये श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



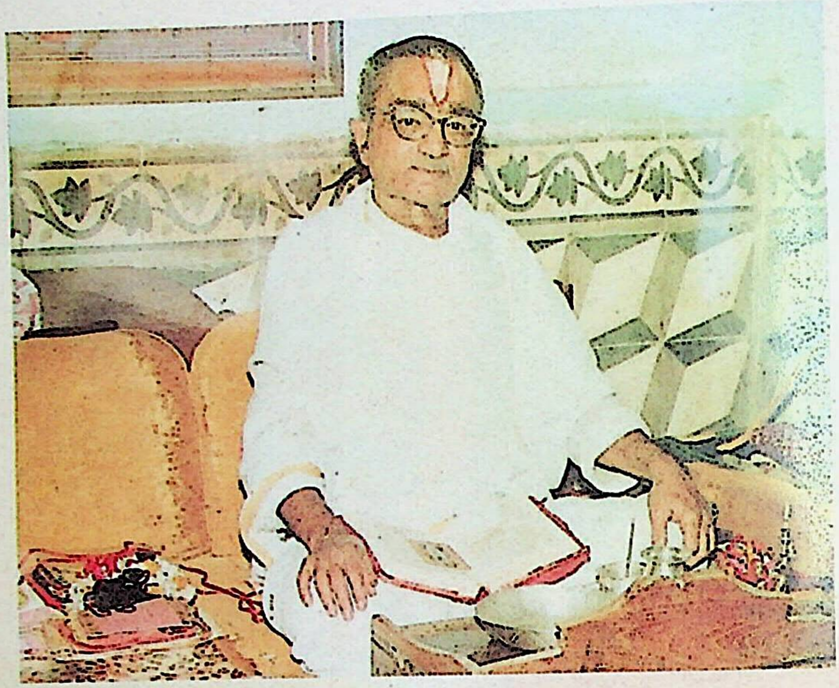
शीशमहल में विराजकर शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधरजी के चित्र का दर्शन कराते हुये



श्री महाराजश्री से चर्चा करती हुई श्रीमती मेरी मेकडोनल्ड (शिकागो, यु.एस.ए.)



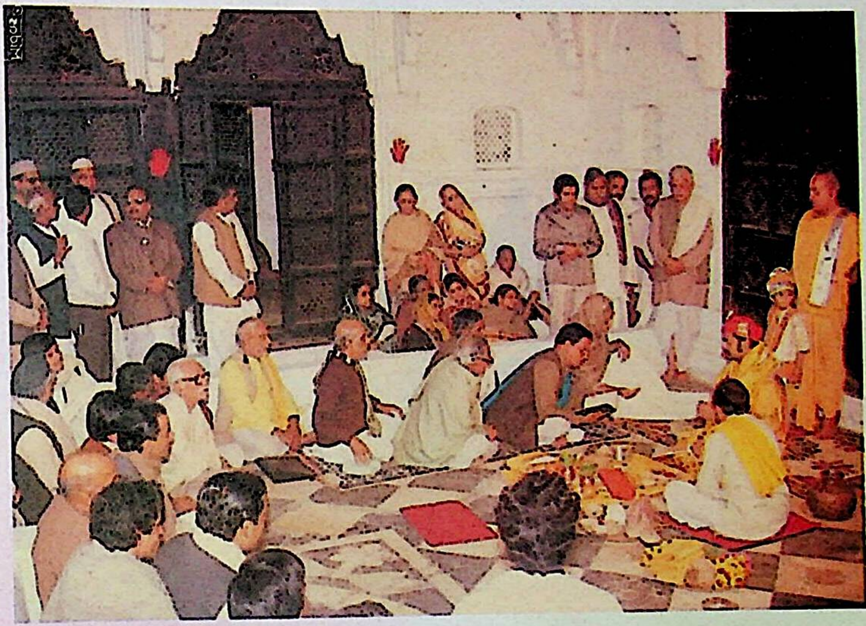
कलकत्ता कोठी, बगीचा आशापुर बग्घी पर पधारते श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री



गो० श्री व्रजभूषणलालजी, महाराज, चांपासनी, जामनगर, नडीयाद



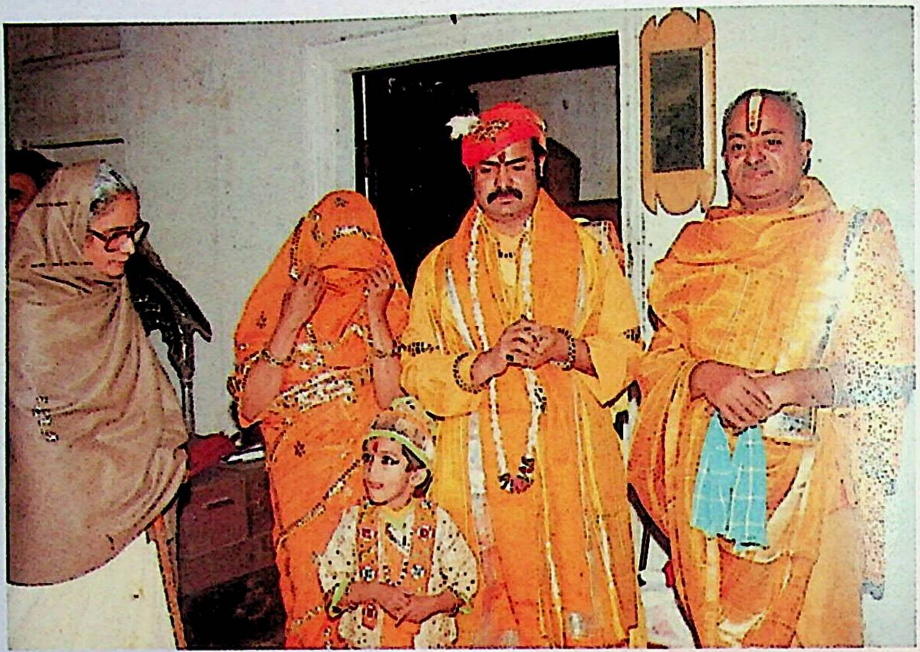
गो० श्री व्रजभूषणलालजी महाराजश्री के लालजी १. गो० श्री विट्ठलनाथजी, २. गो० श्री हरिरायजी, ३. गो० श्री व्रजरत्नलालजी, ४. गो० श्री श्याममनोहरजी, ५. गो० श्री नवनीतलालजी, ६. गो० श्री बालकृष्णलालजी



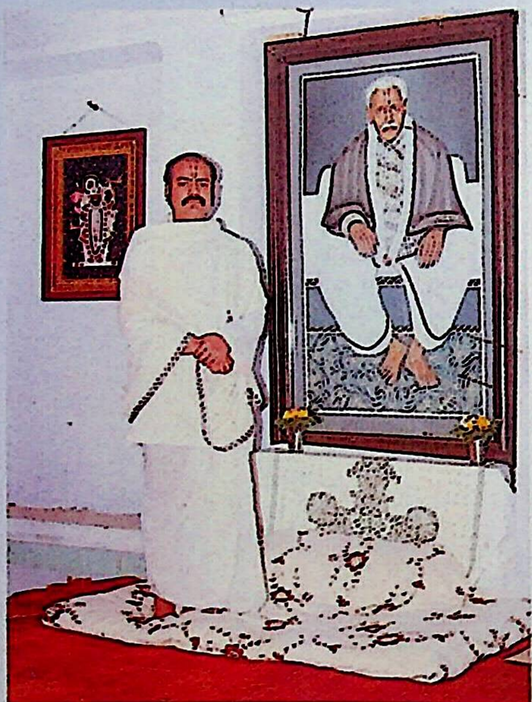
षष्ठगृह, काशी की गादी पर श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री की
तिलकविधि करती हुई गो० श्री शरद्‌वल्लभा बेटीजी



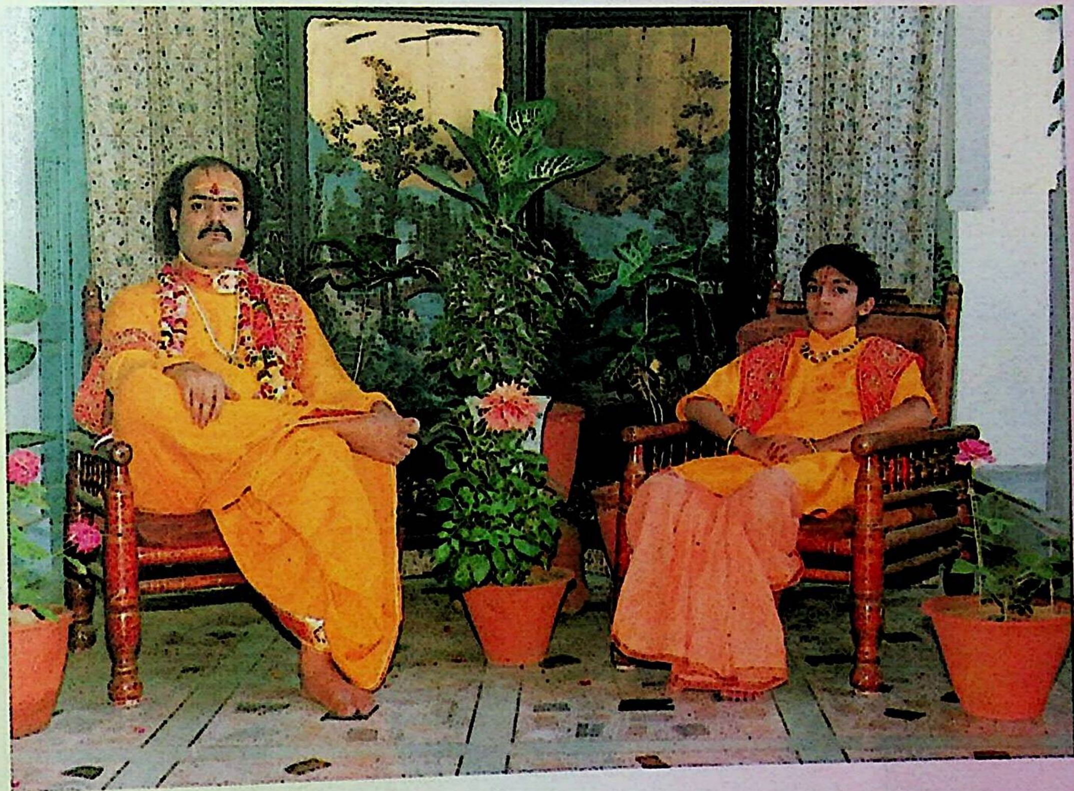
तिलकविधि में शु० मा० श्री गिरिधरजी महाराजश्री की गादीजी
के गोद विराजने के अवसर का चित्र



षष्ठगृह, काशी की गादी पर श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री का तिलक हुआ उस अवसर का चित्र - गो० श्री शरद्वल्लभा बेटीजी महाराज के सन्मुख में ज्येष्ठभ्राता गो० श्री विट्ठलनाथजी, ष० पी० धी० गो० श्री श्याममनोहरजी महाराजश्री एवं अ० सौ० राधिका बहूजी तथा चि० प्रियेन्दु बावा



श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री की छबि के निकट विराजमान ष० पी० धी० गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज, 'षष्ठपीठ' काशी



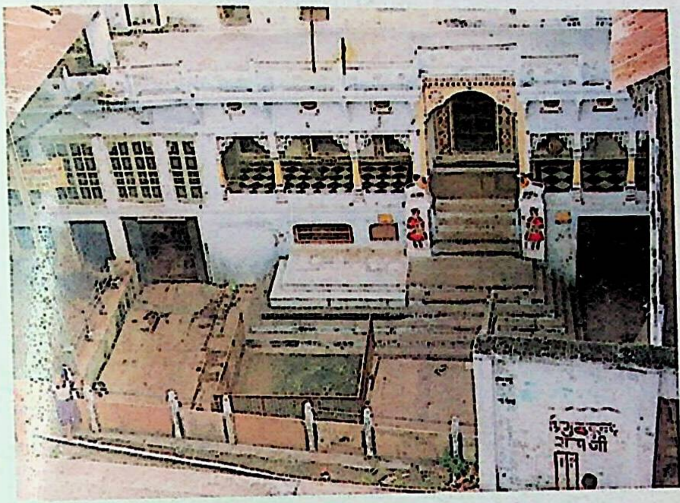
ष० पी० धी० गो० श्री श्यामसनोहरजी महाराज एवं चि० गो० श्री प्रियेन्दु बावा



श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर, षष्ठपीठ, काशी का नगाड़खाना



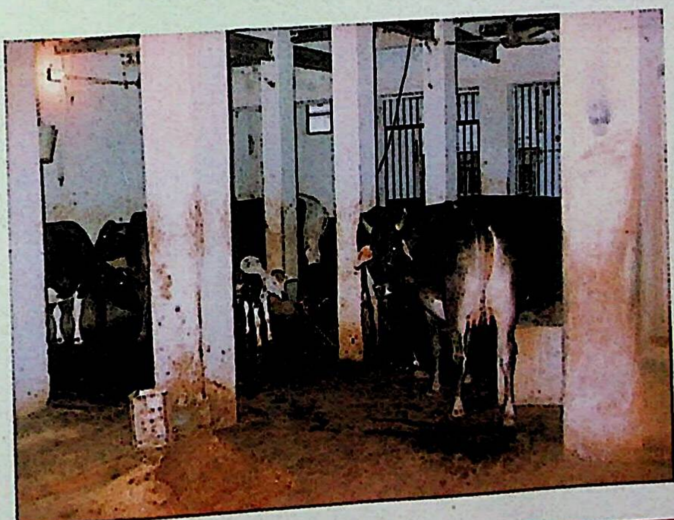
षष्पीठ काशी श्री गोपाल मंदिर का एक भव्य दृश्य



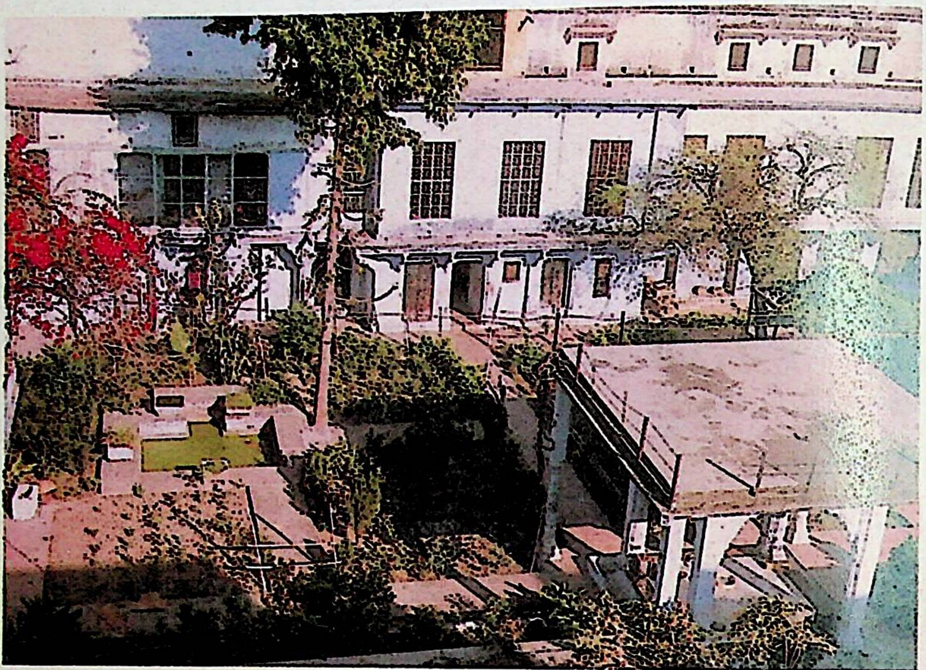
श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर सिंहपौर-गोवर्धन चौक, ढोली पटिया

कृष्ण भण्डार कार्यालय, षष्ठपीठ श्री गोपाल मंदिर, काशी





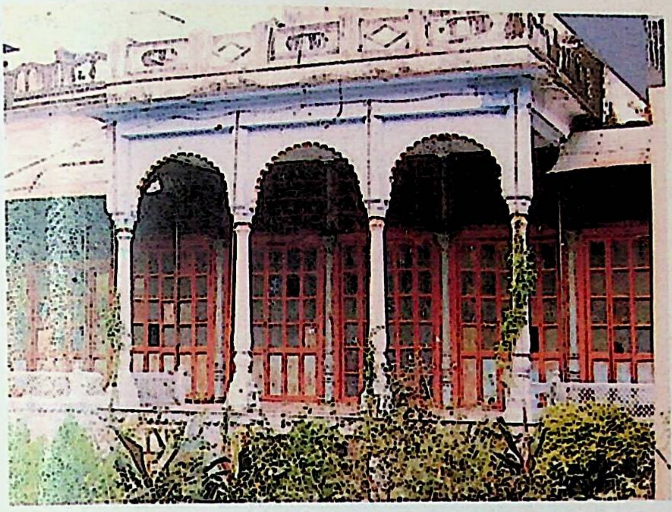
षष्ठपीठ श्री गोपाल मन्दिर गौशाला



षष्ठपीठ श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर के बगीचे का एक विहङ्गम दृश्य

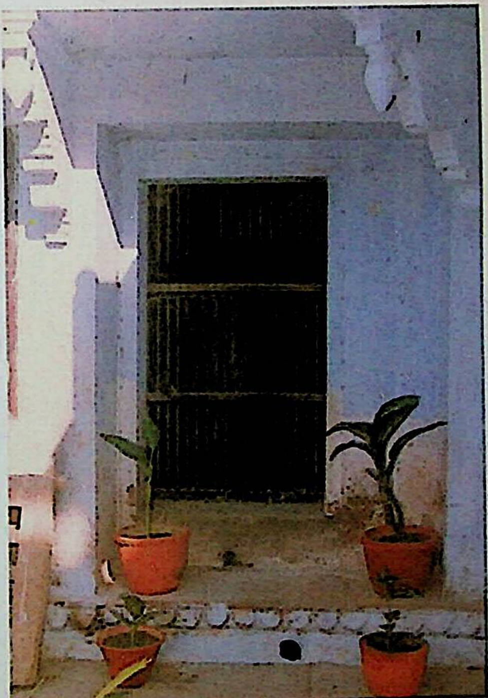


षष्ठपीठ काशी श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर परिसर स्थित
गो० श्री तुलसीदासजी की गुफा जिसमें गोस्वामीजी ने
बैठकर विनयपत्रिका की रचना की



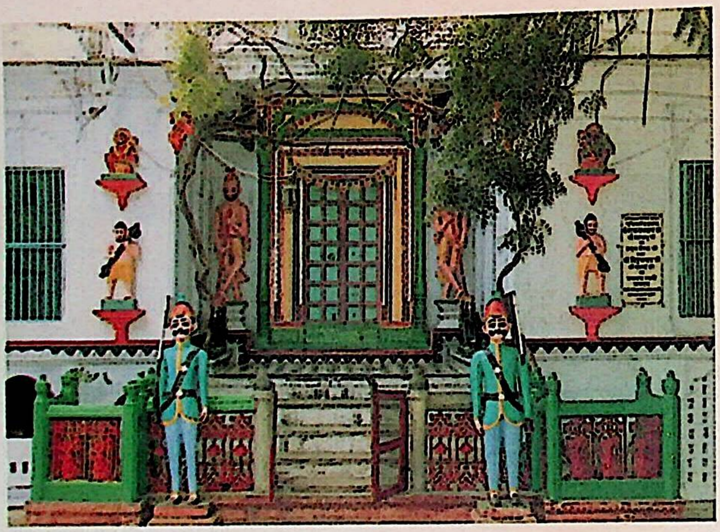
षष्ठपीठ काशी श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर का प्राचीन शीशमहल

षष्ठपीठ काशी श्री मुकुन्दरायजी श्री गोपाललालजी मंदिर परिसर स्थित अष्टछाप भक्त कवि श्री नंददासजी की गुफा जिसमें श्री नंददासजी ने बैठकर भ्रमरगीत की रचना की

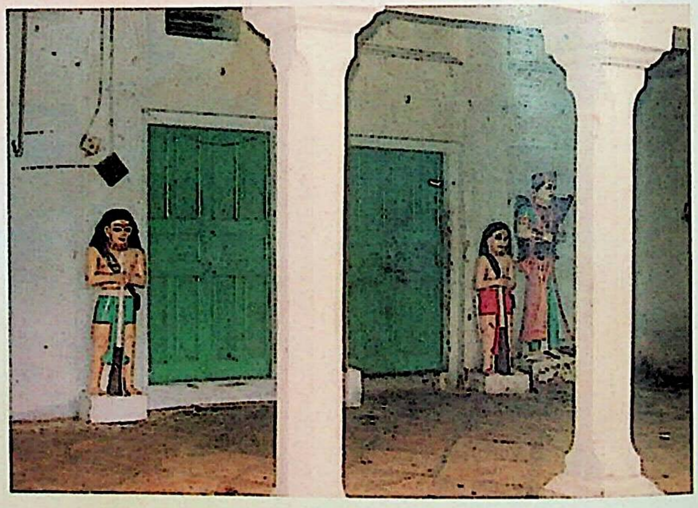




चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक का मुख्य द्वार व नगाड़खाना



चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक का सिंहपौर एवं ढोलीपटिया



ष०पी०धी०गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज का चरणाटधाम स्थित बैठकजी कक्ष



चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी बैठक का एक दृश्य



चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी
श्री गुसाईंजी के निज बैठक का द्वार



चरणटधाम बैठकजी स्थित श्री आचार्यकूप



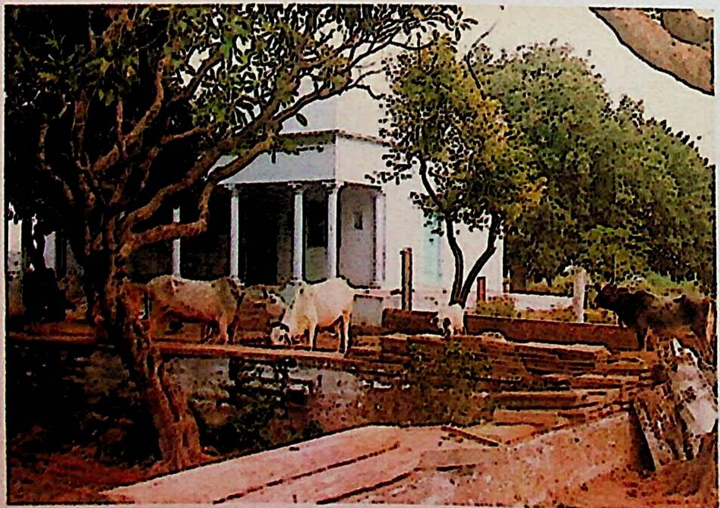
चरणटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी
श्री गुसाईंजी के बैठक की निकुंज



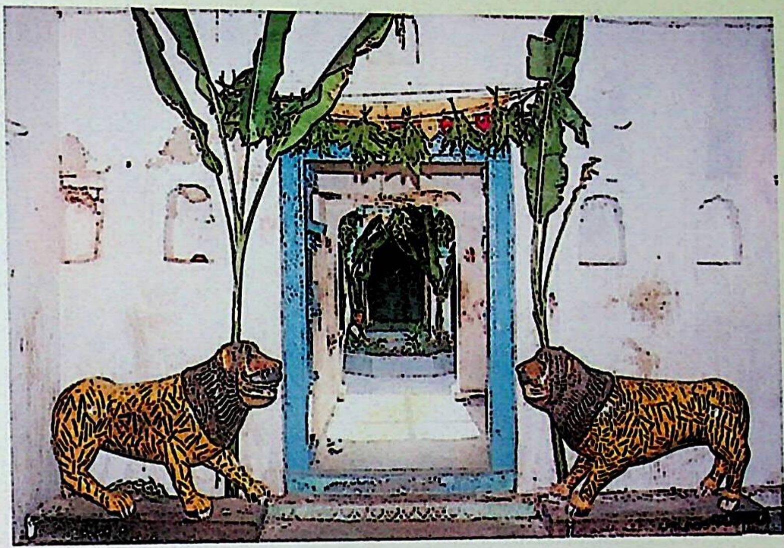
चरणाटधाम स्थित श्री महाप्रभुजी श्री गुसाईंजी के बैठक की कमल तलैया एवं बारद्वारी का एक विहङ्गम दृश्य



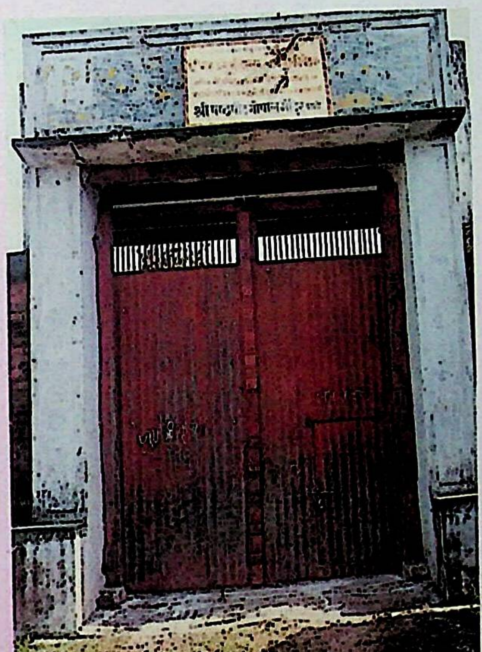
चरणाटधाम स्थित श्री गिरिधरजी महाराज सत्संग कक्ष



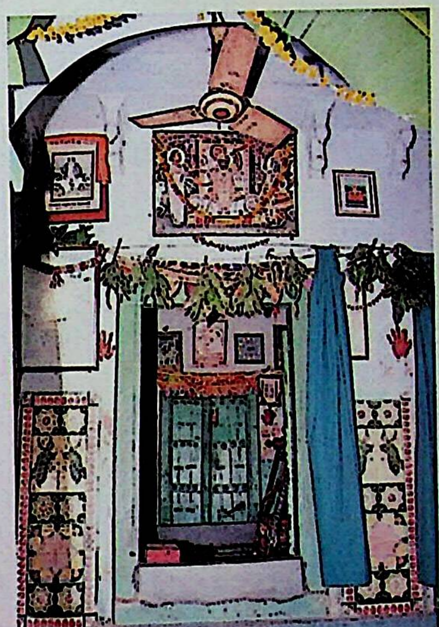
चरणाटधाम स्थित बैठकजी परिसर में विचरण करती हुई बैठकजी की गौएं



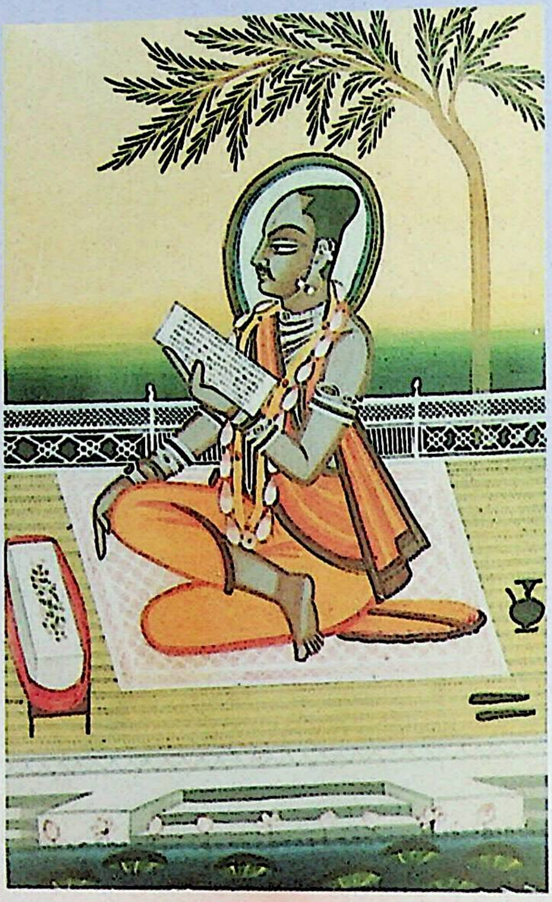
श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल का सिंहपौर



श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक,
अडैल का मुख्य द्वार



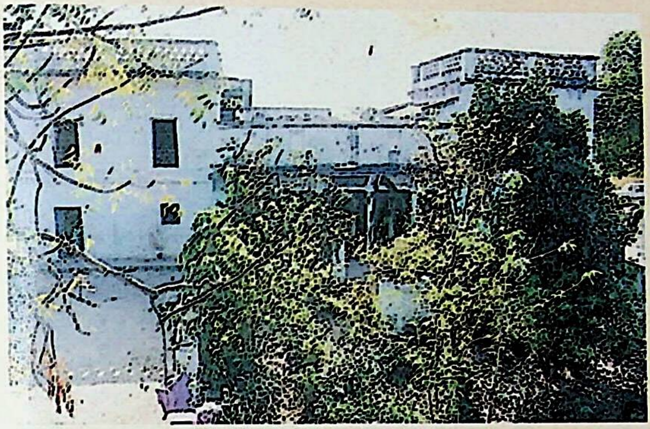
अडैल बैठक का निजमन्दिर द्वार



चतुर्थलालजी गो० श्री गोकुलनाथजी
अडैल बैठक-प्राकट्य वि० सं० १६०८ मि० मार्ग० शु० ७



श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल कमलचौक



श्री वल्लभाचार्यजी की बैठक, अडैल का एक विहङ्गम दृश्य



अडैल-आचार्यश्री की बैठक, प्राचीन कमल तलैया



जतीपुरा-श्री यदुनाथजी की बैठक श्रीगिरिराज तरहटी



निज मन्दिर श्री मुकुन्दरायजी,
श्रीनाथद्वारा



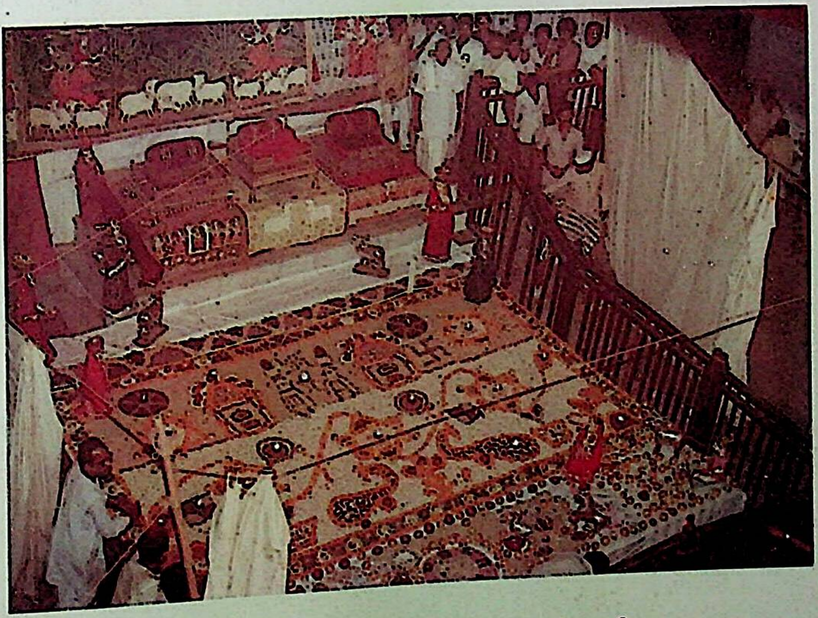
मंदिर श्री मुकुन्दरायजी, षष्ठपीठ, प्रीतमपोल,
श्रीनाथद्वारा



मंदिर श्री मुकन्दरायजी, श्रीनाथद्वारा
(ऊपरी भाग)



गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री के बहूजी गो० श्री प्रेमप्रिया बहूजी कृत
सन् १९८४ ई० के कार्तिक मास में छप्पन भोग के अवसर पे विभिन्न मनोरथ क्रमशः भये
१. छाक को मनोरथ को दर्शन

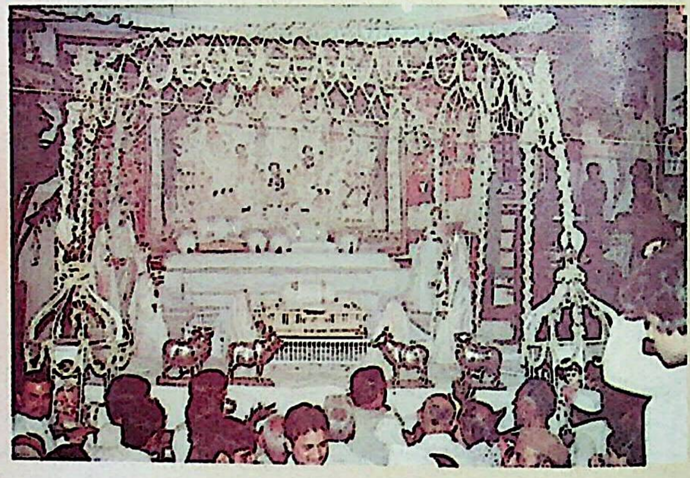


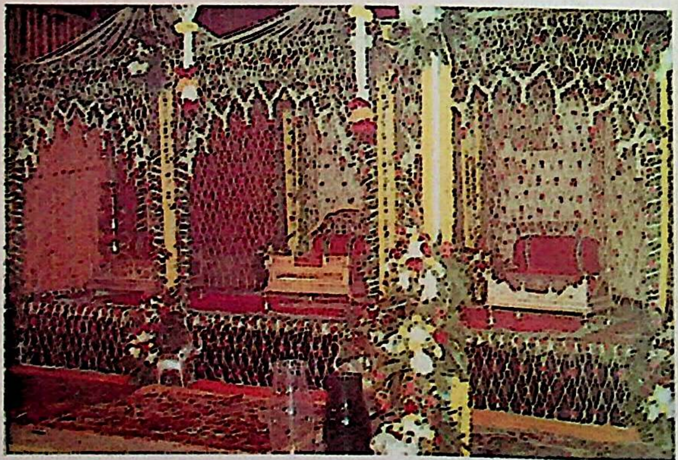
२. मेवा की साँझी को मनोरथ को दर्शन



३. धोली पटिया पर दान को मनोरथ को दर्शन

४. धोली पटिया पर शरद् को मनोरथ भयो





५. श्री गोवर्धन चौक में व्यावहुलो को मनोरथ भयो



६. छप्पन भोग को दर्शन



७. हिंडोला के मनोरथ



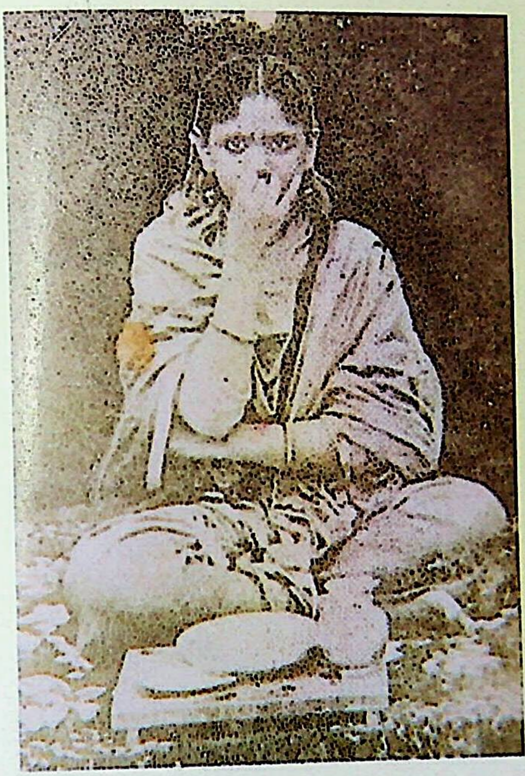
८. गो० श्री शरदवल्लभा बेटीजी श्री गोवर्धन चौक में श्री मद्भागवत सप्ताह में प्रवचन करते हुए



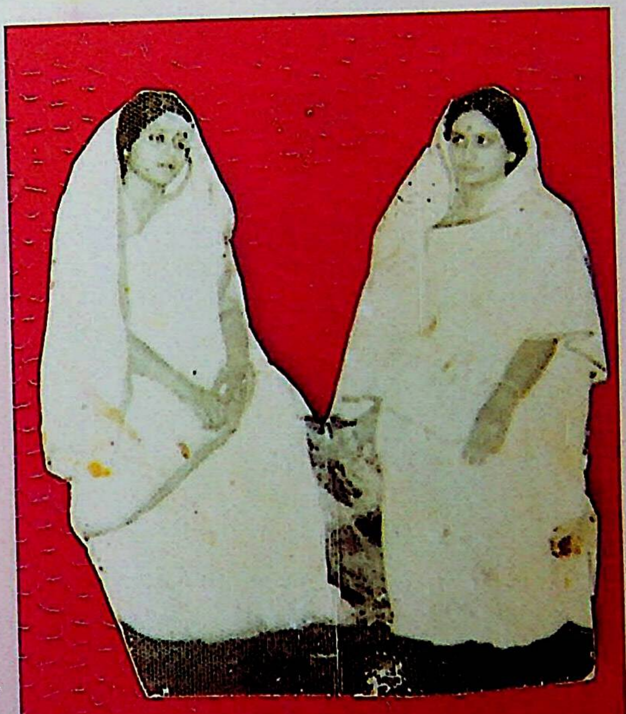
९. श्री मद्भागवत सप्ताह में व्यासपीठ पर आसीन शास्त्री श्री मदनलालजी (मन्दसौर)



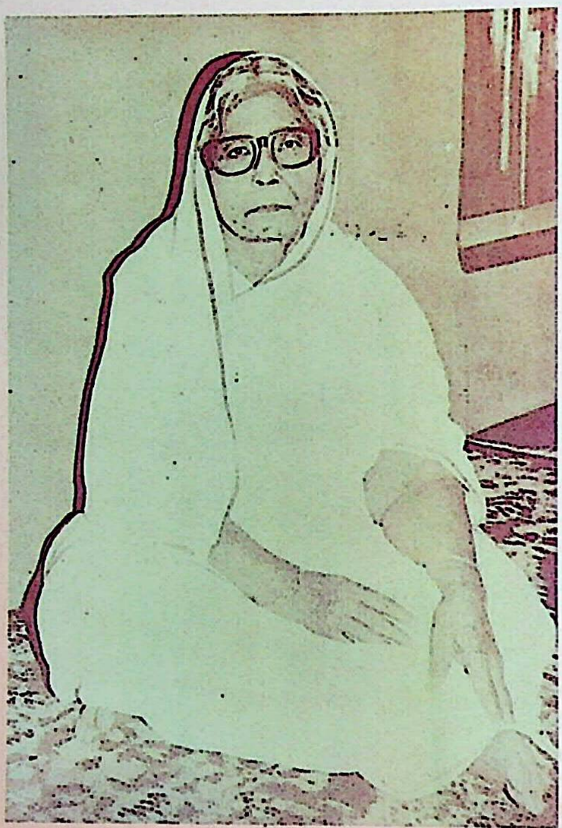
१०. छप्पन भोग के समापन पर काशी के वैष्णवों के मध्य में विराजमान सप्तमपीठाधीश्वर गो० श्री घनश्यामलालजी महाराज (कामवन)



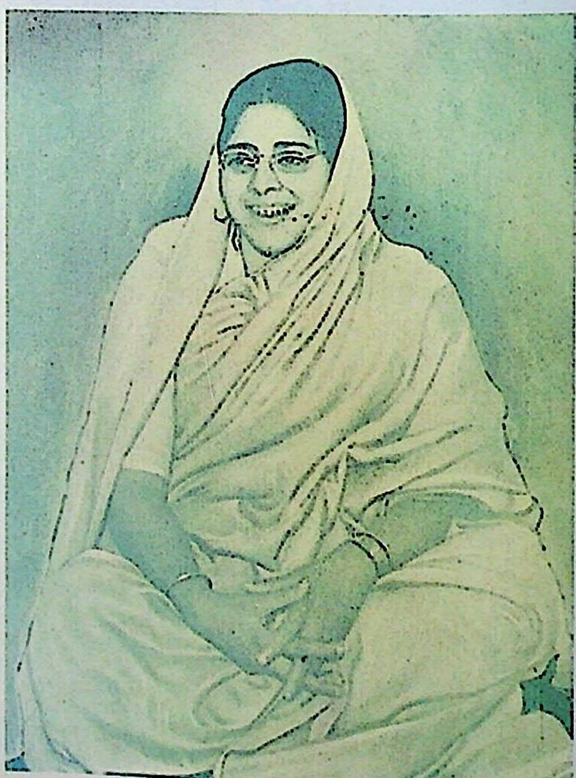
गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराजश्री का यज्ञोपवीत



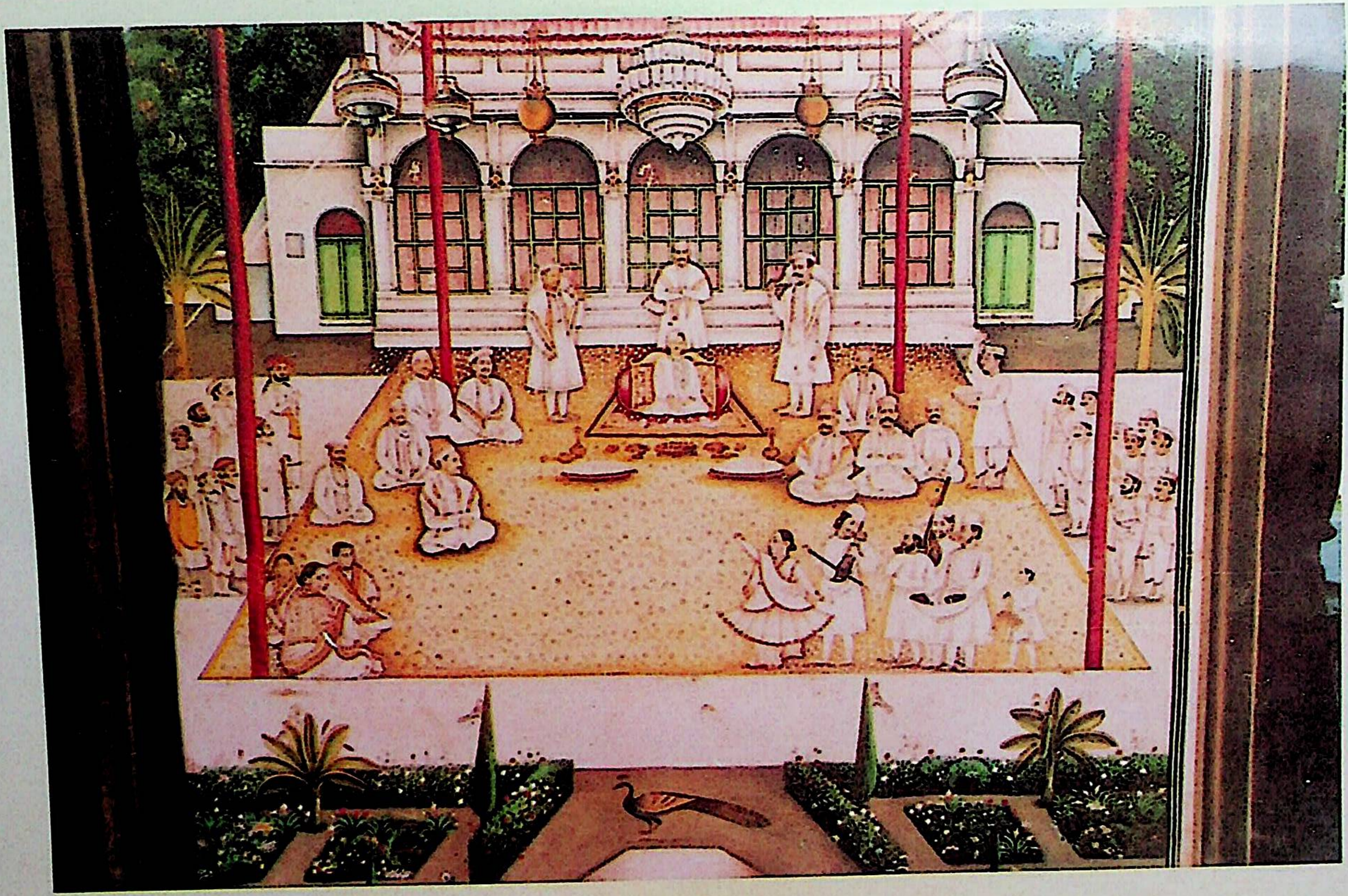
नि० ली० गो० श्री कृष्णाप्रिया बेटीजी एवं श्री शरद्वल्लभा बेटीजी



नि० ली० गो० श्री प्रेमप्रिया बहूजी महाराज (श्री अम्माजी)



नि० ली० गो० श्री कृष्णप्रिया बेटीजी



ष० पी० धी० गो० श्री जीवनलालजी महाराजश्री कलकत्ता कोठीवालों के आसापुर वाले
बगीचा में गुलाबबाड़ी के अवसर पर राजसी वेश में विराजमान



गो० श्री गोपाललालजी महाराजश्री के गोद में विराजमान गो० श्री गिरिधरलालजी एवं० गो० श्री मुरलीधरलालजी



गो० श्री श्याममनोहरजी महाराज प० भ० वैष्णव चम्पाबेन (बेहरिन वाले)
को प्रसादी माला प्रदान करते हुए। साथ में आपश्री के अग्रज
गो० श्री विट्ठलनाथजी महाराज भी विराजमान हैं

॥ श्रीमन्मुकुन्दगोपालौ जयतः ॥

श्रीमान् गोस्वामी श्री १०८ श्रीमुरलीधरलालजी

महाराजका व्याख्यान

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीड़ति यो यतः ॥

आज पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्मेलन के उद्‌घाटन-प्रारम्भ करने के साथ श्रीवल्लभ जयन्ती महामहोत्सव तथा अष्टाक्षर जप महायज्ञ की पूर्णाहुति के अङ्ग में चार दिन के अखण्ड जप कीर्त्तन आदि का प्रारंभ करने के लिए आप हम सब इस स्थान में एकत्र हुए हैं । इस आयोजन को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ और इस आयोजन के प्रारम्भ कर्त्ताओं को तथा इस साम्प्रदायिक कार्य में सम्मिलित होनेवालों को अन्तःकरण पूर्वक शुभाशीर्वाद प्रदान करता हूँ ।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण एवं आपके द्वितीय कुमार श्री विट्ठलेश प्रभुचरणने सनातन भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध करके तथा वैदिक वेदान्त सिद्धान्त शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद के सिद्धान्त को भारतीय आस्तिक जनता के सम्मुख जिस उत्तम स्वरूप में प्रकट किया है वह सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । आचार्यश्री के तथा आपश्री के वंशज एवं अनुयायी विद्वान् महानुभावों ने संस्कृत भाषा में तथा व्रजभाषा में जो विपुल साहित्य ग्रन्थ भंडार आस्तिक जनता को दिया है उसका आदर आस्तिक विद्वानों में आज विशेषरूप से हो रहा है ।

आचार्यश्री ने अपने प्रमाणभूत ग्रन्थों में वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र, और श्रीमद्भागवतादि शास्त्रों का सार संकलित किया है । आचार्यश्री के अणुभाष्य, तत्वदीपनिबन्ध एवं श्रीसुबोधिनीजी प्रभृति ग्रन्थ देखने से आचार्यश्री के उदार विचारों का हमें पता लगता है ।

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥

आचार्यश्री के इस उपदेश से यह स्पष्ट होता है कि आचार्यश्री ने सनातन वैदिक धर्मका ही प्रचार किया है और इन शास्त्रों के अनुसार वेदान्त सिद्धांत एवं भक्तिमार्ग का प्रतिपादन किया है । इसलिए हमारा पुष्टिमार्ग सनातन वैदिक-भक्तिमार्ग है । इस मार्ग में चलकर दैवीजीवों का सर्वविध कल्याण हो सकता है । भगवत् कीर्त्तन और भगवत् सेवा यह जो सर्वशास्त्रों का सारोपदेश है इसी को हमारे सम्प्रदाय में अद्यावधि प्रचलित रखने के लिए हमको इस प्रकार के जपयज्ञ तथा भगवत्सम्बन्धी विविध प्रकार के मनोरथ उत्सवादि करने चाहिए । यह आयोजन इसी विचार को लेकर गत चार मास से हो रहा है और अब इसकी पूर्णाहुति के अवसर पर पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्मेलन का आयोजन और इस प्रकार की साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को चालू रखने के लिए एक संस्था स्थायी होना जरूरी है । इस प्रकार भावनायुक्त सम्मेलन से हमें प्रसन्नता है । क्योंकि वर्तमान दिशा हमें सूचना दे रही है । यह सम्मेलन प्राचीन रीतिसे युक्त शुद्ध स्नेह की वृद्धि करनेवाला होना चाहिए ।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त और निर्गुण भक्तिमार्ग पुष्टिमार्ग के ग्रन्थोंका तथा उपदेशों का प्रचार गुजरात प्रान्तो में विशेषरूप से हुआ है और हो रहा है । उत्तर भारत तथा पूर्व भारत में इस प्रकार की प्रवृत्ति करने की बड़ी

आवश्यकता है जिसको पूर्ण करने का प्रयत्न इस सम्मेलन के द्वारा करना चाहिये। पुष्टिमार्गीय वैष्णव सम्मेलन का प्रधान केन्द्र काशीपुरी में रहे। परन्तु कार्यवाहक निस्वार्थी, योग्य कार्यकर्ता सम्प्रदाय के रहें और इसके अधिवेशन भिन्न भिन्न स्थानों में होते रहें, तो हमारा विश्वास है कि सम्प्रदाय के अनुयायियों का उत्तम संगठन होगा और यह संस्था उत्तम कार्य कर सकेगी तथा वे स्वधर्म परायण होकर अपने दैवी जीवन का विशेष विकास कर सकेंगे।

वर्तमान भयंकर युग में जहाँ चारो ओर अशान्ति का वातावरण उपस्थित है, स्वधर्म एवं भगवद्भक्ति जो जीवों को परमशान्ति देनेवाले हैं उनकी तरफ जनसमाज की प्रीति एवं प्रवृत्ति न्यून होती जा रही है। ऐसे अवसर पर इस प्रकार के सम्मेलन आवश्यक हैं। कलियुग में यज्ञ, व्रत, दान तपादि साधन जो जीवों को पवित्र करनेवाले हैं उनका साङ्गोपाङ्ग आचरण एवं अनुष्ठान अति कठिन है। कर्ममार्ग, उपासनामार्ग तथा ज्ञानमार्ग में भी प्रवृत्ति करना देशकालानुरूप तथा परिस्थिति के कारण कठिन है वहाँपर यह भक्तिमार्ग ही जीवों को पवित्र रखनेवाला, शान्ति देनेवाला तथा परमकल्याणकारक है यह निर्विवाद है।

श्रीमन्महाप्रभुजी के मूल उपदेशों के अनुसार हमें अपना जीवन भगवत्परायण रखने के लिए साम्प्रदायिक ग्रन्थों का अध्ययन श्रवण करना आवश्यक है और इन कार्यों के लिए सर्वत्र साम्प्रदायिक सत्संगमंडल चालू करने की आवश्यकता है। यदि इस सम्मेलन के द्वारा इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ की जाँय तो इस सम्मेलन की उपयोगिता तथा सार्थकता सिद्ध होगी। इस सम्मेलन को स्थायी तथा इसके कार्यों के विस्तार के लिये सब वैष्णवों को उत्साहपूर्वक योगदान देना चाहिये।

आयुष्मती श्रीकृष्णप्रिया बेटीजी को इस विषय में प्रथम से ही शिक्षा प्राप्त हुई है सो आज कार्यान्वित हो रही है। इस कार्य के लिये सम्प्रदाय के वयोवृद्ध विद्वान् पंडित माधव शर्माजी और सम्प्रदाय के अनन्य सेवक, भाई कृष्णदासजी अढ़तियावाले तथा आप सब वैष्णवों का इस कार्य में सहयोग है और उचित रूप में रहेगा– इससे मैं इस सम्मेलन के प्रथमाधिवेशन का प्रारंभ करने के लिये आया हूँ और यथोचित कार्यक्रम चलता रहा तो फिर भी उचित योगदान देता रहूँगा।

अन्त में मेरी यह पुनीत भावना है तदनुसार यह सम्मेलन सफल हो, इसके उद्देश्यों की पूर्ति हो, इसके लिये श्रीमहाप्रभुजी आपके सदा सानुकूल रहें और आचार्यश्री का दृढ़ आश्रय रखकर सेवा भावना से इस कार्य को आप लोग चालू रखकर सम्प्रदाय की एक महती आवश्यकता को पूर्ण कर सकेंगें ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

●

अमन्दानन्दकन्दस्य
मुकुन्दस्य पदाम्बुजे।
भजनानन्द संलग्नं
मानसं मेऽस्तु सर्वदा॥

– गो० श्री अनिरुद्धाचार्य

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

विश्वप्रसिद्ध काशी की विभूति ष० पी० धी० श्री १०८ गो० श्री जीवनलालजी महाराज की परम्परागत प्राप्त कुछ स्मृतियाँ

प्रो० राय आनन्दकृष्ण

लेखक एक जाने माने कलाविद् एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित भारत कला भवन के संस्थापक प्रख्यात कला मर्मज्ञ स्व० रायकृष्णदासजी के सुपुत्र हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आप कला-संकाय के संकाय प्रमुख, कला इतिहास विभाग के अध्यक्ष, कार्यकारिणी परिषद के सदस्य तथा भारत कला भवन के सह निदेशक पद पर रहे हैं। आपने जवाहरलाल नेहरू फेलोशिप में भी कार्य किया है।

हम काशी को शिव की नगरी मानते हैं, यह एक पौराणिक सत्य है। परन्तु परम्परा से काशी दो भागों में विभक्त थी। जिस प्रकार विष्णु कांची और शिव कांची के रूप में कांची नगरी की दो स्पष्ट अभिव्यक्तियाँ हैं, उसी प्रकार काशी में एक शिव काशी है और दूसरी विष्णु काशी - ऐसा परम्परा से ज्ञात होता आया है। एक मतानुसार आदिकेशव घाट से पंचगंगा घाट तक विष्णु काशी थी। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस क्षेत्र में शिव मन्दिर न थे। परन्तु तीर्थ की दृष्टि से यह विष्णु काशी मानी जाती थी। मुसलमानों के भीषण आक्रमण के पूर्व जो बारहवीं शती के अन्त में हुआ, आदिकेशव घाट का बहुत बड़ा महत्व था। गहड़वाल सम्राटों ने भिन्न भिन्न पर्वों पर वहाँ स्नान कर अनेक दान दिये जो उनके दान-पत्रों से ज्ञात होते हैं।

बिन्दुमाधव मन्दिर का बड़ा महत्व था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस भव्य मन्दिर की प्रशस्ति में काव्य प्रस्तुत किया है। औरंगजेब काल तक काशी में आये यूरोपी भ्रमणकारियों ने इसकी उदात्तता का वर्णन किया है। आततायी औरंगजेब ने इसे नष्ट-भ्रष्ट किया पर इसका महत्व जानते हुए, काशी की जामा मस्जिद इसे ही बनाया। सौभाग्यवश विष्णु भगवान् की उक्त मूर्ति जो वहाँ पधारती थी, भक्तों ने बचाकर निकाल ली और वह आज भी एक श्रद्धालु परिवार में पूजनीय है।

जिस प्रकार पंचगंगा एक वैष्णव तीर्थ था, वहाँ रामानंदाचर्य का पीठ था, उसी प्रकार वर्तमान मैदागिन (प्राचीन मंदाकिनी सरोवर) भी एक तीर्थ था। आज यह सिमट कर एक छोटा सा तालमात्र रह गया है। परन्तु अपने बृहत्तर रूप में इसका एक छोर गोरखनाथ के टीले और दारानगर के समीप था तो नगर की ओर इसका विस्तार गोलघर का वह क्षेत्र था जिसके तट पर महाप्रभुजी की बैठक है। वर्षाकाल में यह उफन कर मत्स्योदरी (वर्तमान मछोदरी) से मिलकर एक हो जाता था तब एक बड़ा पर्व माना जाता था। कभी-कभी यह जल राशि फैलती हुई बढ़ी हुई वरुणा से मिल जाती तो महापर्व की संज्ञा होती। इसी मंदाकिनी सरोवर में एक छोटी सी नदी आकर मिलती है जो नामशेष है : बुलानाला के रूप में। बुला शब्द संस्कृत विपुल का भाषाई रूप है अर्थात् यह एक बहुत बड़ा नाला था। सम्भवः उसके मंदाकिनी तीर्थ से संगम के निकट महाप्रभुजी की बैठक थी।

आज हम नगर के भीतर थोड़ा और चलें तो एक विशिष्ट वैष्णव तीर्थ तक पहुँच जाते हैं जहाँ आज

श्रीमद्गोपाल मन्दिर परिसर है। इसके बगीचे का जो सिरा बुलानाले की ओर है वहाँ महाभक्त तुलसीदास कुछ समय तक निवास करते थे। परम्परा के अनुसार उन्होंने वहीं **विनय-पत्रिका** का सृजन किया। ऐसी पूर्ण सम्भावना है कि तुलसी बाबा के काल में वह उन्मुक्त क्षेत्र था अर्थात् चारों ओर की दीवारों से अवरूद्ध न था।

इस क्षेत्र का वर्तमान विकास श्री १०८ शुद्धाद्वैतमार्तण्ड गोस्वामी श्री गिरिधरजी महाराज के समय में हुआ जब श्रीनाथजी नाथद्वारा से ष० नि० स्वरूप मुकुन्दरायजी यहाँ पधारे। ऐसी परम्परा है कि कुछ काल तक यह क्षेत्र अन्य मार्गियों के प्रभाव में था। अत: आचार्य स्वरूप को शक्ति का प्रयोग कर उन्हें इस क्षेत्र से बाहर करना पड़ा, दो एक दिनों तक कोलाहल था। एक जनश्रुति इस प्रकार की भी है कि कुछ विधर्मियों को भी उन्होंने बाहर किया। उसके बाद इस क्षेत्र का महत्व और समृद्धि अहर्निश बढ़ती गई और आज भी बढ़ती जा रही है।

आचार्य गिरिधरजी महाराज के प्रमुख शिष्यों में गोपालचन्द्रजी भी थे जिनके यहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अवतरित हुए। बा० गोपालचन्द्रजी ने अत्यंतिक भक्ति के नाते अपना उपनाम ही ''गिरिधरदास'' रखा था। उस काल में मन्दिर की बड़ी धाक थी। मेरे पूज्य पिताजी बताते थे कि इसी कारण काशी का व्यापार प्रत्येक एकादशी को बन्द रहा करता था। इसका पालन सभी धर्म और सम्प्रदाय के लोग करते थे। इसके अतिरिक्त अनेक उद्योगों में यथा जगत् प्रसिद्ध बनारसी वस्त्र उद्योग में, मन्दिर की कटौती होती थी अर्थात् प्रतिशत कुछ रुपये मन्दिर के नाम पर कटते थे और मन्दिर में जमा होते थे। इसे काशी के पूरे व्यापार जगत् ने स्वीकार किया था। यह व्यवस्था स्वतंत्रता के बाद भी कुछ वर्षों तक चलती रही थी पर सम्भवत: अब यह समाप्त है।

मेरे पू० पिताजी (राय कृष्णदासजी) ने गो० श्रीजीवनलालजी महाराजश्री से दीक्षा ली थी और मेरे दादाजी (राय प्रह्लाददासजी) ने स्वयं गो० श्री गिरिधरजी महाराज से दीक्षा ली थी। अनन्य भक्त होने के नाते हमारे इन दोनों पूर्वजों पर महाराजश्री की असीम कृपा की वर्षा होती रहती थी। हम लोगों का पैतृक निवास रामघाट पर गंगा तट पर था। महाराज श्रीजीवनलालजी की शिक्षानुसार मेरे दादाजी नित्य पहले खूब अच्छी तरह घर पर स्नान करते, उसके पश्चात् गीली धोती पहने गंगा स्नान के लिये जाते अथवा दूसरे शब्दों में गिनकर डुबकियाँ लगाते। उस समय वे दसों उँगलियों द्वारा दोनों आँखों कान-नाक के छिद्रों और हथेली द्वारा मुँह का छिद्र बन्द कर डुबकियाँ लगाते कि कहीं इन छिद्रों का स्राव गंगाजल में न पड़ जाय। फिर गीली धोती पहने ही घर लौटकर बदन सुखाते, कपड़े बदलते फिर सांगोपांग ''सेवा'' करते। आज भी हमारे यहाँ उन्हीं शालिग्राम जी की जो ''हिरण्यगर्भ'' कहलाते हैं यत्किंचित रूप में ''सेवा'' चली आ रही है। इसके बाद प्रसाद ग्रहण कर वे परिवार (जो बगीचे में रहता था) के लिये लौटते। एक बार ''सेवा'' के मध्य में बड़े लाट वायसराय कर्जन का बुलावा आया। पर वे '' सेवा'' सम्पूर्ण करने के बाद ही आसन से उठे। ऐसी शिक्षा थी श्री जीवनलालजी महाराजश्री की।

मेरे दादाजी और बाल्यावस्था में मेरे पिताजी उक्त महाराजश्री के विशेष कृपापात्र थे। खेद है मैंने उक्त संस्मरण को लिपिबद्ध न कर लिया।

पिताजी बताते थे कि महाराज अत्यन्त विद्वान् और विद्यावसनी थे, सम्भवत: शतरंज क्रीड़ा में भी पारंगत थे। एक बार बाल्यावस्था में ही, पिताजी महाराजश्री के दर्शनार्थ गए अपने पिताजी के साथ। महाराजश्री उस समय शतरंज खेल रहे थे। प्रत्येक चाल पर आशु कविता के रूप में एक सुन्दर मौलिक श्लोक भी उनके मुखरविन्द से झड़ रहा था। उनके विषय में प्रसिद्ध था कि वे आशु कविता के रूप में कई भाषाओं में एक साथ काव्य कहते जाते थे। यथा एक पंक्ति संस्कृत में तो दूसरी व्रज भाषा अथवा गुजराती आदि में।

पिताजी बताते कि महाराजश्री बालकों को उत्साहित करते रहते कि श्रीमद्भागवत के रास पंचाध्यायी को कण्ठस्थ करो एवं प्रत्येक बार प्रगति परीक्षा भी लेते। इसी कारण मेरे पिताजी और दोनों बुआजी को रास पंचाध्यायी कण्ठस्थ हो गयी थी।

यह भी ज्ञात हुआ कि महाराजश्री को अनेक परम्परागत विधाओं का ज्ञान था। वे देखकर या सूंघकर बतला देते कि (आयुर्वेदिक) औषधि ठीक बनी है या नहीं। लोक प्रचलित दूसरी ओर जड़ी बूटियों द्वारा अनेक उपचार बता देते। महाराजश्री संगीत के भी विद्वान् थे। यदि मुझे भ्रम नहीं है तो वे किसी वाद्ययंत्र को बजाने में भी सिद्धहस्त थे। बात उन दिनों की है जब सुप्रसिद्ध स्वरसाम्राज्ञी केसर बाई केरकर नई-नई संगीत तारिका के रूप में उदित हुई थी। वे काशी आई थी। उन्होंने गोपाल मन्दिर में अपनी संगीतांजलि अर्पित करने की इच्छा प्रकट की थी। प्रातःकालीन संगीत सभा थी। प्रारम्भ से अन्त तक महाराजश्री ने उपस्थित होकर संगीत सभा को गौरवान्वित किया। कहते हैं केसर बाई का उस कोटि का गायन जल्दी सुनने को नहीं मिला। बहुत वर्षों तक काशीवासियों के मन में उसकी छाप रही।

महाराजश्री अपने अंतरंग भक्तों के बीच मनोरंजक संस्मरण सुनाया करते। मेरे पिताजी उनमें से एक उद्धृत करते। स्थानीय चौकाघाट मुहल्ले में एक बगीचा है, सम्भवतः गोपाल मन्दिर की सम्पत्ति है, अथवा किसी भक्त के यहाँ उस बगीचा में महाराजश्री की ''पधरौनी'' थी। भक्तों ने तगड़ी भाँग छान रखी थी। इनमें सुप्रसिद्ध उस्ताद रामप्रसादजी चित्रकार भी थे। यों तो रामप्रसादजी अपनी कुल परम्परा से शाक्त थे पर उनकी महाराजश्री पर अपार श्रद्धा थी। फलतः उनके पौत्रों के नाम चि० मुकुन्दप्रसाद और चि० गोपालप्रसाद हैं। रामप्रसाद जी ने भी खूब भाँग चढ़ा रखी थी। महाराजश्री के सम्मुख भक्तगण बैठे थे। सहसा रामप्रसादजी खड़े होकर धाड़ मारकर रोने लगे कि महाराज आपके वैष्णव लोग आज मुझे देवी के सम्मुख बलि चढ़ा देंगे, आप रक्षा करें, रक्षा करें। रामप्रसादजी के गले में प्रसाद के रूप में तुलसी माला पड़ी थी, भंग की तरंग में वे उसे गुड़हल के फूलों की माला समझ रहे थे और उसकी ओर इंगित कर बार-बार कह रहे थे कि बलि चढ़ाने के पहले ऐसी ही माला पहनाई जाती है आदि-आदि।

महाराजश्री को विनोद तो अवश्य हुआ होगा, पर संयत भाव से उन्होंने कहा कि बगीची में खोजो, अमुक जड़ी अवश्य होगी, इसे भांग चढ़ गई है। जड़ी मुँह में डालकर कूएँ के ठण्डे पानी से स्नान कराओ। जिन लोगों ने महाराजश्री के मुखारविन्द से इस प्रकार के रोचक वृत्तांत सुने होंगे, वे ही इस अमृत का स्वाद जानते थे। ऐसे थे हमारे प्रतिभा सम्पन्न महाराजश्री।

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

नि०लि०गो० श्रीमुरलीधरलालजी महाराजानां पुण्यस्मृतौ विशिष्टसंस्मरणानि

गोलोकवासी पं० श्री रामनाथ ज्योतिषी

प्रस्तुत संस्मरण के लेखक गोलोकवासी पं० श्री रामनाथजी ज्योतिषी अपनी वंशपरम्परा से जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य षष्ठपीठ गोपालमन्दिर, काशी के ज्योतिषी थे। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ज्योतिष में प्राध्यापक थे, तथा गीर्वाणवाग्वर्धिनी सभा (साङ्गवेद विद्यालय,काशी) के उपाध्यक्ष भी थे। आपने विद्वत् सभाओं में अपने पिता श्री गौतमीजी ज्योतिषी के सम्मान को यथावत् बनाये रखा। मन्दिर के ज्योतिषी हाने से उत्सवों पर आप श्रीजी के सन्मुख जन्मपत्रिकाओं का वाचन करते तथा ष० पी० धी० नि० ली० श्री १०८ गो० श्री मुरलीधरलालजी महाराज के कृपापात्र थे। प्रस्तुत संस्मरण ज्योतिषीजी ने अपने जीवनकाल में ही लिखा था।

श्रीमद्वल्लभाचार्यषष्ठपीठाधीश्वराणां गोस्वामिवर्य श्री १०८ मुरलीधरलालजीमहाराजनामधेयानां प्राकट्यः चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां काशीस्थषष्ठगृहे समभूत्।

दि० २०-८-४७ ईस्वीये स्थानीयश्रीगोपालमन्दिरे। सभामण्डपे गो० श्री १०८ मुरलीधरजी महाराजानां षष्ठपीठाधीश्वराणामध्यक्षनायां प्रातष्टवादने एका विराट्सभा सञ्जाता। यस्यां दर्शनार्थीनां श्रीत्रृणांम् च अपार जनसमूहो जातः। तत्र अ०भा० वर्णाश्रमस्वराज्यसंघस्य अध्यक्षाणां श्री प० देवनायक जीमहाभागानां "देशकी वर्तमान परिस्थिति में सनातनधर्मियों का कर्तव्य" विषये अतीव ओजस्वी भाषणमभूत्। उपस्थितासु जनतासु अतीवोत्साहः दृष्टः। महाराष्ट्रे गुजरातप्रान्ते च गोस्वामिकुलभूषणानां श्री १०८ श्रीकृष्णजीवनजी महाराजानां श्री दीक्षितजीमहाराजानां च नेतृत्वे मन्दिरमर्यादायां रक्षणसमित्या यत्कार्यं प्रवर्तते, तं प्रत्यानन्दः प्रकाशितः। तथोत्तरप्रदेशे यदास्मिन् सम्बन्धे कार्यक्रमः प्रावर्तितः तं जवेन संचालयितुं निर्णयम् अभूत्।

अखिलभारतवर्षीय वर्णाश्रमस्वराज संघस्य कार्यकालेऽपि तेः कार्यकर्तृणां विदुषां सर्वविधसहाय्यं कृतम्।

कतिपयवर्षेभ्यः पूर्व श्रीनाथद्वारप्रधानपीठाधीशश्रीगोविन्दलालजीमहाराजानामाराध्यदेवश्रीनाथप्रभोः मन्दिरे संकल्पितसप्तस्वरूपमनोरथोत्सवे काशीतः इमे स्वकीयोपास्यदेवं श्रीमुकुन्दप्रभुं गृहीत्वा वैष्णवैः सह विधिविधान-पुरस्सरं मोटरयान द्वारा यात्रां कृत्वा, तत्र मन्दिरे श्रीनाथप्रभोः समीपे पूर्वजैर्निर्धारितऐतिहासिकपीठे श्रीमुकुन्दप्रभुं विराजितवन्तः। तत्पश्चात् श्रीनाथद्वारतः स्वेष्टदेवं श्रीमुकुन्दप्रभुं यथा विधिपरावृत्य महतासमारोहेण पुनः काश्यां निजमन्दिरे स्थापयामास। इयं ऐतिहासिकी घटना साम्प्रदायिकदृष्टया महत्वपूर्णा विद्यते, यस्याः स्मृतिः प्रतिवर्ष श्रावपशुक्लसप्तमीतिथौ मन्दिरे "सप्त स्वरूपोत्सव" रूपेण शोभते।

एतेषां मनसि अत्र स्वकीयाराध्येदेवतासान्निधाने साम्प्रदायिकपरिपाट्या "छप्पनभोग मनोरथ" कुर्तुं मनीषा आसीत्। तस्याः सम्पूर्तिः कालान्तरे २०४१ विक्रम् संवात्सरे कातिकशुक्लपूर्णिमायां एतेषां धर्मपत्नि प्रेमश्रियाबहूजि-द्वारा सम्यक्तया जाता।

ते च अर्भभावादरभ्य साम्प्रदायिकप्रभुसेवान्तर्गतरहस्यपूर्णशृंगारभावनाभिः परिपूर्णतमाः आसन्। किं ब्रूमः श्री गोपालमन्दिरे प्रभोः दर्शनवेलायां भावुकभक्तानां कीर्तनकर्तृणां वैष्णवैः सह उत्सवादिप्रसंगेषु यदा ते स्वयं

मार्गदर्शकरूपेण भगवद्कीर्त्तनं कुर्वन्तिस्म तदा दर्शनार्थिजनानां हृदि आनन्दरसधाराप्रवहमाना अनूभूयतेस्म । यदा ते पंचविंशतिवर्षवयस्काः आसन् तदा काश्यां ऐतिहासिकं अ. भा. ब्राह्मणमहासम्मेलनं महता समारोहेष संजातम् । तदानीं सम्मेलने विचार्यमाणविवादग्रस्तसप्तदशधार्मिकप्रश्नानामुपरि प्रख्यातविदुषां मध्ये, निर्णयकरूपेण विराजमानानां विभिन्नसम्प्रदायाचार्याणां सह इमे श्रीवल्लभाचार्यषष्ठपीठाधीश्वरपदम लङ्कृत्य सप्तदिनपर्यंतप्रचलितविचारसभायां उपस्थाय ऐकमत्येन निर्णयाः दत्तवन्तः । हस्ताक्षरा ङ्किंत निर्णयपत्रम् अस्माकं समीपे सुरक्षितं विद्यते ।

नवोत्तरद्विसहस् (२००९) विक्रमसंवत्सरे श्रीमतां प्रथमआत्मजया स्वनामधन्यया श्रीकृष्णप्रियाबेटीजी महा भागया काश्यां प्रथमवैष्णवसम्मेलनस्यायोजनं महतासमारोहेण कृतम्, यस्योद्‌घाटनं सारगर्भित भाषणेन सह आचार्यवर्यैः कृतम् । तेषां उत्साहपूर्णप्रेरणां प्राप्य सुप्रसिद्धमीमांसकवर्यमहामोपाध्यायश्रीचिन्नस्वामिशस्त्रिणामन्तेवासि श्रीहरिशङ्करशास्त्रिमहोदयानां सुसंपादकत्वे काशीस्थश्रीपुष्टिमार्गीयवैष्णवसभया ''हिन्दीमासिकपत्रिकायाः दीर्घकालपर्यन्तं प्रकाशनं कृतम्, यस्यां विशिष्टविद्वज्जनैः सरलभाषया लिखितानि निबन्धानि प्रकाशितानि बूभवुः, यानि पठित्वा साधारणवैष्णवानामपि साम्प्रदायिकज्ञानं वर्धतेस्म ।

अनेकधा तैः श्रीजेष्ठारामशास्त्री, श्रीमाधवाशर्मा, श्रीकेशवशास्त्रीतैलङ्गप्रभृतिविद्वद्भिः साकं देशाटनमपिकृतम् । सार्वजनिकसभायां आचार्याणां प्रवचनं श्रुत्वा वैष्णवाः कृतार्थाः भवन्तिस्मः ।

द्वाविंशतिवर्षपूर्व साम्प्रदायिकसवविधज्ञानप्रसारार्थं ''श्रीमद्वल्लभसिद्धान्तसेवासंस्थान'' नाम्नी संस्थायाः काश्यां श्रीचरणानां प्रेरणया वैष्णवेः संभूय कृतम् । संस्थायाः कार्यनिर्वाहार्थं शिष्यैः भवनमपि क्रीतम्, उद्‌घाटनकार्यं पण्डिताराजश्रीराजेश्वरशास्त्रिमहोदयैः कृतम् । आचार्याणां शास्त्रेषु दृढ़विश्वास आसीत्, अतः तैः ''शास्त्रमवगत्य मनोवाक्देहेः श्रीकृष्णः सेव्यः'' इति श्रीमद्वल्लभाचार्योक्तमहावाक्यं संस्थाया आदर्शरूपेण निर्धारितम् । संस्थानस्य स्मृतिपत्रे शुद्धाद्वैतदर्शनस्य प्रचारार्थ विशिष्टोद्देश्यानि कार्यकर्तृणां कृते निर्दिष्टानि सन्ति । श्रीचरणानां उत्साहप्रदवक्तव्यस्य प्रभावेण धनिकैऽसत्वरमेव प्रारंभिकधनराशिं संगृह्य, अत्रैवगोपालमन्दिरे विराटसमारोहे संस्कृत विश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वकुलसचिव श्रीकुबेरनाथशुक्लमहोदयाय वल्लभवेदान्तस्य संस्कृतविश्वविद्यालये अध्यापनार्थं द्रव्यं महाभागानामेषां कराविन्देन तैः प्रदत्तम् । परिणामे सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालये शुद्धाद्वैतवेदान्तस्य अध्ययना-ध्यापनपरीक्षाग्रन्थप्रकाशनादिकार्याणि प्रारब्धानि, यानि तत्स्थानीयप्राध्यापकैः (पण्डितश्रीसत्यनारायणशास्त्रिवर्यैः) संचाल्यते । सन्तोषप्रदमिदं यत् विभिन्नकेन्द्रेषुपरिचाल्यमानशुद्धाद्वैतवेदान्ताचार्यपरीक्षयां गोस्वामिबालकाः छात्राश्च साफल्यं प्राप्य आचार्यपदवीं लभन्ते । शास्त्रार्थपटुछात्राणां कृतेऽपि काशीस्थसाङ्गवेदविद्यालये संस्कृतविश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशिते गोलोकवासिमहाराजस्य पितामहचरणश्रीगिरिधरजीमहाराज द्वारा विरचिते ''शुद्धा द्वैतमार्तण्ड ग्रन्थे'' वार्षिकशास्त्रार्थप्रतियोगिता परीक्षा भवति, विजयीछात्राय एकोत्तरशतरूप्यापि पुरस्कारमपि दीयते । विद्याक्षेत्रे एतत्सर्वं महाराजानां हार्दिक अभिलाषया सुसम्पन्न मित्यत्र नास्ति कश्चित् सन्देहः ।

अधुना एतेषां महानुभावानां वियोगेन धार्मिकसामजस्य महती क्षतिः ।

उक्तंच-

यत्रापि कुत्रापि गता भवन्ति हंसा महीमण्डलमण्डनाय ।
हानिश्च तेषां सरोवराणां येषां मरालैः सह विप्रयोगः ॥

वि०सं० २०३८ वर्षे श्रीचरणानां वर्धापनदिवसानन्तरं वार्तालापप्रसङ्गे यदा मया कथितं- ''श्रीमताम् आगामिवर्षः शारीरिकस्वास्थ्यंविषये चिन्तनीयः दृश्यते'' तदा तैरुक्तम् - अहो ! चिन्ता ना कार्या -

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते,
नो चेदर्भकलालनाय जननीस्तन्यं कथं निस्सरेत्।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते गोपीपते केवलम्,
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥

इदं पद्यं श्रुत्वा मनसि मया कथितम् "अहो ! एषां भगवत्सेवायां कीदृशी दृढ़निष्ठा विद्योतते, धन्या इमे ।"

आचार्यचरणानां जीवनदर्शनं, आचारविचारः, वार्ताव्यवहारः, भगवत्सेवा, श्रृंगारभावना, कीर्त्तन, प्रवचनं, सात्विकवेशूभषा, मितव्ययिता, विदुषामादरसत्कारः, जिज्ञासूनां साम्प्रदायिकशंका निराकरणं सर्वमवर्णनीयमस्ति ।

राजानो यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति पण्डिताः ।
साधवो यं प्रशंसन्ति स पार्थ पुरुषोत्तमः ॥

एभिः शब्दैः साकमाचर्यवर्याणं पुरुषोत्तमानां मामकीना वाक्पुष्पांजलिं समर्पयामि ।

इति शम् ॥

●

नन्द नन्दन की देख छटारी ।
लख इत जात छेल नट नागर
लकुटि फिरावत वेश नटा री ।
मुख सों गावत नयन नचावत
कोऊ सखी जो ठाड़ी अटारी ।
मोर मुकुट मुख मुरली सोहे
ललित कपोलन श्याम लटारी ।
उन बिन चेन परत ना सजनी
बिन दरसन जिय जात कटारी ।
लोक लाज बह जाओ यमुना
मन मेरी अटक्यो पीत पटारी ।
व्रजलता के प्रभु श्याम मनोहर
नयनन बरखत श्याम घटारी ।

●

॥ श्री मुकुन्द गोपाललालौ विजयेते ॥

Sixth Peeth Gopal Mandir-Varanasi and Pushti-Margiya Vaishanava Cult and 'Seva Vidhi'

Gopal Das

सामाजिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक व व्यवसायिक संस्थाओं से जुड़े हुये, काशी के तत्कालीन लब्ध प्रतिष्ठित आयकर के अग्रणी अधिवक्ता स्व० मथुरादासजी के पुत्र व उनके ज्येष्ठ पुत्र व सुयोग्य शिष्य अधिवक्ता स्व० गणेशदासजी के अनुज, दीवानी व फौजदारी अधिवक्ता- गोपालदास

Mythology has woven an attractive web about the genesis of its construction. The followers of Shri Vallabha who constitute a denomination are popularly known as Pushti-margiya Sampradaya. The denomination was founded by Shri Vallabha (1479-1531 AD). Some scholars think that Shri Vallabha was born in 1473 AD. (the Cultural Heritage of India Vol. III page 347). He was the son of a Telung Brahmmin named Lakshmana Bhatt. On one occasion, Lakshmana Bhatt had gone on a pilgrimage to Benaras with his wife Ellammagaru. On the way, she gave birth to a son in 1479 AD. That son was known as Shri Vallabha. It is said that the God Krishna manifested himself to Shri Vallabha on the Goverdhan Hill by the name of Devadamana, also known as 'Srinathaji'. God Krishna, in person, commanded Shri Vallabha to erect a shrine for him and to propagate amongst his followers the cult of worshipping him in order to obtain Bhakti-Margiya Salvation. Shri Vallabha, on the hill found the image corresponding to God Krishna and soon thereafter, he had a small temple built at Giriraj (Goverdhan, District Mathura, U.P.) and installed the image in this temple. It is believed that this happened approximaitely in 1500 AD, later a big temple was constructed and the image was installed there by Vallabha himself. (Bhai Manilal C. Parekh's '*Religion of Grace'*). Thereafter, the shrine was installed in a village Singhad which is presently known as the town of Nathadwara, Rajasthan and is the Head peeth of the Pushti-margiya cult.

In course of time Shri Vallabha was succeeded by his son Shri Vitthalnathji who was both in learning and in saintly character, a worthy son of a worthy father. He had great organising skills and his work was carried out with missionary zeal. In the Dominion, Shri Vallabha is described as 'Acharya' or Maha Prabhuji and Shri Vitthalnathji is described as Gosain or Goswami.

Goswami Vittalanathji had seven sons. The tradition of the denomination believes that besides the Nidhi-Swaroop of 'Srināthji', Shri Vitthalnāthaji received from his father seven other idols which were also known as 'Nidhi Swaroops' (manifestations of Lord Krishna). Before his Lila Pravesh, Shri Vitthalnāthji entrusted seva of Srinathji, the principal idol, to his eldest son, Shri Giridharji and one idol to each one of his sons, except, Goswami Shri Yadunathji, the sixth son. All the seven sons of Gosain Vitthalnāthji, known and beleïved by the followers, as Śat Ghaṛ of Nandraiji. They founded separate shrines at various places all over India and in-

stalled there 'Nidhi Swaroop', received by Gosainji in the same, which was recognized as 'Peeth' of the cult. Due to non acceptance of Thakurji Balkrishn Lal by the sixth son Goswami Shri Yadunathji, the said Swaroop was given by Gosainji to his third son Goswami Sri Balkrishnalaji as 'Goda ke Thakurji', as such, the Sixth Peeth was lying vacant. The pedigree of Goswami Vitthalnāthji and his Sixth son Goswami Yadunāthji from whom, the present Sixth Peeth (Gopal Mandir) has succeeded, is given here under;

1.	Acharya Mahaprabhu Vallabachārya	S.Y. 1535
2.	Goswami Shri VitthalNāthji	S.Y. 1572
3.	Goswami Shri Yadunāthji	S.Y.1615
4.	Goswami Shri Jagannāthji	S.Y.1642
5.	Goswami Shri Chimanlalji (adopted) (Sixth house first branch)	
6.	Goswami Shri KalyanRāiji	S.Y. 1704
7.	Goswami Shri Giridharji (Bade)	S.Y. 1737
8.	Goswami Shri Jeevanji	S.Y.1775
9.	Goswami Shri Gopalji (adopted) (Sixth house first branch)	S.Y.1810
10.	Goswami Shri Giridharji	S.Y.1847

After Golokwas of Goswami Sri Giridharji, Goswami Sri Shyama Betiji was looking after the Seva, Rag, Bhog, of Thakurji and its Estate and ultimately Goswami Sri Jeevanlalji was adopted.

11.	Goswami Shri Jeevanlalji (adopted) (Sixth house first branch)	S.Y. 1923
12.	Goswami Shri Muralidharlalji	S.Y.1961

Goswami Shri Muralidharlalji expired (Golokwas) in the year 1982 and Goswami Shri Prem Priya Bahuji (Ammaji) along with her daughter-Goswami Shri Sharad Vallabha Betiji (Jiji) both as Shebait, controlled the temple and looked after Thakurji, Rāg, Bhog, Shringār and Estate. Ammaji took her last breath (Golokvas) on February 9, 1986. Thereafter her eminent daughter known as Jiji brought Goswami Sri Shyam Manoharji Maharaj (from Vallabha Acharya family from Chāpāsāni) and elevated him as Acharya of this Sixth Peeth. With the full support of Vaishanava, he is managing as SHATHAPEETHADISHWAR, all affairs of Thakurji and their Estate sincerely, nicely and wisely since Magh Sudi 4 S.Y. 2048.

Goswami Sri Jeevanji Maharaj, who was on the 8th generation of the pedigree shown above brought Deity Gopallalji from Gokulpurā Distt. Bharatpur and was placed in Gopal Mandir, Varanasi which is said to be from the time of Draupadi. Part of it may be history and part of it may be fiction, but the story is handed down

from generation to generation by the devotees and is believed by all of them to be true. Thakurji (Mukund Raiji) one of the 'Nidhi Swaroop' was brought by Goswami Sri Giridharji Maharaj, who was of 10th generation of Maha Prabhuji, in Guru Dakshinā from Tilkayit Goswami Shri Damodarji (Dauji) Maharaj (second) of Nathdwara, (Rajasthan), the Governing Peeth of this sect, with the sanctity to him as Sixth Peethadhishwar of this denomination, after performing all rituals, customs and tradition with the Hatari Ki Aārati, Pālaki and other alike fromalities Ultimately, on Magh Sudi 4 S.Y. 1885 Thakurji (Mukund Raiji) was placed in a seperated Building at K37/87, Jeevan Ji Ki Haveli, presently known as Gopal Mandir, Varanasi with the sanctity of the Sixth Peeth and Aacharya known as Shathapeethadhishwar of this cult.

All the successors of Gosain Vitthalnathji propogate the principle of Pushtimarg, an easy way for Bhakti-Margiya salvation for 'Jiva' without believing in celibacy. This cult does not regard that giving up worldly pleasures and the ordinary mode of a house-holder's life is essential, for spiritual progress. It teaches its followers that a normal house-holder's life is quite compatible with the practice of Bhakti. Further, this school believes that in order 'Bhakti' should be genuine and passionate in the mind of the devotees, there must be present the neccesary element of the personality of God. The 'Jiva' bound by 'Maya' cannot attain salvation, except, through the grace of God and kripā of Guru. In order to be able to perform 'Bhakti' in a proper way, the members of this denomination are initiated into this cult by the performance of two Rites; one 'Sharan Mantropadesh' and the other is 'Atma-Nivedan'. The first gives the devotee the status of Vaishnava and the second confirms upon him the status of 'Adhikāri' entitling him to pursue the path of service or devotion. During the performance of first rites, the mantra 'Shri Krishnah Sharanam Mamah' is repeated in the devotee's ear by the Guru. On this occasion, a 'Tulsi-Kanthi' is put around the neck of the devotee. During the second initiation a religious formula is repeated. The desired effect is that the devotee treats himself, his body, mind, life, his senses, sons, daughters, wife, family, education, properties, all others alike and all his worldly things, which are the root cause for all evil (klesh) are to be given away (samarpan) to Lord Krishna, so that no worldly evils (kama, krodha, lobha, moha, mad, matsara) like passion, anger, greed, attachment, ego etc., may be developed in 'Jiva' which is the condition precedent for a happy and peaceful life in this world, as well as for devotion. Thus in performing the above two rites the Guru plays a very important part and it is believed that the Guru can show the way to achieve God and only due to this reason the Guru and his family members are looked upon with high esteem and reverance as partaking of the divine essence.

To achieve the aforesaid goal the followers of this cult used to visit regularly with offerings, in the house cum temple of the Guru. The learned eminent scholar Dr. Bhandarkara in his work in *'Vaishnavism, Savism, and minor Religious system'* while dealing with Vallabha Maha-Prabhu observed that the Guru of this sect

ordinarily called 'Maharaj' are descendants of the seven sons of Vitthalesh. Vitthalnāthji and their children, without any distinction of sex, are called as Vallabh Bālak as will be future generations. Followers of this sect believe Vallabha-Balaka have the *essence* of God. Each Guru has a temple of his own and there are no public places of worship. The influence exercised by Vallabha and his successors over their adherents is kept up by the fact that God cannot be worshipped independently in a public place, but in a house cum temple of the Guru which is generally known as 'Havelis'.

Lord Krishna, as a child is idol of Shri MukundRaiji and Gopallalji with Swaminiji are the main subject of worship place in separate Building in Gopal Mandir. His worship consists of several acts of performance every day in the prescribed order of ceremonies. These begin with the ringing of the bell (Ghantānād) in the morning and putting the Lord Krishna to bed at night. After the Lord is awakened by the ringing of the bell there is the blowing of the Conch Shell (Shankhanād) awakening of the Lord and offering morning refreshments (Mangalā), waving of lamps (Aārti), bathing and dressing (Sringār), food (Bhog), leading the cows out for grazing (Gwāl), and the mid-day meal with Aarti and the evening service with Bhog and Āarti, Shain Āarti and then going to bed. It is note worthy that these rituals are performed with meticulous care every day and constitute the prescribed items of sevā, which the devotees attend every day in the Vallabha temple. Thus there are eight Darshan of Thakurji daily from Mangala through Gwal, Sringar, Rājbhog, Utthāpan, Bhog, Sandhyā Āarti, and Sain respectively throughout the day, in Gopal Mandir, Varanasi. The regular and daily seva is being performed of the Thakur Shri Mukund Raiji and Shri Gopallalji by Jiji and Shri Goswami Shyam Manoharji Maharaj with the help of either Sevak getting a nominal remuneration, with Thakurji Prasad (nek or Bhog-Pattal) or by Vaishanava Sevak working honorarium. The whole seva of Thakurji can broadly be divided in two categories as under :

A. **Nij Mandir Seva** :— This means the private and confidential portion of the Mandir where the Almighty Lord Thakurji resides, as mentioned above, assuming the personality of God. All provisions for daily needs are there, such as a bathroom, dressing, ornamentation (which is performed by Sebait Āchārya or Mukhiyā), a refreshment room (Bālbhog) where light refreshments are prepared for the Almighty Thakurji and Sakhari food (rice, dal, etc.) is regularly prepared for lunch followed by dinner and then Sandhyā Āarti. There is also a bedroom and bed for Thakurji to sleep on. Nij Seva is not open to all. Some of the requirements or qualifications are as under :—

1. One must be Audichya Brahmins or other Brahamins who are being permitted by the Ācharyā (Guru).
2. One must be 'Dixit' as mentioned above.
3. After permission from the Guru he can get 'Aparas Sevā'.

What is Aparas Seva? It is also necessary to clarify that Aparas Seva is not given to all. It is only with the permission of the Guru (which indicates the Guru's high spiritual status in this denomination) that suitable 'patrā' devotees out of the Audichya Brahmins who are Dixit by Acharya are given this seva and who must with whole heartedness, with full concentration and meditation perform the seva, for which he has been deputed. All such rituals and services to the Almighty should be performed with meticulous care and full concentration, they should be performed regularly and punctually. Any individual deviating or ignoring these structures for 'Nij Seva' can be replaced by another individual considered more suitable by the Ācharya or Guru. It may be further mentioned that while performing Aparas Seva, one's attachment to the materialistic world physically and mentally all should be withdrawn. One should concentrate and meditate towards the person of Thakurji. A codified system for each and every day Seva is in place. One must be freshly bathed having placed Tilak on the forehead, while chanting the name of Lord Sri Krishna. All seva is to be performed with great care and precaution. There are four to six Sevaks doing the service in Nij Mandir who are deputed with different responsibilities :

1. Mukhiya and 2. Chota Mukhiya are mainly responsible for dressing, ornamenting and adorning Thakurji.
3. Bal-Bhogiya and 4. Bal-Bhog Prachārak are mainly responsible for the preparation of the morning and noon refreshments for Thakurji.
5. Prachārak makes the arrangements of Thakurji's bath, Betel (pāān) and all other alike Sevā.
6. Rasoiyā is responsible for preparing Sakhari food for Thakurji.

B. **Bāhari (outside) Mandir Seva** :— There are also various Sevaks performing Bāhari Mandir Sevā such as Doodghariā, looking after milk preparations; Jhapatiā, controlling the crowd at the time of Thakurji's darshan; Aārtiwala, arranges all the articles for Thakurji's Āarti, Panghariya, arranges Betel or Pāān for Thakurji; Chandanghariyā, prepares the Sandalwood paste for Thakurji; Sāk ghariyā is in charge of providing fruit, vegetables and flowers. Kirtania, Pakhavji, Adhikari, Samadhāni are other sevaks alike.

It is note-worthy that many devotees such as Advocates, Doctors, writers, professors and business men of Varanasi are daily visitors to Gopal Mandir and use ot offer their services physically, mentally and financially. There are many women offering phool-ghar Mālā sevā (flower sevā) daily. There are also many individuals who do not even drink water until after darshan of Thakurji. On the whole Gopal Mandir (Varanasi) VIth Peeth is one of the main centres of Pushti Margiya-Vaishanava Sampradāya in the eastern and southern part of India.

(जै श्री कृष्ण)

श्रीनाथजी सूं आदि लेके सात स्वरूपन को संक्षिप्त विवरण

अनुक्रम	गृह	स्थान
श्री श्रीनाथजी	प्रधान गृह	नाथद्वारा
श्रीनवनीतप्रियाजी	प्रधान गृह	नाथद्वारा
श्रीमथुराधीशजी	प्रथम गृह	कोटा
श्रीविठ्ठलनाथजी	द्वितीय गृह	नाथद्वारा
श्रीद्वारिकाधीशजी	तृतीय गृह	कांकरोली
श्रीगोकुलनाथजी	चतुर्थ गृह	गोकुल
श्रीगोकुलचन्द्रमाजी	पंचम गृह	कामवन
श्रीमुकुन्दरायजी	षष्ठ गृह	काशी
श्रीमदनमोहनजी	सप्तम गृह	कामवन

प्राप्ति स्थान
षष्ठपीठ
मंदिर श्री मुकुन्दरायजी
श्री गोपाललालजी
काशी (वाराणसी), उ०प्र०, भारत

